

Anita Sharma
MA. Semester - II

महाकवि कालिदास
प्रणीतम्

# मेघदूतम्

डा. विजेन्द्र कुमार शर्मा

महाकविकालिदासप्रणीतम्

# मेघदूतम्

[ विस्तृत भूमिका, प्रसङ्ग; अन्वय, शब्दार्थ, हिन्दी अनुवाद, संस्कृत-टीका टिप्पणी, व्याकरण तथा सञ्जीवनी टीका समन्वित ]

सम्पादक :
डा० बिजेन्द्र कुमार शर्मा
संस्कृत विभाग
नेहरू मेमोरियल शिवनारायणदास कालिज, बदायूँ



साहित्य भण्डार
शिक्षा साहित्य के मुद्रक एवं प्रकाशक

सुभाष बाजार, मेरठ-250002

✧ प्रकाशक :
रतिराम शास्त्री

✧ अध्यक्ष :
साहित्य भण्डार
सुभाष बाजार, मेरठ।
दूरभाष : ५१८७५४



• नवीन संस्करण २००१

✧ मूल्य : पचास रुपये (५०.००)

✧ मुद्रक
शर्मा प्रिंटिंग प्रेस
जयदेवी नगर, मेरठ।
फोन : 766076, 769271

✧ टाईपसैटर :
चित्रा कम्प्यूटर्स, मेरठ

DR. PARS RAM SASTRI

# समर्पणम्—

जिनके श्री चरणों में बैठकर
मैंने विद्या-मधु का पानकर
संस्कृत जगत् में प्रवेश किया
उन आदरणीय परम श्रद्धेय
**डॉ० निरूपण विद्यालङ्कार**
की सेवा में भावसुमनाञ्जलि
के साथ—

*देववाणीं समुन्नेतुकामेन यत्-*
*सर्वदा स्वः कुटुम्बोऽपि नापेक्षितः ।*
*दिव्यभावान्वितो वैवदुर्दैवतां*
*निर्भयस्त्वं विनिन्दिन् सदैव स्थितः ।*
*धन्यधन्योऽसि मान्योऽसि विद्वद्र*
*त्वद्यशो भातुतत्कामयेऽहं सदा ॥*

सादर एवं सविनय
समर्पित

**—विजेन्द्र कुमार शर्मा**

# प्राक्कथन

कालिदास की गणना न केवल भारत के, अपितु विश्व के श्रेष्ठ महाकवियों में की जाती है । किसी भी विश्वविद्यालय का संस्कृत का पाठ्यक्रम बिना इनकी रचनाओं के अधूरा ही है । अत: सभी पाठ्यक्रमों में इनकी रचनाओं को सम्मान प्राप्त है । इनकी रचनाओं में मेघदूत को अत्यन्त महत्तवपूर्ण स्थान प्राप्त है । संस्कृत के गीतिकाव्यों में इस रमणीय कृति को जो सम्मान मिला है, वह किसी अन्य को नहीं । इसके पूर्वमेघ में रामगिरि से अलकापुरी तक के मार्ग का विशद वर्णन कर उत्तरमेघ में अपनी कान्ता का विरह-वर्णन प्रस्तुत कर यक्ष ने अन्त में अपना मर्मविदारक सन्देश भेजा है । केवल मात्र इतने वृत्त को लेकर महाकवि ने अपनी अमृत वाणी को मन्दाक्रान्ता की झूमती चाल प्रदान कर शृङ्गार की वह रस-धारा बहाई है, जिसमें काव्यरसिक आज भी डुबकी लगा रहे हैं ।

मेघदूत पर यद्यपि हिन्दी व अंग्रेजी में अनेक टीकायें होते हुए यह नवीन प्रयास पिष्टपेषण सा ही है, तथापि इस टीका का प्रणयन सर्वात्मभाव से छात्रों को ध्यान में रखकर किया गया है । इसकी व्याख्या का क्रम इस प्रकार रखा गया है—सर्वप्रथम प्रसङ्ग, तदनन्तर मूल भाग, अन्वय, कठिन शब्दों के अर्थ, अनुवाद, संस्कृत-टीका, टिप्पणियाँ तथा व्याकरण और अन्त में प्रयुक्त हुए अलङ्कार तथा उनका लक्षण भी दे दिया गया है । जिज्ञासु मनीषियों की पिपासा शान्त करने के लिये आचार्य मल्लिनाथसूरि कृत सञ्जीवनी टीका भी जोड़ दी गयी है । परीक्षाओं में क्योंकि प्राय: अनुवाद ही पूछा जाता है, इसलिये शब्दश: अनुवाद करने का प्रयत्न किया गया है । किन्तु फिर भी ऐसे शब्द आ गये हैं, जो कि मूल पाठ में आये हुए किसी भी संस्कृत शब्द का अर्थ नहीं है, उन्हें कोष्ठक में दे दिया गया है । प्रारम्भ में सार गर्भित भूमिका दी गयी है, जिसको दो भागों में रखा गया है—भाग (क)—कालिदास से सम्बन्धित, भाग (ख)-मेघदूत से सम्बन्धित । भूमिका में इन दोनों से सम्बन्धित अधिक से अधिक जानकारी देने का प्रयास किया गया है । अपने प्रयास में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ, इसका निर्णय तो इसके अध्येता ही कर सकेंगे । हाँ, यदि किसी भी अध्येता को इससे यत्किञ्चित् भी लाभ हुआ तो मैं अपने इस परिश्रम को सफल समझूँगा ।

इस टीका को लिखने की सामर्थ्य गुरुजनों से प्राप्त हुई है, तथा इसमें जो कुछ भी ग्राह्य है, वह उन्हीं तपस्वी गुरुजनों का है जिनके श्रीचरणों में बैठकर साहित्य का अध्ययन, अनुशीलन एवं आस्वादन किया । उन गुरुजनों में संस्कृत भाषा तथा साहित्य का आजीवन प्रचार करने वाले पूजनीय श्रद्धेय **डॉ० निरूपण जी विद्यालङ्कार** का स्थान सर्वोपरि है । उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना मेरी शक्ति से बाहर ही है । केवल इस तुच्छ प्रयास के समर्पण मात्र से ही सन्तोष करना पड़ता है तथा जो इसमें अग्राह्य है, वह मेरी अल्पबुद्धि का स्खलन ही कहा जा सकता है । आशा है विवेकशील विद्वज्जन उसके प्रति उदार दृष्टि का परिचय देंगे ।

Press copy तैयार करने में मेरी बहिन **कु० मधु** ने जो सहयोग दिया है उसे धन्यवाद के शब्द से हल्का नहीं करना चाहता, जो अपने शोध कार्य में व्यस्त रहते हुए भी इसके लिए समय निकाल पायी । इस टीका को पूर्णता तक पहुँचाने के अधिकारी यदि कोई हैं तो

वे हैं नन्हीं आत्मजा व आत्मज श्रुति व कुशाग्र । जिन्हें जब भी अवसर मिलता, मेरी मेज पर जमकर किताबों और कापियों पर अपने पैन, पैन्सिल चलाने से नहीं चूकते । उनके इस भय के कारण ही मुझे हमेशा इसको शीघ्र पूर्ण करने की चिन्ता बनी रहती । इसी क्रम में बिटिया, प्राची, व स्वाति भी हैं । इन सभी नन्हें-मुन्नों को तो यही आशीर्वाद है कि वे अपने भावी विद्या जीवन में यशोभावी होवें । इस अवसर पर मैं सौजन्य की प्रतिमूर्ति प्राचार्य प्रो० केशव देव जी गौड़ को भी विस्मृत नहीं कर सकता जिन्होंने अनेक सम्मतियाँ देकर इसे और अधिक उत्कृष्ट बनाने में सहयोग दिया है । उनके इस सहयोग के लिये मैं हृदय से उनका आभार व्यक्त करता हूँ ।

पुस्तक इस रूप में आयी, इसका सम्पूर्ण श्रेय उत्तरी भारत के संस्कृत के प्रसिद्ध प्रकाशक साहित्य भण्डार के अध्यक्ष श्री रतिराम जी शास्त्री, जिनका मेरे ऊपर पितृ तुल्य स्नेह है तथा उनके दोनों सुपुत्रों श्री राजकिशोर जी शर्मा व श्री सतीशचन्द्र कौशिक को है । उनके लिये तो मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि उनका यह प्रकाशन निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर होता रहे । इस अवसर पर मैं यदि प्रैस के कर्मचारियों का धन्यवाद न करूँ तो मेरी कृतघ्नता ही होगी, अन्यथा यह पुस्तक इस रूप में न आ पाती ।

अन्त में केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि इस संस्करण को तैयार करने के प्रसङ्ग में अनेक पूर्ववर्ती मेघदूत की टीकाओं से मुझे पर्याप्त सहायता मिली है । अत: जाने-अनजाने में प्रभावित करने वाली उन सभी रचनाओं के लेखकों का मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ । इस टीका में यदि कुछ सार दिखायी दे तो उसे अपने पास रखकर दोषों की सूचना और अभीष्ट संशोधनों का सुझाव देकर यदि किसी ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया तो मैं आभारी होऊँगा और अगले संस्करण में उनका साभार उपयोग करूँगा । अन्त में केवल कालिदास के ही शब्द दोहराना चाहूँगा—

*"पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।*
*सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥*

**—विजेन्द्र कुमार शर्मा**

विजयादशमी,

२९ सितम्बर, १९९०

# विषय-क्रम

# मेघदूत : सूक्तियाँ

## पूर्वमेघ :

१. मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेत: ।
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ।।३।।

२. कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ।।५।।

३. याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ।।६।।

४. क: सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायाम् ।
सद्य:पाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ।।९।।

५. न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय ।
प्राप्ते मित्रे भवति विमुख: किं पुनर्यस्तथोच्चै: ।।१७।।

६. रिक्त: सर्वो भवति हि लघु: पूर्णता गौरवाय ।।२०।।

७. स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ।।२९।।

८. मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्या: ।।४१।।

९. ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थ: ।।४४।।

१०. आपन्नार्तिप्रशमनफला: सम्पदो ह्युत्तमानाम् ।।५६।।

११. आशाबन्ध: कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानाम् ।
के वा न स्यु: परिभवपदं निष्फलारम्भयत्ना: ।।५७।।

## उत्तरमेघ :

१. वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति ।।४।।

२. सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ।।२०।।

३. प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदा: ।।२७।।

४. प्राय: सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ।।३३।।

५. कान्तोदन्त: सुहृदुपनत: सङ्गमात् किञ्चिदून: ।।४०।।

६. प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ।।५४।।

७. कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दु:खमेकान्ततो वा ।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।।४९।।

८. स्नेहानाहु: किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
तादिष्टे वस्तुन्युपचितरसा: प्रेमराशीभवन्ति ।।५२।।

# भूमिका

## भाग (क)

### १. महाकवि कालिदास : जीवनवृत्त

महाकवि कालिदास की गणना भारत के ही नहीं, अपितु विश्व के श्रेष्ठ कवियों में की जाती है। वे संस्कृत-साहित्य के मूर्धन्य कवि और निपुण नाटककार हैं । इनकी प्रतिभा, अद्भुत कल्पना शक्ति और उत्कृष्ट नाटक-निर्माण-कौशल पर ही मुग्ध होकर भारतीय जनता इन्हें कवि–कुल गुरु और कवि शिरोमणि आदि उपाधियाँ देने के लिए बाध्य हुई । इतना ही नहीं, अपितु जब इनकी कीर्ति भारत की सीमा को लाँघकर विश्व के दूसरे छोर तक पहुँची तो विदेशी जनता ने भी इन्हें विश्व-कवि की उपाधि से विभूषित किया ।

प्राचीन समय से ही भारतवर्ष एक अध्यात्मवादी राष्ट्र रहा है और यहाँ के महान् मनीषियों की निरीहता विश्व प्रसिद्ध है । इन्होंने सदैव जन-कल्याण की भावना से ही कार्य किया, कभी भी अपने यश, प्रतिष्ठा या मान-सम्मान का ध्यान नहीं किया । महाकवि कालिदास भी इसके अपवाद नहीं हैं । उनका जन्म-स्थान, स्थिति, काल आदि के विषय में आज भी सन्देह बना हुआ है, केवल उनसे सम्बन्धित कुछ कपोलकल्पित एवं सत्यानुप्राणित किंवदन्तियाँ ही सुनने को मिलती हैं । मनीषियों ने इस सम्बन्ध में जो विचार प्रस्तुत किये हैं उन्हीं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

यह तो निर्विवाद सत्य है कि महाकवि कालिदास में नम्रता की पराकाष्ठा थी । आत्मश्लाघा उनमें लेशमात्र भी नहीं थी, इसका प्रमाण रघुवंश के निम्न श्लोकों से मिलता है—

*क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाऽल्पविषया मतिः ।*
*तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनाऽस्मि सागरम् ॥*
*मन्दः कविं यशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।*
*प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्वाहुरिव वामनः॥ (१/२, ३ )*

महाकवि कालिदास के सम्बन्ध में न केवल भारतीय विद्वानों ने, अपितु पाश्चात्य विद्वानों ने भी सराहनीय कार्य किये हैं, किन्तु अधिकतर विद्वानों के मत आपस में एक-दूसरे से मेल नहीं खाते । इनके जीवन के सम्बन्ध में **डॉ० वासुदेव विष्णु मिराशी** ने अति प्रशंसनीय कार्य किया है, उन्होंने प्रचलित किंवदन्तियों को देते हुए स्पष्ट किया है कि इनमें कोई तथ्यपूर्ण सामंजस्य नहीं है। इनके सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। एक जनश्रुति के अनुसार कालिदास पहले महामूर्ख थे । राजा शारदानन्द की विद्योत्तमा नाम की एक विदुषी एवं सुन्दर कन्या थी । उसे अपनी विद्या पर बड़ा अभिमान था । इस कारण उसने शर्त रखी कि जो कोई उसे शास्त्रार्थ में पराजित करेगा उसी से ही वह विवाह करेगी । बहुत से विद्वान् वहाँ आये, परन्तु कोई भी उसे परास्त न कर सका; इस ईर्ष्या के कारण उन्होंने उसका विवाह किसी महामूर्ख से कराने की सोची । उसी महामूर्ख को खोजते हुए उन्होंने जिस डाल पर बैठा था, उसी को काटते हुए कालिदास को देखा । उसे विवाह कराने को तैयार करके मौन रहने को कहा और विद्योत्तमा द्वारा पूछे गये प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर देकर विद्योत्तमा के साथ उसका विवाह करा दिया । उसी रात ऊँट को देखकर पत्नी द्वारा **'किमिदम् ?'** पूछने पर उसने अशुद्ध उच्चारण **'उट्र'** ऐसा

किया। विद्योत्तमा पण्डितों के षड्यन्त्र को जानकर रोने लगी और पति को बाहर निकाल दिया। वह आत्महत्या के उद्देश्य से काली मन्दिर गया, किन्तु काली ने प्रसन्न होकर उसे वर दिया और उसी से शास्त्रनिष्णात होकर वापिस पत्नी के पास आकर बन्द दरवाजा देखकर **''अनावृत्तकपाटं द्वारं देहि''** ऐसा कहा। विद्योत्तमा को आश्चर्य हुआ और उसने पूछा—**''अस्ति कश्चिद् वाग्विशेष:''**। पत्नी के इन तीन पदों से उसने **''अस्ति''** पद से **''अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा''** यह 'कुमारसम्भव' महाकाव्य, **'कश्चिद्'** पद से **''कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा''** यह 'मेघदूत' खण्डकाव्य, **'वाग्'** इस पद से **''वागर्थाविव संपृक्तौ''** यह 'रघुवंश' महाकाव्य रच डाला।

एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार इनकी मृत्यु वेश्या के हाथों हुई। कहते हैं कि जिस विद्योत्तमा के तिरस्कार के कारण ये महामूर्ख से इतने बड़े विद्वान् बने, उसकी ये माता और गुरु के समान पूजा करने लगे। यह देखकर उसे बड़ा दु:ख हुआ और उसने शाप दे दिया कि तुम्हारी मृत्यु किसी स्त्री के हाथ से ही होगी। एक बार ये अपने मित्र लङ्का के राजा कुमारदास से मिलने गये। उन्होंने वहाँ वेश्या के घर, दीवार पर लिखा हुआ, **''कमले कमलोत्पत्ति: श्रूयते न तु दृश्यते''** देखा। कालिदास ने दूसरी पंक्ति **''बाले तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम्''** लिखकर श्लोक पूर्ण कर दिया। राजा ने श्लोक पूर्ति के लिए स्वर्णमुद्राओं की घोषणा की हुई थी। इसी मोह के कारण वेश्या ने कालिदास की हत्या कर दी। राजा को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने भी आवेग में आकर कालिदास की चिता में अपने प्राण त्याग दिये। परन्तु कालिदास की रचनाओं का अध्ययन करने पर यह किंवदन्ती नि:सार प्रतीत होती है; क्योंकि इस प्रकार के सरस्वती के वरदपुत्र पर इस प्रकार दुश्चरित्रता का आरोप स्वयं ही खण्डित हो जाता है। ये किंवदन्तियाँ यद्यपि कालिदास का जीवन परिचय तो स्पष्ट नहीं करतीं, फिर भी इनसे कालिदास के यश और विद्वत्ता का ज्ञान अवश्य होता है।

एक अन्य जनश्रुति के अनुसार ये विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक थे। इस किंवदन्ती का आधार सम्भवत: ज्योतिर्विदाभरण का यह निम्न श्लोक है—

*धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कुर्वेतालभट्टघटखर्परकालिदासा:।*
*ख्यातो वराहमिहिरो नृपते: सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥*

किन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि इसमें जिन पुरुषों का कथन किया गया है, उन सबका समय एक नहीं है; अत: इस श्लोक में निहित परम्परा को सत्य नहीं माना जा सकता।

भोज प्रबन्ध के लेखक बल्लालसेन सूरि ने कालिदास को परमार वंशीय धारा नरेश भोज (१०५४ ई०) का आश्रित कवि बताया है। बल्लालसेन का यह कथन उपयुक्त प्रतीत नहीं होता; क्योंकि उन्होंने भोज के राज्य में सभी प्रसिद्ध कवियों को उपस्थित कर दिया है। सम्भवत: उसने नवसाहसाङ्कचरित के रचियता पद्मगुप्त को, जिसे परिमल या परिमलकालिदास भी कहा जाता था, भ्रान्ति के कारण कालिदास समझ लिया है।

जिस प्रकार इनके जीवन के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ हैं, उसी प्रकार इनके जन्मस्थल के सम्बन्ध में भी विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वान् बंगाली, कुछ कश्मीरी, कुछ लोग उज्जयिनी तथा कुछ विशाला को उनका जन्म स्थल मानते हैं। उनके नाम के आधार पर बंगाल के लोग उन्हें बंगाली सिद्ध करते हैं क्योंकि बंगाल में काली का पूजन सर्वत्र होता है और उनका नाम है कालिदास अर्थात् काली का दास। इससे स्पष्ट होता है कि वे बंगाली थे,परन्तु वस्तुत: यदि वे काली के भक्त होते तो अपने काव्यों में उसकी स्तुति अवश्य करते। किन्तु उनके द्वारा लिखित प्रामाणिक सातों काव्यों में केवल 'कुमारसम्भव' में एक बार (७/३९) काली का वर्णन आया है। इससे स्पष्ट है कि यह कल्पना मिथ्या है। दूसरी कल्पना उनके कश्मीरी होने की

है । दिल्ली विश्वविद्यालय के भूतपूर्व संस्कृत प्रोफेसर **महामहोपाध्याय पं० लक्ष्मीधर कल्ला** ने अपने ग्रन्थ The Birth Place of Kalidasa में यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया है कि वे कश्मीरी थे । उनके ग्रन्थों में कश्मीर के प्रति उनका झुकाव भी स्पष्ट दिखायी पड़ता है । कुमारसम्भव का प्रारम्भ ही हिमालय के विस्तृत वर्णन से होता है । मेघदूत में वर्णित अलकापुरी हिमालय पर ही स्थित है । रघुवंश में वर्णित वशिष्ठाश्रम हिमालय पर ही है । ये सभी स्थल कश्मीर में सिन्धु घाटी में हैं । रघुवंश के द्वितीय सर्ग मे गाय पर जो सिंह आक्रमण करता है, उस सिंह को भूतेश्वर पार्श्ववर्ती कहा है । यह भी कश्मीर में ही है । प्रो० कल्ला के अनुसार हरमुकुट की उपत्यका का बसामय ग्राम ही मेघदूत की अलका है और यही कवि का जन्म स्थान है । प्रो० कल्ला ने यह भी सिद्ध किया है कि मालिनी व सिन्धु नदियाँ, शचीतीर्थ, सोमतीर्थ, ब्रहासर आदि तीर्थ स्थान भी कश्मीर में ही हैं, किन्तु कथानक की सुविधा से कवि ने उनका वर्णन हस्तिनापुर के समीप दिखलाया है । अतः उपर्युक्त वर्णनों के आधार पर कालिदास को कश्मीरी मानने की बात स्पष्ट है ।

**डॉ० वासुदेव विष्णु मिराशी** ने प्रो० कल्ला के मत का खण्डन करते हुए उन्हें उज्जयिनी का सिद्ध करने का प्रयास किया है। उनका कथन है कि—

''कालिदास नाम कश्मीरी नहीं है। भामह, रुद्रट, कैयट, मम्मट, कल्हण, बिल्हण आदि पण्डितों के उल्लेख 'राजतरङ्गिणी' तथा अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं, लेकिन कालिदास का नाम इसमें कहीं भी उपलब्ध नहीं होता ।[1] यदि ये कश्मीर निवासी होते तो कश्मीर के ऐतिहासिक पण्डित **कल्हण** राजतरङ्गिणी में इनका नाम अवश्य लिखते । कुछ नाटकीय तत्वों के आधार पर भी ये कश्मीरी सिद्ध नहीं होते । **डॉ० मिराशी** आदि कतिपय विद्वान् इनकी बचपन की क्रीड़ास्थली उज्जयिनी स्वीकार करते हैं । कालिदास की रचनाओं के अध्ययन से यह तो निश्चित ही पता चलता है कि मालवा से उन्हें अधिक लगाव था । मेघदूत में तो वे यहाँ की राजनगरी उज्जयिनी का पक्षपातपूर्ण वर्णन करते हैं और इसके सौन्दर्य पर इतने मुग्ध हैं कि वे इसे स्वर्ग का एक टुकड़ा (खण्ड) समझते हैं । देखिये—

*स्वल्पीभूते सुचिरतफले स्वर्गिणां गां गतानां ।*
*शेषैः पुण्यैर्हृतामिव दिवः कान्तिमत् खण्डमेकम् ॥*[2]

इतना ही नहीं, अपितु रामगिरि से कैलाश की ओर जाते हुए उज्जयिनी नहीं पड़ती, परन्तु कवि मेघ से सानुरोध आग्रह करता है कि यद्यपि तुम्हारा मार्ग कुछ टेढ़ा हो जायेगा फिर भी तुम उज्जयिनी अवश्य जाना, नहीं तो समझो कि तुम्हारा जन्म ही व्यर्थ है—

*वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां*
*सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ।*
*विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां*
*लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥*[3]

अतः कवि की इस प्रकार की पक्षपातपूर्ण भावना केवल स्थान के सौन्दर्य के कारण ही बन गयी होगी, ऐसा असम्भव है, अपितु उज्जयिनी के साथ अवश्य ही उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इसके अतिरिक्त **पं० चन्द्रबली पाण्डेय** इनकी जन्म-भूमि उज्जयिनी के निकटवर्ती प्रदेश में **आम्रकूट** में मानते है, जबकि **श्री म० म० हरप्रसाद शास्त्री** मेघदूत में किये गये विदिशा वर्णन को आधार मानकर उज्जयिनी और विदिशा के मध्य मानते हैं । उन्होंने कवि को मन्दसौर

---

१. कालिदास—वासुदेव विष्णु मिराशी पृ० ६० ।
२. पूर्वमेघ/३१ ।
३. पूर्वमेघ/२८ ।

में **यशोधर्मदेव** का आश्रित सिद्ध किया है। परन्तु यह कवि यशोधर्मदेव से पूर्व हो चुके हैं। **प्रो० परांजपे** ने इन्हें विदिशा निवासी सिद्ध किया है। **आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी**: ने अपने मेघदूत की भूमिका (पृ० १६) में राजशेखर के कथन को उद्धृत कर मन्दसौर या उसके निकटवर्ती स्थान में कालिदास उत्पन्न हुए थे, ऐसा माना है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता **विन्सेण्ट स्मिथ** ने भी यही कालिदास का जन्म-स्थान माना है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यद्यपि यह मान लेना तर्कसङ्गत है कि कालिदास का जन्म-स्थान किसे माना जाए इस पर विवाद हो सकता है, किन्तु उनकी शैशव स्थली निश्चित रूप से उज्जयिनी ही रही होगी। □

## २. कालिदास : स्थितिकाल

महाकवि **कालिदास** का काल निर्धारण आज भी संस्कृत-साहित्य का सर्वाधिक विवादित प्रश्न है। इसका कारण है कि उनके विषय में किसी भी प्रकार का कोई ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध नहीं होता। यही कारण है कि उनका समय ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी से लेकर १२वीं शताब्दी तक खींचा गया है। किसी भी कवि का काल निर्धारण करने के लिए मुख्य रूप से दो साधन हुआ करते हैं—**(१) अन्त:-साक्ष्य**—अर्थात् कवि ने अपनी रचनाओं में अपने विषय में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से क्या लिखा है ? **(२) बाह्य-साक्ष्य**—अर्थात् कवि के समकालीन तथा परवर्ती विद्वानों ने उसके विषय में क्या-क्या लिखा है? अन्त:-साक्ष्य के आधार पर तो हम उनके विषय में कुछ भी जानने में असमर्थ हैं। हां, बाह्य-साक्ष्य के आधार पर उनके काल के विषय में कुछ सामग्री अवश्य उपलब्ध होती है, उसी के आधार पर किसी निर्णय पर पहुँचने का प्रयत्न करेंगे।

कालिदास का काल निर्धारण करने से पूर्व उनकी पूर्व और अपर सीमा निर्धारित करना आवश्यक है। पूर्व सीमा के लिए हमें उनके **मालविकाग्निमित्रम्** का अवलोकन करना होगा। इसका कथानक शुङ्गवंशीय राजा अग्निमित्र के जीवन से लिया गया है। यह अग्निमित्र सेनापति पुष्यमित्र का पुत्र था, जो १८४ ई० पू० में राजा बृहद्रथ को मारकर गद्दी पर बैठा था[1]। अत: कालिदास का समय इससे पूर्व नहीं हो सकता तथा मालविकाग्निमित्रम् की प्रस्तावना "**प्रथितयशसां भाससौमिल्लकवि पुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवे: कालिदासस्य कृतौ कथं बहुमान:**" में भास, सौमिल्ल आदि का वर्णन किया है, जिनका समय निश्चित रूप से ईसा पू० द्वितीय शताब्दी से पूर्व का है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि मालविकाग्निमित्र की रचना करते समय कालिदास का काव्य-जगत् में प्रवेश हुआ ही था। अत: किसी भी स्थिति में कालिदास को १५० ईसा पू० से पूर्व नहीं ले जा सकते।

अपर सीमा बाण रचित हर्षचरित की भूमिका से निर्धारित होती है। बाण ने 'हर्षचरित' के प्रारम्भ में कालिदास के नाम का उल्लेख इस प्रकार किया है—

*निर्गतासु न वा कस्य कलिदासस्य सूक्तिषु।*
*प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥*

बाणभट्ट कन्नौज के राजा हर्षवर्धन के आश्रित कवि थे। जिनका समय इतिहासकारों[2] ने ६०६ ई० से ६४७ ई० माना है अत: कालिदास को इसके बाद नहीं ले जाया जा सकता। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत के **ऐहोल** नामक ग्राम में उपलब्ध शिलालेख (६३४ ईस्वी) में रवि कीर्ति ने स्वयं को कालिदास और भारवि की कोटि का कवि माना है—

---
१. Ancient India—Dr. R. C. Majumdar, Page 120.
२. **प्राचीन भारत का इतिहास—डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी**, पृ० २२४ तथा २२५।

*येनायोजि न वेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म ।*
*स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः ॥*

इस प्रकार उपर्युक्त उद्धरणों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास १५०ई० पू० से लेकर ६०० ई० के बीच कहीं हुए होंगे ।

कालिदास इस बीच कब हुए, इस संबन्ध में चार मत अधिक प्रचलित है, उनका क्रमशः विशद विवेचन यहाँ प्रस्तुत है । वे चार मत निम्न प्रकार हैं—

(१) छठी शताब्दी का मत ।

(२) चतुर्थ शताब्दी का मत ।

(३) ईसा पूर्व द्वितीय शती का मत ।

(४) ईसा पूर्व प्रथम शती का मत ।

**(१) छठी शताब्दी का मत–** इस मत के प्रबल समर्थक **प्रो० मैक्समूलर** हैं । उनका यह मत **काव्य का पुनर्जागृति सिद्धान्त** पर आधारित है जिसका प्रतिपादन उन्होंने अपनी पुस्तक India—What It Can Teach Us? में किया है। उनका कथन है कि ईस्वी सन् की प्रारम्भिक चार अथवा पाँच शताब्दियों में शक और दूसरे विदेशियों के आक्रमण के फलस्वरूप संस्कृत-साहित्य की प्रगति सर्वथा अवरुद्ध हो गयी थी, फिर छठी शताब्दी में जाकर संस्कृत का पुनरुज्जीवन हुआ। उसी पुनरुज्जीवन काल में कालिदास उत्पन्न हुए। **प्रो० मैक्समूलर** का यह मत **फर्ग्यूसन** के विक्रमादित्य सम्बन्धी मत पर आश्रित था । **फर्ग्यूसन** का मत है कि ५४४ ई० में विक्रमादित्य नामक सम्राट् ने शकों को परास्त किया और विजय के उपलक्ष्य में विक्रमादित्य ने विक्रम सम्वत् प्रारम्भ किया, परन्तु उस संवत् को और अधिक महत्व देने के लिए उसे ६०० वर्ष पूर्व की तिथि से अर्थात् ईसा से पूर्व ५६-५७ वर्ष से प्रारम्भ किया। इसी विक्रमादित्य की सभा के नौ रत्नों में से एक कालिदास भी थे। इस प्रकार **मैक्समूलर** के अनुसार कालिदास का समय ५४४ ई० के आस-पास छठी शताब्दी में था । यह मत पर्याप्त समय तक विद्वानों में मान्य रहा । कालान्तर में इतिहास से यह सिद्ध हो गया कि पश्चिमी भारत में किसी भी विदेशी को भारत से बाहर नहीं निकाला गया क्योंकि उनको गुप्तवंशीय राजाओं ने १०० वर्ष पूर्व ही बाहर निकाल दिया था। साथ ही यह ऐतिहासिक रूप से सिद्ध हो चुका है कि छठी शताब्दी में शकों को नहीं, अपितु हूणों को पश्चिमी भारत से बाहर निकाला था। वो भी विक्रमादित्य ने नहीं, अपितु यशोवर्मन् विष्णुधर्मन् ने । इस प्रकार **फर्ग्यूसन** के मत की प्रामणिकता स्वतः ही खण्डित हो जाती है। पुनः **डॉ० फ्लीट** द्वारा की गई शिलालेखों की खोज से **मैक्समूलर** के "काव्य का पुनर्जागृति सिद्धान्त" की आधार-शिला ही समाप्त हो जाती है। इन शिलालेखों में ४७२ ई० का **वत्सभट्टि** का **मन्दसौर का शिलालेख** अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसने सूर्यमन्दिर का निर्माण कराया है, और अपने काव्य में मेघदूत और ऋतुसंहार का अनुकरण किया है। जैसा कि निम्न उद्धरणों से स्पष्ट है—

*चलत्पताकान्यबलासनाथान्यत्यर्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि ।*
*तडिल्लता चित्रसिताभ्रकूटतुल्योपमानानि गृहाणि यत्र ॥ वत्सभट्टि/१०*
*विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः*
*संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् ।*
*अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः*
*प्रासादस्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥ उ० मे०/३०*

*स्मरवशगततरुणजनवल्लभाङ्गनाविपुलकान्तपीनोरु-*
*स्तनजघनघनालिङ्गननिर्भर्त्सिततुहिनं हिमपाते ॥ वत्सभट्टि/३३*
*पयोधरै: कुङ्कुमरागपिञ्जरै:*
*सुखोपसेव्यैर्नवयौवनोष्मभि: ।*
*विलासिनीभि: परिपीडितोरस:*
*स्वपन्ति शीतं परिभूय कामिन: ॥ ऋतुसंहार ५/९*

यह प्रशस्ति **४४ श्लोकों** में है, जिसमें **मन्दसौर** का कवित्वपूर्ण वर्णन है। इसके अतिरिक्त २०० ई० के लगभग लिखा हुआ **रूद्रदामन्** का गिरनार पर्वत पर उट्टङ्कित लेख शैली की प्राञ्जलता के कारण गद्य-काव्य का सा आनन्द देता है। रूद्रदामन् की विद्वत्ता के विषय में लिखा है कि **"स्फुटलघुमधुरचित्रकान्तशब्दसमयोदारालंकृत गद्य-पद्य"** .......... इत्यादि । इसी प्रकार इसी समय के लगभग लिखा हुआ प्राकृत भाषा में **श्री पुलुमायो** का नासिक शिलालेख है ।

इस प्रकार उपर्युक्त शिलालेखों से मैक्समूलर का सिद्धान्त और इसका आधारभूत फर्ग्यूसन का सिद्धान्त दोनों ही खण्डित हो जाते हैं तथा इसके आधार पर कालिदास को छठी शताब्दी में मानने का मत भी निरस्त हो जाता है। **डॉ० फ्लीट** ने इस बात को भी सिद्ध किया है कि ५७ ई० पू० से प्रारम्भ होने वाला विक्रम संवत् ५४४ ई० में स्थापित नहीं किया गया था, अपितु मालव संवत् के नाम से यह लगभग १०० वर्ष पहले ही प्रचलित था, जो ८० ई० में विक्रम संवत् के नाम से व्यवहत किया जाने लगा ।

इसके अतिरक्त **डॉ० भाऊदाजी, प्रो० कर्न** तथा **डॉ० भाण्डारकर** आदि पुरातत्ववेत्ता भी कालिदास को छठी शताब्दी में ही सिद्ध करते हैं। उनके अनुसार प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ की मेघदूत टीका के ऊपर निर्भर होकर इन विद्वानों ने कालिदास विक्रमादित्य की सभा में नवरत्न थे, यह बात स्वीकार की है। प्रख्यात ज्योतिषी वराह मिहिर भी नवरत्नों मे से एक थे। ज्योतिषाचार्य ब्रह्मगुप्त के खण्ड-खाद्य के टीकाकार **अमरराज** लिखते हैं कि—

*नवाऽधिकपञ्चशतसंख्यशाके (५०९) वराहमिहिराचार्यो दिवंगत:।*

इस उक्ति पर विश्वास करने पर वराहमिहिर की मृत्यु ५८७ खीष्टाब्दी में माननी पड़ती है, और चूँकि कालिदास और ये दोनों ही नवरत्नों में थे, तो कालिदास का समय भी छठी शताब्दी है यह बात सिद्ध हो जाती है ।

आचार्य **मल्लिनाथ** ने मेघदूत के निम्न श्लोक—

*स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुख: खं*
*दिङ्नागानां पथि परिहरन्स्थूलहस्ताऽवलेपान् ॥ पू० मे० /१४*

की टीका में निचुल और दिङ्नाग पद में श्लेष बताया है। उनकी मान्यता है कि इसमें कालिदास के प्रतिद्वन्द्वी दिङ्नाग का और बन्धु निचुल का नाम ध्वनित है और इनका समय छठी शताब्दी है; अत: कालिदास का समय भी वही है ।

एक अन्य विद्वान् **श्री प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त** ने अपनी पुस्तक Ancient Indian Cronology में मेघदूत के **आषाढस्य प्रशमदिवसे (पू०/२)** यह पाठ मान कर तथा **प्रत्यासन्ने नभसि (पू०/४), मासान् गमय चतुर: (उ०/५०)** तथा **शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ (उ/५०)** आदि कथनों में सामञ्जस्य बैठाकर यह निष्कर्ष निकाला है कि यक्ष ने चन्द्र आषाढ की एकादशी को मेघ देखा और अगले दिन से श्रावण प्रारम्भ था। अत: एकादशी को समाप्त होने वाला आषाढ सौर मास होना चाहिए। कालिदास के समय इसी दिन दक्षिणायन और वर्षा ऋतु का आरम्भ होता था । हिसाब लगाने पर यह दिन २० जून सन् ५४१ ई० बैठता है। इसके

अतिरिक्त कालिदास ने **स्मृतिभिन्नमोहतमसः (अभि० शा० ७/२२)** आदि द्वारा प्रत्यक्ष खग्रास चन्द्रग्रहण का वर्णन किया है, जो उज्जयिनी में ८ नवम्बर सन ५४१ ई० को रात्रि में ८ बजकर ३६ मिनट पर प्रारम्भ होकर रात्रि में १२ बजकर २० मिनट तक रहा । इस प्रकार कालिदास का समय छठी शताब्दी ई० ठहरता है । **पं० हरप्रसाद शास्त्री** ने तो कालिदास को भारवि के बाद का सिद्ध करने का प्रयास किया है। **डॉ० के० बी० पाठक** भी इसी छठी शताब्दी ई० के मत के ही मानने के पक्षधर हैं। **पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय** ने प्रमाण और उद्धरणों के द्वारा इस मत का खण्डन किया है । अतः छठी शताब्दी ई० का मत पूर्णतया सदोष है ।

**(२) चतुर्थ शताब्दी का मत**—कालिदास चतुर्थ शताब्दी में हुए, इस मत के प्रबल समर्थक **डा० भंडारकर, म० म० रामावतार शर्मा, श्री विजयचन्द्र मजूमदार, डॉ० मिराशी** आदि हैं। **मैक्डोनल** ने अपनी पुस्तक History of Sanskrit Literature में कालिदास को गुप्तवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) का समसाययिक माना है, **Dr. V. A. Smith** ने अपनी पुस्तक Early History of India में माना है कि कालिदास सम्भवतः चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त तीनों सम्राटों की सभा में रहा होगा। **Mrs. Manning** के अनुसार कालिदास ५०२ ई० में हुए थे। प्रायः सभी पाश्चात्य विद्वान् कालिदास को गुप्तकालीन मानते है और भारतवर्ष से बाहर यही मत सबसे अधिक प्रचलित है। इस मत के समर्थकों का कथन है कि गुप्तकाल ही ऐसा शान्तिपूर्ण स्वर्णकाल था, जिसमें उत्कृष्ट काव्यों की रचना सम्भव है। कालिदास के रघुवंश में गुप्त साम्राज्य के स्वर्ण युग का आंखों देखा वर्णन है, रघु की दिग्विजय के अवसर पर जिन देशों का वर्णन कालिदास ने अपने रघुवंश में किया है उन्हीं देशों को समुद्रगुप्त ने भी जीता था। रघुवंश के तृतीय सर्ग में वर्णित दिलीप का अश्वमेध यज्ञ चन्द्रगुप्त द्वितीय के अश्वमेध यज्ञ की ओर संकेत कर रहा है। विक्रमोर्वशीयम् नाटक सम्भवतः चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा विक्रमादित्य उपाधि धारण करने के अवसर पर खेला गया होगा—"**अनुत्सेकः खलु विक्रमालङ्कारः**" तथा "**महेन्द्रोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान्**"— प्रथम अङ्क। "**तनु प्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पे शशिनेव शर्वरी**" **रघु० ३/२** इस प्रसिद्ध उपमा में चन्द्रगुप्त द्वितीय का स्पष्ट आभास मिलता है। इतिहासकारों ने इनका काल ३७६-४१३ ई० माना है। इस मत के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि कुमारसम्भव महाकाव्य की रचना सम्भवतः चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के जन्म को लक्ष्य में रखकर की गयी है, "**स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः।**" **(रघु० ३/४)**, "**यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा।**" **(रघु० ४/१२)** आदि उद्धरण इस बात के संकेत हैं।

गुप्तकालीन अभिलेखों तथा सिक्कों की भाषा और कालिदास के काव्यों की भाषा में बहुत समानता है। गुप्त राजाओं के सिक्कों पर निर्मित मयूर-पृष्ठ पर बैठे कार्तिकेय का वर्णन कालिदास ने अनेक बार किया है। महाकवि का यह पद "**मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन**" उस स्थिति के कितने निकट है। **कुमार** और **स्कन्द** का प्रयोग भी कालिदास ने अधिकता से किया है । विक्रमोर्वशीय में चार बार तथा रघुवंश में तीन बार कुमार शब्द का प्रयोग तथा स्कन्द का प्रयोग रघुवंश में दो बार, मेघदूत में एक बार मिलता है। गुप् धातु का प्रयोग भी अनेक बार किया है (रघुवंश १/५५, २/२४, ४/२०, ४/२६ आदि) । ये सब संकेत उन्हें गुप्तकालीन सिद्ध करते हैं ।

इसी मत का समर्थन करते हुए **A. B. Keith** ने अपनी पुस्तक A History of Sanskrit Literature में लिखा है कि "कालिदास को गुप्त शक्ति के उत्कर्ष काल से पृथक् करना कठिन है। वे अश्वघोष और नाटककार भास के परवर्ती थे। वे ग्रीक शब्दों से परिचित थे, जैसा कि उनके जामित्र शब्द के प्रयोग से सिद्ध होता है। उनके नाटक की प्राकृत निश्चित रूप से अश्वघोष तथा भास की प्राकृत के बाद की है। हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि चन्द्रगुप्त

द्वितीय ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी, जिसके साथ भारतीय परम्परा बराबर कालिदास का सम्बन्ध जोड़ती आयी है ।''

इन सभी तर्कों से स्पष्ट होता है कि कालिदास चौथी शताब्दी के अन्त या पाँचवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुए थे ।

उपर्युक्त मत का निराकरण इन बातों से हो जाता है कि वत्स भट्टि की कविता पर कालिदास का स्पष्ट प्रभाव है। स्वर्णयुग की सम्भावना को लेकर भी यह कह सकते हैं कि गुप्त राजाओं के पूर्व सातवाहनों का शासनकाल भी स्वर्णयुग था। रघु की दिग्विजय की तुलना चन्द्रगुप्त की दिग्विजय से करना भी न्यायसंगत नहीं है, क्योंकि यह वर्णन पुराणों से साम्य रखता है। शब्दों का प्रयोग व्यक्तिपरक नहीं, अपितु संज्ञावाचक एवं क्रियावाचक है। इन सब तर्कों के आधार पर यह स्पष्ट है कि कालिदास का सम्बन्ध चन्द्रगुप्त द्वितीय से नहीं था। विक्रमादित्य की उपाधि किसी अन्य पूर्ववर्ती राजा के नाम से प्रचलित हुई, वही कालिदास का आश्रय राजा था ।

**(३) ईसा पूर्व द्वितीय शती का मत—** ईसा पूर्व द्वितीय शती के मत के समर्थक **डॉ० कुम्हन राजा** है। उन्होने अपने मत के समर्थन में मालविकाग्निमित्र के भरत वाक्य को उद्धृत किया है—

*आशास्यमीति विगमप्रभृति प्रजानाम् ।*
*सम्पत्स्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे ॥*

इसमें प्रयुक्त अग्निमित्र के नाम से **डॉ० कुम्हन** ने यह अनुमान लगाया है कि कालिदास ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में हुए और शुङ्गवंशीय राजा अग्निमित्र की सभा को सुशोभित करते थे, जिनकी राजधानी विदिशा थी । किन्तु यह मत मान्य न हो सका; क्योंकि अग्निमित्र और विदिशा में कोई सामञ्जस्य नहीं बैठता ।

**(४) ईसा पूर्व प्रथम शती का मत**—ईसा पूर्व प्रथम शती के मत के प्रबल पोषक **श्री सी० बी० वैद्य, प्रो० शारदा रञ्जन राय, श्री शिवराम आप्टे, प्रो० शेखवणेकर, प्रो० एम० आर० काले, प्रो० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय** आदि प्रमुख हैं । इन्होने अपने मत के समर्थन में कहा है—''कालिदास उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य की राजसभा में कवि थे । इन्हीं विक्रमादित्य ने आजकल प्रचलित विक्रम संवत् चलाया था, जिसका प्रवर्तन समय ईसा से ५७ वर्ष पूर्व में पड़ता है । अतः सिद्ध होता है कि कालिदास ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में वर्तमान थे ।'' कालिदास को विक्रमादित्य के साथ जोड़ने का भी मुख्य कारण **ज्योतिर्विदाभरण** का श्लोक है ।[१] इस परम्परा से मिले संकेत के आधार पर विद्वानों ने कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक में महेन्द्र और **विक्रम** शब्दों के कई बार प्रयोग में कालिदास द्वारा कथासरित्सागर की कथा को राजा महेन्द्रादित्य और उसके पुत्र विक्रमादित्य को कालिदास का आश्रयदाता माना है । कालिदास और इन दोनों राजाओं का शैवमतावलम्बी होना भी इस मत को और अधिक पुष्ट करता है । श्री **जीवानन्द विद्यासागर** द्वारा कलकत्ता से सन् १९१४ ई० में प्रकाशित अभिज्ञानशाकुन्तलम् की प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है कि—''**आर्ये इयं हि रसभावविशेषदीक्षागुरोः विक्रमादित्यस्याभिरूपभूयिष्ठा परिषत् । अस्यां हि कालिदासप्रथितवस्तुना नवेनाभिज्ञानशाकुन्तलनामधेयेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः** ।'' इससे यह स्पष्ट होता है कि इस नाटक की रचना विक्रमादित्य की राजसभा में खेलने के लिए की गई होगी ।

कालिदास ग्रन्थावली के परिशिष्ट में **डॉ० राजबली पाण्डेय** ने अपने लेख में लिखा है कि—काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पण्डित केशव प्रसाद मिश्र के पास

---

१. पृष्ठ ३ ।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है, जिससे यह प्रतीत होता है कि कालिदास के आश्रयदाता राजा का नाम विक्रमादित्य था तथा उसकी उपाधि साहसाङ्क थी—**सूत्रधार:—** **''आर्ये रसभावविशेषदीक्षागुरोः विक्रमादित्यसाहसाङ्कस्याभिरूपभूयिष्ठेयं परिषत्।''** विक्रमादित्य का उल्लेख गाथा सप्तशती के निम्न श्लोक में भी मिलता है—

*संवाहनसुखरसतोषितेन ददता तव करे लक्षम् ।*
*चरणेन विक्रमादित्यचरितमनुशिक्षितं तस्याः ॥ ५/६४*

इससे यह स्पष्ट है कि गाथा सप्तशती के रचना काल में यह बात स्पष्ट थी कि विक्रमादित्य एक प्रतापी व उदार राजा थे, जिन्होंने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में सेवकों को लाखों की भेंट दी थी । गाथा सप्तशती प्राचीन महाराष्ट्री प्राकृत में लिखी हुई है । **Mr. M. Smith** ने हाल का समय ६८ ई० माना है । अत: विक्रमादित्य का समय इससे पूर्व ही मानना उचित होगा । अत: उनका समय ईसा पूर्व प्रथम शती ही सिद्ध होता है ।

मेघदूत में दशार्ण देश की राजधानी के रूप में विदिशा का वर्णन आया है, जिसके विशेषण के रूप में ''**प्रथित**'' शब्द का प्रयोग किया गया है—**''तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीम्'' (पूर्वमेघ/२५)** । इसका अभिप्राय है कि उस समय राजधानी के रूप में वदिशा दूर-दूर तक प्रसिद्ध थी। १४८ ई० पू० में विदिशा अग्निमित्र की राजधानी थी। अग्निमित्र को छोड़कर किसी भी राजा की राजधानी के रूप में विदिशा का उल्लेख नहीं मिलता है। ७१ ई० पू० में शुङ्ग वंश का अन्त हो जाने पर विदिशा राजधानी कभी नहीं रही। मेघदूत में राजधानी के रूप में विदिशा का वर्णन कालिदास का इसी के आस-पास होने का संकेत करता है।

भारत के पुरातत्व विभाग की सर्वे सन् १९०९-१० की रिपोर्ट में ४०वें पृष्ठ पर यह सूचना प्रकाशित हुई— The most important work of research carried out in 1909-10 was undoubtedly Mr. Marshall's excavation in Bhita near Allahabad...The beautiful tera cotta medallion found by Mr. Marshal reminds us of a scene from..... the Shakuntala. In the two men on the guadrige in the centre of medallion, we may perhaps see king Dushyanta and his charioteor who are being entreeited by a hermit not to kill the antelope which was taken refuge in Kanva's hermitage. We note also the hermit's hut and infront of it a girl watering the trees in which we may recognise Shakuntala heroin of the Play. The medallion which must belong to the Sunga Period, is no doubt much anterior to Kalidasa and on that account the identification can not be regarded as certain. इसका आशय यह है कि १९०९-१० में श्री मार्शल द्वारा इलाहबाद के निकट ''**भीटा**'' नामक स्थान से खुदाई में एक मिट्टी का पदक प्राप्त हुआ, जिस पर एक चार घोड़ों वाला रथ, उस पर बैठे हुए दो व्यक्ति जो सम्भवत: दुष्यन्त और उसका सारथि हैं, देख सकते हैं, जिनसे एक साधु ऋषि कण्व के आश्रम के पालतू मृग को न मारने के लिए प्रार्थना कर रहे हैं। उसी पदक में एक ऋषि की कुटिया देखते हैं जिसके सामने एक कन्या वृक्षों को सींच रही है । यह कन्या सम्भवत: नाटक की नायिका शकुन्तला है। इसमें सन्देह नहीं कि यह पदक शुङ्ग काल (१८० ई० पू० से ७२ ई० पू०) का है ।

यह पदक अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम अंक के वर्णन से अत्यधिक मिलता है। पदक के उक्त विवरण से उक्त बात की प्रतीति होती है कि यह शुङ्ग काल में बनाया गया था, जिसका समय ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी सिद्ध है; अत: इस समय से कालिदास का समय ई० पू० प्रथम शताब्दी मानने में कोई सन्देह की आशङ्का नहीं रहती ।

कालिदास और अश्वघोष की रचनाओं की भाषा और भावों का तुलनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि अश्वघोष ने कालिदास का अनुसरण किया है। अश्वघोष का समय कनिष्क का समय (प्रथम शताब्दी) माना जाता है; अत: कालिदास (जो कि अश्वघोष से पूर्ववर्ती है) का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी मानने में कोई अनौचित्य दिखायी नहीं पड़ता ।

**प्रो० आप्टे** महोदय ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् के दो अन्तरङ्ग प्रमाण उद्धृत कर कालिदास का समय निश्चित किया है—एक तो छठे अंक में निस्सन्तान श्रेष्ठी धनदत्त की मृत्यु पर सूचना मिलती है—"**समुद्रव्यवहारी सार्थवाहो धनमित्रो नाम नौव्यसने विपन्न: । अनपत्यश्च किल तपस्वी।**" राजा आदेश देता है—"**विचार्यतां यदि काचिदापन्नसत्वा तस्य भार्यासु भवेत् ।**" इससे स्पष्ट पता चलता है कि कालिदास के समय में विधवा पत्नी को पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकार नहीं था, किन्तु गर्भस्थ बालक मृत पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी था । धर्मशास्त्रकारों ने धीरे-धीरे विधवा को मृत पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी स्वीकार किया है। मनु, आपस्तम्ब और वशिष्ठ विधवा स्त्री को मृत पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी स्वीकार नहीं करते, जबकि सर्वप्रथम बृहस्पति तथा आगे चलकर शंख, याज्ञवल्क्य और लिखित आदि ने उसको उत्तराधिकारी स्वीकार किया है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अभिज्ञानशाकुन्तलम् का समय बृहस्पति से पूर्व तथा मनु और आपस्तम्ब के बाद का स्वीकार कर सकते हैं। **Dr. P. V. Kane** ने बृहस्पति का समय ३०० A. D. से ५०० A. D. तथा मनु का समय २०० ई० पू० से १०० ई० तक माना है । अत: कालिदास को ५६ ई० पू० के आस-पास रखा जा सकता है । दूसरा प्रमाण है शकु० के छठे अंक में चोरी के लिए दिया जाने वाला दण्ड। उससे पता चलता है कि बहुमूल्य आभूषण की चोरी करने के अपराध में मृत्युदण्ड की व्यवस्था है । मनु से याज्ञवल्क्य तक के स्तेय विषयक विधान पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि बहुमूल्य आभूषण को चुराने के अभियोग में दिया जाने वाला मृत्युदण्ड अर्थदण्ड में परिवर्तित हो गया । मनु (८/३२३), और आपस्तम्ब ने इस प्रकार के अपराध के लिए मृत्युदण्ड की व्यवस्था की है, जबकि बृहस्पति केवल अर्थदण्ड का विधान करते हैं। अत: कालिदास का समय बृहस्पति से पहले होना चाहिये तथा मनु के बाद। इस प्रकार कालिदास का समय ५६ ई० पू० प्रथम शताब्दी निश्चित होता है ।

कालिदास के समय के सम्बन्ध मे एक नवीन तथ्य प्रकाश में आया है, जिसका श्रेय **डॉ० एकान्त बिहारी** को है। १८ अक्टूबर १९६४ के "**साप्ताहिक हिन्दुस्तान**" के अङ्क मे इससे सम्बन्धित कुछ सामग्री प्रकाशित हुई। उज्जयिनी से कुछ दूरी पर भैरवगढ नामक स्थान से मिली हुई शिप्रा नदी की तटस्थ भूमियों मे गहरी खाइयाँ विद्यमान् हैं। वर्षा के कारण मिट्टी के बह जाने से वहाँ दो शिलाखण्ड मिले। इन शिलाखण्डों पर कालिदास से सम्बन्धित कुछ लेख अङ्कित हैं । इनका अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि "कालिदास अवन्ती देश में उत्पन्न हुए थे और उनका समय शुङ्ग राजा अग्निमित्र से लेकर विक्रमादित्य तक रहा होगा।" इन दोनों शिलालेखों में से एक शिलालेख गद्य में है, जो त्रुटित है, इसमे जो कुछ पढ़ा जा सका वह निम्न है—

**प्रथम पङ्क्ति**— *'जयति व्योम.........।'*

**द्वितीय पङ्क्ति**— *'राजच्छी ......शीर्षम्भि(णि:).....महोजा ।'*

**तृतीय पङ्क्ति**— *'श्रीमद्विक्रम.......शासिति......शिप्रातरङ्गोज्ज्वले ।'*

तथा **अन्त में लिखा है** कि— *'१४ वत्सरे......श्रीहरिस्वामिनो......आज्ञा........।'*

इस शिलालेख से केवल इतना ही आभास होता है कि यह शिलालेख महाराज विक्रम की आज्ञा से हरिस्वामी नामक किसी अधिकारी के आदेश से खुदवाया गया था।

दूसरे शिलालेख से कालिदास के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी मिलती है। यह पद्य में लिखा गया है, यह शिलालेख निम्न है—

*जयति कविमूर्धन्यः कालिदासो द्विजोत्तमः ।*
*अवन्तीप्रभवः श्रीमान् गुणगौरवमण्डितः ॥*
*पूजितश्चाग्निमित्रेण राज्ञा शुङ्गसुतेन च ।*
*विदिशायां राजपुर्यां मालवेन्द्रसुशोभिताम् ॥*
*निवसन् कृतवान् काव्यं नाटकं च सुधीरयम् ।*
*ऋतुसंहारमारभ्य मेघदूतं मनोरमम् ॥*
*नाटकं चाग्निमित्रस्य रघुवंशमतः परम् ।*
*शाकुन्तलं सुललितमुर्वशीयं तु वैक्रमम् ॥*
*कुमारसम्भवकथां पद्यबद्धामरीरचत् ।*
*ग्रन्थसप्तकस्रष्टायमरत्वमवाप्तवान् ॥*
*विनयाद् वामनः सोऽयं महनीयतपोऽभवत् ।*
*राज्ञा समादृतः सख्यं श्रेष्ठं स्वीकृतवानयम् ॥*
*ततः परं महाप्राज्ञो नीतिमान् समुदारधीः ।*
*शासकोऽसौ महावीरो विक्रमोऽभूत् महीतले ॥*
*भूभृता विक्रमार्केण पूजितश्च द्विजाग्रणीः ।*
*अजरामरवन्मान्यः कालिदासः कलानिधिः ॥*
*पृथिव्यामीदृशः कोऽपि न भूतो न भविष्यति ।*
*विद्यावैभवसम्पन्नः कविसम्राट् रसेश्वरः ॥*
*पञ्चाधिकनवत्यन्तमयं काव्यकलाधरः ।*
*रत्नालङ्काररुचिरैरर्चयामास भारतीम् ॥*
*कृतसंवत्सरस्यान्ते विक्रमारम्भतः पुरा ।*
*पञ्चत्वमगमच्छ्रीमान् महाकालस्य सन्निधौ ॥*
*कार्तिकैकादशी शुक्ला रविवासरसंयुता ।*
*कविकीर्तिमयी भूमौ कौमुदीव विराजते ॥*

उपर्युक्त श्लोकों का भाव यह है कि महाकवि कालिदास अवन्ती में उत्पन्न हुए तथा वहाँ विदिशा नाम की नगरी में शुङ्ग पुत्र अग्निमित्र द्वारा इनका सम्मान किया गया था । इन्होंने ऋतुसंहार, मेघदूत, मालविकाग्निमित्र, रघुवंश, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीय तथा कुमारसम्भव—इन सात ग्रंथों की रचना की थी। महाकवि ने अपने जीवन का अन्तिम समय महाराज विक्रमार्क (विक्रमादित्य) के आश्रय में व्यतीत किया था । कृत संवत् के अन्त में तथा विक्रम संवत् के प्रारम्भ में कार्तिक शुक्ला एकादशी, रविवार के दिन ९५ वर्ष की आयु में इनकी मृत्यु हुई ।

उपर्युक्त श्लोकों से यह स्पष्ट है कि इनके जीवन का अन्तिम समय अवन्ती मे विक्रमादित्य के आश्रय में बीता । इतिहासकारों ने शुङ्गवंशीय अग्निमित्र का समय ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी माना है। अतः कालिदास का समय ईसा पूर्व प्रथम-शताब्दी माना जा सकता है ।

· उपर्युक्त सभी मतों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कालिदास का समया ईसा पूर्व ५६ वर्ष मानना अधिक उचित होगा । □

## ३. कालिदास की रचनाएँ

कालिदास ने कितने ग्रन्थों की रचना की, यह भी एक विवादित प्रश्न है । इस विवाद का कारण है संस्कृत साहित्याकाश में एक से अधिक कालिदासों का होना । राजशेखर (१०वीं शताब्दी ई०) तक कम से कम तीन कालिदास हो चुके थे—

*एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।*
*शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥*

आफ्रेक्ट महोदय ने एक वृहद् सूची में कालिदास के नाम से अनेक ग्रन्थों का उल्लेख किया है । कालिदास ने ४१ ग्रन्थों की रचना की, ऐसा माना जाता है[1] परन्तु सभी विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हैं। जिस पर सभी विद्वान् एकमत हैं, ऐसी रचना तो केवल छ: ही हैं— रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, आज्ञिनशाकुन्तलम् तथा विक्रमोर्वशीयम् । सप्तम रचना, ऋतुसंहार को भी कुछ लोग कालिदासकृत नहीं मानते। इसका कारण है उसकी शैली अन्य छ: ग्रन्थों जैसी नहीं है। इसका कारण यह हो सकता है कि यह कालिदास की प्रथम कृति है, इसलिए उसकी भाषा शैली का स्तर उतना ऊँचा न हो जितना अन्य कृतियों का । इस पर मल्लिनाथ की टीका भी नहीं है, जब कि अन्य छ: ग्रन्थों पर है । सम्भवत: इस कारण भी इसे कालिदास की रचना स्वीकार नहीं करते हैं, किन्तु यह भी तो हो सकता है कि मल्लिनाथ ने इसे कुछ सरल कृति समझकर इस पर टीका लिखने की आवश्यकता ही न समझी हो । चाहे कारण जो भी हो, परन्तु अब यह लगभग निश्चित है कि यह कालिदास की ही कृति है, ऐसा **डॉ० मिराशी**[2], **डॉ० कपिलदेव**[3] आदि विद्वान् भी मानते हैं। कुछ विद्वान् कुन्तलेश्वरदौत्य, सेतुबन्ध और नलोदय को भी कालिदास की रचना मानते हैं, परन्तु इसके कोई पुष्ट प्रमाण नहीं हैं। अत: यह निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि सात रचनाएं तो निश्चित रूप से उसी कालिदास की हैं जो अग्निमित्र के समय में थे, शेष रचनाएँ अन्य कवियों की हैं, जिन्होंने सम्भवत: कालिदास की उपाधि धारण की होगी। इन सात रचनाओं में तीन नाटक, दो महाकाव्य तथा दो गीति काव्य हैं। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

**१. ऋतुसंहार**—यह कालिदास की सर्वप्रथम रचना मानी जाती है; क्योंकि इसकी शैली उस स्तर की नहीं है, जिस स्तर की अन्य रचनाओं की है। सम्भवत: इसी कारण आचार्य मल्लिनाथ ने इस पर टीका नहीं लिखी तथा इसके पद्य को काव्य शास्त्रों में उदाहरण के रूप में भी उद्धृत

---

१. (१) रघुवंश, (२) कुमारसम्भव, (३) मेघदूत, (४) विक्रमोर्वशीय, (५) मालविकाग्निमित्रम्, (६) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, (७) ऋतुसंहार, (८) कुन्तलेश्वरदौत्य, (९) अम्बास्तव, (१०) कालीस्तोत्र, (११) कल्याणस्तोत्र (१२) काव्यनाटकालङ्कार, (१३) —, (१४) गंगाष्टक, (१५) घटकर्पर, (१६) चर्चास्तव, (१७) चण्डिकादण्डकस्तोत्र, (१८) ज्योतिर्विदाभरण, (१९) दुर्घटकाव्य, (२०) नलोदय, (२१) नवरत्नमाला, (२२) पुण्यबाणविलास, (२३) मकरन्दस्तव, (२४) —, (२५) मंगलाष्टक, (२६) महपद्याष्टक, (२७) रत्नकोश, (२८) राक्षसकाव्य, (२९) लक्ष्मीस्तव, (३०) लघुस्तव, (३१) विद्वद्विनोदकाव्य, (३२) वृन्दावन काव्य, (३३) वैद्यमनोरमा, (३४) शुद्धिचन्द्रिका, (३५) शृङ्गारतिलक, (३६) शृङ्गाररसाष्टक, (३७) शृङ्गारसारकाव्य, (३८) श्यामलादण्डक, (३९) श्रुतबोध, सप्तश्लोकी, (४०) रामायण, (४१) सेतुबन्ध (विक्रमोर्वशीय भूमिका, पृ० ७) ।

२. कालिदास:—डॉ० मिराशी । (पृष्ठ ९७) ।

३. अभिज्ञानशाकुन्तलम् की भूमिका (सम्पादक, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पृ० १४) ।

नहीं किया है । इस कारण पहले कुछ विद्वान् इसे कालिदास की रचना स्वीकार नहीं करते थे । वस्तुत: ऋतुसंहार का मुख्य उद्देश्य भारतवर्ष की ऋतुओं से परिचय कराना था, श्रृङ्गार की प्रधानता नहीं। इसमें छ: सर्ग और १४४ श्लोक हैं, जिसमें कवि ने बड़े ही मनोरम ढंग से ग्रीष्म से प्रारम्भ करके बसन्त तक छ: ऋतुओं का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ का अध्ययन करने से ऐसा जान पड़ता है, मानो कवि की आत्मा इन ऋतुओं में रम गयी हो। इसमें कृत्रिमता का अभाव तथा प्रसाद गुण की पूर्णता दिखायी पड़ती है। वसन्त ऋतु का वर्णन करते हुए आम्रमञ्जरी को देखकर विरही पथिक की दशा का वर्णन कितने उत्कृष्ट रूप में किया है। देखिये—

*नेत्रे निमीलयति रोदिति याति शोकं*
*घ्राणं करेण विरुणद्धि विरौति चोच्चैः।*
*कान्तावियोगपरिखेदितचित्तवृत्ति-*
*र्दृष्ट्वाध्वगः कुसुमितान्सहकारवृक्षान्॥ (६/२८)*

कालिदास ने कितने सुन्दर ढंग से शरद् की प्रणय व्यञ्जना का कथन किया है, देखिये—

*असितनयनलक्ष्मीं लक्षयित्वोत्पलेषु*
*क्वणितकनककाञ्चीं मत्तहंसस्वनेषु ।*
*अधररुचिरशोभां बन्धुजीवे प्रियाणां*
*पथिकजन इदानीं रोदिति भ्रान्तचित्तः ॥ (३/२६)*

शरद् वर्णन निस्सन्देह ऋतुसंहार का श्रेष्ठ अंश है।

**२. मेघदूत**—मेघदूत कालिदास की एक सशक्त रचना है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि कालिदास की अन्य रचनाएँ न होतीं, केवल अकेला मेघदूत ही होता तो भी उनकी कीर्ति में कोई अन्तर न पड़ता। संस्कृत-साहित्य के गीति-काव्यों में सर्वप्रथम इसकी ही गणना होती है। कालिदास की कल्पना की ऊँची उड़ान और परिपक्व कला का यह एक ऐसा नमूना है, जिसकी टक्कर का विश्व में दूसरा नहीं है। मेघदूत 'मन्दाक्रान्ता' में लिखा हुआ १२१ श्लोकों का एक छोटा-सा काव्य है। इसके दो भाग हैं—पूर्वमेघ और उत्तरमेघ। (विस्तृत विवेचन आगे किया जायेगा।)

**३. कुमारसम्भव**—यह महाकवि कालिदास का प्रथम महाकाव्य है। इसकी रचना ऋतुसंहार तथा मालविकाग्निमित्र के बाद तथा रघुवंश और अभिज्ञानशाकुन्तलम् से निश्चित रूप से पहले की है। कुमारसम्भव के १७ सर्गों में शिव और पार्वती के पुत्र कार्तिकेय के जन्म तथा उसके द्वारा देवसेना का सेनापति बन कर तारकासुर के वध की कहानी वर्णित है। **डॉ० कीथ, पं० बलदेव उपाध्याय** आदि विद्वान् केवल अष्टम सर्ग तक ही कालिदास की रचना मानते हैं; क्योंकि मल्लिनाथ की टीका आठ सर्गों तक ही है। काव्यशास्त्रों में उदाहरण केवल आठ सर्गों तक ही मिलते हैं तथा नाम के अनुसार कुमार का जन्म अष्टम सर्ग में ही हो जाता है और यहीं काव्य का उद्देश्य भी पूर्ण हो जाता है। कुछ विद्वान् तो केवल सप्तम सर्ग तक ही कालिदास की रचना मानते हैं; क्योंकि अष्टम सर्ग में कवि ने जगज्जननी माता पार्वती के सम्भोग श्रृङ्गार का जितना सूक्ष्म वर्णन किया है, वैसा कालिदास जैसे कवि अपने आराध्य देव का नग्न चित्रण नहीं कर सकते थे। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि श्रृङ्गार के नग्न वर्णन के कारण पार्वती जी क्रुद्ध हो गयी थीं और उन्होंने कालिदास को शाप दे दिया था। इसी कारण यह ग्रन्थ अपूर्ण ही रह गया था। सच्चाई चाहे जो हो, परन्तु इस काव्य के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। **महर्षि अरविन्द** के कथनानुसार—"प्राक्तन संस्कृत-साहित्य में कुमारसम्भव का वही महनीय स्थान है,

जो आंग्ल-साहित्य में मिल्टन के पैराडाइज लास्ट का।'' कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग में हिमालय वर्णन प्रकृति के आलम्बन के रूप में वर्णित है। इसमें प्रकृति का स्वाभाविक सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है। हिमालय का कैसा स्वाभाविक चित्र खींचा है—

*भागीरथीनिर्झरशीकराणां वोढा: मुहु: कम्पितदेवदारु:।*
*यद्वायुरन्विष्टमृगै: किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्ह:।। कु० स० १/१५*

कुमारसम्भव के सारे प्रेम का वेग मङ्गल-मिलन मे समाप्त हुआ है। कुमारसम्भव का अङ्गी रस श्रृङ्गार है, यद्यपि प्रसङ्गानुसार करुण, रौद्र आदि रसों का भी समावेश हुआ है। शारीरिक सौन्दर्य नारी की सर्वोत्कृष्ट सम्पत्ति नहीं है और आध्यात्मिक सौंदर्य के प्रति आत्मसमर्पण कोई पराजय नहीं है। यही बात इस काव्य में प्रभावोत्पादक ढंग से व्यञ्जित है।

**४. रघुवंश**—कुछ विद्वान् रघुवंश को कालिदास की अन्तिम कृति मानते हैं। परन्तु ध्यान से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि अभिज्ञानशाकुन्तलम् इनकी अन्तिम कृति थी और रघुवंश उससे पहली। इसमें १९ सर्ग हैं, जिसमें महाकवि ने सूर्यवंशीय राजा दिलीप से अग्निवर्ण तक २९ राजाओं का वर्णन किया है। कुमारसम्भव की अपेक्षा इसमें महाकवि कालिदास की काव्य प्रतिभा अधिक निखरकर सामने आयी है । रघुवंश एक चरित्र महाकाव्य है । इसमें दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम आदि राजाओं को आदर्श सम्राटों के रूप में चित्रित किया गया है। इसी प्रकार इन्दुमती, सीता, कुमुद्वती आदि रानियों का भी वर्णन है। संसार में सुन्दरी नारियों के अङ्गों के समान जो वस्तुएँ प्रसिद्ध हैं वे समस्त वस्तुएँ कुश की सुन्दरियों के आस-पास जमा हो गयी हैं—

*आवर्तशोभा नतनाभिकान्तेर्भङ्गो भ्रुवां द्वन्द्वचरा: स्तनानाम् ।*
*जातानि रूपावयवोपमानान्यदूरवर्तीनि विलासिनीनाम् ।। (१६/६३)*

अलङ्कारों और रसों का पुष्ट परिपाक इस महाकाव्य में सर्वत्र देखने को मिलता है। कालिदास जिस श्लोक के कारण दीपशिखा कालिदास कहलाये वह श्लोक भी रघुवंश में ही इन्दुमती स्वयंवर में है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि अलङ्कारों की छटा के साथ वीर, करुण, वीभत्स, श्रृङ्गार आदि रसों की छटा भी दर्शनीय है। **आचार्य बलदेव उपाध्याय** का मत है कि यह महाकाव्य उपदेशात्मक दृष्टिकोण भी रखता है। उन्हीं के शब्दों में— ''*प्रकृतिरंजन के कारण राज्य की समृद्धि होती है तथा प्रकृति-हिंसन के कारण राज्य का सर्वनाश होता है। रघुवंश महाकाव्य लिखने का सम्भवत: यही कारण था।*''

**५. मालविकाग्निमित्र**—यह श्रृङ्गार रस प्रधान ५ अङ्कों का नाटक है। यह कालिदास की प्रथम नाट्य कृति है; इसलिए इसमें वह लालित्य, माधुर्य एवं भावगाम्भीर्य दृष्टिगोचर नहीं होता जो विक्रमोर्वशीय अथवा अभिज्ञानशाकुन्तल में है । विदिशा का राजा अग्निमित्र इस नाटक का नायक है तथा विदर्भराज की भगिनी मालविका इसकी नायिका है। इस नाटक में इन दोनों की प्रणय कथा है। **डॉ० रमाशंकर तिवारी**[१] ने इस नाटक के विषय में लिखा है— ''*वस्तुत: यह नाटक राजमहलों में चलने वाले प्रणय षड्यन्त्रों का उन्मीलक है तथा इसमें नाट्यक्रिया का समग्र सूत्र विदूषक के हाथों में समर्पित है ।*'' गौतम को निकाल दीजिये तो अग्निमित्र निष्प्रभ बन जायेगा। वैसे भी अग्निमित्र का जो चित्र चित्रित हुआ है, न प्रणय वेग में, न प्रणय घनत्व में, अन्य गुणों की तो बात ही क्या? कालिदास ने प्रारम्भ में ही सूत्रधार से कहलवाया है—

---

१. कालिदास—डॉ० रमाशंकर तिवारी, पृष्ठ २६६ ।

*पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।*
*सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥ (१/२)*

अर्थात् पुरानी होने से ही न तो सभी वस्तुएँ अच्छी होती हैं और न नयी होने से बुरी अथवा हेय। विवेकशील व्यक्ति अपनी बुद्धि से परीक्षा करके श्रेष्ठतर वस्तु को अङ्गीकार कर लेते हैं और मूर्ख लोग दूसरो के बताने पर ग्राह्य अथवा अग्राह्य का निर्णय करते हैं।

अध्यापक का वास्तविक चित्रण खीचते हुए कवि का कथन द्रष्टव्य है—

*लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम् ।*
*यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति ॥ (१/१७)*

अर्थात् "जो अध्यापक शास्त्रार्थ से भागता है, दूसरों के अँगुली उठाने पर चुप रह जाता है तथा केवल पेट के लिए विद्या पढ़ाता है, वह पंडित नहीं, अपितु ज्ञान बेचने वाला बनिया कहलायेगा ।"

वस्तुतः यह नाटक नाट्य-साहित्य के वैभवशाली अध्याय का प्रथम पृष्ठ है ।

**६. विक्रमोर्वशीय**—यह पाँच अङ्कों का एक त्रोटक (उपरूपक) है, इसमें राजा पुरुरवा तथा अप्सरा उर्वशी की प्रणय कथा वर्णित है। मालविकाग्निमित्र की अपेक्षा इस नाटक में कवि की नाट्यकला का सुन्दर विकास हुआ है। इसमे श्रृङ्गार रस की प्रधानता है, पात्रों की संख्या कम है। इसकी कथा ऋग्वेद (१०/९५) तथा शतपथ ब्राह्मण (११/५/१) से ली गयी है। महाकवि कालिदास ने इस नाटक को मानवीय प्रेम की अत्यन्त मधुर एवं सुकुमार कहानी में परिणत कर दिया है। वस्तुतः **डॉ० रमाशङ्कर तिवारी** का यह कथन कितना सटीक है कि – "कालिदास ने प्रस्तुत नाटक मे एक तप्त लोहे को दूसरे तप्त लोहे से जोड़ दिया है।" इसके प्राकृतिक दृश्य बड़े रमणीय हैं। भाषा प्रसादयुक्त और स्वाभाविक अलङ्कारों से अलङ्कृत है। इस नाटक के सम्बन्ध में **हेनरी बेल्स** का कथन भी द्रष्टव्य है कि—"आंग्ल कवि बाइरन ने मनुष्यों तथा फरिश्तो के प्रेम का वर्णन करने वाले अपने नाटक को 'स्वर्ग और पृथिवी' (Heaven and Earth) का जो शीर्षक प्रदान किया था, वह नाम इस नाटक को भी दिया जा सकता है ।"

**७. अभिज्ञानशाकुन्तलम्**—अभिज्ञानशाकुन्तलम् न केवल संस्कृत-साहित्य का, अपितु विश्वसाहित्य का सर्वोत्कृष्ट नाटक है । यह कालिदास की अन्तिम रचना है । इसके सात अङ्कों में राजा दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रणय-कथा निबद्ध है। इसका कथानक महाभारत के आदि पर्व के शकुन्तलोपाख्यान से लिया गया है । कण्व के माध्यम से एक पिता का पुत्री को दिया गया उपदेश आज २,००० वर्षों के बाद भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना उस समय में था । एक पिता इससे बढ़कर अपनी पुत्री को भला क्या उपदेश दे सकता है—

*शुश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने*
*भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।*
*भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी*
*यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥ (४/१८)*

भारतीय आलोचकों ने "**काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला**" कहकर इस नाटक की प्रशंसा की है। भारतीय आलोचको के समान ही विदेशी आलोचको ने भी इस नाटक की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। जब सन् १७९१ में **जार्जफोस्टर** ने इसका जर्मनी में अनुवाद किया, तो उसे देखकर जर्मन विद्वान् **गेटे** इतने गद्गद हुए कि उन्होंने इसकी प्रशंसा में एक कविता लिख डाली—

Wouldst thou the young years blossoms
and the fruits of its decline
And all by which soul is charmed
enraptures feasted fed?
Wouldst thou earth and heaven itself
in one sole name combine ?
I name thee, O Shakuntla and
all at once is said.

इसका संस्कृत में रूपान्तर **वासुदेव विष्णु मिराशी** ने इस प्रकार किया है—

*वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं च यद्*
*यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम् ।*
*एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो-*
*रैश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रियसखे शाकुन्तलं सेव्यताम्।।*

"यदि तुम वसन्त के फूल तथा शीत ऋतु के फल चाहते हो और आत्मा को मोहित करने वाला, प्रसन्न करने वाला एवं उसी तरह से पुष्ट करने वाला रसायन तथा पृथिवी एवं स्वर्ग का सम्मिलन, ये सभी बातें एक जगह देखना चाहते हो, तो शाकुन्तल का अध्ययन करो और वहाँ ये सब तत्व तुम्हें मिल जायेंगे।"

□

## ४. कालिदास : काव्य कला

महाकवि कालिदास भारतीय साहित्य के जाज्ल्यमान नक्षत्र हैं। **महर्षि अरविन्द** का यह कथन कितना सटीक है कि "वाल्मीकि, व्यास तथा कालिदास प्राचीन भारतीय इतिहास की अन्तरात्मा के प्रतिनिधि हैं और सब कुछ नष्ट हो जाने के बाद भी इनकी कृतियों में हमारी संस्कृति के प्राण-तत्त्व सुरक्षित रहेंगे।" उन्होंने अपनी कृतियों में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का सामञ्जस्य स्थापित किया है। वे विश्व के एक महान् कलाकार हैं। वे भावपक्ष और कलापक्ष दोनों के चित्रण में निपुण हैं । उन्होंने अपनी रचनाओं में जितना सुन्दर वर्णन अन्तर्जगत् का किया है, उतना ही सुन्दर वर्णन बाह्य जगत् का भी। कालिदास की उत्तरवर्ती रचनाओं में बाह्य पक्ष तो सजता सँवरता चला गया, किन्तु आन्तरिक पक्ष की कोमलता और मार्मिकता का ह्रास होता गया । रस, अलङ्कार, छन्द, भावों की अभिव्यक्ति आदि का वर्णन ही कालिदास की कविता के प्राण हैं । इनकी काव्य-कला के विभिन्न पक्षों पर आगे विचार किया जा रहा है—

**(क) भाषा**—कालिदास का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। उनकी भाषा सरल, सरस, परिष्कृत, प्राञ्जल तथा प्रसादगुण पूर्ण है तथा उन्होंने लम्बे-लम्बे समासों से बचने का प्रयास किया है। प्रायः छोटे-छोटे समासों का प्रयोग एवं कहीं भी पाण्डित्य प्रदर्शन का प्रयास नहीं है । इसी कारण दुरूह प्रयोगों का अभाव है । देखिये—

*जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां*
*जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।* (पू० मे०/६)

शब्द और अर्थ का सामंजस्य वर्णित करना कवि की अपनी प्रमुख विशेषता है । किस शब्द का प्रयोग करने से क्या भाव अभिव्यञ्जित होते हैं, इसे कवि अच्छी प्रकार से जानते हैं। इसका एक सुन्दर उदाहरण देखिये—

*द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां*
*समागमप्रार्थनया कपालिनः ।*
*कला च सा कान्तिमती कलावतः*
*त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी ॥ (कु० स० ५/७१)*

कालिदास की सरल शब्द-योजना उनकी कलात्मकता को व्यक्त करती है। वे जिस प्रकार के भाव का जिस स्थल पर प्रदर्शन करना चाहते हैं, उसके अनुकूल ही भाषा का प्रयोग करते हैं। स्थान-स्थान पर शब्दों की सरलता के साथ-साथ भावों की गम्भीरता के भी दर्शन होते हैं। आभिज्ञानशाकुन्तलम् का एक श्लोक देखिये—

*अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-*
*रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम् ।*
*अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं*
*न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥ (२/१०)*

उनके पास शब्दों का अगाध भण्डार है। भाषा और शब्दकोश पर अधिकार के कारण भाषा में असाधारण मनोरमता और सुन्दर प्रवाह है। संवाद सरल, सूक्ष्म तथा आकर्षक हैं । संवादों में भाषा इतनी सजीव और मधुर है कि वह विषय को और अधिक आकर्षक व रोचक बना देती है। उनकी भाषा में कहीं भी अस्वाभाविकता के दर्शन नहीं होते । छोटे-छोटे और सरल वाक्यों के प्रयोग से सूक्ष्मतम भावों की अभिव्यक्ति की गयी है। पात्रों के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग किया गया है। जो व्यक्ति जिस कोटि का है, उससे उसी प्रकार की भाषा बुलवायी गयी है। अतः कह सकते हैं कि कालिदास की भाषा पर पकड़ बहुत ही मजबूत थी । जिसको वे अपनी इच्छानुसार ढाल देते थे।

(ख) शैली—विश्व-साहित्य में कालिदास ने जो प्रतिष्ठा अर्जित की है निस्सन्देह उसका श्रेय उनकी शैली को है। कैसा भी नीरस से नीरस कथानक क्यों न हो, अपनी कल्पना शक्ति और सृष्टि निपुणता से उसको सजीव व आकर्षक बनाने की कला में वे निपुण हैं। उन्होंने अपनी कृतियों की कथावस्तु प्राचीन आख्यानों से लेकर उन्हें अपनी मनोरम कल्पना शक्ति द्वारा इस प्रकार सजाया है कि कथानक अत्यन्त रमणीय बन गये हैं।

कालिदास ने वैदर्भी शैली को अपनाया है । कालिदास इस शैली के श्रेष्ठ कलाकार माने गये हैं--**"वैदर्भी रीतिसन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते"** । वैदर्भी शैली की प्रमुख विशेषता है—प्रसाद गुण का होना । काव्यशास्त्रियों ने प्रसाद गुण का लक्षण इस प्रकार किया है—

*शुष्केन्धनाग्निवत्स्वच्छजलवत् सहसैव यः ।*
*व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहित स्थितिः॥ (का० प्र० ८)*

उनको इस प्रसाद युक्त शैली ने ही मूर्धन्य कवियों में पहुँचाया है। इस गुण से युक्त वैदर्भी का लक्षण **आचार्य विश्वनाथ** ने इस प्रकार किया है—

*माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका ।*
*अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ॥ (सा० दर्पण ९/२-३)*

मधुर शब्द, ललित पदविन्यास, समासों का पूर्णतया अभाव अथवा कम समासयुक्त पदों का होना ही वैदर्भी रीति की विशेषता है। **आचार्य दण्डी** तो कालिदास की वैदर्भी युक्त रचना

शैली से बहुत प्रभावित हुए। उनकी मान्यता है कि वैदर्भी रीति की उद्भावना कालिदास ने ही की है । देखिये—

*लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विषया गिरः ।*
*तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम् ॥*

कालिदास की शैली की सबसे प्रमुख विशेषता है—व्यञ्जना शक्ति। वे किसी भी भाव का चित्रण करते समय उसका विस्तृत शब्दों में वर्णन करने की अपेक्षा व्यञ्जना शक्ति का आश्रय लेकर उसकी ओर सूक्ष्म संकेत करना ही उचित व आवश्यक समझते हैं। उनकी व्यञ्जना शक्ति को समझना सहृदय व्यक्ति का ही कार्य है। उनकी इसी विशेषता को **डॉ० ए० बी० कीथ** ने अपनी पुस्तक **'संस्कृत ड्रामा'** में लिखा है— *''कालिदास की भाषा में व्यञ्जना गुण भी विद्यमान है । वह केवल स्पर्शमात्र से निर्देश करके ही संतुष्ट हो जाता है। ''*

मानव हृदय की सूक्ष्मतम अनुभूतियों और भावनाओं को अत्यन्त सजीव रूप में प्रस्तुत करने की उनमें अद्भुत क्षमता है। **'न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्''**, **''अये लब्धं नेत्र निर्वाणम्''**, **''न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते''**, **''नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण''** आदि उक्तियों में व्यञ्जना का प्राधान्य है । उनके ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर इस प्रकार का भाव-गाम्भीर्य देखा जा सकता है ।

कालिदास की शैली में उनकी उत्कृष्ट कला साधना पद-पद पर अभिलक्षित होती है। **महर्षि अरविन्द** की यह टिप्पणी कितनी सटीक है— *''कालिदास मूर्धन्य कलाकार हैं, उनकी कृतियों से निर्गत होने वाली ध्वनि वही ध्वनि है जो प्राक्तन साहित्य की सर्वोत्तम रचनाओं में मिलती है । इस साहित्य की शैलीगत विशेषताएँ हैं— एक सुगठित किन्तु स्वाभाविक संक्षिप्तता, एक मसृण गांभीर्य एवं सुस्निग्ध औदार्य, पद्यगत श्रेष्ठ स्वर-सामञ्जस्य, परिष्कृत गद्य का सशक्त एवं प्राञ्जल सौन्दर्य और सबसे बढ़कर, संक्षिप्त तथा प्रभविष्णु पदावली की निश्चित अर्थवत्ता, जिसमें रङ्ग और माधुर्य लबालब छलकते हैं।''* [१]

**(ग) रस**—यद्यपि महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में मुख्यतया श्रृङ्गार रस का वर्णन किया है किन्तु अन्य सभी रसों को भी यथा-स्थान महत्व दिया है। यह बात पूर्णतया सत्य है कि श्रृङ्गार वर्णन में कालिदास अपना सानी नहीं रखते। उनके काव्यों में श्रृङ्गार के दोनों पक्षों का सुन्दर परिपाक हुआ है। उन्होने दोनों पक्षों को बड़ी भावुकता के साथ उभारा है। उनका श्रृङ्गारिक वर्णन पाठक की आत्मा का स्पर्श कर लेता है। श्रृङ्गार के संयोग पक्ष का एक सुन्दर उदाहरण अभिज्ञान शाकुन्तल में देखिये—

*मधुद्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः ।*
*श्रृङ्गेण च स्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः।। (६/३६)*

संभोग की छलकती हुई मादकता किस प्रकार पाठक के मन को आकर्षित करती है, इसका सुन्दर वर्णन कालिदास ने कुमारसम्भव में कियां है—

*व्याहृतं प्रतिवचो न संदधे गन्तुमैच्छदवलम्बितांशुका ।*
*सेवते, स्म शयने पराङ्मुखी सा तथापि रतये पिनाकिनः।। (८/२)*

अर्थात् शिव के द्वारा कुछ कहने पर भी पार्वती कोई उत्तर नहीं दे रही है, दुपट्टा खींचने

---

१. Kalidas—Shri Arvind, Page16–17.

पर भी जाना चाहती हैं, शय्या पर दूसरी ओर मुख करके लेटती है । इतने पर भी पार्वती शिव की रति को बढ़ा रही हैं ।

कालिदास यह बात भी अच्छी प्रकार से समझते हैं कि स्त्रियाँ प्रारम्भ में अपने प्यार को कहकर प्रकट नहीं करतीं, बल्कि अपने हाव-भाव द्वारा प्रकट करती हैं—

*स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु । (पू० मे०/२९)*

गम्भीरा नदी चंचल चितवन के साथ जब मेघ से मिलती है तो भला वह उसे कैसे छोड़ सकता है; क्योंकि मेघ तो ''ज्ञातास्वाद'' है—

*ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः। (पू० मे० /४४)*

सम्भोग के उक्त बिन्दुओं की बौछार करके जहाँ कालिदास ने मेघ के मार्ग को सरस बनाया है वहीं वियोग की व्यञ्जना के लिए पृष्ठभूमि भी प्रस्तुत की है। वियोगिनी यक्षिणी की वियोग दशा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण मेघदूत में कवि ने किया है। यक्षिणी विरह-व्यथा से क्षीण शय्या पर उसी प्रकार एक करवट पड़ी हुई है जैसे पूर्व दिशा में कृष्ण पक्ष में क्षीण चन्द्रकला—

*आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वां*
*प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः। (उ० मे०/२९)*

इतनी ही नहीं, अपितु उसने आभूषणों का त्याग कर दिया है और बड़ी कठिनाई से जीवन धारण कर रही है और उसे देखकर मेघ भी रो पड़ेगा—

*सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती*
*शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद् दुःखदुःखेन गात्रम्।*
*त्वामप्यस्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं*
*प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥ (उ० मे०/३३)*

कालिदास रसों के सरस चित्रकार हैं। इसी कारण उन्हें रससिद्ध कवीश्वर की उपाधि से विभूषित किया गया है । महाकवि ने श्रृङ्गार रस के अतिरिक्त करुण, वीर, हास्य, शान्त, वीभत्स आदि सभी रसों का वर्णन किया है। रघुवंश में प्रायः सभी रसों का सुन्दर परिपाक है। कुमारसम्भव के रति-विलाप और रघुवंश के अज-विलाप को देखकर तो ऐसा लगता है कि जैसे करुण रस की धारा फूट पड़ी हो। इन्दुमती के आकस्मिक निधन पर जब अज बेहोश होकर गिर पड़ते हैं तो चारों ओर आर्तनाद होने लगता है—

*उभयोरपि पार्श्ववर्तिनां तुमुलेनार्तरवेण वेजिता ।*
*विहगाः कमलाकरालयाः समदुःखा इव तत्र चुक्रुशुः ॥ (रघु० ८/३९)*

करुण रस की अभिव्यक्ति किसी भी दशा में श्रृङ्गार से कम नहीं है । कामदेव के भस्म हो जाने पर रति विलाप करती हुई अग्नि से कहती है कि पत्नियों का धर्म है कि वे पति के साथ चिता में जलकर उनका अनुगमन करें; क्योंकि अचेतनों में भी यही धर्म देखा जाता है, फिर वह तो चेतन है—

*शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित् प्रलीयते ।*
*प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति, प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ॥(कु० स० ४/३३)*

हास्य रस का प्रयोग करने में कवि निपुण है। कुमारसम्भव में कितना शिष्ट हास्य का

वर्णन मिलता है, जब बटु वेशधारी शिव कहते हैं कि यदि पार्वती का विवाह शिव से हुआ तो बूढ़े बैल पर पार्वती को बैठा देखकर सभी लोग हँसेंगे—

*इयं च तेऽन्या पुरतो विडम्बना,*
*यदूढया वारणराजहार्यया।*
*विलोक्य: वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया,*
*महाजन: स्मेरमुखो भविष्यति ॥ (५/७०)*

वीर रस के वर्णन के लिए रघुवंश में रघु और राम के युद्ध देखे जा सकते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल में भी जब दुष्यन्त राक्षसों पर विजय प्राप्त कर स्वर्ग से लौटते हैं तो उनके यशोगार को देवता लोग कल्पलता के वस्त्रों पर लिख रहे हैं—

*विच्छित्तिशेषै: सुरसुन्दरीणां, वर्णैरमी कल्पलतांशुकेषु।*
*विचिन्त्य गीतक्षममर्थजातं, दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखन्ति॥ (७/५)*

यद्यपि यह नि:संदेह सत्य है कि महाकवि कालिदास मुख्य रूप से कोमल एवं सुकुमार रसों के ही चतुर चित्रकार हैं, तथापि अद्‌भुत, शान्त, रौद्र एवं वीभत्स रसों का वर्णन भी उन्होंने किया है। अद्‌भुत रस का एक उदाहरण रघुवंश में द्रष्टव्य है—जब राजा दिलीप नीचे को मुख किये हुए सिंह के आक्रमण की प्रतीक्षा कर रहे थे, तभी आक्रमण के स्थान पर उनके ऊपर पुष्पों की वर्षा होने लगती है—

*तस्मिन् क्षणे पालयितु: प्रजानामुत्पस्यत: सिंहनिपातमुग्रम्।*
*अवाङ्मुखस्योपरि पुष्पवृष्टि: पपात विद्याधरहस्तमुक्ता॥ (२/६०)*

इसी प्रकार आश्रमों के वर्णन में शान्त और वध आदि में वीभत्स रस देखा जा सकता है। अन्त में उनके रस के सम्बन्ध में **श्री बलदेव उपाध्याय** का निम्न कथन भी द्रष्टव्य है—

*"कालिदास रस-वर्णन में अतीव निपुण हैं। वे मानव हृदय के सच्चे पारखी हैं; अत: उनके वर्णन बिल्कुल सच्चे हैं। कालिदास कोमल रसों के वर्णन में बिल्कुल दक्ष हैं। उनके शृङ्गार तथा करुण रस के वर्णन अति उत्तम हैं। कालिदास का वीर रस का वर्णन इतना ओजस्वी नहीं है कि उसके सुनते ही हृदय में उत्साह की आग जलने लगे। इतना फड़कता हुआ नहीं है कि कायर भी वीर बन जाये।"*

**(घ) छन्द**—काव्य के उत्कर्ष में छन्द-योजना का भी अपना विशिष्ट महत्व है। **महाकवि क्षेमेन्द्र** ने "सुवृत्ततिलक" में लिखा है कि काव्य में रस तथा वर्णनीय वस्तु के अनुसार छन्दों का सोच-समझकर विनियोजन करना चाहिये—

*काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।*
*कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित्॥*

इसीलिए महाकवि कालिदास ने कुछ निश्चित प्रसङ्गों के लिए कुछ निश्चित छन्दों का प्रयोग किया है, जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वे विशेष भावों और रसों के लिए कुछ विशेष छन्दों का प्रयोग उपयुक्त समझते हैं; जैसे—वियोग का या वर्षा का वर्णन करने में मन्दाक्रान्ता, वीरता के प्रकरण में वंशस्थ, कार्य की सफलता पर वसन्ततिलका आदि।

रघुवंश और कुमारसम्भव के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उन्हें छोटे-छोटे छन्द अधिक प्रिय थे। उनमें भी उपजाति और अनुष्टुप् छन्द। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि बड़े छन्दों का प्रयोग उन्होंने नहीं किया है। सम्पूर्ण मेघदूत "मन्दाक्रान्ता" छन्द में लिखा है। इसका कारण यह

भी है कि इसका प्रारम्भ वर्षा ऋतु से होता है और उसमें विशेष रूप से प्रवास का वर्णन है। आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार— *"प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते।"* यह मानना होगा कि कालिदास ने छन्दों के प्रयोग में विशेष सतर्कता बरती है। ऋतुसंहार में जहाँ उन्होंने वसन्ततिलका, उपजाति और मालिनी छन्दों का अधिक प्रयोग किया है, वहीं रघुवंश और कुमारसम्भव में उपजाति, अनुष्टुप्, वंशस्थ और मालिनी छन्दों का। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के अध्ययन से तो ऐसा जान पड़ता है कि जैसे उनके द्वारा प्रयुक्त रसों में छन्द-योजना की शिक्षा दी गई हो। उन्होंने रघुवंश के कई सर्गों में एक से अधिक छन्दों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए नवम सर्ग देखा जा सकता है; जैसे—द्रुतविलम्बित, वसन्ततिलका, मालिनी, पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी आदि।

इस पर **डॉ० रमाशंकर तिवारी** का कथन है कि *"वृत्तों की यह विविधता रघुवंश जैसे महाकाव्य की व्यापक वस्तु के सर्वथा उपयुक्त है।"*

**(ङ) अलङ्कार**—अलङ्कार का काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है। *'अलङ्क्रियतेऽनेनेति अलङ्कार"* अर्थात् जिनके द्वारा किसी वस्तु की शोभा बढ़ायी जाये वह अलङ्कार हैं। अलङ्कार शब्दार्थ रूप कविता कामिनी के शरीर के सौन्दर्य को बढ़ाने वाले हैं। वस्तुतः उक्ति वैचित्र्य ही अलङ्कार है, जो काव्य शरीर की शोभा को बढ़ाता है। उक्ति वैचित्र्य से काव्य में चमत्कार आ जाता है, जो उसके रसास्वादन में सहायक होता है। चन्द्रालोककार **जयदेव** का तो स्पष्ट मत है कि *"जो आचार्य अलङ्कार रहित शब्दार्थ को काव्य मानता है, वह यह क्यों नहीं मानता कि अग्नि उष्णता रहित होती है?"*[1]

महाकवि कालिदास ने यद्यपि शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों का प्रयोग किया है, किन्तु अधिकता अर्थालङ्कारों की ही है। अलङ्कारों के प्रयोग में महाकवि ने बड़ी सूझ-बूझ का परिचय दिया है। शब्दालङ्कारों का मोह कभी-कभी कवियों को इतना जकड़ लेता है कि मूल भाव-तत्व एकदम गौण हो जाता है। कालिदास ने उनका प्रयोग बहुत ही स्वाभाविक ढंग से किया है। इस सम्बन्ध में **स्व० श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय** का यह कथन कितना सटीक है कि *"अलङ्कारों के प्रयोग में कवि ने अपनी सूक्ष्म मर्मज्ञता का परिचय दिया है। उनकी कविता अत्यधिक तथा अनावश्यक अलङ्कारों के भार से आक्रान्त कामिनी की भाँति मंद-मथंर गति से चलने वाली नहीं है, अपितु 'स्फुटचन्द्र तारका विभावरी' की भाँति अपने सहज सौन्दर्य से सहृदयों के चित्त को आकृष्ट करने वाली है। उनके अनुप्रास अपनी काव्य-धारा में सर्वत्र अप्रयास ही आ गये हैं, कहीं भी जबरदस्ती ठूँस-ठूँसकर नहीं बैठाये गये हैं।"*[2]

अनुप्रास के लिए उन्हें कहीं अलग से प्रयास नहीं करना पड़ा, अपितु कवि की भावाभिव्यक्ति में इनका समावेश स्वतः हो गया है। देखिये—

*जीवन्पुनः शश्वदुपप्लवेभ्यः प्रजाः प्रजानाथ पितेव पासि।* (रघु० २/४८)

*निर्ह्लादिन्युपहितमध्यमस्वरोत्था मायूरी मदयति मार्जना मनांसि॥* (माल० १/२१)

यहां प्रथम उदाहरण में पकार की एवं द्वितीय उदाहरण में मकार की अनुवृत्ति पाठकों के चित्त को आकर्षित करती है।

यमक के प्रयोग से प्रायः काव्य के दुरूह होने के कारण, ध्वनिकार ने विप्रलम्भ शृङ्गार के वर्णन में यमक के प्रयोग को मना किया है।[3] इसलिए कालिदास ने यमक का प्रयोग बहुत

---

१. अङ्गीकरोति या काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती॥

२. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा—पृष्ठ ४९, चतुर्दश संस्करण।

३. ध्वन्यात्मभूते शृङ्गारे यमकादिनिबन्धनम्।
शक्तावपि प्रमादित्वं विप्रलम्भे विशेषतः॥ (ध्वन्यालोक २/१५)

कम किया है। फिर भी यमक के प्रयोग रघुवंश के नवम सर्ग में दशरथ की राज्य व्यवस्था, वसन्त व ग्रीष्म-ऋतु-वर्णन तथा आखेट वर्णन में देखे जा सकते हैं। यमक का यह कितना सुन्दर उदाहरण है— मान छोड़ो, बीती हुई वह अवस्था फिर लौटकर नहीं आती है, इस प्रकार कोयल के कामोद्दीपक वचनों को सुनकर नायिका नायक से मिलने को आतुर हो उठती है—

*त्यजत मानमलं वत विग्रहैर्न पुनरेति गतं चतुरं वयः।*
*परभृताभिरितीव निवेदिते स्मरमते रमते स्म वधूजनः।।*

कालिदास के यमक के प्रयोग के सम्बन्ध में **डॉ० भोलाशङ्कर व्यास** का कथन द्रष्टव्य है—"*कालिदास ने यमक के प्रति रुचि दिखायी है, पर ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास ने यह इसलिए प्रयोग किया है कि वे चित्र काव्यों के शौकीनों के सामने यह सिद्ध कर सकें कि वे उस प्रकार के प्रयोग भी कर सकते हैं, किन्तु कालिदास भाव को प्रधानता देते हैं तथा अलङ्कारों के मोह में फँसकर उसका हनन करना नहीं चाहते।*"

यमक के समान ही कालिदास ने श्लेष के प्रयोग में भी विशेष कौशल का परिचय दिया है, जिससे वह केवल कोरी बुद्धि का व्यायाम न होकर विविक्षितार्थ को सुन्दर ढंग से व्यक्त करने में सहायक होता है। कालिदास के श्लेष आसानी से समझ में आ जाते हैं। मालविकाग्निमित्र के पञ्चम अङ्क में विदूषक और देवी का यह प्रसङ्ग कितना सुन्दर बन पड़ा है। विदूषक राजा का ध्यान यौवन से खिली हुई मालविका की ओर खींचना चाहता है, किन्तु जब रानी उसके शब्दों को सुन लेती है तो उसका उत्तर देते हुए विदूषक श्लेष से दूसरा अर्थ करके उसका सम्बन्ध अशोक पुष्प से जोड़ देता है। देखिये—

**विदूषक**—*भो! विश्रब्धो भूत्वा त्वमिमां यौवनवतीं पश्य।*

**देवी**—*काम्!*

**विदूषक**—*तपनीयाशोकस्य कुसुमशोभाम्।*

इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास की कविता अनुप्रास, यमक और श्लेष अलङ्कारों के सौन्दर्य से युक्त है।

काव्य को पाठक के हृदयङ्गम कराने के लिए महाकवि सादृश्य-विधान का प्रयोग करते हैं। सादृश्य-विधान प्रस्तुत करने वाले अलङ्कारों में उपमा सर्वप्रमुख है। उपमा के ज्ञान से ही अन्य सादृश्यमूलक अलङ्कारों का ज्ञान भी सहज ही हो जाता है। सादृश्यमूलक अलङ्कारों में कालिदास ने उपमा और अर्थान्तरन्यास का प्रयोग अधिक किया है। संस्कृत जगत् में कालिदास उपमा के धनी माने जाते हैं। बिल्कुल सीधे और नपे तुले शब्दों के द्वारा कालिदास ने अपनी उपमाएँ दी हैं। कालिदास के उपमा-सौन्दर्य को विशिष्टता प्रदान करते हुए समीक्षकों ने "**उपमा कालिदासस्य**" यह उक्ति प्रचलित कर दी और उन्हें उपमा का श्रेष्ठ कवि घोषित कर दिया। कालिदास की दीपशिखा की उपमा तो इतनी प्रसिद्ध हो गयी कि उन्हें दीपशिखा कालिदास ही बना दिया। देखिये—

*संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।*
*नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।। (रघु० ६/६७)*

इसी प्रकार उपमा का एक अन्य उदाहरण देखिये—

*आवर्जिता किञ्चिदिव स्तनाभ्यां वासो वसाना तरुणार्करागम्।*
*पर्याप्तपुष्पस्तबकावनम्रा सञ्चारिणी पल्लविनी लतेव।। (कु० सं० ३/५४)*

स्तनों के भार से कुछ झुकी हुई बालसूर्य की लालिमा वाले वस्त्रों से परिहित पार्वती ऐसे सुशोभित हो रही थी, जैसे प्रचुर पुष्प गुच्छों से झुकी हुई चलने-फिरने वाली लता हो।

पार्वती के सुन्दर मुख को देखकर शिव का धैर्य उसी प्रकार लुप्त हो रहा था, जिस प्रकार पूर्णिमा के चन्द्रोदय से समुद्र का धैर्य—

*हरस्तु किंचित् परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः।*
*उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि॥ (कु० स० ३/६७)*

कालिदास की उपमाओं में जो भावाभिव्यक्ति और रस-सौन्दर्य मिलता है, वैसी ही ज्ञान-धारा अर्थान्तरन्यास की भी बहती है। उनके अर्थान्तरन्यास से प्रभावित होकर किसी विद्वान् प्रशसंक ने अर्थान्तरन्यास के प्रयोग में कालिदास को उपमा से भी अधिक श्रेष्ठ माना है—

*उपमा कालिदासस्य नोत्कृष्टेति मतं मम।*
*अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते॥*

उनके अर्थान्तरन्यास के निम्न उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

*इयनधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी*
*किमिवं हि मधुराणां मण्डनं नाकृतिनाम्। (अभि० शा० १/१९)*
*प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।(कु० स० ५/१)*
*न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते।(कु० स० ५/१६)*
*कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।(पू० मे०/५) आदि*

इस प्रकार अर्थान्तरन्यास के प्रयोग में कालिदास की लौकिक अनुभव शक्ति नितान्त मनोभिराम एवं संक्षिप्त रूप में अभिव्यक्त हुई है।

सादृश्यमूलक अलङ्कारों में उपमा और अर्थान्तरन्यास के अतिरिक्त उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, रूपक, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति आदि अलङ्कारों की छटा भी उनके काव्य को रमणीय बनाने वाली है। यद्यपि ऋतुसंहार जैसी उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में उत्प्रेक्षा का प्रयोग कम ही मिलता है, परन्तु मेघदूत में तो मानो रसवर्षी एवं ललित उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लग गयी है। एक उदाहरण देखिये— पक्वफल भूषित आम्रों से ढका हुआ आम्रकूट पर्वत मेघ के साथ ऐसा दिखायी पड़ता है, जैसे पृथिवी का स्तन हो—

*नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां।*
*मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः॥ (पू० मे०/१८)*

यमुना की तरङ्गों से संश्लिष्ट गङ्गा ऐसी शोभित हो रही है, मानो साक्षात् शिव की मूर्ति हो, जो एक ओर कृष्ण सर्पों से वेष्टित हो और दूसरी ओर भस्मलेप से अलङ्कृत हो।

*क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य।*
*पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः॥ (रघु०१३/५)*

इन अलङ्कारों के अतिरिक्त कालिदास ने स्वभावोक्ति, निदर्शना, व्यतिरेक, रूपक आदि अलङ्कारों का भी सुन्दर विनियोग किया है।

इस प्रकार हम देखते है कि उनकी रचनाओं में शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों का ही सौन्दर्य समान रूप से मिलता है, जो उनके काव्य को सर्वतोभावेन सुन्दर एवं मधुर बनाता है। उनकी उपमाओं के समान अर्थान्तरन्यास एवं उत्प्रेक्षा भी उत्कृष्ट है। जहां उनके उपमा-सौष्ठव

की विद्वानों ने प्रशंसा की है, वहीं अर्थान्तरन्यास और उत्प्रेक्षाओं को भी सराहा गया है। अतः निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि कालिदास का अलङ्कार कौशल उच्चकोटि का है और एक ही श्लोक में अनेक अलङ्कारों को समाविष्ट कर देना कालिदास जैसे महाकवि का ही काम है, जिसे पढ़कर काव्य मर्मज्ञ एकदम अभिभूत हो जाते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल का यह श्लोक द्रष्टव्य है—

*चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं,*
*रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदुकर्णान्तिकचरः ।*
*करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं*
*वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती ॥ (१/२४)*

प्रस्तुत श्लोक में भ्रमर के अन्दर दृष्टिस्पर्श, मृदु कथन तथा अधर पान आदि कार्य के द्वारा प्रच्छन्न श्रृङ्गारिक नायक का आरोप किया गया है; अतः **समासोक्ति** है। रहस्याख्यायीव में **उत्प्रेक्षा** है। वयं हतास्त्वं खलु कृती में **व्यतिरेक** है। चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि में भ्रमर, शकुन्तला की दृष्टि का स्पर्श नीलकमल की भ्रान्ति से कर रहा है; अतः **भ्रान्तिमान्** है। त्वं खलु कृती, इसका प्रतिपादन करने में तीन चरणों के वाक्यार्थ को हेतुत्वेन ग्रहण किया गया है, अतः **काव्यलिङ्ग** है। स्वाभाविक रूप से भ्रमर का वर्णन किया गया है, अतः **स्वभावोक्ति** भी है ।

**(च) प्रकृति वर्णन**—कालिदास प्रकृति के सूक्ष्म द्रष्टा है, प्रकृति के प्रवीण चितेरे। उन्होंने अपने ग्रन्थों में वन और पुष्पों का अद्वितीय वर्णन किया है। कालिदास की प्रकृति भी जीवन के स्पन्दन के साथ-साथ सजीव प्रतीत होती है और नित्य मनुष्य को नवीन शक्ति प्रदान करती है। सम्भवतः संसार में कोई ही ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने सजीव प्रकृति का इतना पूर्ण एवं सूक्ष्म अध्ययन किया हो, जितना कि कालिदास ने किया है। उनमें **'मानव हृदय का कवि'** और **'प्राकृतिक सौन्दर्य का कवि'** ये दोनों गुण एक साथ विद्यमान हैं ।

कालिदास ने अपने काव्यों में अन्तः एवं बाह्य प्रकृति दोनों का ही सुन्दर तादात्म्य स्थापित किया है तथा साथ ही प्रकृति को आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण एवं आलङ्कारिक आदि रूपों में चित्रित किया है। प्रतिभा के विकास के साथ-साथ कालिदास के प्रकृति वर्णन में भी विकास हुआ है। ऋतुसंहार उनकी प्रथम रचना है, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, यह उन्होंने प्रकृति को ही समर्पित कर दी है। इसमें इन्होंने प्रकृति के ही एक अङ्ग ऋतुओं का वर्णन अपनी प्रिया को सम्बोधित करते हुए किया है। यह युवक कवि की रचना है। इसमें उन्होंने प्रकृति को आलम्बन रूप में कम और उद्दीपन रूप में अधिक प्रयुक्त किया है। इस काव्य में जहां एक ओर ग्रीष्म की प्रचण्डता का वर्णन है, वहीं दूसरी और वसन्त की सरसता की भी झांकी प्रस्तुत की गयी है और ऐसे में प्रकृति को आलम्बन रूप में चित्रित किया गया है। निम्न श्लोक द्रष्टव्य है—

*विशुष्ककण्ठाहतसीकराम्भसो गभस्तिभिर्भानुमतोऽनुतापिता ।*
*प्रवृद्धतृष्णोपहता जलार्थिनो न दन्तिनः केसरिणोऽपि बिभ्यति ॥ (१/१५)*

कैसा प्रचण्ड ग्रीष्म है कि सूखे कण्ठ से जल-बिन्दुओं को ग्रहण करने वाले, सूर्य की प्रचण्ड किरणों से तप्त एवं अत्यधिक प्यासे जल की इच्छा करने वाले हाथी यह भी भूल जाते हैं कि सिंह उन्हें मार डालेगा । वे प्यास से व्याकुल जल की खोज में सिंह से भी नहीं डरते ।

प्राकृतिक दृश्यों के स्वाभाविक एवं मनोहारी चित्रण रघुवंश में भरे पड़े हैं । वशिष्ठ के आश्रम का स्वभाविक चित्रण है। ऋषियों की पर्ण-शालाओं के द्वार को मृग रोककर बैठे हुए हैं, जिससे ज्ञात होता है कि ये ऋषि-पत्नियों की सन्तान हों। ऋषिगण नीवार का कुछ अंश इन्हें भी दिया करते हैं । अतः इन पर ऋषियों का सन्तान के समान ही स्नेह है—

प्राकृतिक दृश्यों के स्वाभाविक एवं मनोहारी चित्रण रघुवंश में भरे पड़े हैं । वशिष्ठ के आश्रम का स्वभाविक चित्रण है। ऋषियों की पर्ण-शालाओं के द्वार को मृग रोककर बैठे हुए हैं, जिससे ज्ञात होता है कि ये ऋषि-पत्नियों की सन्तान हों। ऋषिगण नीवार का कुछ अंश इन्हें भी दिया करते हैं । अत: इन पर ऋषियों का सन्तान के समान ही स्नेह है—

*आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभि: ।*
*अपत्यैरिव नीवारभागधेयोचितैर्मृगै: ॥*

सन्ध्याकाल में सूर्यास्त का कितना सुन्दर चित्र खींचा है—

*सञ्चारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम्।*
*प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा,* प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनु:॥ (रघु० २/१५)*

कुमार सम्भव का तो प्रारम्भ ही प्रकृति की रमणीयता से हुआ है। मङ्गलाचरण के रूप में उन्होंने हिमालय का ही गुणगान किया है। देखिये—

*अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा,*
*हिमालयो नाम नगाधिराज: ।*
*पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य,*
*स्थित: पृथिव्या इव मानदण्ड:॥*

कालिदास ने अपने ग्रन्थों में प्रकृति और प्रेम का मधुर सम्बन्ध स्थापित किया है। उन्होंने प्रकृति को मुख्यत: प्रेमिका के रूप में देखा है। मेघदूत का यक्ष अपनी प्रियतमा के अङ्गों की समता प्रियङ्गुलता में पाता है तथा चकित हरिणी की दृष्टि में उसके कटाक्षों का अनुभव करता है। यहां चन्द्रोदय का कैसा सजीव चित्र उपस्थित किया है। चन्द्रमा अपनी प्रियतमा रजनी का चुम्बन कर रहा है—

*अङ्गुलीभिरव केशसंचयं संनिगृह्य व तिमिरमरीचिभि:।*
*कुड्मलीकृतसरोजलोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शशी॥ (कु० स० ८/६३)*

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में प्रकृति का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म एवं हृदयग्राही है। उसकी नायिका शकुन्तला मानो प्रकृति की पुत्री है और उसी की गोद में पलकर बड़ी हुई है। पुत्री को विदा करते हुए जरा प्रकृति की करुणापूर्ण व्याकुलता तो देखिये—

*उद्गलितदर्भकवला मृग्य: परित्यक्तनर्तना मयूरा:।*
*अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लता: ॥ (४/१२)*

अचेतन प्राणियों के प्रति चेतन मानव की आत्मीयता का इससे सुन्दर और क्या उदाहरण हो सकता है। इतना ही नहीं, अपितु पुत्री को पति के धर जाना है इसलिए उसे आभूषणों की आवश्यकता पड़ेगी। यही सोचते हुए प्रकृति माता ने अपनी पुत्री शकुन्तला को वह सब उपलब्ध कराया, जो दुर्लभ था—

*क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं*
*निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारस: केनचित् ।*
*अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-*
*र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभि: ॥ (४/५)*

वस्तुतः शकुन्तला को प्रकृति से पृथक् करके नहीं देखा जा सकता। उसके संवर्धन में प्रकृति ने मुख्य भूमिका निभायी है। जब शकुन्तला उत्पन्न होती है तो उसके माता-पिता उसे छोड़ देते हैं। सर्वप्रथम उसका पालन पक्षी ही करते हैं। तदनन्तर तपोवन में उसका पालन-पोषण होता है। इसीलिए उसके हृदय में प्रकृति से सम्बन्धित विषयों के प्रति अटूट प्रेम है। वह तपोवन की लता है। वन के वृक्ष उसके अपने सम्बन्धी हैं। तभी शकुन्तला के सौन्दर्य को देखकर दुष्यन्त कह उठता है—

*अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।*
*कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ॥ (१/१९)*

प्रकृति का एक-एक अङ्ग शकुन्तला है। शकुन्तला के बिना कण्व के आश्रम की सारी प्रकृति सूनी है। उसमें कोई उल्लास या आकर्षण नहीं है। तभी तो शकुन्तला को विदा करके लौटती हुई प्रियंवदा और अनसूया कण्व से कहती हैं कि **तात, शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशावः?** अतः यह निश्चित रूप से कह सकते है कि प्रकृति नाटक के साथ अभिन्न भाव से जुड़ी हुई है।

कालिदास का मेघदूत काव्य तो प्रकृति-चित्रण का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। इसके प्रत्येक श्लोक में प्रकृति की आशा भरी आत्मा की वेदना का चित्रण है, जिसके अन्तर्गत संयत, गम्भीर एवं प्रशान्त व्याकुलता का स्पष्ट दर्शन पाठक को होता है। मेघदूत में पद-पद पर प्रकृति की छटा के दर्शन होते हैं। आम्रकूट पर्वत के शिखर पर काला मेघ है और आस-पास पके फलों से युक्त आम्र के वृक्ष हैं। कवि ने कल्पना की है कि यह पर्वत पृथ्वी के स्तन के समान शोभा को धारण करेगा—

*छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै-*
*स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।*
*नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां*
*मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः॥ (५/१८)*

इस प्रकार के अनेक दृश्य इस काव्य में भरे पड़े हैं। मेघदूत में कवि ने प्रकृति एवं मनुष्य को एक नवीन एवं मौलिक ढंग से परस्पर जोड़ दिया है। मानव-जीवन तथा प्राकृतिक जीवन के संग्रन्थन को एक आवश्यकता और एक आनन्द के रूप में चित्रित किया गया है। **R. E. Robinson** का यह कथन कितना सटीक है "His eyes singled out like a prism all the rich glowing tints of life's colours and his receiving them, as if it had been a palette, translated them into description of jewel like beauty." अर्थात् उसकी आँखें पारदर्शी प्रिज्म के समान जीवन के सभी गहरे चमकीले रङ्गों को पहचान लेती थीं और उसका मस्तिष्क कलाकर की रङ्ग मिलाने वाली पटरी के समान उन्हें ग्रहण कर रत्नोपम सौन्दर्य के चित्रणों में अनूदित कर देता था।

कालिदास ने प्रकृति को अनेक रूपों में चित्रित किया है। उनके अनुसार प्रकृति मानव की चिरन्तन सहचरी तथा उसके स्वस्थ, सरस एवं मौलिक जीवन के लिए अपरिहार्य है। यद्यपि कालिदास को प्रकृति का कोमल रूप ही अधिक प्रिय रहा है, फिर भी उनको इस क्षेत्र तक ही सीमित रखना उनके साथ अन्याय होगा । अतः यदि उन्हें **प्रकृति का कवि** (Poet of Nature) कहा जाये तो असंगत न होगा।



## ५. कालिदास : सौन्दर्य वर्णन

विश्व के सभी साहित्यों में प्रेम और सौन्दर्य कवियों का प्रिय विषय रहा है, फिर कालिदास इससे कैसे अछूते रहते। कालिदास ने जिस सौन्दर्य का वर्णन किया है वह केवल हृदयग्राही ही नहीं है, अपितु मन को सर्वात्मना रसाप्लावित कर उसमें निमग्न कर देने वाला है। सौन्दर्य की परिभाषा आचार्यों ने इस प्रकार की है—

*अङ्गप्रत्यङ्गकानां यः सन्निवेशो यथोचितम् ।*
*सुश्लिष्टसन्धिबन्धो यस्तत्सौन्दर्यमितीर्यते ॥*

अन्यत्र इसकी परिभाषा कवि ने इस प्रकार की है—''**क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः**'' अर्थात् सौन्दर्य वह है, जो प्रतिक्षण बदलता रहे। एक ही प्रकार के स्थिर सौन्दर्य में प्रेमियों का मन कभी नहीं रम सकता; इसलिए उसको अपनी प्रेमिका में प्रतिक्षण बदलता हुआ सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है । कालिदास भी इसी प्रकार के सौन्दर्य के उपासक हैं। उनका सौन्दर्य बाह्य आकृति तक ही सीमित न होकर आन्तरिक गुणों के द्वारा अनुभव करने की वस्तु है । कवि के सौन्दर्य-वर्णनों में यह क्षमता है कि उसको पढ़ने वाला निमग्न हो जाये, जिसके वर्णन के लिए कवि ने व्यञ्जना का सहारा लिया है। सौन्दर्य के साथ प्रेम का मिश्रण है, क्योंकि सौन्दर्य की परिणति प्रेम में होती है । इसको स्पष्ट करते हुए कवि लिखता है कि ''**प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता**'' (कु० स०५/१)। यह प्रेम जैसा भी हो अकारण नहीं होता । उसके पीछे पूर्वजन्म के कर्म विद्यमान रहते हैं । इस तथ्य की ओर कवि ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् (५/२) में भी संकेत किया है।

कालिदास के काव्यों में हमें सौन्दर्य के अनेक रूपों के दर्शन मिलते हैं। कालिदास ने विश्व की विविध वस्तुओं में सौन्दर्य के दर्शन किये हैं। नदियों की तरंगों ने, लताओं के नर्तन ने, हिरनों की छलाँगों ने, पक्षियों के कलरव ने, वृक्षों के प्रस्फुटन ने और पर्वतों के लुभावने दृश्यों ने कवि को अपनी ओर आकृष्ट किया है। भावात्मक सौन्दर्य के वर्णन में कवि को अभूतपूर्व सफलता मिली है, जिसका अनुभव कालिदास की अन्तरात्मा ने किया और प्रकृति के माध्यम से अनुभूति को कवि ने व्यक्त किया है। स्वर्णिम तन्तुओं के जाल में उनके सौन्दर्य को बाँधकर एक सर्वथा अलौकिक सौन्दर्य की सृष्टि की है। पार्वती के स्मित का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

*पुष्पप्रवालोपहितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम्।*
*ततोऽनुकुर्याद् विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचः स्मितस्य॥ (कु० स० १/४४)*

कालिदास सौन्दर्य के चतुर चितेरे हैं। वे जब किसी के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करते हैं तो बाह्योपादानों की आवश्यकता नहीं समझते । यही कारण है कि वे जिस शकुन्तला के सौन्दर्य को प्रस्तुत करने के लिए उद्यत हुए हैं, वह उनके लिए ''**स्रष्टुराद्या सृष्टिः**'' है । उसने अपनी संकेतमयी शैली में सब कुछ कह दिया । कवि इससे अधिक कह भी क्या सकता था ? इसी अनुभूति की अभिव्यक्ति दुष्यन्त शकुन्तला के सौन्दर्य वर्णन में इस प्रकार करते हैं—

*चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा*
*रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु ।*

*स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे,*

*धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः॥ (अभि० २/९)*

सौन्दर्य के सम्बन्ध में कालिदास की एक अन्य मान्यता है कि जब तक सौन्दर्य त्याग और तपस्या की अग्नि में तप कर निखर नहीं उठता, तब तक उसका कोई मूल्य नहीं है। जैसे अग्नि में तपकर सोना चमकता है वैसे ही तपस्या की अग्नि में तपकर सौन्दर्य। कवि इस बात को स्वीकार नहीं करता कि सौन्दर्य पाप वृत्ति की ओर उन्मुख होने वाला होता है। उसकी तो मान्यता है कि—

*''यदुच्यते पार्वति! पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः।'' (कु० स० ५/३६)*

कालिदास ने बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य पर अधिक बल दिया है। उसकी मान्यता है कि सौन्दर्य को बाह्य साधनों की अपेक्षा नहीं होती। इस सम्बन्ध में **श्री डी० एल० राय** का मत भी विचारणीय है। उनकी मान्यता है कि *''बाहरी सौन्दर्य भीतरी सौन्दर्य की तुलना में निष्प्राण और परिवर्तनीय है। आकाश चिरकाल से जैसा नीला है, वैसा ही नीला है। यद्यपि बीच-बीच में वर्षा आदि के अवसर पर उसका वर्ण धूसर या कृष्ण होता है, तथापि उसका रंग नीला है। समुद्र तथा नदियाँ तरङ्गपूर्ण होने पर भी उनका साधारण आकार एक ही प्रकार का है, परन्तु मनुष्य के हृदय में घृणा भक्ति का रूप धारण कर लेती है। अनुकम्पा से प्रेम की उत्पत्ति हो जाती है और प्रतिहिंसा से कृतज्ञता का जन्म हो जाता है। जो कवि इस अन्तर्जगत् की विचित्रता के रहस्य को खोलकर दिखा सकता है, वही यथार्थ में कवि के नाम से पुकारा जाता है।''*

अभिज्ञानशाकुन्तल की नायिका शकुन्तला का सौन्दर्य तो सर्वातिशायी ही है और रघुवंश की इन्दुमती विधाता की रचना का उत्कर्ष है। मेघदूत की यक्षिणी विधाता की युवतिविषयक आद्या सृष्टि है। वह शरीरी भी है, श्यामा भी है और न जाने कैसी-कैसी है? स्वयं कालिदास के मुख से ही सुनिये—

*तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी*
*मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।*
*श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां*
*या तत्र स्याद् युवतिविषये सृष्टिराद्यैव धातुः॥ (उ० मे०/२३)*

कालिदास ने स्त्री-सौन्दर्य के वर्णन में अपने उपमान प्रायः प्रकृति से लिये हैं। शकुन्तला इकहरे बदन की है। कालिदास के अनुसार प्रकृति में जो सौन्दर्य या रमणीयता फैली हुई है, मानवीय लावण्य उसी का अङ्गभूत है। उनकी दृष्टि में शकुन्तला लता के समान है, तभी तो प्रियंवदा उससे आग्रह करती है कि *''अत्रैव तावन्मुहूर्तं तिष्ठ यावत्त्वयोपगतया लतासनाथ इवायं केसरवृक्षकः प्रतिभाति''* और प्रियंवदा के इस कथन की पुष्टि दुष्यन्त इन शब्दों में करता है—

*अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।*
*कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्॥ (१/१९)*

कालिदास के सौन्दर्य का एक दृश्य यह भी देखिये—

*शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः*
*शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्॥ (अभि० ६/१७)*

जिनकी शाखाओं पर वल्कल वस्त्र लटके हुए हैं ऐसे वृक्षों के नीचे कृष्णसार नामक मृग के सींग पर बायीं आँख को खुजलाती हुई हरिणी को तपस्वन चित्रित करना

चाहता है । यहाँ हरिण-हरिणी के प्रेम को चित्रित करना चाहता है, जो सौन्दर्य की अन्तिम परिणति है ।

कालिदास ने सर्वत्र मर्यादित प्रेम के प्रति ही निष्ठा व्यक्त की है, अमर्यादित प्रेम को वे प्रेम नहीं, अपितु वासना मानते हैं। परदार व्यवहार को अनार्य समझते हैं—**अनार्यः परदारव्यवहारः (अभि० ७/२० के पश्चात्)**। यद्यपि उनकी प्रारम्भिक कृतियों ऋतुसंहार आदि में प्रेम के वासनात्मक स्वरूप की झलक मिलती है, किन्तु धीरे-धीरे उसमें विकास होता गया और वह उदात्त आध्यात्मिक होता गया। अत: कह सकते है कि कवि ने प्रकृति के सौन्दर्य का मनोमुग्धकारी वर्णन किया है, परन्तु उनका उद्देश्य मानव-सौन्दर्य वर्णन करने का विशेष रूप से है। इस सम्बन्ध में श्री **एस० के० डे०** का कथन द्रष्टव्य है—*'उनका काव्य न कभी अवरुद्ध गति से चलता है और न अविश्रान्त होकर। उसमें उत्थान और पतन की अनवच्छेद्य शृङ्खला नहीं होती। उनके सर्वोत्तम और निंद्यतम में कोई विशेष व्यवधान नहीं। उनका काव्य श्रेष्ठता के एक निश्चित धरातल एवं महनीयता की एक नियत छाप की आद्योपान्त रक्षा करता है । सब प्रकार का नुकीलापन और खुरदरापन अत्यन्त सुकुमारता के साथ चिक्कण और मसृण बना दिया जाता है और इस प्रकार उनकी पूर्ण विकसित कविता का सुडौलपन प्रशान्त सौन्दर्य के अनुरणनशील ध्वनन द्वारा पाठक को आकृष्ट करता है, जो चाक्षुष और श्रुतिगोचर प्रभाव में विचार तथा भावना के अन्तर्विलय का परिणाम है।''*

अत: उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते है कि कालिदास का सौन्दर्य का वर्णन अपूर्व है और उसके वर्णन में कवि ने अपनी निजी प्रतिभा का परिचय दिया है और चेतन-अचेतन, प्रकृति-मानव, समस्त चराचर में सर्वत्र ही उनकी दृष्टि प्रेम और सौन्दर्य पर केन्द्रित रही है। □

## ६. कालिदास : गौरव

यद्यपि प्राचीन भारतीय परम्परा पण्डितो और आधुनिक युग के पाश्चात्य तथा भारतीय आलोचकों की काव्य-समीक्षा के मान-दण्ड भिन्न-भिन्न हैं और उनकी अभिरुचि भी समान नहीं है, परन्तु कालिदास के भारत का श्रेष्ठ कवि होने के विषय मे दोनों ही प्रकार के विद्वान् एकमत हैं। प्राचीन परम्परा और आधुनिक आलोचना का यह सामञ्जस्य यदि किसी कवि के विषय में है तो वह केवल कालिदास के विषय में।

प्रतिभाशाली कलाकार देश और काल की सीमा में आबद्ध नहीं होते हैं, यह बात कालिदास के विषय में अक्षरशः सत्य है। उनकी कला का चमत्कार भारत तक ही सीमित नहीं है। विदेशों में भी जो गौरव कालिदास को प्राप्त हुआ, वह किसी दूसरे भारतीय कलाकार को प्राप्त नहीं हुआ। कालिदास की कला न केवल सार्वदेशिक है, प्रत्युत सार्वकालिक भी है। कालिदास के काव्यों और नाटकों ने जिस प्रकार आज से १५०० वर्ष पहले मानव-हृदय को उल्लसित किया था, उसी प्रकार उनकी कला आज भी मानव-हृदय को प्रेरणा एवं स्फूर्ति प्रदान कर रही है।

**प्राचीन भारतीय आलोचकों की दृष्टि में—**

प्राचीन भारतीय परम्परा के सभी कवियों तथा आलोचकों ने कालिदास की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। एक प्राचीन कवि ने कहा है कि जब कवियों की गणना की जाने लगी तो पहला नाम कालिदास का था, परन्तु आगे कालिदास के समान दूसरा कवि न होने के कारण दूसरी अँगुली पर गिनने के लिए कोई नाम न मिला, इसलिए उसका 'अनामिका' नाम (जिस पर कोई नाम न हो) सार्थक ही रहा—

*पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासा ।*
*अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ॥*

सम्राट् हर्षवर्धन के समकालीन प्रसिद्ध कवि बाण ने भी कालिदास की सूक्तियों को पुष्पमञ्जरी के समान रसार्द्र एवं रोचक कहा है ।[1] आनन्दवर्धनाचार्य ने अपने प्रसिद्ध अलङ्कार-शास्त्र के ग्रन्थ ध्वन्यालोक में एक स्थान पर कहा है कि इस संसार में कवियों की एक अद्भुत परम्परा है, लेकिन कालिदास आदि महाकवि तो दो-तीन या अधिक से अधिक पाँच-छः ही हैं— *"अस्मिन्नति-विचित्र-कविपरम्परा-वाहिनि संसारे कालिदासप्रभृतयो द्वित्राः पञ्चषा वा महाकवय इति गण्यन्ते।"* जयदेव कवि ने कालिदास को 'कविकुलगरु' तथा 'कविताकामिनी का विलास' कहा है—

*भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।*

११वीं शताब्दी के कवि सोड्ढल ने रघुवंश की रचना के लिए कालिदास की इस प्रकार प्रशंसा की है—

*ख्यातः कृती सोऽपि च कालिदासः शुद्धा सुधास्वादुमती च यस्य।*
*वाणीमिषाच्चण्डमरीचिगोत्रसिन्धोः परं पारमवाप कीर्तिः॥*

वह कालिदास धन्य है जिसकी निर्मल और सुधा के तुल्य मधुर कीर्ति वाणी के व्याज से 'रघुवंश' रूपी समुद्र के दूसरे पार तक पहुँच गई है ।

श्रीकृष्ण कवि ने कालिदास की वाणी को अनुपम तथा नलिनी के समान दोषों से अछूती, हारावली के समान गुणों से गुम्फित और प्रिया के अङ्क के समान आह्लादकारक कहा है—

*अस्पृष्टदोषा नलिनीव दृष्टा हारावलीव ग्रथिता गुणौघैः।*
*प्रियाङ्कपालीव विमर्दहृद्या न कालिदासादररस्य वाणी॥*

**आधुनिक आलोचकों की दृष्टि में—**

प्राचीन भारतीय आलोचकों के समान आधुनिक आलोचकों ने भी कालिदास की कला की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है । सचमुच आधुनिक काल में संस्कृत के पुनरुज्जीवन का तथा पाश्चात्य देशों में संस्कृत-साहित्य के गम्भीर अध्ययन के सूत्रपात का श्रेय कालिदास और उनकी अमर कृति अभिज्ञानशाकुन्तलम् को है । सन् १७८९ में सर विलियम जोन्स द्वारा अंग्रेजी में अनूदित अभिज्ञानशाकुन्तल ('शकुन्तला') जब यूरोप में पहुँची तो उसे देखकर यूरोप का शिक्षित समाज आश्चर्यचकित रह गया और बहुत शीघ्र ही 'शकुन्तला' का यूरोप की सभी भाषाओं में, यहाँ तक कि प्राचीन भाषा **लैटिन** में भी अनुवाद हो गया । सन् १७९१ में **जार्ज फोर्स्टर** द्वारा जर्मन भाषा में किये गये 'शकुन्तला' के अनुवाद को देखकर महान् जर्मन कवि **गेटे** इतना गद्गद हुआ था कि उसने इसकी प्रशंसा में एक कविता रच डाली थी, जिसके भाव को **महामहोपाध्याय वसुदेव विष्णु मिराशी** ने संस्कृत में इस प्रकार प्रकट किया है—

*वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं च यद्*
*यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम्।*

---

१. निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥

*एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो-*
*रैश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रियसखे शाकुन्तलं सेव्यताम्॥*[1]

गेटे की यह कविता सन् १८७१ में 'Deutsche Monatsschrift' (जर्मन मासिक पत्रिका) में छपी थी और हेर्डर ने इस कविता को अपने एक लेख 'On the Eastern Drama' के आरम्भ में आदर्श वाक्य के रूप में उद्धृत किया था। □

१. वाल्टर रूबन ने 'Kalidasa—The Human Meaning of His Works' में गेटे की कविता का भाव इस प्रकार व्यक्त किया है—
'If in one word of blooms of early and fruits of riper years,
Of excitement and enchantment I should tell,
Of fulfilmentand content of Heaven and Earth,
Then will I but say "Sakuntala" and have said all.

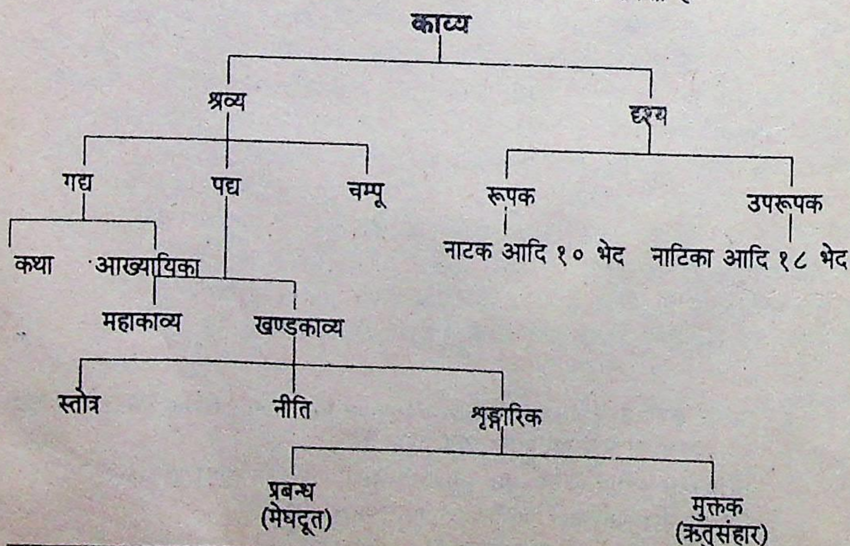
## भाग—(ख)

### १. मेघदूत : गीतिकाव्य (खण्डकाव्य)

संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने **वाक्यं रसात्मकं काव्यम्**[१] अर्थात् रसात्मक वाक्य को काव्य माना है। प्रयोग की दृष्टि से पुनः काव्य के दो भेद किये हैं[२] —१. श्रव्य काव्य और २. दृश्य काव्य। श्रव्य काव्य के पुनः तीन भेद किये है—१. गद्य काव्य, २. पद्य काव्य, ३. चम्पू काव्य। जो गद्य में लिखा गया हो उसे गद्य काव्य, जो पद्य में लिखा गया हो उसे पद्य काव्य तथा जो गद्य और पद्य दोनों में लिखा गया हो उसे चम्पू काव्य कहते है। गद्य काव्य के पुनः कथा और आख्यायिका ये दो भेद किये गये हैं तथा पद्य के भी दो भेद महाकाव्य तथा गीतिकाव्य किये है। गीतिकाव्य को ही खण्डकाव्य भी कहते हैं। चम्पू का कोई भेद नहीं होता। गीतिकाव्य के पुनः विषय की दृष्टि से तीन भेद किये है—स्तोत्र सम्बन्धी, नीति सम्बन्धी तथा श्रृङ्गार सम्बन्धी। स्तोत्र, नीति तथा श्रृङ्गार सम्बन्धी खण्डकाव्यो के यद्यपि प्रबन्ध और मुक्तक दोनों रूप संस्कृत-साहित्य में मिलते हैं परन्तु स्तोत्र और नीति प्रायः मुक्तक के रूप में अधिक हैं। श्रृङ्गारिक खण्डकाव्यों में प्रबन्ध और मुक्तक दोनों रूपों का समान रूप से प्रयोग है। कालिदास का मेघदूत और बिल्हण की चौरपञ्चाशिका प्रबन्धात्मक श्रृङ्गारिक खण्डकाव्य के तथा ऋतुसंहार और भर्तृहरि का श्रृङ्गार-शतक मुक्तक श्रृङ्गारिक खण्डकाव्य के उदाहरण हैं।

काव्य का जो दूसरा भेद दृश्य है उसके भी दो भेद हैं—रूपक और उपरूपक । रूपक के पुनः नाटक, प्रकरण,भाण, डिम, व्यायोग, समवकार, ईहामृग, अङ्क, वीथी और प्रहसन—ये दस भेद हैं, जबकि उपरूपक को अट्ठारह भेदों में बाँटा गया है । ये हैं — नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश और भाणिका ।

तालिका के माध्यम से इनको और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है—




१. साहित्यदर्पण, निर्णयसागर संस्करण १९३६, पृष्ठ २२१

२. दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधामतम् (सा० द० ६/१)

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि मेघदूत खण्डकाव्य की श्रेणी में आता है, उसमें भी शृङ्गारिक तथा शृङ्गारिक में भी प्रबन्ध शृङ्गारिक ।

अब प्रश्न उठता है कि गीति या खण्डकाव्य किसे कहते हैं । गीत शब्द √गै धातु से भाव अर्थ में क्तिन् प्रत्यय करने पर बनता है, जिसका अर्थ है— गीति या गाना । महाकवि कालिदास ने गीति शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है—*अहो रागपरिवाहिणी गीतिः (अभि० ५/१ के पश्चात्)।* इस दृष्टि से गीति में संगीत एवं राग का प्राधान्य है । अंग्रेजी में इसे Lyric Poetry कहते हैं ।

खण्डकाव्य महाकाव्य के समान पाबद्ध होता है और उसमें महाकाव्य के लक्षणों की केवल समग्रता नहीं होती । आचार्य विश्वनाथ ने खण्डकाव्य का लक्षण इस प्रकार किया है—

*खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च । (सा० द० ६/३२९)*

अर्थात् जिन काव्यों में महाकाव्य के सभी लक्षण नहीं पाये जाते उन्हें खण्डकाव्य या गीतिकाव्य कहते हैं । अर्थात् कह सकते हैं कि गीतिकाव्य महाकाव्य के किसी एक भाग का अनुसरण करने वाला होता है । गीतिकाव्य में महाकाव्य के समान विषय क़ी दिविधता नहीं होती। गीतिकाव्य आकार में भी महाकाव्य से छोटा होता है, गीतिकाव्य में प्रायः धार्मिक अथवा नैतिक अथवा शृङ्गारिक एक ही विषय का वर्णन होता है । गीतिकाव्य में लालित्य एवं माधुर्य का विशेष पुट होता है । भाव का उद्रेक, तन्मयता तथा भावाभिव्यक्ति की सक्षमता एवं न्यूनता गीतिकाव्य का प्राण है ।

गीतिकाव्य के मुख्यतः तीन प्रकार बताये गये हैं—**१. स्तोत्र**— इनमें किसी एक देव को आधार मानकर उसकी उपासना की जाती है । यह भाव प्रधाा तथा अनुभूतिमूलक गीतिकाव्य है। **२. नीति**—इनमें नैतिक शिक्षाओं को मुक्तक के रूप में पद्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। **३. शृङ्गारिक**—इनमें मानवीय प्रेम का उदात्त रूप प्रस्तुत किया जाता है । प्रेमी-प्रेमिका के अलौकिक प्रणय का हृदयस्पर्शी एवं मधुर वर्णन ही प्रायः इन काव्यो का उद्देश्य होता है ।

जिस गीतिकाव्य में जीवन का एक पक्षीय चित्र अविच्छिन्न या सुसंगत रूप से यथाक्रम वर्णित हो, वह प्रबन्ध गीतिकाव्य है—

*अनुज्झितार्थ सम्बन्ध प्रबन्धो दुरुदाहर।(शिशुपाल वध २/७३) ।*

पूर्वापर पद्य की अपेक्षा किये बिना ही जो एक पद्य भी रस की अनुभूति कराता है, वह मुक्तक गीतिकाव्य है —

*पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम् । (ध्वन्यालोक)*

इसमें एक-एक पद्य भी स्वतन्त्र रूप में रस रूप चमत्कार का आस्वादन कराने में समर्थ होता है । □

## २. गीतिकाव्य : उद्भव और विकास

गीतिकाव्य का उद्गम स्थल भी ऋग्वेद ही है । ऋग्वेद में ऐसे अनेक सूत्र हैं, जिनमें उषा, वरुण, इन्द्र, विष्णु आदि देवताओं की स्तुति की गयी है । अकेले उषा के लिए ही २० सूक्त प्रयुक्त हुए हैं और विद्वानों ने इन्हीं स्तुतिपरक सूक्तों को गीतिकाव्य का उद्गम माना है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में उषा को एक लावण्यमयी युवती के रूप में चित्रित किया गया है। शृङ्गार से पूर्ण इस अभिव्यक्ति से मानव का हदृय भाव-विभोर हुए बिना नहीं रहता। देखिये कैसा सुन्दर मन्त्र है—

*कन्येव तन्वा शाशदानां एषि देवि देवमियक्षमाणाम्।*

*संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती।।*(ऋ० १/१२३/१०)

यहां सूर्य और उषा को प्रेमी-प्रेमिका के रूप में चित्रित किया गया है कि 'हे प्रकाशवती उषा! तुम कमनीय के समान अत्यन्त आकर्षणमयी होकर अभिमत फल देने वाले सूर्य के समीप जाती हो और उसके सम्मुख प्रसन्न वदना युवती के समान अपने वक्ष को आवरण रहित करती हो।' पाश्चात्य विद्वान् **मैक्डानल** ने भी इन गीतियों के महत्त्व को वेदों में स्वीकारा है। उनका कथन है कि— The lyrics of the vedas are unsurpassed in there beauty and there is nothing like them to be found in any of the branches of Indo European languages. In the excellence of feelings as well in the perfect art of language and metre they stamp singular.

इसी प्रकार ऋग्वेद में अन्य बहुत से उदाहरण देखे जा सकते हैं। अतः यह कहने में कोई सन्देह नहीं होना चाहिये कि निश्चित रूप से गीतिकाव्य के बीज हमें ऋग्वेद में मिल जाते हैं, भले ही इनका पुष्ट रूप उसमें न हो।

वेदों के बाद रामायण और महाभारत ने भी गीतिकाव्य परम्परा को आगे बढ़ाया है। आदिकवि वाल्मीकि के मुख से तमसा नदी के तट पर जो उद्गार व्यक्त हुए वे गेयता के कारण ही लोकप्रिय हुए—

*मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।*
*यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।*

इसी प्रकार वियोगिनी सीता का कथन है—

*अश्मसारमिदं नूनमथवाप्यजरामरम्।*
*हृदयं मम येनेदं न दुःखेन विशीर्यते।।*

महाभारत में भी गीतिकाव्य की परम्परा देखी जा सकती है। द्रौपदी का पुत्रों के लिए रोदन आदि स्थलों पर गीतिकाव्य के दर्शन होते हैं। गीता में कई स्थलों पर कृष्ण की स्तुतिपरक गीति के दर्शन होते हैं। ११वें अध्याय का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है—

*त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्-*
*त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।*
*वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम*
*त्वया ततं विश्वमनन्तरूपम्।।३८।।*

श्रीमद्भागवत् के वेणु गीत तथा गोपिका गीत में भी गीतिकाव्य परम्परा के दर्शन होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते है कि गीतिकाव्य के बीज हमें ऋग्वेद में मिलते हैं तथा उसका विकसित रूप आगे लौकिक साहित्य में सामने आता है।

कालिदास को गीतिकाव्य का जन्मदाता कहा जाये तो अनुपयुक्त न होगा क्योंकि गीतिकाव्य में प्राचीनतम रचनाएँ **ऋतुसंहार** और **मेघदूत** कालिदास की ही हैं। **इनके पश्चात् घटकर्पर नाम आता है। इनका समय भी १०० ई० पू० माना जाता है। इन्होंने २२ पद्यों के लघु काव्य की रचना की, जिसका नाम भी घटकर्पर है।** इसका कथानक मेघदूत का ठीक उल्टा

है, वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में एक विरहिणी पत्नी अपने दूरस्थ पति को सन्देश भेजती है। इसके पश्चात् कवि **हाल** ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया है। इनका समय प्रथम शताब्दी ई० माना जाता है। इन्होंने **गाथा सप्तशती** की रचना की है, जिसमें ७०० गाथाओं का संग्रह है। इसके बाद **भर्तृहरि** ने **नीतिशतक, शृङ्गारशतक** तथा **वैराग्यशतक** की रचना की। इनका समय छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है। तत्पश्चात् **अमरु** कृत **अमरुकशतक; धोयी** कृत **पवनदूत; विल्हण** कृत **चौरपञ्चाशिका; गोवर्धनाचार्य** कृत **आर्यासप्तशती; जयदेव** कृत **गीतगोविन्द; वेदान्तदेशिक** कृत **हंससंदेश; उद्दण्डकवि** कृत **कोकिलसन्देश; वामनभट्टबाण** कृत **हंससन्देश; चरित्रसुन्दरगणि** कृत **शीलदूत; पण्डितराज जगन्नाथ** कृत **पीयूषलहरी** अथवा **गङ्गालहरी, सुधालहरी, अमृतलहरी, करुणालहरी, लक्ष्मीलहरी** तथा **आसफलहरी; रूपगोस्वामी** कृत **हंसदूत** तथा **उद्धवसन्देश; पूर्णसरस्वती** कृत **हंससन्देश; विष्णुत्राता** कृत **कोकसन्देश; वासुदेव** कृत **भृङ्गसन्देश; विनयपुत्र** कृत **चन्द्रदूत; विष्णुदास** कृत **मनोदूत; रामराय** कृत **मनोदूत, जम्बूकवि** कृत **चन्द्रदूत; विक्रमकवि** कृत **नेमिदूत; अवधूतरामयोगी** कृत **सिद्धदूत; त्रिवेणी** कृत **शुकसन्देश, भृङ्गसन्देश; मेघविजय** कृत **मेघदूत, समस्या लेख; विनयविजयगणि** कृत **इन्द्रदूत; श्री कृष्णदेव सार्वभौम** कृत **पदांकदूत; नन्दकिशोर चन्द्र** कृत **शुकदूत; नित्यानन्द शास्त्री** कृत **हनुमद्दूत; शिवप्रसाद भारद्वाज** कृत **भारतसन्देश; डा० भोलाशंकर व्यास** कृत **दक्षिणानलदूत** आदि उल्लेखनीय गीतिकाव्य हैं। इसके अतिरिक्त अन्य बहुत से कवियों ने गीतिकाव्य की रचना की है और आज भी अनेक गीतिकाव्य रचकर विद्वान् इसके भण्डार की श्रीवृद्धि कर रहे हैं। यद्यपि इन सब दूत काव्यों के कवियों का प्रयास श्लाघनीय है, परन्तु फिर भी ये मेघदूत की क्षमता प्राप्त करने में असमर्थ रहे हैं। □

## ३. मेघदूत : कथावस्तु

मेघदूत की कथावस्तु कवि-कल्पित है एवं नाममात्र ही है। कवि ने विरही यक्ष के मुख से अलकापुरी के मार्ग तथा अलका के वर्णन द्वारा प्रकृति चित्रण का सुन्दर और सरस अवसर खोज लिया है। पूर्वमेघ में मार्ग का वर्णन है और उत्तरमेघ में अलका की समृद्धि तथा यक्षिणी के सौन्दर्य तथा विरह-दशा का। अन्तिम कुछ पद्यों में यक्ष का सन्देश बतलाया है। नीचे पूर्वमेघ तथा उत्तरमेघ का वर्ण्य-विषय विस्तार से दिया जा रहा है—

**पूर्वमेघ—** अपने किसी कर्त्तव्य में प्रमाद के कारण स्वामी के वर्षावधिक शाप से अभिशप्त कोई यक्ष अपनी महिमा को खोकर रामगिरि के आश्रमों में निर्वासन के दिन व्यतीत कर रहा था। लगभग आठ मास का समय बीत चुका था। प्रिया के वियोग के सन्ताप ने उसे कृश-काय कर दिया था और उसका समय बड़ी कठिनाई से बीत रहा था। ऋतु-क्रम से आषाढ़ के प्रथम दिन उसने सामने पर्वत के शिखर का आलिङ्गन किये मेघ को देखा।

वियोगियों को उत्तप्त कर देने वाले मेघ को सामने देखकर उसका हृदय प्राण-प्रिया के प्राणों की रक्षा के निमित्त विह्वल हो उठा। उसने अचेतन मेघ के द्वारा ही अपना प्रेम-सिक्त सन्देश भेजकर प्रिया को आश्वस्त करना चाहा। कामी को भला चेतन-अचेतन का विवेक कहाँ?

संदेशहर की कुलीनता, महत्ता, दया-प्रवणता तथा गन्तव्य स्थान की रमणीयता एवं पवित्रता आदि के उल्लेख और शुभ-शकुन की उपस्थिति के संकेत द्वारा उसे तुरन्त प्रस्थान कर देने के लिए अभिमुख करके यक्ष ने मेघ को अलकापुरी का मार्ग बतलाना प्रारम्भ किया—

**'तुम्हें रामगिरि से विदा लेकर उत्तर दिशा की ओर जाना है, मार्ग में वर्षा ऋतु में मानस**

के लिए उत्सुक राजहंस कैलाश तक तुम्हारे सहयात्री होंगे और मार्ग में जनपद की भोली व तुम्हें सतृष्ण नेत्रों से देखेंगी; क्योंकि कृषि सामयिक वर्षा पर ही तो निर्भर है। आम्रकूट पर्वत तु अपने सिर पर धारण करेगा; जिससे पर्वत की शोभा अद्‌भुत हो जायेगी। वह भू-कामिनी के उ स्तन के समान पतीत होगा।

इसके बाद कुछ मार्ग पार करने पर तुम विन्ध्याचल के चरणों में बल खाती रेवा (नर्म को देखोगे और तुम उसके स्वादु जल का पान करके पूर्ण हो जाओगे, जिससे वायु तुम्हें उ न सकेगा। वहाँ विचरण करने वाले सिद्ध गर्जन से डरी प्रियाओं का आलिङ्गन प्राप्त करके तु आदर से देखेंगे। मार्ग में अनेक पर्वत पड़ेंगे,जो कुटज-पुष्पों से सुगन्धित होंगे और तुम्हें लुभा विलम्ब कर देंगे; परन्तु तुम्हें किसी प्रकार जल्दी से बढ़ते ही जाना चाहिए। आगे बढ़कर दशा देश आ जायेगा और तब वहाँ से हंस भी तुम्हारे साथ चल पड़ेंगे। दशार्ण की राजधानी विदि में तुम्हें कामुक की साध पूरा करने का अवसर मिलेगा; क्योंकि तुम वेत्रवती के स्वादु जल-मु का पान करोगे। वहां तुम्हें 'नीचैः' नामक गिरि पर विश्राम करना होगा, जो तुम्हारे सम्पर्क कारण विकसित कदम्ब-पुष्पों से पुलकित हो उठेगा।

वहाँ विश्राम करके वेत्रवती के तट पर स्थित उद्यानों, यूथिका स्तबकों को जल-सिक्त क हुए और मालिनों को छाया द्वारा उपकृत करते हुए तुम आगे जाओगे, उत्तर की ओर प्रस्थ करने वाला मार्ग यद्यपि कुछ टेढ़ा हो जायेगा, परन्तु फिर भी तुम्हें उज्जयिनी के दर्शन के लो का संवरण न करना चाहिए; क्योंकि यदि तुमने वहाँ की पौराङ्गनाओं की चितवनों का आन न लिया तो तुम्हारे नेत्र व्यर्थ ही होंगे । उज्जयिनी की ओर जाते हुए रास्ते में तुम्हें विलासि निर्विन्ध्या का रस अवश्य लेना चाहिये और कुछ ऐसा काम करना चाहिये जिससे तुम्हारे वि से उत्पन्न उसकी कृशता नष्ट हो जाये।

अवन्ति देश में पहुँच कर तुम्हें पूर्वोक्त उज्जयिनी के परिसर में पहुँच जाना चाहिये, ज अपनी समृद्धि के कारण भूतल पर स्वर्ग का ही एक खण्ड प्रतीत होती है। वहाँ शिप्रा का शीत मन्द सुगन्धित पवन प्रमदाओं की ग्लानि को दूर कर देता है। वहाँ हाटों में फैली सम्पदा व देखकर प्रतीत होता है कि बस समुद्रों में तो जल-मात्र रह गया है। वहां के नगरवासी-जन बा से आये मित्रों को उदयन-चरित से सम्बद्ध स्थलों को दिखलाकर उनका मनोरञ्जन करते हैं। तु भी इसकी अट्टालिकाओं में रात्रि-भर रह कर रास्ते की थकान दूर कर लेनी चाहिये। तुम्हें उज्जयि के समीप में स्थित महाकाल के पवित्र धाम अवश्य जाना चाहिये और यदि वहाँ सान्ध्य उपास काल से पूर्व पहुँच जाओ तो सूर्यास्त की प्रतीक्षा करनी चाहिये; क्योंकि शूलधारी की उपास में नगाड़े का काम देने से तुम्हारे गम्भीर गर्जन पूर्णतया सफल हो जायेंगे। वहाँ चमर डुलाती हु देव-दासियों की चितवन का सुख भी तुम्हें प्राप्त होगा। साथ ही, ताण्डव-नृत्य के आरम्भ में शि की भुजाओं पर छाकर उनकी गज चर्म की इच्छा का निवारण करके तुम्हें पार्वती के प्रति अप भक्ति दर्शाने का भी अवसर मिलेगा।

वहाँ अन्ध-गहन रात्रि में रमणवसति की ओर प्रस्थान करने वाली अभिसारिकाओं क बिजली चमका कर रास्ता तो दिखलाना, लेकिन गर्जन-तर्जन न करना। उस रात को उज्जयिनी बिताकर अगले दिन सूर्य के निकलने पर तुम्हें शेष मार्ग तय करना चाहिये; क्योंकि मित्रों क कृत्य स्वीकार कर लेने वाले कभी अपने प्रयत्न में शिथिलता नहीं करते हैं। तुम्हें शीघ्र ही सू का रास्ता छोड़ देना चाहिये; क्योंकि वह प्रेमियों द्वारा खण्डिताओं को आश्वासन देने का समय होगा और फिर सूर्य को भी अपनी प्रेयसी कमलिनी के हिम-कण-अश्रु पोंछने होंगे।

मार्ग में गम्भीरा नदी पड़ेगी, जिसके स्वच्छ जल में तुम्हारा प्रतिबिम्ब संक्रान्त हो जायेगा अपनी अरसिकता से गम्भीरा के चञ्चल कटाक्षों को निष्फल न करना; उसके जल का अवश

पान करना। जब तुम देवगिरि के पास पहुँचने को होगे तो वन-गूलरों को पकाने वाला शीतल ायु तुम्हारे नीचे से बहेगा। वहाँ देवगिरि में वास करने वाले स्कन्द पर पुष्पों की वर्षा करके च्छानुसार रूपधारी तुम्हें अपना जीवन सफल कर लेना चाहिए। तुम्हें स्कन्द के वाहन मयूर को ी अपने गर्जन से हर्षित करना चाहिये। भगवान् स्कन्द की आराधना करने के उपरान्त तुम्हें आगे ढ़कर चर्मण्वती नदी पर ठहरना चाहिये। चर्मण्वती का जलपान करने के लिए झुके हुए तुम्हारी ्सी अद्‌भुत छटा होगी कि गगनधारी भी तुम्हें सचमुच एकटक दृष्टि से देखेंगे।

चर्मण्वती को पार करके तुम दशपुर जनपद में पहुँच जाओगे और उससे आगे ब्रह्मावर्त ानपद आ जायेगा, जिसमें प्रसिद्ध कुरुक्षेत्र तीर्थ है। वहाँ सरस्वती के पवित्र जल का, जिसके लिए बलराम ने अपनी प्रिय मदिरा का त्याग कर दिया था, पान करके तुम भी पवित्र हृदय होकर केवल वर्ण से ही काले रह जाओगे। वहाँ से चलकर तुम्हें कनखल के समीप हिमालय से उतरती हुई गङ्गा मिलेगी। उसका जल लेने के लिए जब तुम तिरछे होकर झुकोगे तो उसके जल में तुम्हारी काली परछाईं पड़ने से उसका बिना प्रयास ही यमुना से सङ्गम हो जायेगा। तदुपरान्त गङ्गा के पिता हिमालय पर पहुँच कर उसके हिमाच्छादित धवल शिखर के ऊपर स्थित तुम्हारी शोभा शिव के धवल वाहन द्वारा ऊपर उछाले हुए पङ्क के तुल्य हो जायेगी। वहाँ यदि वायु चलने पर सरल वृक्षों के तनों में आग लग जाये तो वृष्टि द्वारा उसे शान्त कर देना; क्योंकि उत्तम लोगों की सम्पत्ति पीड़ितों के कष्ट निवारण के लिए ही होती है। शरभों का रास्ता बचाकर जाते हुए भी तुम पर यदि वे हमला करें तो उन्हें ओलों की वर्षा से तितर-बितर कर देना; क्योंकि निष्फल कर्म करने वाले कौन अपमानित नहीं होते हैं?

हिमालय में एक शिला में प्रकट चन्द्रमौलि के चरण न्यास की भक्तिपूर्वक परिक्रमा करना। उसके दर्शन से श्रद्धालुजन शरीर पूरा होने पर शाश्वत गण-पद का पद प्राप्त कर लेते हैं। वहाँ कीचक जाति के बाँसों के वेणु बजाने और किन्नरियों के मधुर आलाप करने पर यदि तुम मुरज सदृश नाद की गूँज कर दो तो पशुपति का संगीत पूर्ण हो जायेगा।

हिमालय की अनेक विशेषताओं को देखते हुए तुम हंसों के आने-जाने के मार्ग क्रौञ्च-रन्ध्र पर पहुँकर उसमें तिरछे होकर प्रवेश करके उत्तर दिशा की ओर जाना। तब तुम कैलाश पर्वत पर पहुँच जाओगे, जहाँ देवाधिदेव शम्भु निवास करते हैं। वहाँ यदि पैदल भ्रमण करती हुई पार्वती मणितट पर चढ़ना चाहें तो अपने जल को जमाकर सोपान के आकार का बना लेना। वहाँ गर्मी से संतप्त सुरयुवतियाँ यदि तुम्हारा पिण्ड न छोड़ें तो उन्हें श्रवण-कटु गर्जनों से डरा देना। कैलाश पर्वत में मानस का जल पीकर, ऐरावत के मुख पर आवरण बनाकर तथा कल्पद्रुम के किसलयों को हिलाकर नाना प्रकार की सुभग चेष्टाओं द्वारा उस नगेन्द्र का उपभोग करना। तुम उसकी गोद में स्थित ऊँचे-ऊँचे महलों वाली अलकापुरी को अवश्य ही पहचान लोगे।''

उत्तरमेघ—''अलका में गगनचुम्बी महल हैं, जो सुन्दर ललनाओं, विविध वर्णों से बने चित्रों, संगीत में प्रहत मुरजों और मणि-जटित कुट्टिमों आदि गुणों से तुम्हारी बराबरी कर सकते हैं। वहाँ हमेशा नवयुवतियों के हाथ में लीला-कमल, केशों में बाल-कुन्द, मुख पर लोध्र-पुष्प का पराग, जूड़े में कुरबक, कनों में शिरीष और सीमन्त में क़दम्ब का फूल रहता है। वहाँ वृक्षों पर हमेशा फूल लगे रहते हैं, जिन पर भौंरे गुंजार करते रहते हैं, हमेशा चमकते हुए पंखों वाले मोर कूजते रहते हैं; कमलिनियों पर हमेशा कमल खिले रहते हैं, जिनके चारों ओर हंसों की पङ्क्तियाँ घिरी रहती हैं और हमेशा प्रकाश के कारण गोधूलियाँ सुहावनी होती हैं। वहाँ आँखों में आँसू केवल हर्ष के कारण उत्पन्न होते हैं; केवल कामसंताप ही लोगों को सताता है, केवल प्रणय कलह में ही प्रेमियों का वियोग होता है और देवों की केवल यौवनावस्था ही रहती है। वहाँ यक्ष अट्टालिकाओं की मणि-जटित छतों पर जाकर उत्तम स्त्रियों के साथ मिलकर संगीत-ध्वनि

के साथ कल्पद्रुम से उत्पन्न रतिफल नामक मदिरा का सेवन करते हैं। वहाँ कन्याएँ गङ्गा के सैकत तट पर मणियाँ छिपा-छिपा कर खेलती हैं। वहाँ रत्नों के द्वीप हैं; दीवारें चित्रों से सज्जि हैं और चन्द्रिका के सम्पर्क से जल-स्रावी चन्द्रकान्त मणियाँ स्त्रियों की सुरत-ग्लानि को हर लेते हैं। उसके बाह्य भाग में वैभ्राज नाम का उद्यान है, जिसमें कामीजन अप्सराओं के साथ संगीत-सुख का उपभोग करते हैं। उस नगरी में अकेला कल्पवृक्ष ही स्त्रियों की समग्र प्रसाधन-सामग्री को उत्पन्न कर देता है। वहाँ सूर्य के घोड़ों की बराबरी करने वाले घोड़े हैं, शैल के समान भीमकाय मदवर्षी हाथी हैं और वहाँ के योद्धा ऐसे हैं कि जिन्हें तलवार के घाव के निशान के सामने आभूषण भी अच्छे नहीं लगते।

उस अलकापुरी में कुबेर के घर से उत्तर की ओर समीप में स्थित मेरा घर है, जो इन्द्रधनु के समान सुन्दर तोरण से दूर से ही दिख पड़ता है और जिसके पास में छोटा-सा मन्दार वृक्ष है जिसे मेरी प्रिया ने पुत्र के समान पाला है और जो हाथ की पहुँच में आ सकने वाले पुष्पों के गुच्छों से झुका रहता है। इसमें मरकत मणियों से बनायी गयी सोपान पङ्क्ति से शोभित और सुवर्ण कमलों से आच्छन्न एक बावड़ी है जिसमें वास करने वाले हंस वर्षा-ऋतु में भी मानस सरोवर जाने का विचार नहीं करते। उस बावड़ी के किनारे इन्द्रनील मणियों से बने शिखर वाला क्रीड़ा-पर्वत है, जो चारों ओर सुनहरी केलों से घिरा होने के कारण दर्शनीय है और तुम्हें देखकर जिसकी स्मृति प्रिया का प्रिय होने के कारण मेरे विह्वल चित्त में आ रही है। यहाँ कुरबक की बाड़ से घिरे माधवीमण्डप के समीप में रक्ताशोक और मौलसिरी का पेड़ है। उन दोनों के बीच में संगमरमर के फलक वाली सोने की छतरी है जिस पर सन्ध्या के समय तुम्हारा मित्र मोर बैठा करता है, जिसे मेरी प्रिया बजती हुई चूड़ियों से सुभग ताल दे-देकर नचाया करती है। द्वार के बाजुओं पर चित्र में बनाये शङ्ख और पद्म (निधि) को देखकर और पूर्वोक्त चिह्नों को याद करके तुम मेरे घर को पहचान लेना। मेरी अनुपस्थिति में अब मेरा घर अवश्य ही शोभाहीन हो गया होगा; सूर्य के अस्त हो जाने पर कमल की शोभा नहीं रहती।

शीघ्र नीचे उतरने के लिए करि-पोत का आकार धारण करके पूर्वोक्त क्रीड़ा-पर्वत के शिखर पर बैठकर तुम धीरे से अपने विद्युन्नेत्र को भवन के अन्दर डालना। उस भवन में ब्रह्मा की प्रथम स्त्री-रचना-सी, स्तन-भार से झुकी जो स्त्री हो, जिसका शरीर पतला, दाँत नुकीले, अधर पके बिम्ब से, कमर पतली, नेत्र चकित हरिणी के से और नाभि गहरी हो और नितम्ब-भार के कारण जिसकी गति मन्द हो, उस अल्प-भाषिणी को मेरा द्वितीय प्राण समझ लेना। मुझ सहचर के विरह में उसके दिन कठिनाई से कट रहे होंगे और वह बर्फ से कुम्हलाई कमलिनी सी हो गयी होगी। निरन्तर रोने से उसके नेत्र सूज गये होंगे, गर्म आहों ने उसके ओंठों की कान्ति नष्ट कर दी होगी और हाथों पर रखा हुआ उसका मुख बिखरे बालों के कारण पूरी तरह दिख भी न पड़ेगा। वह पूजा में लगी होगी अथवा मेरा चित्र बना रही होगी अथवा पिंजरे में बैठी मैना से पूछ रही होगी " ऐ रसिके, तुझे स्वामी की याद आती है या नहीं, तू तो उसकी प्यारी थी।" अथवा गोद में वीणा डाल कर मेरे नाम वाले गीत को गाने के लिए उद्यत हुई वह आँसुओं से गीले तारों को ठीक करके स्वरचित मूर्च्छना को भी भूलती हुई तुम्हें दृष्टिगोचर होगी। वह मेरे शाप की अवधि के शेष मासों को देहली पर रखे हुए पुष्पों से गिन रही होगी अथवा मन ही मन मेरे मिलन का आस्वादन कर रही होगी। स्त्रियों के प्रिय-वियोग में मनोविनोद के यही उपाय हुआ करते हैं।

तुम्हारी सखी दिन में तो काम में लगी रहती होगी, इसलिए मेरा विरह उसे अधिक न सताता होगा; परन्तु रात्रि में विनोद के अभाव में उसकी वेदना अधिक हो जाती होगी; अतः तुम उसे मेरा संदेश अर्द्धरात्रि में देना जबकि वह व्याकुलता के कारण पृथ्वी पर उन्निद्र पड़ी होगी। जो रात्रियाँ उसने मेरे साथ क्रीड़ा-रत रह कर क्षण के समान व्यतीत की थीं, उन्हें अब बिस्तर

पर करवट बदलते हुए वह गर्म आँसुओं के साथ बिताती होगी। अब उसे चाँद की चाँदनी भी न भाती होगी और किसी तरह स्वप्न में भी मुझसे मिलन हो जाये, इसलिए वह नींद की चाह कर रही होगी। वह बार-बार अपनी उलझी हुई वेणी को, जो विरह के पहले दिन पुष्प-माला के बिना बाँधी थी और जिसे शापावसान में मैं ही खोलूँगा, मुख पर से हटा रही होगी। वह दु:खिया अपने कृश अङ्गों को बड़ी कठिनाई से संभाले होगी। उसे देखकर तुम्हारी आँखों में भी बरबस आँसू उमड़ आयेंगे ।

हे भाई, मैं तुम्हारी सखी का अपने प्रति प्रेम जानता हूँ, इसी से उसकी ऐसी दशा की सम्भावना कर रहा हूँ। मैं स्वयं को सुन्दर मानकर यह डींग नहीं मार रहा। जो मैं कह रहा हूँ, उसे तुम शीघ्र ही प्रत्यक्ष देख लोगे। तुम मित्र के पहुँचने पर उसकी काजल से सूनी आँखों की ऊपर की पलकें और आभूषण-रहित बायीं जाँघ फड़क उठेगी।

हे जलद, उस समय यदि किसी तरह उसे नींद आ गयी हो तो कुछ समय चुपचाप रहकर प्रतीक्षा कर लेना, जिससे कि स्वप्न में किसी प्रकार प्राप्त हुए मुझ प्रिय के साथ उसका आलिङ्गन तुरन्त शिथिल न हो जाये। तुम बिजली को अपने अन्दर छिपाकर और धीर रहकर जल-कणों से शीतल पवन से उसे जगाना। तब अपलक दृष्टि से देखती हुई उसको इस प्रकार कहना प्रारम्भ करना—''हे सौभाग्यवति ! मुझे अपने पति का मित्र मेघ जानो। मैं उसका संदेश लेकर तुम्हारे समीप आया हूं।'' यह कहने पर वह तम्हारे वचन को वैसे ही आदर के साथ सुनेगी जैसे सीता ने हनुमान् के वचन सुने थे ।

हे आयुष्मन् ! मेरे कहने से और अपने जीवन को परोपकार द्वारा चरितार्थ करने के लिए उससे इस प्रकार कहना—

'हे अबले, रामगिरि के आश्रमों में रहने वाला, तुमसे बिछड़ा हुआ तुम्हारा साथी जीवित है और तुम्हारा कुशल पूछता है। वह अपने क्षीण तप्त अङ्गों से तुम्हारे कृशतर एवं संतप्त अङ्गों का संकल्प द्वारा प्रगाढ़ आलिङ्गन करता है। जो सखियों के सामने स्पष्ट कहने योग्य बात को तुम्हारे मुख के स्पर्श के लोभ से कान में कहने के लिए उत्सुक रहता था, अब दूरवर्ती उसने मेरे द्वारा यह कहा है''—

''मैं प्रियङ्गु लताओं में तुम्हारे शरीर को, हरिणी के नेत्रों में तुम्हारे दृष्टिपात को,चन्द्रमा में तुम्हारे मुख की कान्ति को, मोरों की पूँछ में तुम्हारे केश-भार को और नदियों की हल्की-सी तरङ्गों में तुम्हारे भ्रूभङ्ग को निहारता रहता हूँ, लेकिन मुझे तुम्हारी समानता किसी एक वस्तु में भी नहीं मिलती। मैं शिला पर गेरू से, प्रणय-कलह में कुपित हुई तुम्हारा चित्र बना कर जैसे ही तुम्हें प्रसन्न करने के लिए चरणों में गिरना चाहता हूँ, आँसुओं के उमड़ने मे मेरी दृष्टि रुक जाती है और क्रूर भाग्य चित्र में भी हमारे मिलन को सहन नहीं करता है। स्वप्न में मिल जाने पर जब मैं तुम्हारा आलिङ्गन करने के लिए भुजाएँ फैलाता हूँ तो वन-देवताओं के नेत्रों से भी मोटे-मोटे आँसू गिरने लगते हैं। मैं उत्तर से आने वाले पवनों का इस आशा से आलिङ्गन करता हूँ कि सम्भवत: इन पवनों ने पहले तुम्हारे शरीर का स्पर्श किया होगा। मैं तुम्हारे वियोग की व्यथा से इतना पीड़ित हूँ कि यही चिन्ता रहती है कि लम्बी रात कैसे बीते और दिन का ताप किस तरह कम हो। लेकिन फिर भी मैं अपने को संभाले हुए हूँ। इसलिए, हे कल्याणि ! तू भी कातर न हो। हमेशा सुख या हमेशा दु:ख किसको होता है? मेरा शाप विष्णु के शेषशय्या से उठने पर समाप्त हो जायेगा। इसलिए शेष चार महीने भी आँखे मीचकर बिता ले। इसके बाद शरद् की चाँदनी रात में हम दोनों अपनी उन अभिलाषाओं को पूर्ण करेंगे जो विरह में चित्त में चढ़ी हुई हैं।''

उसने और आगे कहा—'पहले कभी एक बार तुम बिस्तर में मेरे गले से लगी सो रही

थीं कि किसी कारण जोर से रोती हुई जाग गयीं। तब मैंने तुमसे अनेक बार रोने का कारण पूछा तो तुमने मन ही मन मुस्कराते हुए कहा था—'अरे धूर्त ! मैंने स्वप्न में तुम्हें किसी स्त्री के साथ रमण करते देखा है।' हे असितनयने ! यह पहचान बतलाने से मुझे सकुशल जानकर लोकापवाद के कारण मेरे प्रति शङ्कालु न बन। जो यह कहते हैं कि वियोग में स्नेह समाप्त हो जाता है, वह झूठ ही है। वह तो भोग के अभाव में इष्ट वस्तु के प्रति अभिलाषा को बढ़ाकर प्रेम-राशि हो जाता है।''

प्रथम विरह में अत्यन्त संतप्त अपनी सखी को इस प्रकार सान्त्वना देकर शीघ्र ही कैलाश से लौटकर अभिज्ञान सहित भेजे गये उसके कुशल वचन से मेरे भी प्राणों को अवलम्बन देना। हे सौम्य, तुमने मुझ मित्र का यह कार्य करना स्वीकार कर लिया है न? मैं समझता हूं कि तुम्हारी चुप्पी अस्वीकृति के कारण नहीं है। तुम माँगने पर चातकों को चुप रहकर भी जल देते हो। प्रार्थियों का अभिलषित कार्य कर देना ही सज्जनों का उत्तर हुआ करता है। हे जलद ! प्रेम के कारण अथवा मुझे दुःखी समझकर कृपा-भाव के कारण मेरा यह प्रिय करके तुम अभीष्ट देशों में जाना, मेरी शुभ-कामना है कि तुम्हारा अपनी प्रिया विद्युत से कभी क्षण भर के लिए भी वियोग न हो।''

## ४. मेघदूत : मूल-स्रोत

मेघदूत और ऋतुसंहार को छोड़कर कालिदास की अन्य रचनाएँ—महाकाव्य और नाटक दोनों ही—पौराणिक तथा ऐतिहासिक आख्यानों पर आधारित हैं। लेकिन मेघदूत और ऋतुसंहार के विषय,जो प्राचीन वर्गीकरण के अनुसार खण्डकाव्य की कोटि में आते हैं, कवि की अपनी कल्पना से प्रसूत हैं। मेघदूत में कथा नाममात्र के लिए है। कवि का मुख्य उद्देश्य अपने परिचित स्थानों का काव्यमय वर्णन तथा प्रथम वियोग में सहृदय युवक प्रेमियों के भावों का चित्रण करना ही प्रतीत होता है।

कुछ विद्वानों ने यह विचार प्रकट किया है कि कवि ने इस काव्य में यक्ष की विरह-वेदना के व्याज से अपने जीवन की ही घटना का चित्रण किया है। प्रारम्भ में यह विचार आकर्षक प्रतीत होता है, परन्तु इसकी पुष्टि में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया जा सकता । प्रतिभाशाली कवियों की रचनाओं में वैयक्तिक अनुभूतियों का नहीं,वरन् विश्व-अनुभूतियों का मार्मिक उद्घाटन हुआ करता है।

कुछ विद्वानों ने मेघदूत का मूल-स्रोत **वाल्मीकीय-रामायण** के अन्तर्गत सीता के प्रति हनुमान् द्वारा भेजे गये राम के संदेश में देखने का प्रयास किया है। रामायण और मेघदूत के कुछ अंशों में भाव और पदावली की समानता के आधार पर यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि कालिदास ने मेघदूत की रचना रामायण के अनुकरण पर की है। प्राचीन टीकाकारों में से **दक्षिणावर्त**[1] और **मल्लिनाथ**[2] ने भी परम्परा के अनुसार मेघदूत का प्रेरणा-स्रोत रामायण को कहा है। मेघदूत में राम और सीता सम्बन्धी उल्लेखों[3] से यह तो स्पष्ट ही है कि मेघदूत की रचना के समय कालिदास के मन में रामकथा का विचार अवश्य रहा होगा। कालिदास ने रघुवंश

१. इह खलु कविः सीतां प्रति हनुमता हारितं संदेशं हृदयेन समुद्वहन् तत्स्थानीयनायकाद्युत्पादनेन संदेशं करोति।

२. सीतां प्रति हनुमत्संदेशं मनसि निधाय मेघसंदेशं कविः कृतवानित्याहुः।

३. जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु (पू० मे०/१), रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु (पू० मे०/१२), इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा (उ० मे०/४०) ।

में अपने पूर्ववर्ती विद्वानों का ऋण स्वीकार भी किया है।[1] कवि ने पूर्ववर्ती कवियों के काव्य तथा अन्य पुराणशास्त्र आदि ग्रन्थों का अच्छा अभ्यास किया था, यह उनके काव्यों के पर्यालोचन से बिल्कुल स्पष्ट है। इसलिये कालिदास पर वाल्मीकि के प्रभाव से इंकार नहीं किया जा सकता। फिर भी यह बात असंदिग्ध रूप से कही जा सकती है कि मेघदूत को वाल्मीकीय रामायण के किसी अंश विशेष का अनुकरण नहीं कहा जा सकता। कालिदास ने मेघ के मार्ग का वर्णन करते हुए प्रकृति का जो चित्रण किया है, उसका काव्यमय सूक्ष्म विवरण कवि की अपनी प्रतिभा की स्वतन्त्र सृष्टि है ।

कुछ विद्वानों ने मेघदूत का मूल-स्रोत **ब्रह्मवैवर्तपुराण** को माना है, क्योंकि इस पुराण में योगिनी एकादशी (आषाढ़ कृष्ण पक्ष की एकादशी—देवशयन एकादशी) के माहात्म्य के प्रसङ्ग में कुबेर द्वारा जिस अभिशप्त यक्ष की कथा का वर्णन किया है वही कथा मेघदूत में वर्णित की है। लेकिन प्रश्न यह है कि इन दोनों में अर्थात् ब्रह्मवैवर्तपुराण और कालिदास में प्राचीन कौन है? यदि ब्रह्मवैवर्तपुराण प्राचीन है तो निस्सन्देह यही कथा मेघदूत का स्रोत है, ऐसा मानने मे आपत्ति नहीं हो सकती। कथा मूल रूप में इस प्रकार है—

*अलकाऽधिपतिर्नाम्ना कुबेरः शिवपूजकः ।*
*तस्यासीत् पुष्पबटुको हेममालीति नामतः ॥६॥*
*तस्य पत्नी सुरूपाऽऽसीद्विशालाक्षीति नामतः ।*
*स तस्यां स्नेहसंयुक्तः कामपाशवशं गतः ॥७॥*
*मानसात्पुष्पनिचयमानीय स्वगृहे स्थितः ।*
*पत्नीप्रेमसमायुक्तो न कुबेरालयं गतः॥८॥*
*कुबेरो देवसदने करोति शिवपूजनम् ।*
*मध्याह्नसमये राजन्पुष्पाणि प्रसमीक्षते॥९॥*
*हेममाली स्वभवने रमते कान्तया सह ।*
*यक्षराट् प्रत्युवाचाऽथ कालातिक्रमकोपितः ॥१०॥*
*"कस्मान्नायाति भो यक्षाः ! हेममाली दुरात्मवान् ।*
*निश्चयः क्रियतामस्य" प्रत्युवाच पुनः पुनः ॥ ११॥*

*यक्षा ऊचुः—*
*वनिताकामुको गेहे रमते स्वेच्छया नृप ।*
*तेषां वाक्यं समाकर्ण्य कुबेरः कोपपूरितः॥१२॥*
*आह्वयामास तं तूर्णं बटुकं हेममालिनम् ।*
*ज्ञात्वा कालाऽऽत्ययं सोऽपि भयव्याकुललोचनः ॥१३॥*
*आजगाम नमस्कृत्य कुबेरस्याऽग्रतः स्थितः।*
*तं दृष्ट्वा धनदः क्रुद्धः कोपसंरक्तलोचनः ॥१४॥*
*प्रत्युवाच रुषाविष्टः कोपाद्विस्फुरिताऽधरः ।*

*धनद उवाच—*
*'रे पाप! दुष्ट! दुर्वृत्त! कृतवान्देवहेलनम् ॥१५॥*
*अतो भव श्वित्रयुक्तो वियुक्तः कान्तया सह ।*
*अस्मात्स्थानादवपध्वस्तो गच्छ स्थानमथाऽधमम् ॥१६॥*
*इत्युक्ते वचने तेन तस्मात्स्थानात्पपात सः ।"*

---

१. रघुवंश १,४ ।

अर्थात् अलकापुरी के राजा कुबेर भगवान् शिव के भक्त थे, उनका सेवक हेममाली नाम यक्ष उनकी पूजा के लिए पुष्प लाया करता था, उसकी पत्नी विशालाक्षी अत्यन्त रूपवती थी कामानुविद्ध वह यक्ष अपनी पत्नी के प्रेम में लिप्त था। एक दिन पत्नी के प्रेम में डूबा हुआ हेममाली मानसरोवर से पुष्प तो ले आया, किन्तु कुबेर के भवन नहीं गया। वहां मध्याह्न में कु शिव की पूजा के लिए पुष्पों की प्रतीक्षा कर रहे थे। इधर हेममाली अपने भवन में प्रिया के सा रमण कर रहा था। समय के अतिक्रमण होने पर कुबेर ने अन्य सेवकों से पूछा—'हे यक्षो! हेममाली क्यों नहीं आया? पता लगाओ।' यक्ष बोले—'हे राजन्! वह कामुक अपने घर प्रि के साथ विहार कर रहा है।' यह सुनकर क्रोध से युक्त कुबेर ने शीघ्र ही हेममाली को बुलाय समय को बीता हुआ जानकर भय से चञ्चल नेत्र वाला वह यक्ष नमस्कार कर कुबेर के सा आकर स्थित हो गया। उसे देखकर क्रोध से लाल नेत्रों वाले उस कुबेर ने काँपते हुए होंठों कहा—'हे दुष्ट दुराचारी! तूने जिस प्रिया के प्रेम में लिप्त होकर देवता का निरादर व अपम किया है, श्वेत कुष्ट से पीड़ित होकर तुम उस प्रिया से एक वर्ष के लिए अलग हो जाओ औ इस स्थान से गिरकर नीचे के स्थान में जाओ।' कुबेर के ऐसा कहने पर वह यक्ष वहाँ से गि पड़ा।

उपर्युक्त अवतरण से ऐसा दृष्टिगोचर होता है जैसे कि यह मेघदूत की पूर्व की कथा और आगे मेघदूत की कथा अविच्छिन्न रूप से चल रही हो।

चीन के एक कवि ह्यू-कान् (Hsiu Kan) ने जिसका समय २००ई० के आस-पास है मेघ को दूत बनाकर भेजने की कल्पना की थी, लेकिन कालिदास पर उसका कोई प्रभाव हुअ हो, इस बात की बिल्कुल भी संभावना नहीं है।

संस्कृत-साहित्य में दूत-काव्यों में सबसे प्राचीन उपलब्ध तथा ज्ञात दूतकाव्य मेघदूत ही है अन्य-काव्य प्रायः मेघदूत के अनुकरण पर ही लिखे गये हैं। इसलिए कालिदास को संस्कृत-साहित्य में दूत-काव्यों की परम्परा के प्रवर्तन का श्रेय प्राप्त है।

## ५. मेघदूत : रस

रसात्मक वाक्य को ही काव्य कहते हैं, इसलिए प्रत्येक काव्य का मुख्य उद्देश्य पाठक को किसी रस-विशेष का आस्वादन करा देना होता है। मेघदूत में स्वामी के शाप के प्रभाव से नष्ट-गौरव और देवलोक से निर्वासित होकर रामगिरि पर वास करने वाले किसी प्रिया-वियुक्त यक्ष की विरह दशा का चित्रण किया गया है। काव्य के प्रारम्भ में ही प्रिया के वियोग के कारण कृशाङ्ग यक्ष का चित्र उपस्थित किया गया है, जो सामने मेघ को देखकर और अधिक उत्कण्ठि हो जाता है।[1] इसलिए वह वर्षा ऋतु में, जो विरहियों के लिए अत्यधिक उत्कण्ठाकारिणी होती है, प्रिया के आश्वासन हेतु मेघ द्वारा अपना कुशल-संदेश भेजता है। कामातुर यक्ष यह भी विचार नहीं कर पाता कि वह संदेश ले जाने की याचना समर्थ से कर रहा है अथवा असमर्थ से।

पूर्वमेघ में यक्ष रामगिरि से अलकापुरी का मार्ग बतलाता है। इस मार्ग-वर्णन में प्रकृति के अनेक सुन्दर रूपों का चित्रण किया गया है। मार्ग-वर्णन का उद्देश्य प्रकृति के लुभावने चित्रों के आकर्षण द्वारा मेघ को अलका के लिए प्रस्थान कर देने के लिए सन्नद्ध करना प्रतीत होता है उत्तरमेघ में दिये गये संदेश को दृष्टि में रखते हुए पूर्वमेघ की इसी में सार्थकता है, अन्यथा पूर्वमेघ अनपेक्षित विस्तृत भूमिका ही होता। पूर्वमेघ में प्रकृति चित्रण विरही और प्रेमी यक्ष की मनोदशा के सर्वथा अनुरूप है। यक्ष का संदेशवाहक मेघ निरा धूम,ज्योति और सलिल का

१. पूर्वमेघ २; ३।

संघातमात्र नहीं है वरन् कामरूपधारी इन्द्र का प्रधान पुरुष है, सहृदय है और रसिक नायक है। वह सरिता-रूप नायिकाओं का रस-पान करता है।[1] पुष्पलावी स्त्रियों के मुख पर छाया करके उनके सन्ताप दूर करता है। उसे उज्जयिनी की पौराङ्गनाओं के चञ्चल कटाक्षों से पूर्ण नेत्रों के साथ रमण करने का सुझाव दिया जाता है[2] और कूजन करती हुई विहग-श्रेणी-रूपी मेखला धारण करने वाली तथा आवर्तरूपी नाभि दिखलाने वाली विलासमयी निर्विन्ध्या-नायिका के प्रणय निवेदन को सफल बनाने का आदेश दिया जाता है।[3] निर्विन्ध्या उसके विरह में क्षीण हो गयी है और जीर्ण-पर्णों के कारण उसकी कान्ति पीली पड़ गयी है। इसलिए मेघ को ही वह उपाय करना है, जिससे निर्विन्ध्या की क्षीणता दूर हो जाये।

मेघ अपनी प्रेयसी गम्भीरा के निर्मल चित्त सदृश जल में अवश्य ही प्रवेश पा जायेगा, इसलिये उसे अपनी स्थिरता के कारण गम्भीरा के चञ्चल कटाक्षों को व्यर्थ न करना चाहिए—

*तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या-*
*न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि॥ ( पू० मे० ४३)*

अर्द्धनग्न गम्भीरा का रसास्वादन किये बिना उसे छोड़कर चल देना मेघ के लिए असम्भव हो जायेगा। इस स्थल पर नदी और मेघ में नायक और नायिका के व्यवहार का सूक्ष्म विस्तारों तक जाकर समारोप किया गया है।

पूर्वमेघ श्लोक संख्या ६६ में कैलाश के अङ्क में स्थित अलकापुरी को नायक की गोद में स्थित सजी हुई नायिका के समान कहा गया है। पूर्वमेघ में ऐसे अनेक स्थल हैं, जिनमें सिद्धाङ्गनाओं, पौराङ्गनाओं अथवा युवतियों की विलासमयी चेष्टाओं का उल्लेख किया गया है।

उत्तरमेघ में यक्षेश्वर की नगरी अलका के वर्णन में भी शृङ्गार-रस के उपादानों का अवलम्बन किया गया है और यक्ष की आत्म-दशा निवेदन में तथा यक्ष-पत्नी की विरहावस्था में सम्भावित दशा के चित्रण में विप्रलम्भ-शृङ्गार की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। यक्ष की प्रिया को दिये गये संदेश में तथा यक्ष-पत्नी की विरह-दशा वर्णन में विप्रलम्भ करुण की भाव-भूमि में पहुँच गया है।

मेघदूत में विप्रलम्भ और करुण के अतिरिक्त हास्य[4] और शान्त[5] रस की भी जगह-जगह अभिव्यक्ति हुई है। □

## ६. मेघदूत : काव्य-कला

### (क) भाषा और शैली—

वैसे तो कालिदास की कला उनकी प्रत्येक कृति में स्पृहणीय एवं मनोहारी रूप में प्रकट हुई है, लेकिन मेघदूत में तो वह अपने विकास की चरम सीमा को छू रही है। इस काव्य में

---

१. तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मात्।
सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि॥ पू० मे० २५।
२. विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि॥ पू० मे० २९।
३. निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः संनिपत्य।
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु॥ पू० मे० २८।
४. देखिए, पूर्वमेघ ४, ४२, ५७, ६४; उत्तरमेघ ८।
५. पूर्वमेघ ७, १२, ३६, ३७, ३९, ४७, ४८, ५८, ५९, ६३।

उनकी कल्पना जैसी सुकुमार एवं रमणीय है, उसी के अनुरूप उनकी भाषा और शैली भी अत्यन्त मनोहर हैं।

इसकी भाषा प्राञ्जल,परिष्कृत एवं प्रवाहपूर्ण है। शब्दों के चुनाव में कवि ने विशेष कौशल प्रकट किया है। उसने कहीं माधुर्य की व्यञ्जक मधुर पदावली[१] का प्रयोग किया है तो कहीं सुकुमारता की व्यञ्जक कोमल कान्त पदावली[२] का। कहीं पर शब्दों की नादात्मक ध्वनि से ही वर्णित विषय का चित्र उपस्थित किया गया है—

*तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णाम्*
*जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम्॥ ( पू० मे० २३)*

कहीं सुभग शब्द मैत्री द्वारा छन्द में अद्भुत रमणीयता का संचार है—

*दीर्घीकुर्वन्पटुमदकलं कूजितं सारसानां ।*
*प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः॥ (पू० मे० ३२)*

मेघदूत कालिदास की शैली का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। मेघदूत के पद्यों की रमणीयता, स्वर सौष्ठव और संगीत लहरी परम दर्शनीय हैं। भाव के अनुरूप मन्दाक्रान्ता छन्द के सरस प्रयोग ने काव्य को विप्रलम्भ शृङ्गार की समर्थ अभिव्यक्ति द्वारा और अधिक चारु एवं प्रभावशाली बना दिया है। कालिदास के मन्दाक्रान्ता छन्द की प्रशंसा में क्षेमेन्द्र ने कहा है—

*सुवसा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता विराजते ।*
*तदश्वदमकस्येव काम्बोजतुरगाङ्गना ॥*

नपे-तुले शब्दों में भाव की विशद व्यञ्जना कर देना मेघदूत का विशेष गुण है। मेघदूत में जगह-जगह भावों और दृश्यों के सुन्दर शब्द-चित्र अङ्कित किये गये हैं। मेघदूत में रूप-विधान (imagery) अत्यन्त प्रभावकारी एवं रमणीक बन पड़ा है। कैलाश की गोदी में स्थित अलका का कैसा बिम्बग्राही चित्र दिया गया है—

*तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां*
*न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ।*
*या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना*
*मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥ (पू० मे० ६६)*

विरहिणी यक्ष-पत्नी का स्वाभाविक और विशद शब्द-चित्र है—

*उत्सङ्गेवा मलिनवसने सौम्य विक्षिप्य वीणां*
*मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।*
*तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथञ्चिद्*
*भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती॥( उ० मे० २६)*

निम्न उद्धृत श्लोक में कवि ने मेघ और अलका नगरी के प्रासादों की पारस्परिक तुलना में सुन्दर समास शैली का प्रयोग किया है—

---

१. मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकुलो यथा त्वां
वामश्चायं नुदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः । (पू० मे० १०)

२. आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यः पाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि । (पू० मे० ९)

*विद्युद्वन्तं ललितवनिता: सेन्द्रचापं सचित्रा:।*
*संगीताय प्रहतमुरजा: स्निग्धगम्भीरघोषम्।*
*अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्रा:*
*प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषै:।। ( उ० मे०१)*

हे मेघ, अलकापुरी में प्रासाद अपनी अनेक विशेषताओं से तुम्हारी सभी प्रकार बराबरी कर सकते हैं। यदि तुम्हारे साथ बिजली है तो उन भवनों में विद्युत् के समान गौरवर्ण सुन्दर अङ्गनाएँ हैं; यदि तुम इन्द्र-धनुष से युक्त हो तो वे भवन भी रंग-बिरंगे चित्रों से सुसज्जित हैं; यदि तुम्हारा मृदु-गम्भीर घोष है तो वहाँ भी संगीत में मृदङ्ग बजाये जाते हैं; यदि तुम्हारे अन्दर जल है तो वहाँ भी फर्श में जड़ी हुई मणियो की जल के जैसी छवि है और यदि तुम ऊँचे हो तो उन भवनां के भी शिखर आकाश को छूते हैं।

**(ख) अलङ्कार–**

मेघदूत में अलङ्कारों का यथास्थान समुचित प्रयोग हुआ है, जिससे काव्य का स्वाभाविक सौन्दर्य निखर आया है । उपमा और उत्प्रेक्षा अलङ्कारों का कवि ने बहुत ही सुन्दर एवं उपयुक्त प्रयोग किया है । कालिदास की उपमाओं का तो कहना ही क्या! प्राकृतिक दृश्यों का मानवीय सौन्दर्य से सुरुचिपूर्ण सादृश्य स्थापित किया गया है । वर्षा ऋतु में महलों के शिखर पर जल-कणों की धारा बरसाने वाले मेघ अलका-कामिनी के मुक्ता जाल ग्रथित केशकलाप की भाँति हैं—

*या व: काले वहतिसलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना*
*मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्। (पू० मे० ६६)*

कालिदास ने मानवीय सौन्दर्य की तुलना प्रकृति-सौन्दर्य से भी की है। चिन्ता से कृशकाय, विरह-शय्या पर व्याकुलता से एक करवट पड़ी हुई यक्ष-पत्नी कृष्ण पक्ष में पूर्वी क्षितिज पर क्षीण चन्द्र-कला की भाँति प्रतीत होती है—

*आधिक्षामां विरहशयने संनिषण्णैकपार्श्वां*
*प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशो:। (उ० मे० २९)*

बेचारी विरहिणी यक्ष-पत्नी पूर्व अभ्यास से गवाक्ष में से होकर प्रविष्ट हुई चन्द्रमा की किरणों को देखती है; परन्तु अब उसे वे पहले के समान सुख नहीं देतीं। इसलिए वह तुरन्त उन पर से अपनी दृष्टि हटा लेती है। वह जागती हुई भी आँसुओं से भारी पलकों से अपनी आँखें बन्द कर लेती है। इस तरह वह मेघाच्छन्न दिन में स्थल-कमलिनी की भाँति न जागती ही है और न सोती ही है—

*पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टान्*
*पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं संनिवृत्तं तथैव।*
*चक्षु: खेदात्सलिलगुरुभि: पक्ष्मभिश्छादयन्ती*
*साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ।। (उ० मे० ३०)*

मेघदूत में जगह-जगह अभिनव उत्प्रेक्षाओं का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। प्रान्त भागों में पके हुए फल वाले आमों के वृक्षों से आच्छन्न आम्रकूट के शिखर पर जब काला मेघ स्थित होगा तो आम्रकूट पर्वत मानो भू-कामिनी का मध्य भाग मे श्याम और शेष में पीला स्तन हो जायेगा—

*छन्नोपान्त: परिणतफलद्योतिभि: काननाम्रै-*
*स्त्वय्यारूढे शिखरमचल: स्निग्धवेणीसवर्णे।*

*नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां*
*मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषाविस्तारपाण्डुः ॥ (पू० मे० १८)*

कैलाश पर्वत की शुभ्र हिमाच्छादित चोटियाँ ऐसी शोभित हो रही हैं मानों शिव के अट्टहास की राशियाँ एकत्र हो गयी हैं—

*शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं*
*राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥ (पू० मे० ६१)*

यक्ष कल्पना करता है कि मेघ के समीप पहुँचने पर मृगनयनी यक्ष—पत्नी के नेत्र का ऊपरी भाग ऐसे फड़क उठेगा जैसे किसी मछली के उछलने के कारण कमल चञ्चल हो उठता है—

*त्वयासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या*
*मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥ (उ० मे० ३५)*

एक अन्य स्थल पर हिमालय के धवल शिखर पर छाये हुए श्याम मेघ की शिव के धवल वृषभ द्वारा सींग से उछाले हुए पङ्क से समानता की गयी है—

*वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गेनिषण्णः*
*शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् । (पू० मे० ५५)*

कालिदास ने अन्य काव्यों के समान मेघदूत में भी उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं द्वारा अपने शब्दचित्रों को विशद् बनाने के लिए पौराणिक कथाओं तथा देवोपाख्यानों का भी यत्र-तत्र सुन्दर उपयोग किया है। एक स्थल में कहा गया है कि जब मेघ कैलाश पर जाने के लिए तिरछा होकर क्रौञ्चरन्ध्र में प्रवेश करेगा तो इसकी शोभा बलि दमन के लिए उद्यत वामन-विष्णु के चरण के समान होगी—

*प्रालेयाद्रेरुपटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषान्*
*हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम् ।*
*तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी*
*श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः ॥ (पू० मे० ६०)*

कालिदास ने मेघदूत में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का प्रयोग करते हुए शाश्वत सत्यों तथा जीवन की अनुभूतियों का भी बड़े मार्मिक ढंग से उद्घाटन किया है। प्रिया के प्राणों की रक्षा के लिए आतुर हुआ यक्ष समर्थ इन्द्रियों द्वारा प्रापणीय सन्देश को ले जाने के लिए धूम-ज्योति-सलिल के सन्निपातमात्र मेघ से ही याचना कर बैठता है, भला कामी में जड़ और चेतन का विवेक कहाँ रहता है—

*कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु । (पू० मे० ५)*

यह जीवन का परीक्षित सत्य है कि क्षुद्र व्यक्ति से कामना कर पूर्ण हो जाने पर भी उतनी शान्ति प्राप्त नहीं होती जितनी कि बड़े और उदार व्यक्ति से की गयी अपूर्ण कामना से। क्योंकि क्षुद्र से अभिलाषा की प्राप्ति 'बन्दर के चने' हो जाती है। कवि ने इसी सत्य का उद्घाटन करते हुए यक्ष के मुख से कहलाया है—

*याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा । (पू० मे० ६)*

भावी मिलन और सुख की आशा कष्ट एवं संकटों के समय में भी प्रणयी हृदय को थामे रखती है, इस सत्य की अभिव्यक्ति कैसी मार्मिक शैली में की है—

*आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां ।*
*सद्यः पाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥ ( पू० मे० ९)*

यक्ष मेघ को शिक्षा देता है कि जब वह विन्ध्याचल के चरणों में बल खाती हुई नर्मदा पर पहुंचे और बरस कर हल्का हो जाये तो उसके जामुनों से कसैले जल को पीकर भारी भरकम अवश्य हो जाये। ऐसा करने से हवा उसे उड़ा न सकेगी; क्योंकि जो खाली होता है वह हल्का हो जाता है और जो भरा हुआ होता है उसे गौरव प्राप्त होता है—

*अन्तःसारं घन तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां ।*
*रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥ (पू० मे० २०)*

कालिदास के कई अर्थान्तरन्यास तो ऐसे स्फूर्तिदायक सुभाषित हो गये हैं,जो लड़खड़ाते और पथभ्रष्ट होते हुए मानव के लिए सत्पथ पर बढ़ते चले जाने के लिये महान् संबल सिद्ध हो सकते हैं। यक्ष मेघ से कहता है कि उज्जयिनी में एक रात बिताकर उसे शेष मार्ग पार करना चाहिये; क्योंकि जो मित्रों का कोई काम करना स्वीकार कर लेते हैं, वे कभी अपने प्रयास में शिथिलता नहीं करते—

*दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं ।*
*मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ ( पू० मे० ४१)*

सांसारिक द्वन्द्वों का क्रम पहिये की भांति घूमता ही रहता है। विवश और असहाय यक्ष संसार की इस परिवर्तनशीलता की ओर संकेत करके ही अपनी प्रिया को सान्त्वना दे सकता था—

*कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।*
*नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥ (उ० मे० ४९)*

**(ग) प्रकृति-चित्रण—**

मेघदूत में कालिदास ने बाह्य-प्रकृति और अन्तः—प्रकृति दोनों का ही सूक्ष्म मार्मिक चित्रण किया है। बाह्य-प्रकृति के प्रति कवि का अनन्य अनुराग है । प्राकृतिक दृश्यों का ऐसा ब्यौरेवार और संश्लिष्ट चित्रण है कि हमारे मानस के सामने उनका स्पष्ट चित्र उपस्थित हो जाता है । पूर्वमेघ बाह्य-प्रकृति का ही मनोहर रूपयोजनात्मक चित्रण है । वर्षा ऋतु और उसमें होने वाली प्राणियों की विविध उत्कण्ठाओं का जैसा चित्रण मेघदूत में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । मेघ के आगमन से विरही यक्ष उत्कण्ठित होकर प्रिया के प्राण-धारण के लिए संदेश भेजने के लिए आतुर हो उठता है । पर्वत उसके आगमन से पुष्पित कदम्बों के रूप में पुलकित हो उठता है। भोली ग्रामवधुयें उसे उत्सुकता से देखती हैं और चतुर पौर-वधुयें उसे अपने चञ्चल कटाक्षों का विषय बनाती हैं । वर्षा ऋतु में मानस के लिए उत्सुक हंस उसके सहयात्री बन जाते हैं और गर्भाधान के लिए उत्सुक बलाका उसका सेवन करती हैं । कहने का अभिप्राय यह है कि मेघोदय पर होने वाला कोई ऐसा प्राकृतिक परिवर्तन नहीं है जिसकी ओर कवि का ध्यान न गया हो। मेघदूत में प्रकृतिवर्णन में ऐसे कई स्थल हैं जिन पर उत्कृष्ट कोटि के चित्र बनाये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, मानस की ओर जाने वाले हंसों का कैसा विशद चित्र दिया गया है—

*आकैलासाद्बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः।*
*संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥ (पू० मे० ११)*

मेघदूत में कालिदास ने प्रकृति का जड़ और तटस्थ के रूप में चित्रण नहीं किया है, अपितु उसमें मानवीय चेतना एवं क्रिया-कलाप का समारोप किया है। कालिदास के अनुसार पर्वत अपने सखा मेघ से मिलकर हर्ष से गर्म आँसू बहाता है—

*काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य ।*
*स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो वाष्पमुष्णम् ॥* (पू० मे० १२)

नदियाँ मानिनी प्रेमिका की भाँति इठलाकर अपनी तरङ्ग रूपी भौंहें तान लेती हैं।[१] प्रभातक में सूर्य अपनी प्रियतमा नलिनी के ओसरूपी आँसू अपने करों से पोंछता है[२] और पुराने पत्तों पीली हुई क्षीण निर्विन्ध्या अपनी विरह-दशा से मेघ के सौभाग्य को प्रकट करती है ।[३]

मेघदूत में प्रकृति में सहानुभूति की भावना का भी मनोरम आरोप किया गया है। यक्ष करुण दशा को देखकर प्रकृति भी उसके प्रति समवेदना प्रकट करती है। जब यक्ष स्वप्न में अ प्रियतमा के आलिङ्गन के लिए शून्य आकाश में भुजाएँ फैलाता है तो वनस्थली-देवताओं के से मोटे-मोटे आँसू ढलक पड़ते हैं—

*मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-*
*र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु ।*
*पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां*
*मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥* (उ० मे० ४६ )

**(घ) मेघदूत : प्रेम का चित्रण—**

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मेघदूत शृङ्गार-रस का काव्य है। उसमें प्रेम या भाव का चित्रण है और ऐन्द्रियिक वासना है, तथापि मेघदूत का शृङ्गार केवल एक स्थल[४] छोड़कर शिष्टता की सीमा को नहीं लाँघता। पूर्वमेघ में रति-भाव के जितने संकेत हुए हैं, उ से कोई भी भौतिक या ऐन्द्रियिक वासना के ऊपर नहीं उठ सका है, परन्तु उत्तरमेघ में ऐन्द्रियिक वासना के साथ-साथ आध्यात्मिक प्रेम के भी संकेत मिलते हैं। अलकापुरी के वर्णन जहाँ यक्षों के उत्तम स्त्रियों के साथ मधुपान अथवा देवाङ्गनाओं के प्रसाधन तथा उपभोग ऐन्द्रियिक वासना की अभिव्यक्ति हुई है, वहाँ यक्ष और यक्ष-पत्नी की पारस्परिक निष्ठा में प्रेम की भी अभिव्यक्ति हुई है, जो पार्थिव धरातल से ऊपर उठकर दिव्यता को प्राप्त हो है। सचमुच विरह का अनल दो प्रणयी हृदयों को तपाकर उनके प्रेम के वासना-मल को जला उसे आध्यात्मिक प्रेम का दिव्य कुन्दन बना देता है ।

यक्ष को विश्वास है कि उसकी प्रिया उसके विरह की व्यथा में क्षीण हो गयी होगी, उसी की चिन्ता करती रहती होगी अथवा पूजा-व्यापार में लगी रहकर शाप की अवधि के गिनती रहती होगी। उसे रात्रि में नींद भी न आती होगी और विरह-शय्या पर एक करवट रहती होगी। यक्ष अपने संदेश में स्वयं भी उसे विश्वास दिलाता है कि वह प्रकृति में उसी सादृश्य की खोज करता रहता है और उसका चित्र बनाकर उसके मिलन की कामना करता है। वह उत्तर से आने वाले पवन का गाढ़ आलिङ्गन करता है कि सम्भवतः पवन उसकी प्रि के अङ्गों का स्पर्श करके आया हो ।

यक्ष अपनी प्रिया को अपनी सच्चाई का विश्वास दिलाने के लिए कहता है कि लो यह बात झूठ ही कहते है कि प्रेम वियोग में नष्ट हो जाता है। सच तो यह है कि वह वियो में बढ़कर राशि हो जाता है।[५]

---

१. पूर्वमेघ २५, २९ ।
२. पूर्वमेघ ४२ ।
३. पूर्वमेघ ३० ।
४. पूर्वमेघ ४४ ।
५. स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥ उ० मे० ५२ ।

कालिदास ने यक्ष और उसकी प्रिया के प्रणय की एकनिष्ठता से सचमुच मानव के लिए आदर्श प्रेम का प्रतीक स्थापित किया है। कालिदास के अन्य काव्यों की भाँति मेघदूत से भी हमें यह अमर संदेश मिलता है कि शारीरिक सौन्दर्य एवं भौतिक वासना पर आधारित प्रेम नश्वर एवं क्षणिक होता है। वह कभी भी सुखकारी तथा शान्तिप्रद नहीं होता। परस्पर समर्पण, त्याग एवं कर्तव्य की भावना ही प्रेम को अनश्वर दिव्य बनाती है। □

## ७. मेघ : मार्ग

मेघदूत के पूर्वभाग में कालिदास ने रामगिरि से अलकापुरी तक के मार्ग में पड़ने वाले प्रसिद्ध स्थानों, नदियों, पर्वतों तथा तीर्थ स्थानों का ऐसा लुभावना चित्रण किया है, जिसे सुनकर यक्ष का संदेश ले जाने वाला मेघ ही नहीं, वरन् पाठक भी बस तुरन्त प्रस्थान कर देने को उद्यत हो जाये ।

अनेक विद्वानों ने कालिदास के भौगोलिक ज्ञान की प्रशंसा की है और उन्होंने कालिदास को इस बात का श्रेय दिया है कि मेघदूत में कालिदास ने मेघ का जो मार्ग बतलाया है, वही सचमुच मानसूनी हवाओं (Trade winds) का मार्ग होता है। परन्तु यहाँ इस तथ्य की जाँच करना हमारे लिए कठिन है। काव्य की समीक्षा की दृष्टि से भी इसका कोई महत्व नहीं है ।

यक्ष रामगिरि के आश्रमों में वास कर रहा था और वहीं से उसने मेघ से उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करने की याचना की। रामगिरि चित्रकूट पर्वत है, परन्तु कुछ विद्वानों का विचार है कि रामागिरि नागपुर से उत्तर में कुछ दूरी पर स्थित कोई पहाड़ी थी, जिसे रामटेक कहा जाता है।[१] रामगिरि से उत्तर की ओर चलते हुए सबसे पहला प्रदेश 'माल' नाम का पठार पड़ता है। उससे पश्चिम-उत्तर की ओर चलते हुए अगला स्थान आम्रकूट नाम का पर्वत आता है, उससे आगे विन्ध्याचल पर्वत की तलहटी (बाद) में नर्मदा (रेवा) नदी बल खाती हुई मिलती है। उसके बाद छोटे-मोटे अनेक पर्वतों को पार करके दशार्ण (आधुनिक छत्तीसगढ़) नाम का जनपद आ जाता है, जिसकी विदिशा (आधुनिक भीलसा या बीसनगर) राजधानी बड़ी प्रसिद्ध थी और जो वेत्रवती (बेतवा) के किनारे स्थित थी।

विदिशा के समीप 'नीचैः' नामक गिरि को पार करके मेघ को और पश्चिम की ओर मुड़कर 'अवन्ति' (मालवा का पश्चिमी भाग जनपद की राजधानी उज्जयिनी) जाने के लिए कहा गया है, यद्यपि वैसा करने पर उसका रास्ता टेढ़ा हो जायेगा ।

विदिशा से उज्जयिनी (विशाला, आधुनिक उज्जैन) पहुँचने में रास्ते में निर्विन्ध्या और शिप्रा नदियाँ है। वहां महाकाल का मन्दिर भी दृष्टव्य स्थान था, जो गन्धवती नदी के किनारे स्थित था।

उज्जयिनी से आगे बढ़कर गम्भीरा (शिप्रा की कोई सहायक नदी) पड़ती है और देवगिरि (आधुनिक देवगढ़) आ जाता है। देवगिरि में स्कन्द का प्रसिद्ध पुण्य-धाम था। इसके पश्चात् कुछ रास्ता पार करने के बाद चर्मण्वती (आधुनिक चम्बल) नदी आ जाती है। चम्बल नदी को पार

---

१. रामगिरि के आधुनिक नाम और स्थिति के विषय में बड़ा विवाद है। कुछ विद्वान् इसे 'रामगढ़' बतलाते है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने (मेघदूत—एक पुरानी कहानी) इसे सरगुजा रियासत में स्थित कोई छोटी पहाड़ी माना है। वस्तुतः रामगिरि चित्रकूट ही है ।

करके दशपुर[१] (आधुनिक मन्दसौर या दसोर) नगर आ जाता है । इसके बाद ब्रह्मावर्त आ जाता है, जिसमें कुरुक्षेत्र का प्रसिद्ध प्रदेश है, जहाँ महाभारत में प्रसिद्ध कौरव-पाण्डव युद्ध हुआ था और जिसमें परम-पावन सरस्वती नदी बहती थी ।

कुरुक्षेत्र के मैदान को पार करके कनखल नामक स्थान आ जाता है,जहाँ गङ्गा नदी हिम से उतर कर मैदान (समतल भूमि) में आ जाती है। उसके आगे गङ्गा का उद्गम-स्थान हिम पर्वत आ जाता है। हिमालय में एक शिला में प्रकट शम्भु के चरणन्यास हैं। भक्त लोग के साथ जिनकी परिक्रमा किया करते हैं। हिमालय के तट के समीप अन्य दर्शनीय स्थान देखते हुए आगे बढ़ने पर क्रौञ्चरन्ध्र आ जाता है और उसमें से होकर उत्तर की ओर बढ़ने कैलाश पर्वत आ जाता है, जिसकी गोद में अलकापुरी विद्यमान् है।

कालिदास ने इस प्रकार मेघ-मार्ग-वर्णन के व्याज से मध्य भारत से लेकर हिमालय हिमाच्छादित धवल शिखरों तक मार्ग में पड़ने वाले प्राकृतिक सौन्दर्य और ऐतिहासिक धार्मिक महत्व के सभी मुख्य स्थानों का कवित्वमय वर्णन दे दिया है ।

## ८. मेघदूत : मूल पाठ एवं टीकाएं

मेघदूत की लोकप्रियता के कारण मेघदूत के पाठ में बड़ी विभिन्नता पायी जाती है अब विद्वानों के लिए यह निर्णय करना बड़ा कठिन कार्य हो गया है कि कालिदास के मेघदूत में कितने श्लोक थे और कौन-कौन से श्लोक बाद में उत्साही लोगों ने जोड़ दिये

इस समय मेघदूत के अनेक पाठ मिलते हैं। उनमें श्लोकों की संख्या, उनके क्रम पाठों में बहुत अधिक भेद है। इसलिए प्रबुद्ध पाठक में यह जिज्ञासा स्वाभाविक ही है कि कालि के मूल मेघदूत का स्वरूप क्या रहा होगा?[२]

मेघदत की पाण्डुलिपियाँ संसार के सभी प्रसिद्ध पुस्तकालयों में—भारतवर्ष के भागों में, अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी और फ्रांस आदि पाश्चात्य देशों में और नेपाल में—मि है। कुछ पाण्डुलिपियों में केवल मूल-पाठ है और कुछ लिपियों में संस्कृत की प्राचीन टी भी हैं। डॉ० एस० के० डे का विचार है कि मेघदूत का मूल स्वरूप निश्चित करने में के मूल-पाठ वाली पाण्डुलिपियों का उतना महत्व नही है जितना कि संस्कृत-टीकाओं समेत पाण्डुलि का महत्व है।[३]

मेघदूत का उपलब्ध प्राचीनतम रूप हमें जिनसेन के पार्श्वाभ्युदय में मिलता है, जो आ शताब्दी की रचना है और जिसके प्रत्येक श्लोक के चौथे चरण में मेघदूत की एक-एक प उद्धृत की गयी है। पार्श्वाभ्युदय के अनुसार मेघदूत में १२० श्लोक हैं और इनमें नौ प्र माने जाने वाले श्लोक भी सम्मिलित हैं, जिनमें से पाँच को मल्लिनाथ ने भी प्रक्षिप्त मान

---

१. कवि के इस कथन से कुछ विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि कालिदास की लि और पहचान के विषय में विद्वानों में मतभेद है। विल्सन ने इसे उज्जैन और थानेसर सीध में स्थित आधुनिक रन्तिपुर माना है। आप्टे इसे आधुनिक धौलपुर समझते हैं।

२. मेघदूत का मूल-पाठ खोज निकालने के लिए आधुनिक युग मे अनेक विद्वानों ने प्र किया है। इस दिशा में अर्वाचीनतम तथा प्रशस्यतम प्रयत्न डॉ० एस० के० डे क (देखिये उनका सम्पादित मेघदूत, साहित्य एकादमी, न्यू दिल्ली से प्रकाशित प्रथम संस्क १९१७)।

३. मेघदूत, साहित्य अकादमी न्यू दिल्ली द्वारा प्रकाशित, १९५७, Introduction, p. X

जिनसेन ने सम्भवत: मेघदूत का अपने सम्प्रदाय में प्रचलित पाठ अपना लिया था, जिसमें उसके समय में भी प्रक्षिप्त श्लोक सम्मिलित हो चुके थे।

कश्मीरी टीकाकार वल्लभदेव के अनुसार, जो मेघदूत के टीकाकारों में सबसे प्राचीन माना जाता है, मूल मेघदूत में १११ श्लोक थे। यद्यपि वल्लभदेव की टीका में ११२ श्लोक दिये गये हैं, परन्तु वल्लभदेव ने **'अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं सानुमांश्चित्रकूट:'** पद्य को प्रक्षिप्त माना है। स्थिरदेव की टीका में भी १११ श्लोक ही पाये जाते हैं। दक्षिणावर्त, पूर्णसरस्वती और परमेश्वर की टीकाओं में केवल ११० श्लोक हैं। इन तीनों टीकाकारों ने **'गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पै:'** (उ० मे० ११) श्लोक छोड़ दिया है।

मेघदूत के श्लोकों की सबसे अधिक संख्या जैन लेखकों और टीकाकारों ने दी है। विजयसूरि और मेघराज ने श्लोकों की संख्या १२७ दी है। जनार्दन, लक्ष्मीनिवास, सुमतिविजय, महिमसिंह गणि और मेघलता में से प्रत्येक ने १२६; नेमिदूत, शीलदूत, सारोद्धारिणी, दिवाकर उपाध्याय और कनककीर्तिगण में से प्रत्येक ने १२५; सरस्वतीतीर्थ और क्षेमहंस-गणि मे से प्रत्येक ने १२३; चारित्रवर्धन ने १२२ और जिनसेन ने १२० श्लोक संख्या दी है।

सिंहली अनुवाद में ११८ और तिब्बती अनुवाद में ११७ श्लोक पाये जाते हैं। मल्लिनाथ ने अपनी प्रसिद्ध टीका संजीवनी में १२१ श्लोक दिये हैं, लेकिन उनमें से यदि प्रक्षिप्त स्वीकार किये गये श्लोकों को हटा दिया जाये तो ११५ श्लोक रह जाते हैं।

पूर्वी टीकाकारों में से मकरन्द मिश्र ने श्लोकों की संख्या ११८; रामनाथ तर्कालङ्कार ने १११; शाश्वत, सनातन गोस्वामी, कल्याणमल्ल, कविरत्न चक्रवर्ती और हरगोविन्द वाचस्पति में से प्रत्येक ने ११५; भगीरथ मिश्र और भरतमलिक में से प्रत्येक ने ११४ श्लोक संख्या दी है।

मेघदूत के प्रारम्भिक आलोचनात्मक संस्करणों में से विल्सन ने ११६, गिल्डमाइस्टर ने ११३, स्टेन्त्सलर ने ११२ श्लोक दिये हैं। मैक्डानल ने भी मेघदूत के अपने संस्करण में १११ श्लोक दिये हैं।

डॉ० एस० के० डे का विचार है कि कालिदास के मूल मेघदूत में सम्भवत: ११० या १११ श्लोक थे और जो श्लोक वल्लभदेव की टीका में नहीं हैं, उन्हें कालिदास की मौलिक रचना नहीं माना जा सकता। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने पू० मे० ६५ और उ० मे० ११ के भी मौलिक होने में संदेह प्रकट किया है। जे० हेर्टल ने केवल १०८ श्लोकों को मौलिक माना है और पू० मे० श्लोक संख्या ७ और ८ की मौलिकता पर भी संदेह किया है।

मेघदूत पर लगभग ४० से भी अधिक टीकाएं उपलब्ध होती है, परन्तु उनमें केवल वल्लभ, मल्लिनाथ, सारोद्धारिणी, सरस्वतीतीर्थ, सुमतिविजय और महिम सिंहानी की टीकाएं अधिक प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त इसके अन्य भारतीय भाषाओं में गद्य-पद्य में अनुवाद भी हुए है। अनेक विदेशी भाषाओं में भी मेघदूत के अनुवाद हुए हैं। इससे मेघदूत की श्रेष्ठता तथा लोकप्रियता सिद्ध होती है । □

## ९. गीतिकाव्यों में मेघदूत का स्थान

संस्कृत-साहित्य में मेघदूत न केवल सर्वप्रथम खण्डकाव्य है, अपितु काव्यत्व की दृष्टि से भी सर्वश्रेष्ठ गीतिकाव्य है। संस्कृत-साहित्य में दूत काव्यों की परम्परा मेघदूत के पश्चात् ही प्रारम्भ हुई।

सन्देश ले जाने वाले को दूत कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने दूत के भेद निम्न श
में स्पष्ट किये हैं—

*निसृष्टार्थो मितार्थश्च तथा सन्देशहारकः।*
*कार्यप्रेष्यस्त्रिधा दूतो दूत्यश्चापि तथाविधाः॥*

इसके अनुसार उन्होंने निसृष्टार्थ, मितार्थ तथा सन्देशहारक ये तीन भेद किये हैं। उनमें जो दोनों का (जिसने भेजा और जिसके पास गया) भाव समझ कर सन्देश कहता है और क को सफल करता है उसे निसृष्टार्थ कहते हैं। यह तीनों में उत्तम होता है।[1] वाल्मीकि रामायण हनुमान् इसी प्रकार के दूत हैं। परिमित बात कर कार्य को सिद्ध करने वाले को मितार्थ कहते वह मध्यम होता है।[2] अभिज्ञानशाकुन्तलम् में मिश्रकेशी मेनका की मितार्थ दूती है। भेजने वा जितना कहता है उतना ही कहने वाले को सन्देशहारक कहते हैं।[3] यह सबसे निकृष्ट माना ज है; क्योंकि इसमें कल्पना शक्ति का अभाव होता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि मेघ को किस श्रेणी में रखा जाये? उत्तर स्पष्ट है, किसी भी नहीं; क्योंकि अचेतन पदार्थ न वक्ता की बात सुन सकता है और न बोद्धव्य की बात बता सकता है। अचेतन होते हुए भी मेघ का इस रहस्यपूर्ण संसार में महत्वपूर्ण स्थान है। पृथ्वी पर वर्षा आदि बहुत से कार्य मेघ द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। इसी कारण महाकवि कालि ने किसी चेतन व्यक्ति का ग्रहण न करके मेघ को सन्देशवाहक बनाकर अनोखी सूझ-बूझ परिचय दिया है।

नपे-तुले शब्दों में भाव की विशद व्यञ्जना कर देना मेघदूत का विशेष गुण है। मेघ में मनुष्य की चिर-नवीन विरह-वेदना है। इसमें स्त्री-पुरुष के मधुसिक्त प्रणय की कहानी है अपूर्व सौन्दर्य का अंकन है। इसकी शिक्षागर्भित मनमोहिनी कविता पर मोहित होकर आर्यासप्तशती गोवर्धनाचार्य ने अपने उद्गार इस प्रकार प्रकट किये हैं—

*साकूतमधुरकोमलविलासिनी कण्ठकूजितप्राये।*
*शिक्षासमयेऽपि मुदे रतिलीला कालिदासोक्तिः॥*

अर्थात् शिक्षा-समय में भी आनन्द देने वाली दो ही वस्तुएं हैं—एक भाव गर्भित, म और कोमल कण्ठकूजित वाली विलासनी कामिनी की रति लीला और दूसरी उसी के सम भावपूरित मधुर और कोमलकान्त पदावली वाली कालिदास की कविता।

अपने गुणों के कारण ही मेघदूत बहुत अधिक लोकप्रिय बना। इससे परवर्ती अनेक कवि ने भाव प्रेरणा ली और इसी के अनुकरण पर अनेकों दूत काव्य लिखे गये और इसके अने अनुवाद तिब्बती, जर्मन आदि अनेक भाषाओं में हुए। इससे प्रभावित होकर एक विदेशी विद्वा कोलब्रुक ने ये विचार प्रकट किये— *"यूरोप में ही क्या विश्व भर के साहित्य में ऐसी कृति खोज पर भी दूसरी नहीं मिलेगी।"* इससे मेघदूत का महत्व या गीतिकाव्य में स्थान स्वतः ही स हो जाता है। अग्र राय भाग (क)

---

१. उभयोर्भावमुन्नीय स्वयं वदति चोत्तरम्।
सुश्लिष्टं कुरुते कार्यं निसृष्टार्थस्तु स स्मृतः॥ (सा० द० ३/५९)।

२. मितार्थभाषी कार्यस्य सिद्धिकारी मितार्थकः। (वही ३/६०)।

३. यावद्भाषितसन्देशहारः सन्देशहारकः। (सा० द० ३/६०)।

महाकविकालिदासप्रणीतम्

# मेघदूतम्

## पूर्वमेघः

**कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः[1]**
**शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ।**
**यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु**
**स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥**

**अन्वयः**—स्वाधिकारात् प्रमत्तः कान्ताविरहगुरुणा वर्षभोग्येण भर्तुः शापेन अस्तङ्गमितमहिमा कश्चित् यक्षः जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु स्निग्धच्छायातरुषु रामगिर्याश्रमेषु वसतिं चक्रे ॥ १॥

**शब्दार्थ**—**स्वाधिकारात्**=अपने कार्य से, **प्रमत्तः**=असावधान, **कान्ताविरहगुरुणा**=प्रिया के विरह से दु:सह, **वर्षभोग्येण**=एक वर्ष तक भोगने वाले, **अस्तङ्गमितमहिमा**=नष्ट महिमा वाला, **जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु**=जनक की पुत्री के स्नान से पवित्र जल वाले, **स्निग्धच्छायातरुषु**=घने छाया वाले वृक्षों से युक्त, **रामगिर्याश्रमेषु**=रामगिरि के आश्रमों में, **वसतिम्**=निवास, **चक्रे**=करता था ।

**अनुवाद**—**अपने कार्य से असावधान, प्रिया के विरह से दु:सह, एक वर्ष तक भोगने वाले, स्वामी के शाप से नष्ट महिमा वाला, कोई यक्ष जनक की पुत्री के स्नान से पवित्र जल वाले, घने छाया वाले वृक्षों से युक्त, रामगिरि (पर्वत) के आश्रमों में निवास करता था ॥१॥**

**संस्कृत-टीका**—आत्मनियोगात् अनवहितः प्रियावियोगदु:सहेन संवत्सरभोग्येण स्वामिनः कुबेरस्य शापेन विनाशितगौरवः अनिर्दिष्टनामा यक्षः सीतामज्जनपवित्रजलेषु सान्द्रच्छायावृक्षेषु रामगिरिनामकपर्वताश्रमेषु चित्रकूटाश्रमेषु इत्यर्थः वासं कृतवान् ।

**सञ्जीवनी**—'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वाऽपि तन्मुखम्' इति शास्त्रात्काव्यादौ वस्तुनिर्देशात्कथां प्रस्तौति—कश्चिदिति । स्वाधिकारात् स्वनियोगात्प्रमत्तोऽनवहितः । 'प्रमादोऽनवधानता' इत्यमरः । ('जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्' इत्यपादानत्वम् । तस्मात्पञ्चमी ।) अत एवापराधाद्धेतोः। कान्ताविरहेण गुरुणा दुर्भरेण । दुस्तरेणेत्यर्थः । 'गुरुस्तु गीष्पतौ श्रेष्ठे गुरौ पितरि दुर्भरे' इति शब्दार्णवे । वर्षभोग्येण संवत्सरभोग्येण । 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया । 'अत्यन्तसंयोगे च' इति समासः । 'कुमति च' इति णत्वम् । भर्तुः स्वामिनः शापेन । अस्तङ्गमितो महिमा सामर्थ्यं यस्य सोऽस्तङ्गमितमहिमा । (अस्तमिति मकारान्तमव्ययम् । तस्य 'द्वितीया—' इति योगविभगात्समासः ।) कश्चिदनिर्दिष्टनामा यक्षो देवयोनिविशेषः । 'विद्याधराऽप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः । पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः' इत्यमरः । जनकतनयायाः सीतायाः स्नानैरवगाहनैः पुण्यानि पवित्राण्युदकानि येषु तेषु । पावनेष्वित्यर्थः । छायाप्रधानास्तरवश्छायातरवः। (शाकपार्थिवादित्वात्समासः) । स्निग्धाः सान्द्राश्छायातरवो नमेरुवृक्षा येषु तेषु । वसतियोग्येष्वित्यर्थः। 'स्निग्धं तु मसृणे सान्द्रे' इति 'छायावृक्षो नमेरुः स्यात्' इति च शब्दार्णवे । रामगिरेश्चित्रकूटस्याश्रमेषु वसतिम् । (बहिवस्यर्तिभ्यश्च, इत्यौणादिकोऽतिप्रत्ययः ।) चक्रे कृतवान् । अत्र रसो विप्रलम्भाख्यः

---

१. स्वाधिकारप्रमत्तः ।

शृङ्गार:, तत्राप्युन्मादावस्था । अत एवैकत्रानवस्थानं सूचितमाश्रमेष्विति बहुवचनेन । सीतां प्रति हनुमत्संदेशं मनसि निधाय मेघसंदेशं कवि: कृतवानित्याहु: । अत्र काव्ये सर्वत्र मन्दाक्रान्तावृत्तम्। तदुक्तम्–'मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भौ नतौ ताद्गुरू चेत्' इति ॥ १॥

**टिप्पणी–कान्ताविरहगुरुणा**—यहाँ कान्ता पद का प्रयोग कवि की इस बात का सूचक है कि यक्ष को अपनी पत्नी से विशेष प्रेम था, क्योंकि जो भाव कान्ता पद से व्यक्त होता है वह भाव पत्नी या भार्या से नहीं । इसलिए पत्नी का विरह यक्ष के लिए असह्य था । इस कारण यक्ष को स्वामी द्वारा दिया गया शाप अत्यन्त कठोर प्रतीत हो रहा था। यहाँ कान्ता पद का प्रयोग साभिप्राय है, इसलिए **परिकरालङ्कार** है, क्योकि जहाँ विशेष्य साभिप्राय हो वहाँ परिकर अलङ्कार होता है। आचार्य मम्मट ने परिकर अलङ्कार की परिभाषा इस प्रकार की है—

*''विशेषणैर्यत्साकूतैरुक्ति: परिकरस्तु स:'' (का० प्र० १०/१८३)*

**स्वाधिकारात्प्रमत्त:**— यहाँ कवि ने शाप का कारण, यक्ष द्वारा अपने कार्य से असावधानी करना बताया है, परन्तु किस प्रकार के कार्य में असावधानी की थी, यह नहीं बताया है। इस विषय में विद्वानों ने भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ की हैं। ब्रह्मपुराण में शाप का कारण स्वामी की पूजा के लिए फूलों का न लाना बताया गया है, अत: यहाँ भी उसी प्रकार की ही कल्पना कुछ विद्वानों द्वारा की गयी है। इसके विपरीत कुछ विद्वान् इसका कारण कुबेर के उद्योगों की ठीक प्रकार से रक्षा न करना मानते हैं। परन्तु इस विषय में **श्री साधुराम** का विचार अन्य विद्वानों से भिन्न है। उनका विचार है कि–'स्वाधिकारेण (इयं मे पत्नी ममैव, नान्येन प्रधृष्या इति स्वाधिकारबुद्ध्या) प्रकृष्टं मत्त:' (अर्थात् यह मेरी पत्नी किसी दूसरे के द्वारा अभिमृष्ट (उपभोग) नहीं की जा सकती, इस अपने अधिकार की भावना से उन्मत्त ।) इस आधार पर वे कल्पना करते हैं कि यक्ष ने अपने गण की प्रथा के अनुसार सुहागरात को अपनी पत्नी पर गणपति के अधिकार को सहन नहीं किया, अत: गण के नियम के अनुसार उसे एक वर्ष का प्रवास अङ्गीकार करना पड़ा ।

परन्तु उपर्युक्त कारणों में पूजा के लिए पुष्प न लाना, कार्य की असावधानी का कारण मानना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है ।

यहाँ **स्वाधिकारात्प्रमत्त:** शाप का हेतु बताया गया है, अत: यहाँ **पदार्थ हेतुक काव्यलिङ्ग** अलङ्कार है । काव्यलिङ्ग का लक्षण इस प्रकार है—

*''काव्यलिङ्गं हेतोर्वाक्यपदार्थता'' (का० प्र० १०/१७४)*

**वर्षभोग्येण** से अभिप्राय है कि शाप की अवधि एक वर्ष तक थी, परन्तु यह घटना कब घटित हुई, कब यक्ष को शाप दिया गया, इसके विषय में स्वयं कालिदास ही सबसे बड़े प्रमाण हैं । उन्होंने मेघदूत (उ० मे०/५०) में ही लिखा है कि– **''शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ''**—अर्थात् अगली देवोत्थान एकादशी को जब विष्णु भगवान् शेष शय्या से उठेंगे उसी दिन मेरा शाप समाप्त होगा । अत: स्पष्ट है कि यक्ष को शाप देवोत्थान एकादशी के दिन ही दिया गया होगा ।

**कश्चिद् यक्ष:**– ऐसा लिखकर कवि ने यहाँ किसी भी यक्ष का नाम नहीं दिया, अपितु कश्चिद् कहकर ही काम चलाया है । इस विषय में भी विद्वानों ने कल्पनायें की हैं कि इसका वृत्त कहीं भी वर्णित नहीं है, अपितु काल्पनिक है । अत: यहाँ यक्ष का नाम देने की आवश्यकता नहीं है । जबकि कुछ विद्वानों की मान्यता है कि कवि ने यक्ष का नाम इसलिए नहीं दिया, क्योंकि उसने अपने स्वामी की आज्ञा का पालन नहीं किया और ऐसे व्यक्ति का नाम देना परम्परा से निषिद्ध था। देखिये—

*भर्तुराज्ञां न कुर्वन्ति ये च विश्वासघातका: ।*
*तेषां नामापि न ग्राह्यं शास्त्रादौ तु विशेषत: ॥*

यक्ष देवताओं की ही श्रेणी है । **''अष्टविकल्पो दैव:''** इस उक्ति के अनुसार—ब्रह्मा,

प्रजापति, इन्द्र, पितृगण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाच ये देवताओं के (आठ) भेद हैं। यक्षों का कार्य कुबेर के उद्यान की रक्षा करना है, जैसा कि महाभारत वनपर्व (१५०/२२ तथा १५३/१) में कहा गया है।

**जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु**—जनक की पुत्री के स्नान से पवित्र जल वाले (आश्रम)। यहाँ कवि ने **जनकतनया** पद का प्रयोग किया है, **सीतया** का नहीं; क्योंकि वह जल जनक की पुत्री के स्नान से पवित्र हुआ है, सीता के स्नान से नहीं। क्योंकि सीता किसी अन्य स्त्री का भी नाम हो सकता है, अत: यहाँ कवि को जनकतनया (सीता) ही अभीष्ट है, इसलिए **जनकतनया** पद रखा गया है।

आश्रम का जल सीता जी के स्नान से पवित्र बताया है, राम के स्नान से नहीं; क्योंकि सीता जी की उत्पत्ति यज्ञ भूमि से मानी गयी है। अत: सीता जी का शरीर स्वाभाविक रूप से ही पवित्र है और इसीलिए आश्रम का जल भी सीता जी के स्नान से पवित्र हो गया है।

**स्निग्धच्छायातरुषु**—प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने छाया तरु को, नमेरु वृक्षों का अर्थ किया है, परन्तु इसका घने छाया वाले वृक्ष अर्थ ही अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।

**रामगिर्याश्रमेषु**—रामगिरि के आश्रमों में, जहाँ यक्ष ने एक वर्ष व्यतीत किया था। यह रामगिरि कहाँ है, इस विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। प्रसिद्ध टीकाकार **वल्लभ** व **मल्लिनाथ** ने इस रामगिरि को **चित्रकूट** माना है, जबकि **विल्सन** महोदय इसे नागपुर के पास अवस्थित **रामटेक** मानते हैं, परन्तु नवीन अन्वेषण के अनुसार मध्य प्रदेश में स्थित **रामगढ़** को ही रामगिरि कहा गया है, जिससे नर्मदा नदी का उद्गम हुआ है तथा आम्रकूट के पास है। इन दोनों की आगे भी कवि कालिदास ने चर्चा की है, परन्तु इन सब मतों में वल्लभ व मल्लिनाथ का मत ही अधिक उपयुक्त जान पड़ता है, क्योंकि **जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु** तथा **रघुपतिपदैरङ्कितम्** (पूर्व मेघ/१२) को दृष्टि में रखते हुए यह मानना पड़ेगा कि यह ऐसा कोई पर्वत है, जहाँ वन-गमन के समय राम का उससे सम्बन्ध रहा हो तथा सीता जी ने वहाँ स्नान किया हो। चित्रकूट से लेकर पंचवटी तक के प्रसङ्ग में कहीं भी रामटेक या रामगढ़ आदि का ऐसा कोई प्रसङ्ग नहीं आया है, जहाँ राम के ठहरने के साथ सीता जी ने स्नान किया हो। चित्रकूट में राम के ठहरने का प्रसङ्ग वाल्मीकि रामायण में मिलता है। देखिए—

*मातंगयूथानुसृतपक्षिसंघानुनादितम्*
*चित्रकूटमिमं पश्य प्रवृद्धशिखिरं गिरिम् ॥*
× × × ×
*ततस्तौ पादचरेण गच्छन्तौ सह सीतया।*
× × × ×
*अयं वासो भवेत् तात वयमत्र वसेमहि ॥*[1]

यहीं सीता जी के स्नान करने का प्रसङ्ग भी आया है, जैसा कि निम्न श्लोकों से स्पष्ट है—

*दर्शनं चित्रकूटस्य मन्दायाकिन्याश्च शोभते।*
× × × ×
*सखीवच्च विगाहस्व सीते मन्दाकिनी नदीम्।*
*कमलान्यवमज्जन्ती पुष्कराणि च भामिनि ॥*[2]

---

१. वाल्मीकि रामायण/अयोध्या काण्ड/५६/१०—१५।
२. वाल्मीकि रामायण/अयोध्या का०/९५/१२—१४।

उपर्युक्त विवेचन से यह पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुतः रामगिरि चित्रकूट ही है, जहाँ राम और सीता के ठहरने और स्नान करने का वर्णन मिलता है। अब प्रश्न यह है कि फिर उसे चित्रकूट के स्थान पर रामगिरि क्यों कहा गया? सम्भव है कि राम के निवास करने के कारण ही उसे रामगिरि कहा गया हो।

**व्याकरण—कान्ताविरहगुरुणा**—कान्तायाः विरहः तेन गुरुः तेन (त० पु० समास) **स्वाधिकारात्**—स्वस्य अधिकारः तस्मात् (त० पु०) अधिक्रियते अस्मिन् इति अधि+ √कृ+ घञ् पञ्चमी एकवचन प्रमाद अर्थ में "जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्" वार्तिक से पञ्चमी का प्रयोग। **प्रमत्तः**—प्र+ √मद्+ क्त, **वर्ष-भोग्येण**—वर्षं भोग्येन "कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे" (२।३।५) से द्वितीया, **भोग्येन**—भुज् + ण्यत्, 'कुमति च'(८।४।१३) से न को ण हुआ है। **अस्तङ्गमितमहिमा**—अस्तं गमितः महिमा यस्य सः (बहुव्रीहि)=अस्तम् +√गम्+ णिच्+ क्त। **महिमा**—महत् + इमनिच्। **शापेन**—√शप् +घञ्, यहाँ हेतु में तृतीया है। **जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु**—जनकस्य तनया (त० पु०) तस्याः स्नानानि (त० पु०) तैः पुण्यानि उदकानि येषां तेषु (बहुव्रीहि) **स्निग्धच्छायातरुषु**—स्निग्धा छाया येषां ते स्निग्धच्छायाः तरवः येषु तेषु (बहुव्रीहि)। **वसतिम्**—√वस+अति (उणादिः)। **रामगिर्याश्रमेषु**—रामगिरेराश्रमेषु (ष० तत्पुरुष), **चक्रे**—√कृ, आत्मनेपद, लिट्, प्रथम पु०, एक वचन।

इस काव्य के नाम **मेघदूतम्** की दो प्रकार से व्याख्या की जा सकती है। मेघ एव दूतो मेघदूतः यह पद पुंल्लिग में है। मेघदूतमधिकृत्य कृतं काव्यं मेघदूतम् तथा मेघो दूतो यस्मिन् तत् मेघदूतम् यह पद नपुंसकलिंग में रहता है।

ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए ग्रन्थ के आरम्भ में मंगलाचरण किया जाता है मंगलाचरण तीन प्रकार का होता है— १. आशीर्वादात्मक, २. नमस्क्रियात्मक, ३. वस्तुनिर्देशात्मक "**आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वाऽपि तन्मुखम्**" यहाँ इस काव्य में तीसरे प्रकार का अर्थात् वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण अपनाया गया है।

सम्पूर्ण काव्य में **मन्दाक्रांता** छन्द का प्रयोग हुआ है, जिसका लक्षण इस प्रकार है—**मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद्गुरु चेत्।** अर्थात् इस छन्द में प्रत्येक पाद में १७ अक्षर होते हैं। वे मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु इस क्रम में होते हैं तथा चौथे, दसवें, सत्रहवें अक्षर पर यति होती है।

मेघदूत में **विप्रलम्भ** शृङ्गार का वर्णन है।

**प्रसङ्ग**—कामी यक्ष ने आषाढ़ के प्रथम दिन में मेघ के दर्शन किये। वह मेघ हाथी के समान सुन्दर था—

**तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी**
**नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ।**
**आषाढस्य प्रथमदिवसे[1] मेघमाश्लिष्टसानुं**
**वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥२॥**

**अन्वयः**—तस्मिन् अद्रौ अबलाविप्रयुक्तः कनकवलयभ्रंशरिक्त प्रकोष्ठः कामी सः कतिचित् मासान् नीत्वा आषाढस्य प्रथमदिवसे आश्लिष्टसानुं वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं मेघं ददर्श ॥२॥

**शब्दार्थ—तस्मिन्**=उस (पूर्वोक्त रामगिरि), **अद्रौ**=पर्वत पर, **अबलाविप्रयुक्तः**=प्रिया से वियुक्त, **कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः**=स्वर्ण कङ्कण के गिरने से शून्य कलाई वाले

१. प्रशमदिवसे।

कामी=कामुक, सः=उसने, **आश्लिष्टसानुम्**=पर्वत की चोटी से सटे हुए, **वप्रक्रीडापरिणतगज-प्रेक्षणीयम्**=वप्रक्रीड़ा में तिरछा दन्त प्रहार करने वाले हाथी के सदृश दर्शनीय ।

**अनुवाद**—उस (पूर्वोक्त रामगिरि) पर्वत पर प्रिया से वियुक्त स्वर्ण कङ्कण के गिरने से शून्य कलाई वाले कामुक उस (यक्ष) ने कुछ (अर्थात् आठ) मास बिताकर आषाढ़ के प्रथम दिन पर्वत की चोटी से सटे हुए वप्रक्रीड़ा में तिरछा दन्त प्रहार करने वाले हाथी के सदृश दर्शनीय मेघ को देखा ॥२॥

**संस्कृत-टीका**—तस्मिन् रामगिरिपर्वते प्रियाविरहदौर्बल्येन स्वर्णकङ्कणपातशून्यमणिबन्धः कामुकः यक्षः मासाऽष्टकं यापयित्वा आषाढस्य प्रथमदिने आक्रान्तकूटम उत्खातकेलितिर्यग्दन्त-प्रहारहस्तिदर्शनीयं मेघं दृष्टवान् ।

**सञ्जीवनी**—तस्मिन्निति । तस्मिन्नद्रौ चित्रकूटाद्रौ । अबलाविप्रयुक्तः कान्ताविरही । कनकस्य वलयः कटकम् । कटकं 'वलयोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । तस्य भ्रंशेन पातेन रिक्तः शून्यः प्रकोष्ठः कूर्परादधः प्रदेशो यस्य स तथोक्तः । 'कक्षान्तरे प्रकोष्ठः कूर्परादधः' इति शाश्वतः। विरहदुःखात्कृश इत्यर्थः । कामी कामुकः स यक्षः । कतिचिन्मासान् । अष्टौ मासानित्यर्थः । 'शेषान्मासान् गमय चतुरः' इति वक्ष्यमाणत्वात्। नीत्वा यापयित्वा । (आषाढानक्षत्रेण युक्ता पौर्णमास्याषाढी 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' इत्यण् । 'टिड्ढाणञ्—' इत्यादिना ङीप् । साषाढ्यस्मि-न्पौर्णमासीत्याषाढो मासः । 'सास्मिन्पौर्णमासीति संज्ञायाम्' इत्यण् ।) तस्य प्रथमदिवसे आश्लि-ष्टसानुमाक्रान्तकूटम । वप्रक्रीडा उत्खातकेलयः । 'उत्खातकेलिः शृङ्गाद्यैर्वप्रक्रीडा निगद्यते' इति शब्दार्णवे। तासु परिणतस्तिर्यग्दन्तप्रहारः । 'तिर्यग्दन्तप्रहारस्तु गजः परिणतो मतः' इति हलायुधः । स चासौ गजश्च तमिव प्रेक्षणीयं दर्शनीयं मेघं ददर्श । गजप्रेक्षणीयमित्यत्रेवलोपाल्लुप्तोपमा । ('केचित् आषाढस्य प्रथमदिवसे' इत्यत्र 'प्रत्यासन्ने नभसि' इति वक्ष्यमाणनभोमासप्रत्यासत्त्यर्थं 'प्रशमदिवसे' इति पाठं कल्पयन्ति । तदसङ्गतम् । प्रथमातिरेके कारणाभावात् । नभोमासस्य प्रत्यासत्त्यर्थमित्युक्तमिति चेन्न, प्रत्यासत्तिमात्रस्य मासप्रत्यासत्त्यैव प्रथमदिवसस्याप्युपपत्तेः । अत्य-न्तप्रत्यासत्तेरुपयोगाभावेनाविवक्षितत्वात् । विवक्षितत्वे वा स्वपक्षेऽपि प्रथमदिवसातिक्रमेण मेघदर्श-नकल्पनायां प्रमाणाभावेन तदसम्भवात् । प्रत्युतास्मत्पक्ष एव कुशलसंदेशस्य भाव्यनर्थप्रतीकारार्थस्य पुरत एवानुमानमुक्तं भवतीत्युपयोगसिद्धिः । ननून्मत्तस्य नायं विवेक इति चेन्न, उन्मत्तस्य नानर्थस्य प्रतीकारार्थं प्रवृत्तिरपीति सन्देश एव मा भूत् । तथा च काव्यारम्भ एवाप्रसिद्धः स्यादित्यहौ मूलच्छेदी पाण्डित्यप्रकर्षः । कथं तर्हि 'शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ' इत्यादिना भगवत्प्रबोधावधिकस्य शापस्य मासचतुष्टयावशिष्टस्योक्तिः । दशदिवसाधिक्यादिति चेत्—स्वपक्षेऽपि कथं सा, विंशतिदिवसैर्न्यूनत्वादिति सन्तोष्टव्यम्। तस्मादीषद्वैषम्यमविवक्षितमिति सुष्ठूक्तं 'प्रथमदिवसे' इति ।) ॥२॥

**टिप्पणी—कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः**—इस पद द्वारा यह सूचित होता है कि यक्ष अपनी प्रिया-विरह से इतना दुर्बल हो गया था कि उसने हाथ में जो स्वर्ण कङ्कण पहन रखा था वह ढीला हो जाने के कारण गिर पड़ा था, जिससे कलाई सूनी हो गयी थी।

**कतिचित् मासान्**—यहाँ कुछ मास केवल इतना ही कहा है, कोई निश्चित संख्या नहीं दी गयी है, परन्तु उत्तरमेघ श्लोक ५० में *"शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।"* लिखकर शेष शाप की अवधि चार मास बतायी है, जबकि पूर्वमेघ श्लोक १ में **"वर्षभोग्येण"** कहकर सम्पूर्ण शाप की अवधि एक वर्ष बतायी है। आठ मास व्यतीत हो चुके हैं, अतः **कतिचित् मासान्** का अर्थ आठ मास होगा।

**आषाढस्य प्रथमदिवसे**—कहीं-कहीं पर **"प्रशमदिवसे"** ऐसा पाठ भी मिलता है। **प्रथमदिवसे** का अर्थ है—प्रथम दिन, जबकि **प्रशमदिवसे** का अर्थ है—अन्तिम दिन। **प्रशमदिवसे** ऐसा पाठ मानने से अर्थ होगा, आषाढ़ के अन्तिम दिन । यह पाठ ठीक मानने वाले इसका सम्बन्ध पूर्वमेघ के श्लोक ४ के **प्रत्यासन्ने नभसि** अर्थात् "श्रावण मास के निकट आ जाने पर" इससे जोड़ते हैं, क्योंकि आषाढ का अन्तिम दिन श्रावण मास के अति निकट है । परन्तु महाकवि कालिदास के **ऋतुसंहार** के अनुसार भी आषाढ के प्रथम दिन से ही वर्षा

का प्रारम्भ प्रतीत होता है । अतः **प्रथमदिवसे** पाठ ही अधिक उपयुक्त है । प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने भी **प्रथमदिवसे,** यही पाठ स्वीकार किया है ।

**वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयम्**—वप्रक्रीडा से अभिप्राय उस क्रीड़ा से है जब प्राय मस्त सांड, हाथी, भैंसे आदि पशु टीले की मिटटी को सींग से उखाड़ते हैं । इसे प्राय **उत्खातकेलि** भी कहा जाता है ।

**व्याकरण—अबलाविप्रयुक्तः**—अबलया विप्रयुक्तः (तृ० त०), **विप्रयुक्तः**—वि+प्र+√युज्+क्त । **कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः**—कनकस्य वलयः=कनकवलयः (ष० त०) कनकवलयस्य भ्रंशः (ष० त०) तस्मात् रिक्तः प्रकोष्ठो यस्य सः (बहु०) । **कामी**—√कम् +णिनि अथवा √कम्+घञ् भावे अथवा कामः अस्य अस्तीति ऐसा विग्रह कर काम+इनि। **नीत्वा**—√नी+क्त्वा। **आश्लिष्ट**—आ+√श्लिष्+क्तः । **वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयम्**— वप्रक्रीडासु परिणतः (स० त०) स चाऽसौ गजः (कर्मधारय), वप्रक्रीडापरिणतगज इव प्रेक्षणीयः (उपमान कर्मधारय)। **प्रेक्षणीय**—प्र+ √ईक्ष्+अनीयर्। **ददर्श**—√दृश्+लिट् प्र० पु० एक व० परस्मैपद ।

यहाँ **लुप्तोपमा** अलङ्कार है। गजप्रेक्षणीयम् में उपमा वाचक शब्द इव लुप्त है ।

**प्रसङ्ग**—मेघ को देखकर वह यक्ष बहुत समय तक सोचता हुआ उसके सम्मुख खड़ा रहा—

**तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो**[१]—
**रन्तर्वाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ ।**
**मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः**
**कण्ठाश्लेषप्रणयिनि**[२] **जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥३॥**

**अन्वयः**—राजराजस्य अनुचरः अन्तर्वाष्पः (सन्) कौतुकाधानहेतोः तस्य पुरः कथमपि स्थित्वा चिरं दध्यौ । मेघालोके सुखिनः अपि चेतः अन्यथावृत्ति भवति कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने दूरसंस्थे (सति) किं पुनः ॥३॥

**शब्दार्थ—राजराजस्य**=यक्षों के राजा (कुबेर) का, **अनुचरः**=सेवक, **अन्तर्वाष्पः**=अन्दर ही आँसुओं को रोके हुए, **कौतुकाधानहेतोः**=उत्कण्ठा को उत्पन्न करने वाले, **पुरः**=सामने, **कथमपि**=किसी प्रकार, **दध्यौ**=सोचता रहा, **मेघालोके**=मेघ के दर्शन होने पर, **सुखिनः अपि**=सुखी व्यक्ति का भी, **अन्यथावृत्ति**=दूसरे प्रकार की वृत्ति वाला (चंचल), **कण्ठाश्लेषप्रणयिनि**=कण्ठ के आलिङ्गन के इच्छुक, **दूरसंस्थे**=दूर स्थित होने पर, **किं पुनः**=फिर कहना ही क्या ?

**अनुवाद—यक्षों के राजा (कुबेर) का सेवक अन्दर ही आँसुओं को रोके हुए, उत्कण्ठा को उत्पन्न करने वाले उस (मेघ) के सामने किसी प्रकार ठहर कर देर तक सोचता रहा । मेघ के दर्शन होने पर सुखी (व्यक्ति) का भी चित्त दूसरे प्रकार की वृत्ति वाला (चञ्चल) हो जाता है, (फिर) कण्ठ के आलिङ्गन के इच्छुकजन (प्रिया) के दूर स्थित होने पर तो कहना ही क्या ॥३॥**

**संस्कृत-टीका**—यक्षराजकुबेरस्य भृत्यः पूर्वोक्तो यक्षः निरुद्धाऽश्रु सन् अभिलाषोत्पत्तिकारणस्य तस्य मेघस्य अग्रे येन केन प्रकारेण स्थित्वा बहुकालपर्यन्तं चिन्तनं कृतवान् । मेघदर्शने कान्तासहितस्याऽपि चित्तमन्यप्रकारं विकारयुक्तम् इत्यर्थः भवति कण्ठालिङ्गनार्थिनि जने दूरस्थिते सति किं वक्तव्यम्, वियोगिनां मेघदर्शनमभीष्टजन स्मरणोद्दीपकं भवतीति भावः ।

---

१. केतकाधान हेतोः ।
२. तस्याश्लेषप्रणयिनि ।

**सञ्जीवनी**—तस्येति । राजानो यक्षाः । 'राजा प्रभौ नृपे चन्द्रे यक्षे क्षत्रियशक्रयोः' इति विश्वः । राज्ञां राजा राजराजः कुबेरः । 'राजाराजो धनाधिपः' इत्यमरः । ('राजाहः सखिभ्यष्टच्' इति टच्प्रत्ययः।) तस्यानुचरो यक्षः । अन्तर्वाष्पो धीरोदात्तत्वादन्तःस्तम्भिताश्रुः सन् । कौतुकाधानहेतोरभिलाषोत्पादाकारणस्य । 'कौतुकं चाभिलाषे स्यादुत्सवे नर्महर्षयोः' इति विश्वः । तस्य मेघस्य पुरोऽग्रे कथमपि । गरीयसा प्रयत्नेनेत्यर्थः । ('ज्ञानहेतुविवक्षायामप्यादि कथमव्ययम् । कथमादि तथाप्यन्तं यत्नगौरवबाढयौः' इत्युज्ज्वलः ।) स्थित्वां चिरं दध्यौ चिन्तयामास । ('ध्यै चिन्तायाम्' इति धातोर्लिट् ।) मनोविकारोपशमनपर्यन्तमिति शेषः । विकारहेतुमाह—मेघालोक इति । मेघदर्शने सति सुखिनोऽपि प्रियादिजनसङ्गतस्यापि चेतश्चित्तमन्यथाभूता वृत्तिव्यापारो यस्य तदन्यथावृत्ति भवति । विकृतिमापद्यत इत्यर्थः । कण्ठाश्लेषप्रणयिनि कण्ठालिङ्गनार्थिनि जने । दूरे संस्था स्थितिर्यस्य तस्मिन्दूरसंस्थे सति किं पुनः? विरहिणः किमुत वक्तव्यमित्यर्थः । विरहिणां मेघसन्दर्शनमुद्दीपनं भवतीति भावः । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । (तदुक्तं दण्डिना—'ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुत्य किञ्चन । तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुनः' इति) ॥३॥

**टिप्पणी—राजराजस्य**—विश्वकोष की इस उक्ति, **'राजा प्रभौ नृपे चन्द्रे यक्षे क्षत्रियशक्रयोः'** के अनुसार पहले प्रयुक्त राजन् शब्द का अर्थ यक्ष हुआ, इस प्रकार इसका अर्थ हुआ—यक्षों का राजा अर्थात् कुबेर ।

**अन्तर्वाष्पः**—मेघ के दर्शन होने पर विरही यक्ष को अपनी प्रियतमा का स्मरण हो आया । उसे स्मरण करके उसके आँसू निकल आये, परन्तु फिर भी वह उन आँसुओं को अपने अन्दर ही दबाये रहा, क्योंकि वह मेघ के सामने अपनी धीरता नहीं खोना चाहता था।

**कौतुकाधानहेतोः**—कहीं-कहीं पर **''केतकाधानहेतोः''** यह पाठ भी मिलता है । इसका अर्थ होगा केतकी के पुष्प उत्पन्न करने वाला । परन्तु यहाँ प्रथम पाठ ही अधिक उपयुक्त दिखायी पड़ता है, क्योंकि मेघ को देखकर एक-दूसरे के प्रति उत्कण्ठा उत्पन्न होना बहुत स्वाभाविक है । केतकी के पुष्पों के प्रकट होने से इतनी उत्कण्ठा नहीं होती ।

**सुखिनः**—यहाँ इससे अभिप्राय प्रिया से युक्त व्यक्ति है, धन से युक्त नहीं । साहित्यकार प्रिया से युक्त व्यक्ति को ही सुखी मानते हैं, धन से युक्त व्यक्ति को नहीं ।

**कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने**—यह पद सप्तमी के कारण ऐसे व्यक्ति की ओर संकेत कर रहा है, जो उस यक्ष के कण्ठालिङ्गन का इच्छुक हो और वह व्यक्ति केवल उसकी प्रिया ही हो सकती है जो उससे दूर स्थित है । **''जने''** से अभिप्राय यहाँ प्रिया से है। कहीं-कहीं **कण्ठाश्लेषप्रणयिनि** के स्थान पर **तस्याश्लेषप्रणयिनि** यह पाठ भी मिलता है, इसका अर्थ होगा उस यक्ष के आलिङ्गन का इच्छुक ।

**व्याकरण—राजराजस्य**=राज्ञां राजा (ष० त०), यहाँ **''राजाऽहः सखिभ्यष्टच्''** इस सूत्र से राजन् शब्द से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ है । **अनुचरः**=अनुचरति इति, अनु+√चर्+अ । **अन्तर्वाष्पः**=अन्तः स्तम्भितं वाष्पं यस्य सः (बहुव्रीहि) । **कौतुकाधानहेतोः**=कौतुकस्य आधानं तस्य हेतोः (ष० त०), **कौतुक**=कुतुक+अण्, **आधान**=आ+√धा+ल्युट् । **स्थित्वा**=√स्था+क्त्वा, पुरः और चिरम् दोनों पद अव्यय हैं । **दध्यौ**=√ध्यै+ लिट् प्र० पु० एकव०। **मेघालोके**=मेघस्य आलोकः तस्मिन् (ष० त०), **आलोक**= आ+√ लोक्+ घञ् भावे। **सुखिनः**=सुखमस्य विद्यते इति सुखी तस्य, सुखिन् का षष्ठी एकव०, सुख+ इनिः। **अन्यथावृत्तिः**=अन्यथा वृत्तिः यस्य तत् (बहुव्रीहि) । **कण्ठाश्लेषप्रणयिनि**=कण्ठस्य आश्लेषः तस्य प्रणयी (ष० त०), **आश्लेषः**=आ+√ श्लिष्+घञ् । **दूरसंस्थे**=दूरे संस्था यस्य स दूरसंस्थः तस्मिन् (बहुव्रीहि), **संस्था**= सम्+√स्था+अङ् भावे बहुव्रीहि समास के सन्दर्भ में संस्था शब्द के उपसर्जन होने के कारण अन्तिम आ को ह्रस्व ।

इस श्लोक में उत्तरार्द्ध से पूर्वार्द्ध स्थित चिन्तारूप पदार्थ का समर्थन होने से **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार और उत्तरार्द्ध में 'किं पुनर्दूरसंस्थे'' में कैमुतिक न्याय से **अर्थापत्ति**

अलङ्कार है। इस प्रकार अर्थान्तरन्यास और अर्थापत्ति के निरपेक्ष भाव से स्थित होने के कारण **संसृष्टि** अलङ्कार है—

*"मिथोऽनपेक्षयैतेषां स्थितिः संसृष्टिरुच्यते।"* (सा० द० १०/९८)

**प्रसङ्ग**—यक्ष ने कुटज के पुष्पों से मेघ की पूजा कर उसका इस प्रकार स्वागत किया—

**प्रत्यासन्ने नभसि[1] दयिताजीविताालम्बनार्थी[2]**
**जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन्प्रवृत्तिम्।**
**स प्रत्यग्रैः[3] कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै**
**प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार॥४॥**

**अन्वयः**—नभसि प्रत्यासन्ने दयिताजीविताालम्बनार्थी सः जीमूतेन स्वकुशलमयीं प्रवृत्तिं हारयिष्यन् प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै प्रीतः(सन्) प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार।

**शब्दार्थ**—**नभसि**= श्रावण मास के, **प्रत्यासन्ने**=निकट आने पर, **दयिताजीविताालम्बनार्थी**= प्रिया के जीवन को सहारा देने के इच्छुक, **जीमूतेन**= मेघ द्वारा, **स्वकुशलमयीम्**= अपनी कुशलमय, **प्रवृत्तिम्**=समाचार को, **हारयिष्यन्**= भेजने की इच्छा से, **प्रत्यग्रैः**= तत्काल तोड़े गये (ताजे), **कुटजकुसुमैः**= कुटज (पर्वतीय चमेली) के पुष्पों से, **कल्पितार्घाय** = अर्घ्य सामग्री तैयार करके, **प्रीतिप्रमुखवचनम्**=प्रणय भरे वचनों से, **स्वागतम्** =स्वागत, **व्याजहार**= कहा।

**अनुवाद**—**श्रावण मास के निकट आने पर प्रिया के जीवन को सहारा देने के इच्छुक उस (यक्ष) ने मेघ द्वारा अपने कुशलमय समाचार को भेजने की इच्छा से तत्काल तोड़े गये (ताजे) कुटज (पर्वतीय चमेली) के पुष्पों से अर्घ्य सामग्री तैयार करके (पूजा करके) उस (मेघ) के लिए प्रसन्नतापूर्वक प्रणय भरे वचनों से स्वागत कहा॥४॥**

**संस्कृत-टीका**— श्रावणमासे सन्निकृष्टे सति प्रियाप्राणधारणेच्छुकः जलधरेण स्वक्षेमयुक्तां वार्तां प्रापयिष्यन् सः यक्षः प्रसन्नः सन् नूतनैः गिरिमल्लिकापुष्पैः अनुष्ठितपूजाविधये मेघाय प्रीतिप्रधानवचनयुक्तं यथा स्यात् तथा कुशलागमनं पप्रच्छ।

**सञ्जीवनी**—अथ समाहितान्तःकरणः सन्किं कृतवानित्यत आह—प्रत्यासन्न इति। सः यक्षः। यश्चिरं दध्यौ स इत्यर्थः। नभसि श्रावणे। 'नभः खं श्रावणो नभाः' इत्यमरः। प्रत्यासन्ने आषाढस्यानन्तरं संनिकृष्टे। प्राप्ते सतीत्यर्थः। दयिताजीविताालम्बनार्थी सन्। वर्षाकालस्य विरहदुःखजनकत्वात् 'उत्पन्नानर्थप्रतीकारादनर्थोत्पत्तिप्रतिबन्ध एव वरम्' इति न्यायेन प्रागेव प्रियाप्राणधारणोपायं चिकीर्षुरित्यर्थः। जीवनस्योदकस्य मूतः पटबन्धो वस्त्रबन्धो जीमूतः। (पृषोदरादित्वात्साधुः।) 'मूतः स्यात्पटबन्धेऽपि' इति रुद्रः। तेन जीमूतेन जलधरेण प्रयोज्येन स्कवकुशलमयीं स्वक्षेमप्रधानां प्रवृत्तिं वार्ताम्। 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः' इत्यमरः। हारयिष्यन्प्रापयिष्यन् ('लृट् शेषे च' इति चकारात्क्रियार्थक्रियोपपदाल्लृट्प्रत्ययः।) जीवनार्थं कर्म जीवनप्रदेनैव भावः। ('हृक्रोरन्यतरस्याम्' इति कर्मसंज्ञायां विकल्पात्पक्षे कर्तरि तृतीया।) प्रत्यग्रैरभिनवैः कुटजकुसुममैर्गिरिमल्लिकाभिः। 'कुटजो गिरिमल्लिका' इति हलायुधः। कल्पितार्घाय कल्पितोऽनुष्ठितोऽर्घः पूजाविधिर्यस्मै तस्मै। 'मूल्ये पूजाविधावर्घः' इत्यमरः। तस्मै जीमूताय। ('क्रियाग्रहणमपि कर्त्तव्यम्' इति सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी।) प्रीतिप्रमुखानि प्रीतिपूर्वकाणि वचनानि यस्मिन्कर्मणि तत्प्रीतिप्रमुखवचनं यथा स्यात्

---

१. मनसि।
२. दयिताजीविताालम्बनार्थम्, दयिताजीविताालम्बनार्थाम्।
३. संप्रत्यग्रैः।

तथा । शोभनमागतं स्वागतं स्वागतवचनं प्रीत: सन् व्याजहार । कुशलागमनं पप्रच्छेत्यर्थ: । (नाथेन त्वत्र 'प्रत्यासन्ने मनसि' इति साधीयान्पाठ: कल्पित:। प्रत्यासन्ने प्रकृतिमापन्ने सतीत्यर्थ:। यस्तु तेनैव पूर्वपाठविरोध: प्रदर्शित: सोऽस्माभि: 'आषाढस्य प्रथमदिवसे' इत्येतत्पाठविकल्पसमाधानेनैव समाधाय परिहृत: ।) ॥४॥

**टिप्पणी—प्रत्यासन्ने नभसि**—कहीं-कहीं पर **नभसि** के स्थान पर **मनसि** पाठ भी मिलता है, जिसका अर्थ होगा—मन के ठीक हो जाने पर । परन्तु अधिकांश विद्वानों ने **नभसि** पाठ को ही उपयुक्त माना है । प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने भी **नभसि** पाठ ही स्वीकृत किया है । यही ठीक दिखाई पड़ता है, क्योंकि यक्ष ने आषाढ़ के प्रथम दिन मेघ-दर्शन किये हैं और श्रावण निकट आता हुआ दिखाई दे रहा है । श्रावण मास विरही प्रमियों को अत्यधिक दु:ख देने वाला होता है, अत: यक्ष भी अपनी प्रिया को धैर्य बँधाने के लिए सन्देश भेजना चाहता है । मेघ को क्योंकि रामगिरि से अलकापुरी तक जाना है । इस अवस्था में उसे जाने में लगभग एक मास लग ही जायेगा, अत: **नभसि** पाठ ही अधिक उपयुक्त है ।

**दयिताजीवितालम्बनार्थी**—इसमें भी पाठ भेद मिलता है । कही **दयिताजीवितालम्बनार्थम्** पाठ मिलता है, जिसका अर्थ होगा—प्रिया के जीवन के सहारे के लिए, कहीं **दयिताजीवितालम्बनार्थाम्** पाठ भी मिलता है, जिसका अर्थ होगा प्रिया के जीवन का सहारा है प्रयोजन जिसका ।

**कल्पितार्घाय**—अर्घ्य किसी विशेष व्यक्ति, अतिथि या देवता आदि को दिया जाता है । इसमें प्राय: निम्न वस्तुएँ होती हैं—

*आप: क्षीरं कुशाग्राणि दधि सर्पिश्च तण्डुला: ।*
*यवा: सिद्धार्थकं चैव अष्टाङ्गार्घ्यं प्रकीर्तितम् ॥*

**व्याकरण—प्रत्यासन्ने**—प्रति+आ+√सद्+क्त (कर्तरि) भावे सप्तमी एकवचन । **नभसि**—नभस् सप्तमी एकवचन । **दयिताजीवितालम्बनार्थी**—दयितागां जीवितं (ष० त०) तस्य आलम्बनम् (ष० त०) आ+लम्बि+ल्युट् । **जीमूतेन**—जीवनस्य (जलस्य) मूत: जीमूत: तेन, 'पृषोदरादीनि यथोपदिषटम्' इस सूत्र से यहाँ **जीवन** पद के वन का लोप होकर **जीमूत** पद बना । **स्वकुशलमयीम्**—स्वस्य कुशलम् (ष० त०) तेन, स्वकुशल+मयट् स्त्रियाम् । **प्रवृत्तिम्**—प्र+√वृत्+क्तिन् । **हारयिष्यन्**—√हृ+णिच्= हारि+इट् (इ)+स्य+शतृ । **प्रत्यग्रै:**—अग्रं प्रतिगत: प्रत्यग्र: तै:, **कुटजकुसुमै:**—कुटजानि च तानि कुसुमानि तै: (क० धा०), √प्रीञ्+क्त । **कल्पितार्घाय**—कल्पित: अर्घ: यस्मै तस्मै (बहुव्रीहि) । **प्रीतिप्रमुखवचनम्**-प्रीति: प्रमुखं येषां तानि (बहुव्रीहि) । **स्वागतम्**-शोभनम् आगतम्, सु+ आ+ √गम्+ क्त+ भावे । **व्याजहार**—वि+ आ+√हृ लिट् प्र० पु० एकव० । 

**प्रसङ्ग**—यक्ष का मेघ द्वारा संन्देश भेजने का कारण बतलाते हुए कवि कहता है—

**धूमज्योति: सलिलमरुतां सन्निपात: क्व मेघ:**
**सन्देशार्था: क्व पटुकरणै: प्राणिभि: प्रापणीया:।**
**इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे**
**कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥५॥**

**अन्वय:**—धूमज्योति:सलिलमरुतां सन्निपात: मेघ: क्व? पटुकरणै: प्राणिभि: प्रापणीया: संदेशार्था: क्व, इति औत्सुक्यात् अपरिगणयन् गुह्यक: तं ययाचे, हि कामार्ता: चेतनाचेतनेषु प्रकृतिकृपणा: (भवन्ति) ॥५॥

**शब्दार्थ—धूमज्योतिः सलिलमरुताम्**=धूम, अग्नि, जल और वायु का, **सन्नि-पात:**=मिश्रण, **पटुकरणै:**=समर्थ इन्द्रियों वाले, **प्राणिभि:**=प्राणियों द्वारा, **प्रापणीया:**=भेजे जाने योग्य, **औत्सुक्यात्**=उत्कण्ठा के कारण, **अपरिगणयन्**=विचार न करते हुए, **गुह्यक:**=यक्ष ने, **ययाचे**=याचना की, **कामार्ता:**=काम-पीड़ित, **चेतनाचेतनेषु**=चेतन और जड़ के विषय में, **प्रकृतिकृपणा:**=स्वभाव से दीन ।

**अनुवाद—धूम, अग्नि, जल और वायु का मिश्रण मेघ कहाँ ? और समर्थ इन्द्रियों वाले प्राणियों द्वारा भेजे जाने योग्य सन्देश रूपी वस्तु कहाँ ? इसका उत्कण्ठा के कारण विचार न करते हुए यक्ष ने उस (मेघ) से याचना की, क्योंकि कामपीड़ित (व्यक्ति) चेतन और जड़ के विषय में स्वभाव से दीन (विवेकशून्य) (होते हैं) ॥५॥**

**संस्कृत-टीका**—धूमतेजोजलवातानां समूहरूपोऽचेतनो जलधरः कुत्र? कुशलेन्द्रियैः चेतनैः प्रापयितव्याः सन्देशवचनानि कुत्र ? इति औत्कण्ठ्यात् अविचारयन् यक्षः तं मेघं प्रार्थितवान्, यतः कामातुराः जडचेतनानाम् विषये स्वभावेन एव दीनाः भवन्ति ।

**सञ्जीवनी**—धूमेति । धूमश्च ज्योतिश्च सलिलं च मरुद्वायुश्च तेषां सन्निपातः संघातो मेघः क्व । अचेतनत्वात्संदेशानर्ह इत्यर्थः । पटुकरणैः समर्थेन्द्रियैः । 'करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि' इत्यमरः । प्राणिभिश्चेतनैः । 'प्राणी तु चेतनो जन्मी जन्तुजन्यशरीरिणः' इत्यमरः । प्रापणीयाः प्रापयितव्याः । सन्दिश्यन्त इति संदेशास्त एवार्थाः क्व ? इत्येवमौत्सु-क्यादिष्टार्थोद्युक्त्वाद् । 'इष्टार्थोद्युक्तं उत्सुकः' इत्यमरः । अपरिगणयन्नविचारयन् गुह्यको यक्षो मेघं ययाचे याचितवान् । (याचृ याच्ञायाम् ।) तथा हि । कामार्ता मदनातुराश्चेतनाश्चाचेतनाश्च तेषु विषये प्रकृतिकृपणाः स्वभावदीनाः । कामान्धानां युक्तायुक्तविवेकशून्यत्वादचेतनयाच्ञा न विरुध्यत इत्यर्थः । अत्र मेघसंदेशयोर्विरूपयोर्घटनाद्विषमालङ्कारः । (तदुक्तम्—'विरुद्धकार्यस्योत्प-त्तिर्यत्रानर्थस्य वा भवेत् । विरूपघटना चासौ विषमालङ्कृतिस्त्रिधा' इति ।) सा चार्थान्तरन्यासानुप्राणिता तत्समर्थकत्वेनैव चतुर्थपादे तस्योपन्यासात् ॥५॥

**टिप्पणी—धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः**—महाकवि कालिदास के इस कथन से स्पष्ट होता है कि उन्हें रसायनशास्त्र (Chemistry) का पर्याप्त ज्ञान था ।

**गुह्यकः**—अमरकोशकार **श्री अमरसिंह** ने एक श्लोक देकर गुह्यक और यक्ष को दो अलग-अलग देवयोनियाँ मानी हैं । श्लोक इस प्रकार है—

*'विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः ।*
*पिशाचो गुह्यकः सिद्धोः भूतोऽमी देवयोनयः ॥'*

परन्तु महाकवि कालिदास ने प्रथम श्लोक में **यक्ष** और इस श्लोक में **गुह्यक** लिखकर इन दोनों को एक-दूसरे का पर्यायवाची माना है । कोशकार **व्याडि** निधि की रक्षा करने वाले यक्ष को गुह्यक कहते हैं । उन्होंने लिखा है—"**निधिं रक्षन्ति ये यक्षास्ते स्युर्गुह्यकसंज्ञकाः ।**" क्योंकि महाकवि कालिदास का विरही यक्ष भी कुबेर की उद्यान-निधि की रक्षा करता था, इसलिए ही कालिदास ने इस यक्ष को गुह्यक कहा है ।

**कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु**—प्रायः अत्यधिक काम-पीड़ित व्यक्ति अपना विवेक खो बैठते हैं और उन्हें जड़-चेतन में भी भेद प्रतीत नहीं होता । प्रायः काम-पीड़ित व्यक्ति विरह के क्षणों में अपनी प्रिया के फोटो, वस्त्रादि से बातें करते हैं । कुमारसम्भव (५/५८) में पार्वती इसी प्रकार पृथ्वी पर शिव का चित्र बनाकर उन्हें उपालम्भ देती हैं । अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी इसी प्रकार का भाव आया है ।

**व्याकरण—धूमज्योतिःसलिलमरुताम्**—धूमश्च ज्योतिश्च सलिलं च मरुच्च (द्वन्द्व) तेषां सन्निपातः (ष० त०) । **सन्निपातः**—सम्+नि+√पत्+घञ (भावे) । **पटुकरणैः**—पटूनि करणानि येषाम् तैः (बहु०)। **प्राणिभिः**—प्राणाः सन्ति येषां तैः, प्राण+ इनि (इन्) तृ० बहु० । **प्रापणीयाः**— प्र+√आप्+णिच्+अनीयर् । **संदेशार्थाः**—संदेशाः ते एव अर्थाः (कर्मधारय)

**औत्सुक्यात्**—उत्सुकस्य भाव: औत्सुक्यं तस्मात् कारणात्, उत्सुक+ष्यञ् प० एकव०। **अपरिगणयन्**—नञ्+परि+√गण्+शतृ । **गुह्यक:**—√गुहू+ण्वुल् (पृषोदरादित्वात् यक् का आगम) । **ययाचे**—√याच्+लिट् ल० प्र० पु० एकव० । **कामार्ता:**—कामेन आर्ता: (तृ० त०), काम +आ+√ऋ+ क्त । **प्रकृतिकृपणा:**—प्रकृत्या कृपणा: (तृ० त०) । **चेतनाचेतनेषु**—चेतनाश्चाचेतनाश्च (द्वन्द्व) तेषु ।

प्रस्तुत श्लोक के चतुर्थ चरण के सामान्य से तृतीय चरण के विशेष कथन का समर्थन किया गया है, इसलिए यहाँ **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार है। इसका लक्षण इस प्रकार है—

*सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते ।*
*यत्तु सोऽर्थान्तरन्यास: साधर्म्येणेतरेण वा ॥ (का० प्र० १०/१६५)* □

**प्रसङ्ग**—मेघ को प्रिया के पास सन्देश ले जाने के लिए क्यों चुना ? इन कारणों को बताता हुआ यक्ष कहता है—

**जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां**[1]
**जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोन: ।**
**तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं**
**याच्ञा मोघा**[2] **वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥६॥**

**अन्वय:**—(हे मेघ !) त्वां भुवनविदितेपुष्करावर्तकानां वंशे जातं मघोन: कामरूपं प्रकृतिपुरुषं जानामि । तेन विधिवशात् दूरबन्धु: अहं त्वयि अर्थित्वं गत: । अधिगुणे याच्ञा मोघा वरम् अधमे लब्धकामा न ॥६॥

**शब्दार्थ**—**भुवनविदिते**=संसार में प्रसिद्ध, **पुष्करावर्तकानाम्**=पुष्कर और आवर्तक नाम के, **वंशे**=वंश में, **जातम्**=उत्पन्न, **मघोन:**=इन्द्र का, **कामरूपम्**=इच्छानुसार रूप धारण करने वाला, **प्रकृतिपुरुषम्**=प्रधान पुरुष, **विधिवशात्**=दैवयोग से, **दूरबन्धु:**=दूर स्थित बन्धु (प्रिया) वाला, **त्वयि**=तुम्हारे विषय में, **अर्थित्वं**=याचकत्व को, **अधिगुणे**=अधिक गुण वाले से, **याच्ञा**=याचना, **मोघा**=निष्फल, **वरम्**=अच्छी, **अधमे**=निर्गुण से, **लब्धकामा**=सफल कामना वाली ।

**अनुवाद**—(हे मेघ !) **तुमको संसार में प्रसिद्ध पुष्कर और आवर्तक (मेघों) के वंशो में उत्पन्न इन्द्र का इच्छानुसार रूप धारण करने वाला प्रधान पुरुष जानता हूँ । इसलिए दैवयोग से दूर स्थित बन्धु (प्रिया) वाला मैं (यक्ष) तुम्हारे विषय में याचकत्व को प्राप्त हुआ हूँ । अधिक गुण वाले से (की गयी) याचना निष्फल (भी) अच्छी (है), (परन्तु) निर्गुण से (की गयी) याचना सफल कामना वाली (भी अच्छी) नहीं ॥६॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! अहं त्वां लोकप्रसिद्धे पुष्करावर्तकानां कुले उत्पन्नं कामरूपिणमिन्द्रस्य प्रधानपुरुषं वेद्मि । अतो दैवयोगाद्वियुक्तपत्नीकोऽहं यक्ष: त्वयि मेघस्य विषये याचकत्वं प्राप्त: । अधिकगुणे पुंसि याचना निष्फलाऽपि ईषत्प्रिया एतद्वैपरीत्येन निर्गुणे सफलाऽभिलाषा अपि प्रिया न भवति ।

**सञ्जीवनी**—सम्प्रति याच्ञाप्रकारमाह—जातमिति । हे मेघ, त्वां भुवनेषु विदिते । ('निष्ठा' इति भूतार्थे क्त । 'मतिबुद्धि—' इत्यादिना वर्तमानार्थत्वे तु 'क्तस्य च वर्तमाने' इति

---

१. पुष्कलावर्तकानां ।
२. वन्ध्या ।

भुवनशब्दस्य षष्ठ्यन्तत्वानियमात्समासो न स्यात् । 'क्तेन च पूजायाम्' इति निषेधात् ।) पुष्कराश्चावर्तकाश्च केचिन्मेघानां श्रेष्ठास्तेषां वंशे जातम् । महाकुलप्रसूतमित्यर्थः । कामरूपमिच्छाधीनविग्रहम् । दुर्गादिसञ्चारक्षममित्यर्थः । मघोन इन्द्रस्य प्रकृतिपुरुषं प्रधानपुरुषं जानामि । तेन महाकुलप्रसूतत्वादिगुणयोगित्वेन हेतुना । विधिवशाद् दैवायत्तत्वात् । 'विधिर्विधाने दैवे च' इत्यमरः। 'वशमायाते, वशमिच्छाप्रभुत्वयोः' इति विश्वः । दूरे बन्धुर्यस्य स दूरबन्धुर्वियुक्तभार्योऽहं त्वय्यर्थित्वं गतः । ननु याचकस्य याच्ञायां याच्ञागुणोत्कर्षः कुत्रोपयुज्यत इत्याशङ्क्य—दैवाद्याच्ञाभङ्गेऽपि लाघवदोषाभाव एवोपयोग इत्याह—याच्ञेति । तथा हि—अधिगुणे पुंसि विषये याच्ञा मोघा निष्फलापि वरमीषत्प्रियम् । दातुर्गुणाढ्यत्वात्प्रियत्वं याच्ञावैफल्यादीषत्प्रियत्वमिति भावः । अधमे निर्गुणे याच्ञा लब्धकामापि सफलापि न वरम् । ईषत्प्रियमपि न भवतीत्यर्थः । 'देवाद्वृते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीबं मनाक्प्रिये' इत्यमरः । अर्थान्तरन्यासानुप्राणितः प्रेयोऽलङ्कारः । ('तदुक्तं दण्डिना—'प्रेयः प्रियतराख्यानम्' इति ।) एतदाद्ये पादत्रये चतुर्थपादस्थेनार्थान्तरन्यासेनोपजीवितमिति सुव्यक्तमेतत् ॥६॥

**टिप्पणी—पुष्करावर्तकानाम्**-कहीं-कहीं पर **पुष्कलावर्तकानाम्** पाठ भी मिलता है। परन्तु **'रलयोरभेदः'** इस नियम से 'र' को 'ल' होने से अर्थ में कोई भेद नहीं होता है। प्रसिद्ध टीकाकार आचार्य **मल्लिनाथ** ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—*पुष्कराश्च आवर्तकाश्च पुष्करावर्तकाः, तेषाम्,* अर्थात् वे इसमें द्वन्द्व समास मानते हैं। पुराणों के अनुसार प्रलयकाल में संहार करने वाले मेघों को पुष्करावर्तक कहते हैं। इसी कारण पुष्कर और आवर्तक को मेघ जाति में श्रेष्ठ माना जाता है, परन्तु यहाँ यह शङ्का उठती है कि एक ही पुरुष दो भिन्न-भिन्न वंशों में किस प्रकार उत्पन्न हो सकता है ? इस शंका के समाधान के लिए कुछ विद्वानों ने वाचस्पत्य में उद्धृत विष्णुपुराण के निम्न श्लोक को उद्धृत किया है—

*पुष्करा नाम ये मेघा बृहन्तस्तोयमत्सराः ।*
*पुष्करावर्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः ॥*

इस श्लोक के अनुसार "पुष्करम् (जलम्) आवर्तयन्तीति पुष्करावर्तकाः" इस प्रकार व्युत्पत्ति की है अर्थात् पुष्कर नाम के मेघ जल का आवर्तन (भ्रमण) कराने से ही पुष्करावर्तक शब्द से कहे गये हैं। कुछ इसी प्रकार का मत **विल्सन** (Wilson) महोदय का भी है। **मोनियर विलयम** के अनुसार पुष्करावर्तक का पुंल्लिङ्ग बहुवचन में प्रयोग होता है और इनसे मेघों की उस जाति से अभिप्राय है जो मृत्यु और दुर्भिक्ष का कारण होती है या यह भी सम्भव है कि मातृ व पितृ दोनों वंशों का उल्लेख किया गया हो और इसलिए ही मेघ को पुष्कर और आवर्तक कुल में उत्पन्न कह दिया हो।

**व्याकरण—भुवनविदिते**—भुवनेषु विदिते (स० त०), √विद्+क्त । **पुष्करावर्तकानाम्**—पुष्कराश्च आवर्तकाश्च तेषाम् (द्वन्द्व) । **जातम्**—√जन +क्त । **मघोनः**—मघवत् शब्द का ष० एकव० । **कामरूपम्**—कामेन रूपं यस्य तम् (बहुव्रीहि) । **प्रकृतिपुरुषम्**—प्रकृतौ पुरुषः तम् (ष० त०) अथवा प्रकृतिश्चासौ पुरुषश्च (कर्मधा०) । **जानामि**—√ज्ञा +लट्, उ० एकव०। **विधिवशात्**—विधेः वशः तस्मात् (ष० त०) । **दूरबन्धुः**—दूरे बन्धुः यस्य सः (बहुव्रीहि)। **बन्धुः**—√बन्ध +उः । **अर्थित्वम्**—√अर्थ +णिनि । **गतः**— √गम् +क्त । **अधिगुणे**—अधिकाः गुणाः यस्य तस्मिन् (बहुव्रीहि) । **याच्ञा**—√याच् +नङ् +श्चुत्वे +टाप् । **लब्धकामा**—लब्धः कामः यया सा (बहु०)।

प्रस्तुत श्लोक के चतुर्थ चरण में सामान्य अर्थ से अर्थित्वगमन रूप विशेष अर्थ का समर्थन होने से **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार है। इसका लक्षण पू० मे०/५ में दिया गया है। □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से सन्देश ले जाने की प्रार्थना करता हुआ अलकापुरी की पहिचान बताते हुए कहता है—

**संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद ! प्रियायाः**
**संदेशं मे हर धनपति[1]क्रोधविश्लेषितस्य ।**
**गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां**
**बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिका धौतहर्म्या ॥७॥**

**अन्वयः**—पयोद! त्वं सन्तप्तानां शरणम् असि तत् धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य मे सन्देशं प्रियायाः हर, ते बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या अलका नाम यक्षेश्वराणां वसतिः गन्तव्या ॥७॥

**शब्दार्थ**—**पयोद**=मेघ, **सन्तप्तानाम्**=पीड़ितों के, **शरणम्**=रक्षक, **धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य**=कुबेर के क्रोध से (प्रिया से) वियुक्त हुए, **मे**=मेरा, **प्रियायाः**=प्रिया के पास, **हर**=लें जाओ, **बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या**=बाहर के उद्यान में विद्यमान शिव के सिर पर स्थित चाँदनी से उज्ज्वल महलों से युक्त, **अलकानाम्**=अलका नाम वाली, **यक्षेश्वराणाम्**=यक्षों के स्वामी कुबेर की, **वसतिः**=नगरी, **गन्तव्या**=जाना है ।

**अनुवाद**—**(हे) मेघ! तुम (विरह) पीड़ितों के रक्षक हो, इसलिए कुबेर के क्रोध से (प्रिया से) वियुक्त हुए मेरे सन्देश को प्रिया के पास ले जाओ । तुम्हें बाहर के उद्यान में विद्यमान शिव के सिर पर स्थित चाँदनी से उज्ज्वल महलों से युक्त अलका नाम वाली यक्षों के स्वामी (कुबेर) की नगरी जाना है ॥७॥**

**संस्कृत-टीका**—हे जलद ! त्वं संतापयुक्तानां रक्षकोऽसि अतः तस्मात् कुबेरशापात् प्रियावियुक्तस्य मम सन्देशं प्रियां प्रति नय । तव बहिरुद्यानस्थितशिवशिरोज्योत्स्नयोज्ज्वलभवना अलका नाम यक्षाधीशानां स्थानं प्राप्तव्यम् ।

**सञ्जीवनी**—सन्तप्तानामिति । हे पयोद, त्वं सन्तप्तानामातपेन वा प्रवासविरहेण वा सञ्ज्वरितानाम् । 'सन्तापः सञ्ज्वरः समौ' इत्यमरः । शरणं पयोदानेनातपखिन्नानां प्रोषितानां स्वस्थानप्रेरणया च रक्षकोऽसि । 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः । तत्तस्मात्कारणाद्धनपतेः कुबेरस्य क्रोधेन विश्लेषितस्य प्रियया वियोजितस्य मे मम सन्देशं वार्तां प्रियायाः हर । प्रियां प्रति नयेत्यर्थः । (सम्बन्धसामान्येत षष्ठी ।) सन्देशहरणेनावयोः सन्तापं नुदेत्यर्थः । कुत्र स्थाने सा स्थिता ? तत्स्थानस्य वा किं नाम ? तत्राह—गन्तव्येति । बहिर्भवं बाह्यम् । ('बहिर्देवपञ्चजनेभ्यश्च' इति यञ् ।) वाह्ये उद्याने स्थितस्य हरस्य शिरसि या चन्द्रिका तया धौतानि निर्मलानि हर्म्याणि धनिकभवनानि यस्यां सा तथोक्ता । 'हर्म्यादि धनिनां वासः' इत्यमरः । अनेन व्यावर्त्तकत्वमुक्तम्। अलका नामालकेति प्रसिद्धा । यक्षेश्वराणां वसतिः स्थानं ते तव गन्तव्या। त्वया गन्तव्येत्यर्थः। ('कृत्यानां कर्त्तरि वा' इति षष्ठी ।) ॥७॥

**टिप्पणी**—**सन्तप्तानां शरणम्**—यहाँ मेघ को पीड़ितों का रक्षक कहा गया है, यद्यपि मेघ धूप से भी पीड़ितों की रक्षा करता है, परन्तु यहाँ विरह पीड़ितों का रक्षक यह अर्थ करना उपयुक्त जान पड़ता है; क्योंकि परदेश गये हुए मनुष्य भी वर्षा के प्रारम्भ में मेघ को देखकर स्वदेश अपने घरों को लौट पड़ते थे । इसलिए मेघ को पीड़ितों का रक्षक कहा है ।

**धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य**—कहीं-कहीं धनपति के स्थान पर **धनपतेः** ऐसा पाठ भी मिलता है, परन्तु इससे अर्थ में कोई अन्तर नहीं होगा । यहाँ केवल इतना ही कहा है कि कुबेर के क्रोध से वियुक्त हुए, जबकि क्रोध का कारण (अपने कार्य में असावधानी) प्रथम श्लोक में ही बता दिया गया था ।

**अलका**—यह धन के देवता कुबेर की राजधानी मानी जाती है । इसमें बड़े-बड़े

---

१. धनपतेः ।

धनी यक्षों का निवास बताया गया है । यह कैलाश पर्वत पर स्थित मानी जाती है। इसे वसुधारा, वसुस्थली तथा प्रभा ये अन्य नाम भी कहे जाते हैं ।

**बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या**—पुराणों के अनुसार कुबेर की राजधानी अलका के बाहर एक उद्यान था जिसे गन्धर्वों के एक राजा चित्ररथ ने बनाया था । उस अलका के महल, बाह्य उद्यान में रहने वाले शिव के सिर पर स्थित चन्द्रमा की चाँदनी से प्रकाशित होते रहते थे ।

**व्याकरण—पयोद**—पय: ददातीति पयोद:, पयस् √दा "आतोऽनुपसर्गे क:" सूत्र से क प्रत्यय । **सन्तप्तानाम्**—सम् +√तप्+क्त=सन्तप्त, तेषाम् । **असि**—√अस् लट ल० म० पु० एकव० । **√हर**—लोट् ल० म० पु० एकव०। **धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य**—धनस्य पति (ष० त०), तस्य क्रोध: (ष० त०), तेन विश्लेषितस्य (तृ० त०), **विश्लेषित**:-वि +√श्लिष+णिच्+क्त । **प्रियाया**:—प्रीणातीति प्रिया, तस्या: । प्रीञ् धातु से 'इगुपधज्ञाप्रीकिर: क:' सूत्र से क प्रत्यय होकर 'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से टाप् प्रत्यय हुआ है, सम्बन्धमात्र की विवक्षा में षष्ठी वि० है, "कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव।" **गन्तव्या**—√गम् +तव्य +टाप् । **ते**—युष्मद् शब्द का षष्ठी एकव० का रूप है, यहाँ "कृत्यानां कर्तरि वा" इस सूत्र से कर्तृ कारक अर्थ में विकल्प से ष० वि० है । **वसति**:—√वस्+ अति । **अलका**—अलति भूषयति इति अलका—√अल् +क्वुन्—अक +टाप् । **नाम**—प्राकाश्य-सूचक अव्यय है, 'नाम प्राकाश्यसम्भाव्यक्रोधोपगमकुत्सनेषु च' इत्यमर: । **यक्षेश्वराणाम्**—यक्षाणां यक्षेषु वा ईश्वरा: यक्षेश्वरा: (ष० व स० त०), अथवा यक्षाश्च ते ईश्वराश्च यक्षेश्वरा: (कर्मधा०), तेषाम्, यहाँ आदरार्थे बहुवचन का प्रयोग किया गया है । **बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या**—बहिर्भवं बाह्यं, यहाँ पर बहिस् शब्द से "बहिषष्टिलोपो यञ्च" इस वार्तिक से यञ् प्रत्यय और टि (इसका) लोप होकर "तद्धितेष्वचामादे:" इससे आदि वृद्धि हुई है, बाह्यं च तत् उद्यानं (कर्मधा०) तस्मिन् स्थित: (स० त०), स चाऽसौ हर: (कर्मधा०), तस्य शिर: (ष० त०) तस्मिन् स्थिता चन्द्रिका (मध्यम पदलोपी स०) तया धौतानि हर्म्याणि यस्यां सा (बहुव्रीहि) ।

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि जब तुम आकाश में गमन करोगे तो परदेश गये व्यक्तियों की स्त्रियाँ तुमको देखेंगी—

**त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ता:**
**प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिता: प्रत्ययादाश्वसत्य :[१] ।**
**क: सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां**
**न स्यादन्योऽप्यहमिव[२] जनो य: पराधीनवृत्ति: ॥८॥**

**अन्वय:**—पवनपदवीम् आरूढं त्वां पथिकवनिता: प्रत्ययात् आश्वसत्य: उद्गृहीतालकान्ता: (च सत्य:) प्रेक्षिष्यन्ते । त्वयि सन्नद्धे विरहविधुरां जायां क: उपेक्षेत ? अन्य: अपि य: जन: अहम् इव पराधीनवृत्ति: न स्यात् ॥८॥

**शब्दार्थ—पवनपदवीम्**=वायु मार्ग में, आकाश में, **आरूढम्**= चढ़े हुए, **त्वाम्** =तुमको, **पथिकवनिता**:=परदेश गये हुए व्यक्तियों की स्त्रियां, **प्रत्ययात्**= (पति के शीघ्र आगमन के) विश्वास से, **आश्वसत्य**:= आश्वस्त होकर, **उद्गृहीतालकान्ता**:= बालों के अग्रभाग को ऊपर पकड़े हुए, **प्रेक्षिष्यन्ते**= (उत्कण्ठा से) देखेंगी, **त्वयि**=तुम्हारे, **सन्नद्धे**=उमड़े

१. आश्वसन्त्य: ।
२. अन्योप्ययमिव ।

पर, **विरहविधुराम्**=विरह से व्याकुल, **जायाम्**=पत्नी की, **उपेक्षेत**=उपेक्षा करेगा, **अन्य:**= दूसरा, **पराधीनवृत्ति:**=दूसरों के अधीन आजीविका वाला, **न स्यात्**=न हो ।

**अनुवाद—वायु मार्ग में (आकाश में) चढ़े हुए तुमको परदेश गये हुए व्यक्तियों की स्त्रियां (पति के शीघ्र आगमन के) विश्वास से आश्वस्त होकर बालों के अग्रभाग को ऊपर पकड़े हुए (उत्कण्ठा से ) देखेंगी । (क्योंकि) तुम्हारे उमड़ने पर विरह से व्याकुल पत्नी की कौन उपेक्षा करेगा ? दूसरा भी जो व्यक्ति मेरे समान दूसरों के अधीन आजीविका वाला न हो ॥८॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! आकाशचारिणं त्वां प्रोषितभर्तृका: स्त्रिय: प्रियागमनविश्वासात् विश्वसिता: दृष्टिप्रसाराऽर्थमलकाऽग्राण्यन्नुमय्य द्रक्ष्यन्ति । त्वदागमे सति वियोगव्याकुलाया: पत्न्या क: उपेक्षां कुर्यात् ? मदतिरिक्तोऽपि य: मनुष्य: मत्सदृश: परायत्तजीविक: न भवेत् ।

**सञ्जीवनी**—त्वामिति । पवनपदवीमाकाशमारूढं त्वाम् । पन्थानं गच्छन्ति ते पथिका:। ('पथ: ष्कन्' इति ष्कन्प्रत्यय: ।) तेषां वनिता: प्रोषितभर्तृका: । प्रत्ययात्प्रियागमनविश्वासात् । 'प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु' इत्यमर: । आश्वसत्यो विश्वसिता: । (श्वस्धातो: शत्रन्तात् 'उगितश्च' इति ङीष् ।) तथोद्गृहीतालकान्ता: दृष्टिप्रसारार्थमुन्नमय्य धृतालकाग्रा: सत्य: प्रेक्षिष्यन्ते। अत्युत्कण्ठतया द्रक्ष्यन्तीत्यर्थ: । त्वदागमनेन पथिका: कथमागमिष्यन्तीत्यत्राह—तद्यथा । त्वयि सन्नद्धे व्यापृते सति विरहेण विधुरां कृशां जायां क: उपेक्षेत ? न कोऽपीत्यर्थ: । अन्योऽपि मद्व्यतिरिक्तोऽपि यो जन:, अहमिव पराधीनवृत्ति: परायत्तजीविको न स्यात् । स्वतन्त्रस्तु न कोऽप्युपेक्षतेति भाव: । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कार: । (तदुक्तम्— 'कार्यकारणसामान्यविशेषाणां परस्परम्। समर्थनं यत्र साऽर्थान्तरन्यास उदाहृत: ।' इति लक्षणात्) ॥८॥

**टिप्पणी—पवनपदवीम्**—क्योंकि वायु सदा आकाश में ही चलती है, इस कारण आकाश को वायु-मार्ग भी कहते है । 'पवन पदवीमारूढम्' का अर्थ है मेघ का आकाश में उमड़ना ।

**उद्गृहीतालकान्ता:**—जिन स्त्रियों के पति परदेश चले गये हैं, ऐसी स्त्रियां शारीरिक शृङ्गार नहीं करतीं । ऐसी स्थिति में उनके केश बिखरे होने के कारण मुख और आंखों पर आये हुए हैं । इसलिए वे स्त्रियाँ मेघ को देखने के कारण उन केशों के अग्रभाग को ऊपर पकड़े हुए होंगी । यह बड़ा स्वाभाविक वर्णन है ।

**पथिकवनिता: प्रत्ययादाश्वसत्य:**—पथिक कहते हैं परदेशियों को तथा वनिता पत्नियां, अर्थात् परदेश गये हुए लोगों की पत्नियाँ । प्राचीन काल में आधुनिक युग के समान आवागमन के साधन नहीं थे, इसलिए व्यक्ति वर्षा ऋतु अपने घर व्यतीत करते थे । शेष आठ माह घर से बाहर अपना व्यापार, नौकरीं आदि करते थे । इसी कारण हिन्दुओं के प्राय: सभी प्रमुख त्योहार (होली को छोड़कर) इसी वर्षा ऋतु में होते हैं । दीपावली मनाने के बाद व्यक्ति बाहर चले जाते थे और वर्षा आरम्भ होने के साथ ही अपने घर लौट आते थे । इस कारण आकाश में मेघ को देखकर उनकी पत्नियों को यह विश्वास होने लगता था कि अब उनके पति लौटने वाले हैं ।

**विरहविधुराम्**—स्त्रियाँ आने प्रिये के विरह से व्याकुल हैं क्योंकि उनको घर से गये हुए लगभग आठ मास हो गये है। वे अब उनके दर्शनों को उत्सुक हैं।

**जायाम्**—पुत्र को जन्म देने के कारण पत्नी को 'जाया' कहा जाता है—

*'पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ।*

*जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुन: ॥'' (मनु० ९/८)*

६ा ज्जऊथ्थ्ड्ड ए ह

**विशेष**—यहाँ यक्ष मेघ को समझाते हुए कहता है कि पथिकों की पत्नियां तुम्हें बड़े विश्वास और उत्साह के साथ देखेंगी, क्योंकि तुम्हें देखकर उनको विश्वास हो जायेगा

कि अब उनके पति लौटने वाले है । लगभग आठ माह पत्नी से दूर रहने पर कौन व्य अपनी विरहिणी पत्नी की उपेक्षा कर सकता है ? जिनकी आजीविका दूसरों के अधीन ऐसा व्यक्ति क्योंकि परतन्त्र है, इसलिए वह विवश है और वह अपनी पत्नी की उपेक्षा सकता है । मैं भी क्योंकि दूसरों के अधीन हूं इसलिए अपनी पत्नी की उपेक्षा कर रहा

**व्याकरण—आरूढम्**—आ+√रुह+ क्त, यह त्वाम् का विधेय विशेषण है । **नपदवीम्**—पुनातीति पवनः √पू+ल्युट् (अन) पवनस्य पदवी (ष० त०) ताम्, यह आ का कर्म है, इसलिए द्वि० वि० है । **उद्गृहीतालकान्ताः**—अलकानाम् अन्ताः (ष० त उद्गृहीताअलकाऽन्ता याभिस्ताः (बहुव्रीहि) । **पथिकवनिताः**—पन्थानं गच्छन्तीति पथिकाः, शब्द से 'पथः ष्कन्' इस सूत्र से ष्कन् प्रत्यय होकर ''षः प्रत्ययस्य'' इससे मूर्धन्य का लोप हुआ है । तेषां वनिताः (ष० त०) । **प्रत्ययात्**—प्रति + √इ + अच् भावे प्रत तस्मात् । ''विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्'' इस सूत्र के अनुसार हेतु में पच्चमी है। **आश्वसत्यः**—आ+√श्व धातु से लट् के स्थान पर शतृ प्रत्यय होकर ''उगितश्च'' सूत्र से ङीप् हुआ है । **प्रेक्षिष्यन्ते** प्र+√ईक्ष्+लृट् ल० प्र० पु० बहुव० । **सन्नद्धे**—सम्+√नह्+क्त=सन्नद्धः तस्मिन्, सप्तमी । **विरहविधुराम्**—वि+√रह्+अच्=विरहः, विगता धूः अस्याः इति विधुरा (बहुव्रीहि धुर शब्द से ''ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे'' इस सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय हुआ है, वि विधुरा (तृ० त०) ताम् । **उपेक्षेत**—उप+√ईक्ष्+विधिलिङ्० प्र० पु० एकव० । **जायाम्**—ज अस्याम् इति जाया, जनि धातु से 'जनेर्यक्' इस औणादिक सूत्र से यक् प्रत्यय होकर प्रत्यय करके जाया पद बना है । **स्यात्**—अस् विधिलिङ्० प्र० पु० एकव० । **पराधीनवृत्ति** परस्मिन् अधीना (स० त०) पराधीना वृत्तिः यस्य सः (बहुव्रीहि) ।

प्रस्तुत श्लोक में सामान्य से विशेष का समर्थन होने के कारण **अर्थान्तरन्** अलङ्कार है । इसका लक्षण श्लोक संख्या ५ में किया गया है ।

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को बताता है कि अवधि के दिन गिनने में लगी हुई तुम पत्नी को अवश्य ही जीवित पाओगे—

**तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-**
**मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ।**
**आशाबन्धः कुसुमसदृशं[1] प्रायशो ह्यङ्गनानां**
**सद्यःपाति प्रणयि[2] हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ।।९।।**

**अन्वयः**—अविहतगतिः दिवसगणनातत्पराम् एकपत्नीं तां भ्रातृजायां च अव्याप अवश्यं द्रक्ष्यसि, हि आशाबन्धः अङ्गनानां कुसुमसदृशं विप्रयोगे सद्यः पाति प्रणयि हृदयं प्राय रुणद्धि ।।९।।

**शब्दार्थ—अविहतगतिः**=बेरोक-टोक गति वाला, **दिवसगणनातत्पराम्**=(विरह के दिनों की गणना में लगी हुई, **एकपत्नीम्**=पतिव्रता, **भ्रातृजायाम्**=भाभी को, **अव्यापन्नाम्**=जी **द्रक्ष्यसि**=देखोगे, **आशाबन्धः**=आशा रूपी बन्ध (तन्तु), **अङ्गनानाम्**=स्त्रियों के, **विप्रयोगे**=वि में, **सद्यः पाति**=शीघ्र नष्ट हो जाने वाले, **प्रणयि हृदयम्**=प्रेमी हृदय को, **प्रायशः**= **रुणद्धि**=रोके रखता है ।

**अनुवाद—(हे मेघ ! तुम ) बेरोक-टोक गति वाले, (विरह के शेष)**

---

१. कुसुमसदृशप्राणमप्यङ्गनानाम् ।
२. सद्यः पातप्रणयि ।

**की गणना में लगी हुई पतिव्रता (अपनी) उस भाभी को जीवित अवश्य देखोगे; क्योंकि आशारूपी बन्ध (तन्तु) स्त्रियों के फूल के समान (कोमल), वियोग में शीघ्र नष्ट हो जाने वाले प्रेमी हृदय को प्राय: रोके रखता है ॥९॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! अविच्छिन्नगति: त्वं विरहावशिष्टदिनानां गणनाऽकुलां पतिव्रतां तां भ्रातृजायां च अवश्यं मदागमनाशया जीवन्तीम् इत्यर्थ: विलोकयिष्यसि । यत: आशाबन्धनं स्त्रीणां पुष्पतुल्यं कोमलम्, प्रियवियोगे सद्य: भ्रंशनशीलं प्रेमयुक्तं जीवितं प्राय: प्रतिबध्नाति ।

**सञ्जीवनी**—न च तस्या नाशाद् व्रतस्खलनाद्वा निरर्थकस्त्वत्प्रयास इत्याह तां चेति। हे मेघ ! दिवसानामवशिष्टदिनानां गणनायां सङ्ख्याने तत्परामासक्ताम् । 'तत्परे प्रसितासक्तौ' इत्यमर: । अतएव अव्यापन्नाममृताम्। शापावसाने मदागमनप्रत्याशया जीवन्तीमित्यर्थ: । एक: पतिर्यस्या: सैकपत्नी ताम् । पतिव्रतामित्यर्थ: । ('नित्य सपत्न्यादिषु' इति ङीप् नकारश्च ।) भ्रातुर्मे जायां भ्रातृवन्नि:शङ्कं दर्शनीयामित्याशय: । तां मत्प्रियामविहतगतिरविच्छिन्नगति: सन्नवश्यं द्रक्ष्यसि चालोकयिष्यस्येव । तथा हि । आशाऽतितृष्णा । 'आशा दिगतितृष्णयो:' इति यादव:। बध्यतेऽनेनेति बन्धो बन्धनम् । वृन्तमिति यावत् । आशैव बन्ध आशाबन्ध: कर्ता । प्रणयि प्रेमयुक्तम् । अतएव कुसुमसदृशम् । सुकुमारमित्यर्थ: । अत एव विप्रयोगे विरहे सद्य:पाति सद्योभ्रंशनशीलमङ्गनानां हृदयं जीवितम् । 'हृदयं जीविते चित्ते वक्षस्याकूतहृद्ययो: ।' इति शब्दार्णवे। प्रायश: प्रायेण रुणद्धि प्रतिबध्नाति । अर्थान्तरन्यास: ॥९॥

**टिप्पणी**—**दिवसगणनातत्पराम्**—क्योंकि यक्ष को एक वर्ष का शाप दिया गया है, अत: यक्ष-पत्नी यक्ष के बिना विरह में एक-एक दिन गिन-गिन कर व्यतीत कर रही है, इसी आशा में कि शाप की अवधि समाप्त होते ही तेरा प्रियतम तुझसे आकर मिलेगा । यह सत्य है कि प्रियतम के चले जाने पर उसकी प्रियतमा दिन गिन-गिनकर उसके वापिस आने की प्रतीक्षा करती है ।

**भ्रातृजायाम्**—यहाँ यक्ष ने मेघ को अपना छोटा भाई माना है । इसी कारण यक्ष की पत्नी मेघ की भाभी हुई, क्योंकि बड़े भाई की पत्नी माता के समान पूजनीया होती है। अत: यक्ष यहाँ मेघ को यह बताकर कि वह तुम्हारी भाभी है, इसलिए तुम्हारे लिए पूजनीया है, यह संकेत करके निश्चिन्त हो जाना चाहता है तथा भाभी होने के कारण पर-स्त्री-दर्शन का निषेध तुम्हें नहीं होगा, ऐसा भी भाव अभिव्यक्त होता है ।

**अव्यापन्नाम्**—न मरी हुई अर्थात् जीवित । इस पद से यह स्पष्ट किया गया है कि मेघ की यात्रा निष्फल नहीं होगी, क्योंकि वह यह आशङ्का न कर बैठे कि कहीं वियोग में यक्ष-पत्नी ने प्राण ही न त्याग दिये हों । इसलिए कहा है कि तुम उसको जीवित अवश्य देखोगे ।

**कुसुमसदृशं**—कुछ स्थान पर ''**कुसुमसदृशप्राणा**'' पाठ भी मिलता है जिसका अर्थ होगा—पुष्प के समान (कोमल ) प्राण वाले । उत्तररामचरितम् में भी स्त्रियों के चित्त को पुष्प के समान कोमल बताया गया है—

*''पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति ।'' (४/१२)*

**सद्य:पाति प्रणयि**—कुछ स्थान पर ''**सद्य:पातप्रणयि**'' पाठ भी मिलता है, जिसका अर्थ होगा—तुरन्त नष्ट हो जाने के अभिलाषी (हृदय को) ।

**व्याकरण**—**दिवसगणनातत्पराम्**—दिवसानां गणना (ष० त०), तस्यां तत्परा (स० त०) ताम्, **गणना**—√गण्+णिच्+युच्—अन्+टाप् । **एकपत्नीम्**—एक: पति: यस्यां: सा एक पत्नी, ताम् (बहुव्रीहि), √पत्+न+ङीप् अथवा एक चाऽसौ पत्नी, ताम् (कर्मधा०) । **अव्यापन्नाम्**—नञ् (अ)+वि+आ+√पद्+क्त+टाप् । **अविहतगति:**—न विहता गति: यस्य स: (बहुव्रीहि), **विहत**—वि+√हन्+क्त, **गति:**—गम्+क्तिन् । **द्रक्ष्यसि**—√दृश् लृट् म० पु० एकव० । **भ्रातृ-**

**जायाम्**—भ्रातु:जाया भ्रातृजाया ताम् (ष० त० ) । **आशाबन्ध:**—आशाया: बन्ध: (ष० अथवा आशा एवं बन्ध: (कर्मधा०), **बन्ध:**–√बन्ध्+घञ् । **कुसुमसदृशम्**–कुसुमेन स (तृ० त०)। **प्रायश:**–प्राय+शस् । **अङ्गनानाम्**–प्रशस्तानि अङ्गानि आसाम् इति अङ्गना: ता **अङ्गना**—अङ्ग+नङ्+टाप् (सुन्दर अङ्गों वाली स्त्री को अङ्गना कहते है) । **सद्य:पाति**– पततीति तच्छीलम् (उपपद त०), सद्य:+√पत्+णिनि । **प्रणयि**–प्रणय+इनि । **विप्रयोगे**– प्र+√युज्+घञ् भावे तस्मिन् । **रुणद्धि**–√रुध्+लट् प्र० पु० एकव० ।

प्रस्तुत श्लोक की तृतीय पंक्ति में प्रयुक्त आशाबन्ध में **रूपक** अलङ्कार है, जि लक्षण इस प्रकार है—

*तद्रूपकमभेदोऽयं उपमानोपमेययो: । ( का० प्र० १०/१३९)*

तथा ''कुसुमसदृशं हृदयम्'' में **लुप्तोपमा** अलङ्कार है, जिसका लक्षण इस प्र है—

*लुप्ता सामान्य धर्मादिरेकस्य यदि वा द्वयो: ।*
*त्रयाणां वाऽनुपादाने.............................. ।। (सा०। द० १०/१७)*

तथा उत्तरार्द्ध में सामान्य से विशेष का समर्थन होने से **अर्थातरन्यास** अलङ्का जिसका लक्षण श्लोक सं० ५ में किया गया है ।

**विशेष**–श्लोक संख्या ९ से १२ तक क्रम में बड़ी अनियामतता पायी जाती मल्लिनाथ ने इस श्लोक को 'मन्दं-मन्दं..........' के बाद रखा है ।

**प्रसङ्ग**–यक्ष मेघ को अलका की ओर प्रस्थान के लिए शुभ शकुन का उ करते हुए कहता है—

**मन्दं-मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां**
**वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्ध:[१] ।**
**गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमाला:**
**सेविष्यन्ते[२] नयनसुभगं[३] खे भवन्तं बलाका: ।।१०।।**

**अन्वय:**–यथा च अनुकूल: पवन: त्वां: मन्दं-मन्दं नुदति, अयं च ते स चातक: वाम: (सन्) मधुरं नदति, नूनं गर्भाधानक्षणपरिचयात् आबद्धमाला: बलाका: नयन भवन्तं खे सेविष्यन्ते ।।१०।।

**शब्दार्थ**—**मन्दं-मन्दम्**=धीरे-धीरे, **नुदति**=प्रेरित कर रहा है, **सगन्ध:**=गर्व से हुआ, **नदति**=शब्द कर रहा है, **गर्भाधानक्षणपरिचयात्**=गर्भ धारण करने के (संभोग आनन्द के अभ्यास के कारण, **आबद्धमाला:**=पंक्तिबद्ध, **बलाका**=बगुलियाँ, **नयनसुभ** आंखों को सुन्दर लगने वाले, **भवन्तं**=आपकी (मेघ की), **नूनम्**=निश्चय ही, **खे**=आ में, **सेविष्यन्ते**=सेवा करेंगी ।

**अनुवाद**–**और जैसे कि अनुकूल वायु तुम्हें धीरे-धीरे प्रेरित कर रहा है गर्व से भरा यह पपीहा तुम्हारे वाम भाग में स्थित होकर मधुर शब्द कर रहा निश्चय ही गर्भ धारण करने के आनन्द के अभ्यास के कारण पंक्तिबद्ध बगुलियाँ को सुन्दर लगने वाले आपकी आकाश में सेवा करेंगी ।।१०।।**

१. सगर्व:, चातकस्तोयगृध्नु: ।
२. प्रेक्षिष्यन्ते ।
३. नयनसुभगा: ।

**संस्कृत-टीका**—सुखदः वायुः त्वां शनैः-शनैः प्रेरयति सन्निकृष्टस्थः च सगर्व चातकः तव वामभागस्थः मधुरं शब्दायते । निश्चितरूपेण गर्भाधारणोत्सवाभिज्ञानात् बपङ्क्तयः बकाऽङ्गनाः नेत्रप्रियस्य भवतः आकाशे सेवां करिष्यन्ति ।

**सञ्जीवनी**—निमित्तान्यपि ते शुभानि दृश्यन्त इत्याह—मन्दं मन्दमिति । अनुकूलः पवनो वायुस्त्वां मन्दं मन्दम् । अतिमन्दमित्यर्थः । (अत्र कथञ्चिद्वीप्सायामेवं द्विरुक्तिर्निर्वाह्या । 'प्रकारे गुणवचनस्य' इत्येतदाश्रयणे तु कर्मधारयवद्भावे सुब्लुकि मन्दमन्दमिति स्यात् । तदेवाह वामनः—'मन्दमन्दमित्यत्र प्रकारार्थे द्विर्भावः' इति ।) यथा सदृशम् । भाविफलानुरूपमित्यर्थः । 'यथा सादृश्ययोग्यत्ववीप्सास्वर्थानतिक्रमे' इति यादवः । नुदति प्रेरयति । अयं सगन्धः सगर्वः। सम्बन्धीति केचित् । 'गन्धो गन्धक' आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोः । इत्युभयत्रापि विश्वः । ते तव वामो वामभागस्थः । 'वामस्तु वक्रे रम्ये स्यात्सव्ये वामगतोऽपि च' इति शब्दार्णवे । चातक. पक्षिविशेषश्च मधुरं श्राव्यं नदति व्याहरति । इदं निमित्तद्वयं वर्तते । वर्तिष्यते चापरं निमित्तमित्याह—गर्भेति । गर्भः कुक्षिस्थो जन्तुः 'गर्भोपकारकेह्यग्नौ सुखे पनसकण्टके । 'कुक्षौ कुक्षिस्थजन्तौ च' इति यादवः । तस्याधानमुत्पादनं तदेव क्षण उत्सवः । सुखहेतुत्वादिति भावः । 'निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षणः इत्यमरः । तस्मिन् परिचयादभ्यासाद्धेतोः । खे व्योम्नि । आबद्धमालाः गर्भाधानसुखार्थं त्वत्समीपे बद्धपङ्क्तय इत्यर्थः । (उक्तं च कर्णोदये—'गर्भं बलाका दधतेऽभ्रयोगान्नाके निबद्धावलयः समन्ताद्' इति ।) बलाकाः बलाकाङ्गनाः । नयनसुभगं दृष्टिप्रियं भवन्तं नूनं सत्यं सेविष्यन्ते । (अनुकूलमारुतचातकशब्दितबलाकादर्शनानां शुभसूचकत्वं शकुनशास्त्रे दृष्टं तद्विस्तरभयान्नालेखि) ॥१०॥

**टिप्पणी—यथा**—मल्लिनाथ ने यथा का अर्थ सदृश किया है, परन्तु सारोद्धारिणी और सुमतिविजय इसका 'मन्द-मन्दं नुदति पवनः' तथा 'वामश्चायं नदति मधुरं चातकः' को 'सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः' के साथ जोड़ने वाले संयोजक ''जैसे कि'' अर्थ में करते हैं ।

**मन्दं-मन्दम्**—यहाँ अधिकता को सूचित करने के अर्थ में द्विरुक्ति हुई है । वामन यहाँ प्रकार अर्थ में द्वित्व मानते हैं । परन्तु प्रकार अर्थ में मन्द-मन्दम् प्रयोग बनेगा, क्योंकि उस अर्थ में 'प्रकारे गुणवचनस्य' से द्वित्व के साथ कर्मधारयवद्भाव होकर विभक्ति का लुक् हो जायेगा । वायु का मन्द-मन्द बहना शुभसूचक माना गया है ।

**वामः**—इसका अर्थ है बायीं ओर यह चातक का विशेषण है । कुछ टीकाकारों ने इसका अर्थ 'सुन्दर' भी किया है । यात्रा के समय बायीं ओर चातक का दिखायी पड़ना शुभ माना गया है—

*बर्हिणश्चातकाश्चाषा ये च पुंसञ्ज्ञिताः खगाः ।*
*मृगा वा वामगा हृष्टाः सैन्यसम्पद्बलप्रदाः ॥*

मोर, चातक आदि पक्षियों का तथा हरिणों का बायीं ओर होना शुभ माना जाता है ।

**चातकः**—चातक पपीहा को कहते है, जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह पृथ्वी पर गिरे हुए जल को नहीं पीता, केवल स्वाति नक्षत्र में होने वाली वर्षा का जल ही पीता है ।

**सगन्धः**—इसका अर्थ है गर्व से भरा हुआ । कुछ विद्वानों ने मेघ और चातक का सम्बन्ध प्रसिद्ध होने के कारण इसका अर्थ सम्बन्धी भी किया है । 'सगन्धः' के स्थान पर 'सगर्वः' या 'सहर्षः' पाठ भी पाया जाता है । कहीं-कहीं 'चातकस्तोयगृध्नुः' पाठ भी मिलता है। इसका अर्थ होगा जल का लालची । परन्तु यह पाठ अधिक सुन्दर प्रतीत नहीं होता ।

**गर्भाधानक्षणपरिचयात्**—ऐसा प्रसिद्ध है कि बगुलियां वर्षा में आकाश में पंक्तिबद्ध होकर मेघ के संयोग से गर्भ धारण करती हैं—गर्भं बलाका दधतेऽभ्रयोगान्नाके निबद्धावलयः समन्तात् । 'गर्भाधानक्षणपरिचयम्' पाठ में यह पद 'त्वाम्' का विशेषण होगा और इसका

अर्थ होगा—'गर्भाधाने क्षमः समर्थः परिचयः सङ्गमो यस्य तम्' अर्थात् गर्भ उत्पन्न करने में समर्थ है सङ्गम जिसका ऐसे (मेघ को)।

इस प्रकार बलाका मेघ दर्शन से प्रसन्न होकर उसकी सेवा करेगी।

**व्याकरण—नुदति**—√नुद् (प्रेरणार्थक) लट् प्र० पु० एकव०। **नदति**-√णद् (अव्यक्त शब्द करना) लट् प्र० पु० एकव०। **सगन्धः**—गन्धेन सहितः यहां 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इस सूत्र से बहुव्रीहि समास होकर 'वोपसर्जनस्य' सूत्र से विकल्प से सह स्थान पर स आदेश हुआ है। **गर्भाधानक्षणपरिचयात्**—गर्भस्य आधानम् (ष० त०), तदेव क्षणः (कर्मधा०) तस्मिन् परिचयः (स० त०), तस्मात्, **आधान**—आ+धा + ल्युट् (अन)। **आबद्धमाला**:—आबद्धा माला याभिः ताः (बहुव्रीहि), **आबद्ध**—आ +बन्ध् + क्त। **सेविष्यन्ते**— √सेव् लट् प्र० पु० बहुव०। **नयनसुभगम्**— नयनयोः सुभगः (ष० त०) तम्। **बलाकाः**—बल + √अक् + अच् + टाप्।

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को समझाता है कि कैलाश पर्वत तक राजहंस उसके सहायक बन जायेंगे—

**कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां**[1]
**तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।**
**आ कैलासाद् बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः**
**संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहाया ॥११॥**

**अन्वयः**—यत् च महीम् उच्छिलीन्ध्राम् अवन्ध्यां कर्तुं प्रभवति तत् श्रवणसुभगं ते गर्जितं श्रुत्वा मानसोत्काः बिसकिलयच्छेदपाथेयवन्तः राजहंसाः आकैलासात् नभसि भवतः सहायाः सपंत्स्यन्ते ॥११॥

**शब्दार्थ**—यत्=जो, **महीम्**=पृथ्वी को, **उच्छिलीन्ध्राम्**=उगे हुए कुकुरमुत्तों वाली, **अवन्ध्याम्**=उपजाऊ, **कर्तुं प्रभवति**=बनाने में समर्थ है, **श्रवणसुभगम्**=कानों को सुख देने वाला, **मानसोत्काः**=मानसरोवर के लिए उत्सुक, **बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः**=कमलनाल के अग्रभाग के टुकड़ों को मार्ग का भोजन बनाने वाले, **आकैलासात्**=कैलाश (पर्वत) तक, **नभसि**=आकाश में, **संपत्स्यन्ते**=होंगे।

**अनुवाद—और जो पृथ्वी को उगे हुए कुकुरमुत्तों वाली उपजाऊ बनाने में समर्थ है, उस कानों को सुख देने वाले तुम्हारे गर्जन को सुनकर मानसरोवर के लिए उत्सुक, कमलनाल के अग्रभाग के टुकड़ों को मार्ग का भोजन बनाने वाले राजहंस कैलाश (पर्वत) तक आकाश में तुम्हारे साथी होंगे ॥११॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! तव गर्जितं पृथ्वीं शिलीन्ध्रपुष्पयुक्तां अत एव सफलां उर्वराम् च विधातुं शक्नोति। तत् श्रोत्रसुखदं तव गर्जनम् आकर्ण्य मानसरोवरोत्सुकाः मृणाल-कन्दशकलसम्बलयुक्ताः राजहंसाः आकाशे तव कैलासपर्यन्तं सहचरा भविष्यन्ति।

**सञ्जीवनी**—सम्प्रति सहायसम्पत्तिश्चास्तीत्याह—कर्तुमिति। यद् गर्जितं कर्तुं। महीमुच्छिलीन्ध्रामुद्भूतकन्दलिकाम्। 'कन्दल्यां च शिलीन्ध्रः स्यात्' इति शब्दार्णवे। अत एवावन्ध्यां सफलां कर्तुं प्रभवति शक्नोति। शिलीन्ध्राणां भाविसस्यसम्पत्तिसूचकत्वादिति भावः। (तदुक्तं निमित्तनिदाने— 'कालाभ्रयोगादुदिताः शिलीन्ध्राः सम्पन्नसस्यां कथयन्ति धात्रीम्' इति।) तच्छ्रवणसुभगं श्रोत्रसुखम्। लोकस्येति शेषः। ते तव गर्जितं श्रुत्वा मानसोत्का मानसे सरस्युन्मनसः। उत्सुका इति यावत्। ('उत्क उत्सुक उन्मनाः' इति निपातनात्साधु।) कालान्तरे मानसस्य हिमदुष्टत्वाद्धिमसं

---

१. ०न्ध्रातपत्राम्।

च हंसानां रोगहेतुत्वादन्यत्र गता हंसाः पुनर्वर्षासु मानसमेव गच्छन्तीति प्रसिद्धिः । बिसकिसलयानां मृणालाग्राणां छेदैः शकलैः पाथेयवन्तः । पथि साधु पाथेयं पथि भोज्यम् । ('पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्') तद्वन्तः । मृणालकन्दशकलसम्बन्धवन्त इत्यर्थः । राजहंसाः हंसविशेषाः । 'राजहंसास्तु ते चञ्चु-चरणैर्लोहितैः सिताः' इत्यमरः । नभसि व्योम्नि भवतस्तव आ कैलासात्कैलासपर्यन्तम् । (पतदद्वयं चैतत् ।) सहायाः सयात्राः । 'सहायस्तु सयात्रः स्यात्' इति शब्दार्णवे । सम्पत्स्यन्ते भविष्यन्ति ॥११॥

**टिप्पणी—उच्छिलीन्ध्राम्**—शिलीन्ध्र को कुकुरमुत्ता भी कहते हैं। ग्रामों में प्रायः छोटे-छोटे बच्चे साँप की छत्री (छाता) भी कहते है । यह वर्षा ऋतु में पृथ्वी को फोड़ कर निकलते हैं । कुकुरमुत्तों के उगने से पृथ्वी का उपजाऊ होना माना जाता है ।

**अवन्ध्याम्**—जो बंजर न हो अर्थात् उपजाऊ हो । कहीं-कहीं 'उच्छिलीन्ध्रातपत्राम्' यह पाठ भी मिलता है, तब अर्थ होगा—उगे हुए हैं कुकुरमुत्ते रूपी छत्र जिसमें ऐसी (पृथ्वी)।

**मानसोत्काः**—मानस सरोवर हिमलाय के ऊपर, कैलाश पर्वत पर स्थित है । कहते है कि इसको ब्रह्मा ने अपने मन से बनाया था । इसलिए इसे मानस या ब्रह्मसर भी कहा जाता है । वर्षाकाल से भिन्न समय में मानससरोवर हिम से दूषित हो जाता है और हिम से हंसों को रोग लग जाता है । इसलिए वर्षा काल में ही राजहंस मानससरोवर जाते हैं तथा शरदृतु के आगमन के साथ ही मैदानों में आ जाते हैं ।

**आकैलासात्**—कैलाश पर्वत हिमालय के उत्तर में स्थित है । यहीं शिव और पार्वती का निवास स्थान है । शिव के मित्र कुबेर भी यहीं निवास करते हैं ।

**किसलय**—काव्यों में हंसों का कमल-नाल खाना प्रसिद्ध है । वे उसका दूध पीते हैं ।

**राजहंसाः**—एक श्वेत पक्षी जिसकी चोंच और पैर लाल होते हैं, जो नीर-क्षीर-विवेक के लिए प्रसिद्ध है—

*राजहंसास्तु ते चञ्चु चरणैर्लोहितैः सिताः इत्यमरः ।*

**व्याकरण—कर्तुम्**—√कृ+तुमुन् । **प्रभवति**—प्र +√भू +लट् प्र० पु० एकव० । **महीम्**—मह्यते पूज्यते असौ मही ताम्, **मही**—√मह्+अच्+ङीष् । **उच्छिलीन्ध्राम्**—उद्गताः शिलीन्ध्राः यस्यां सा (बहुव्रीहि) ताम् । **अवन्ध्याम्**—√बन्ध् +ण्यत्, न बन्ध्या इति अवन्ध्या (नञ् त०) ताम् । **श्रुत्वा**—√श्रु+क्त्वा । **श्रवणसुभगम्**—श्रवणयोः सुभगम् (स० त०), **श्रवण**—√श्रु+ल्युट् करणे । **गर्जितम्**—गर्ज्+इट्+क्त । **मानसोत्काः**—मानसे उत्काः (स० त०) । **आकैलासाद्**—आ अव्यय मर्यादा अर्थ से है, इसके योग में पञ्चमी वि० है, कैलास +अण् =कैलासम् तस्मात् । **बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः**—बिसस्य किसलयानि (ष० त०), तेषां, छेदाः (ष० त०) पथि साधु इति पाथेयम्, तदस्ति येषाम् इति, **पाथेयवन्तः**—पाथेय +मतुप्, मकार के स्थान पर वकार, **छेद**—√छिद् +घञ् कर्मणि । **सम्पत्स्यन्ते**—सम् +√पद् लृट् प्र० पु० एकव० । **नभसि**—नभस् शब्द, स० एकव० । **राजहंसा**—हंसानां राजानः (ष० त०) । यहाँ ''राजदन्तादिषु परम्'' इस सूत्र से राजन् पद का पूर्व प्रयोग हुआ है । □

**प्रसङ्ग**—रामगिरि पर्वत से विदाई लेने का निर्देश देता हुआ यक्ष मेघ से कहता है कि—

**आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं**
**वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु ।**

**काले काले भवति भवतो[1] यस्य संयोगमेत्य**
**स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो वाष्पमुष्णम् ॥१२॥**

**अन्वयः**—पुंसां वन्द्यैः रघुपतिपदैः मेखलासु अङ्कितं प्रियसखम् अमुं तुङ्गं शैलम् आलिङ्ग्य आपृच्छस्व, काले-काले भवतः संयोगम् एत्य चिरविरहजम् उष्णं वाष्पं मुञ्चतः यस्य स्नेहव्यक्तिः भवति ॥१२॥

**शब्दार्थ—पुंसाम्** =मनुष्यों के, **वन्द्यैः**=वन्दनीय, **रघुपतिपदैः**=रामचन्द्र जी के चरणों द्वारा, **मेखलासु**=ढलानों पर, **अङ्कितम्**=चिह्नित, **अमुम्**=इस, **तुङ्गम्**=ऊँचे, **आपृच्छस्व**=विदा लो, **संयोगम्**=साहचर्य, **एत्य**=पाकर, **चिरविरहजम्**=चिरकाल के वियोग से उत्पन्न, **वाष्पम्**=वाष्प (आँसू), **मुञ्चतः**=छोड़ते हुए, **स्नेहव्यक्तिः**=प्रेम की अभिव्यक्ति ।

**अनुवाद—मनुष्यों के वन्दनीय रामचन्द्र जी के चरणों द्वारा ढलानों पर चिह्नित, प्रिय मित्र, इस ऊँचे पर्वत को आलिङ्गन कर विदा लो । समय-समय पर आपका साहचर्य पाकर चिरकाल के वियोग से उत्पन्न गर्म वाष्प (आँसुओं) को छोड़ते हुए जिसके (रामगिरि पर्वत के) प्रेम की अभिव्यक्ति होती है ॥१२॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! जनानां वन्दनीयैः श्रीरामचरणैः कटकेषु चिह्नितं प्रियमित्रम् इमम् उन्नतम् पर्वतम् आश्लिष्य यात्रार्थमनुज्ञाप्रश्नेनाऽनन्दय । प्रतिवर्षाकालं भवत्समागमसुखमनुभूयोष्णं वाष्पं विसृजतः यस्य पर्वतस्य प्रेमाविर्भावः जायते ।

**सञ्जीवनी**—अपृच्छस्वेति । प्रियं सखायं प्रियसखम् । ('राजाहः सखिभ्यष्टच्' इति टच् समासान्तः ।) तुङ्गमुन्नतं पुंसां वन्द्यैराराधनीयै रघुपतिपदैः रामपादन्यासैर्मेखलासु कटकेषु । 'अथ मेखला । श्रोणिस्थानेऽद्रिकटके कटिबन्धेभबन्धने' इति यादवः । अङ्कितं चिह्नितम् । इत्थं सखित्वान्महत्त्वात्पवित्रत्वाच्च सम्भावनार्हम् अमुं शैलं चित्रकूटाद्रिमालिङ्ग्यापृच्छस्व । साधो यामीत्यामन्त्रणेन सभाजय । 'आमन्त्रणसभाजने । आपृच्छनम्' इत्यमरः । ('आङ्नुप्रच्छ्योरुपसङ्ख्यानम्' इत्यात्मनेपदम् ।) सखित्वं निर्वाहयति-काल इति । काले काले प्रतिप्रावृट्कालम् । सुहृत्समागमकालश्च कालशब्देनोच्यते । (वीप्सायां द्विरुक्तिः ।) भवतः संयोगं सम्पर्कमेत्य चिरविरहजमुष्णं वाष्पमूष्माणं नेत्रजलं च 'वाष्पो नेत्रजलोष्मणोः' इति विश्वः । मुञ्चतो यस्य शैलस्य स्नेहव्यक्तिः प्रेमाविर्भावो भवति। स्निग्धानां हि चिरविरहसङ्गतानां वाष्पपातो भवतीति भावः ॥१२॥

**टिप्पणी—रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु**—इस पङ्क्ति में कवि ने रामवनवास की कथा की ओर संकेत किया है कि रामचन्द्रजी वनवास के समय यहाँ ठहरे थे । इसलिए पर्वत की ढलानों पर उनके चरण-चिह्न बन गये थे । प्रथम श्लोक में सीता जी के स्नान करने का उल्लेख कवि ने किया है । इन दोनों श्लोकों से, रामगिरि कहाँ है यह जानने में सहायता मिलती है । रामचन्द्रजी के चरण-चिह्नों का उल्लेख करने का कवि का अभिप्राय पर्वत की महत्ता प्रदर्शित करना है, क्योंकि रामचन्द्र जी महान् व पूजनीय थे और वे इस पर्वत पर ठहरे थे । इसलिए उनके सम्पर्क से यह पर्वत भी पूजनीय हो गया है ।

**स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो वाष्पमुष्णम्**—प्रेमीजन जब बहुत समय बाद मिलते हैं तो उनके प्रेमाश्रु निकल पड़ते हैं, यही भाव यहाँ कवि ने कल्पित किया है । ग्रीष्म ऋतु की भयंकर गर्मी पर्वत को तपा डालती है तथा जब प्रथम वर्षा की बूँदें उस पर गिरती हैं तो उसमें से वाष्प निकलती है । आषाढ़ में लम्बे समय के बाद पर्वत जब मेघ से मिलता है, तो उसकी बूँदों से पर्वत से गर्म-गर्म वाष्प निकलती है। कवि ने कल्पना की है कि वे विरह के आँसू निकल रहे हैं ।

**व्याकरण—आपृच्छस्व**-आ +√प्रच्छ् आत्मनेपद में, लोट् म० पु० एकव० । **प्रियसखम्**—प्रियश्चासौ सखा तम् (कर्मधा०), राजाऽहःसखिभ्यष्टच् इस सूत्र में समासान्त टच्

---

१. भवता ।

(अ) प्रत्यय हुआ है । **आलिङ्ग्य**:—आ+लिङ्ग्+क्त्वा (ल्यप्)। **वन्द्यैः**:—√वन्द्+ण्यत्, तृ० बहुव० । **पुंसाम्**—वन्द्यैः के योग में 'कृत्यानां कर्तरि वा' सूत्र से विकल्प में षष्ठी है, इसमें तृतीया (पुंभिः) भी हो सकती है । **रघुपतिपदैः**—रघूणां पतिः (ष० त०) रघुपतेः पदानि तैः (ष० त०) । **अङ्कितम्** —अकि+इट् (इ)+ क्त । **काले-काले**—नित्यवीप्सयोः सूत्र से वीप्सा में द्विरुक्ति हुई है । **संयोगम्**—सम् +√युज् +घञ् । **एत्य** —आ +√इण् +क्त्वा (ल्यप्)। **स्नेहव्यक्तिः**—स्नेहस्य व्यक्तिः (ष० त०), **स्नेह**—√ स्निह् +घञ्, **व्यक्तिः**— वि +√अञ्ज् +क्तिन् । **चिरविरहजम्**—चिरं विरहः (द्वि० त०) तस्मात् जातम् (उपपद त०) चिरविरह+√जन्+ड (अ), धातु की टि (अन्) का लोप । **मुञ्चतः**:+√मुच्+शतृ, ष० एकव० । □

**प्रसङ्ग**—मेघ को समझाते हुए यक्ष कहता है कि जब तुम क्षीण हो जाओ तो तुम्हें क्या करना है—

**मार्गं तावच्छृणु[1] कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं[2]**
**संदेशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्[3] ।**
**खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र**
**क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य[4] ॥१३॥**

**अन्वयः**— (हे) जलद ! तावत् कथयतः (मत्तः) त्वत्प्रयाणानुरूपं मार्गं शृणु, यत्र खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य क्षीणः क्षीणः च स्रोतसां परिलघु पयः उपभुज्य गन्तासि । तदनु मे श्रोत्रपेयं सन्देशं श्रोष्यसि ।

**शब्दार्थ—तावत्**=अब, पहले, **कथयतः**=कहते हुए, **त्वत्प्रयाणानुरूपम्**=तुम्हारी (अपनी) यात्रा के अनुकूल, **मार्गम्**=मार्ग को, **यत्र**=जिसमें (मार्ग में), **खिन्नः खिन्नः**=बार-बार थक जाने पर, **शिखरिषु**=पर्वतों पर, **पदं न्यस्य**=पैर रखकर, **क्षीणः क्षीणः**=बार-बार क्षीण होने पर, **स्रोतसाम्**=नदियों के, **परिलघु**=हल्के, **पयः**=जल का, **उपभुज्य**=उपभोग कर (पीकर), **गन्तासि**=जाओगे, **तदनु**=उसके बाद (मार्ग सुनने के बाद), **श्रोत्रपेयम्**=कानों के द्वारा पिये जाने वाले, **सन्देशं**=सन्देश को, **श्रोष्यसि**=सुनोगे ।

**अनुवाद—(हे) मेघ ! अब, पहले कहते हुए (मुझसे) तुम्हारी (अपनी) यात्रा के अनुकूल मार्ग को सुन लो, जिसमें (मार्ग में) बार-बार थक जाने पर पर्वतों पर पैर रखकर (विश्राम करके) तथा बार-बार क्षीण होने पर नदियों के हल्के जल का उपभोग कर (पीकर) जाओगे । उसके बाद (मार्ग सुनने के बाद) कानों के द्वारा पिये जाने वाले (सुने जाने वाले) मेरे सन्देश को सुनोगे ॥१३॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! प्रथमं मत्सकाशात्स्वप्रस्थानाऽनुकूलं पन्थानम् आकर्ण्य तत्पश्चात् मार्गश्रवणानन्तरम् इत्यर्थः कर्णपानार्हं मम सन्देशवार्तां श्रोष्यसि । यस्मिन् मार्गे त्वं गमनाऽयासेन परिश्रान्तिमनुभूय पर्वतेषु पदं निक्षिप्य विश्रम्य इत्यर्थः अतिकृशो भूत्वा गिरिनदीप्रवाहाणां लघुजलमुपभुज्य गमिष्यसि ।

**सञ्जीवनी**—सम्प्रति तस्य मार्गं कथयति—मार्गमिति । हे जलद, तावदिदानीं कथयतः। मत्त इति शेषः । त्वत्प्रयाणस्यानुरूपमनुकूलं मार्गमध्वानम् । 'मार्गो मृगपदे मासि सौम्यर्क्षेऽन्वेषणेऽध्वनि'

---

१. मत्तः श्रुणु ।
२. अनुकूलम् ।
३. श्राव्यबन्धम् ।
४. चोपयुज्य ।

इति यादवः । शृणु । तदनु मार्गश्रवणानन्तरं श्रोत्राभ्यां पेयं पानार्हम् । अतितृष्णया श्रोतव्यमित्यर्थः पेयग्रहणात्सन्देशस्यामृतसाम्यं गम्यते । मे सन्देशं वाचिकम् । 'सन्देशवाग्वाचिकं स्यात्' इत्यमरः श्रोष्यसि । यत्र मार्गे खिन्नः खिन्नोऽभीक्ष्णं क्षीणबलः सन् । ('नित्यवीप्सयोः' इति नित्यार्थे द्विर्भावः) शिखरिषु पर्वतेषु पदं न्यस्य निक्षिप्य। पुनर्बललाभार्थं क्वचिद्विश्रम्येत्यर्थः। क्षीणः क्षीणोऽभीक्ष्णं कृशाङ्गः सन् । (अत्रापि कृदन्तत्वात्पूर्ववद् द्विरुक्तिः ।) स्रोतसां परिलघु गुरुत्वदोषरहितम् उपलास्फालनखेदितत्वात्पथ्यमित्यर्थः । (तथा च वाग्भटः—उपलास्फालनक्षेपविच्छेदैः खेदितोदकाः हिमवन्मलयोद्भूताः पथ्या नद्यो भवन्त्यमूः' इति ।) पयः पानीयमुपभुज्य शरीरपोषणार्थमभ्यवहृत्य च गन्तासि गमिष्यासि । (गमेर्लुट्) ।।१३।।

**टिप्पणी—अनुरूपम्—**कहीं-कहीं 'अनुकूलम्' पाठ भी पाया जाता है । इसका अर्थ भी वही होगा जो अनुरूपम् का है ।

**श्रोत्रपेयम्—**कानों द्वारा पीने से अभिप्राय जो कानों द्वारा सुना जा सके अर्थात् कानों को प्रिय लगने वाला हो । श्रोत्रपेयम् के स्थान पर कहीं-कहीं श्राव्यबन्धम् पाठ भी पाया जाता है जिसका अर्थ होगा—सुनने योग्य है बन्ध (पद रचना) जिसकी ।

**परिलघुः—**यह जल का विशेषण है, पत्थरों से टकराने के कारण नदियों का जल हल्का व स्वास्थ्यकारी माना जाता है । जैसा कि वाग्भट ने कहा है कि—

*उपलास्फालनाक्षेपविच्छेदैः खेदितोदकाः ।*

*हिमवन्मलयोद्भूताः पथ्या नद्यो भवन्त्यमूः ॥*

**उपभुज्य—**कहीं-कहीं इसके स्थान पर उपयुज्य पाठ भी पाया जाता है । इसका अर्थ भी वही होगा, जो कि उपभुज्य का है ।

**व्याकरण—शृणु—**√श्रु+लोट् म० पु० एकव० । **कथयतः—**√ कथ्+णिच् (इ)+शतृ (अत्) एकव०। **त्वत्प्रयाणानुरूपम्—**तव प्रयाणं तस्य अनुरूपः तम् (ष० त०), **प्रयाणम्—**प्र+√या+ल्युट् । **सन्देशम्—**सम्+ दिश्+घञ् । **मे—**अस्मद् शब्द का ष० एकव०, मम भी बनता है । **तदनु—**''अनुर्लक्षणे'' सूत्र से अनु को कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से 'कर्मप्रवचनीय युक्ते द्वितीया' से द्वितीया हुई है । **जलद—**जलं ददातीति जलदः, जल+√दा+क । **श्रोष्यसि—**√श्रु+लृट् म० पु० एकव० । **श्रोत्रपेयम्—** श्रोत्राभ्याम् पेयं (तृ० त०), श्रूयते अनेन इति श्रोत्रम्—√श्रु+ष्ट्रन्, **पेयम्—**√पा+यत् । **खिन्नः खिन्नः—**''नित्यवीप्सयोः'' सूत्र से नित्यार्थ में द्वित्व हुआ है, √खिद्+क्त । **शिखरिषु—** शिखराणि सन्ति येषु शिखरिणः तेषु, शिखर+इनि । **न्यस्य—**नि+√अस्+क्त्वा (ल्यप्) । **गन्तासि—**√गम्+लुट् म० पु० एकव० । **क्षीणः क्षीणः—**√क्षै+क्त यहाँ पूर्ववत् नित्यार्थ में द्वित्व है । **परिलघु—**परितः लघु, ''कुगतिप्रादयः'' सूत्र से गति समास हुआ है । **स्रोतसाम्—**स्रोतस् का ष० बहुव० । **उपभुज्य—**उप+√भुज्+क्त्वा (ल्यप्) ।

इस श्लोक में **समासोक्ति** अलङ्कार है। इसका लक्षण इस प्रकार है—

*परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः । (का० प्र० १०)* □

**प्रसङ्ग—**यक्ष मेघ को मार्ग समझाते हुए कहता है कि—

**अद्रेः शृङ्गं हरति[1] पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-**
**र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं[2] मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः ।**

---

१. वहति ।
२. दृष्टोच्छ्रायश्चकितचकितं ।

**स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं**
**दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥१४॥**

**अन्वयः**—पवनः अद्रेः शृङ्गं हरति किंस्वित् ? इति उन्मुखीभिः मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः चकितचकितं दृष्टोत्साहः पथि दिङ्नागानां स्थूलहस्तावलेपान् परिहरन् अस्मात् सरसनिचुलात् स्थानात् उदङ्मुखः खम् उत्पत ॥१४॥

**शब्दार्थ**—**अद्रेः**=पर्वत की, **शृङ्गम्**=चोटी को, **हरति**=लिये जा रहा है, **किंस्वित्**=क्या? **इति**=इससे, **उन्मुखीभिः**=ऊपर को मुख किये हुए, **मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः**=भोली-भाली सिद्धों की स्त्रियों द्वारा, **चकितचकितम्**=अत्यधिक आश्चर्य के साथ, **दृष्टोत्साहः**=देखे गये उत्साह वाला, **पथि**=मार्ग में, **दिङ्नागानाम्**=दिग्गजों के, **स्थूलहस्तावलेपान्**=मोटी सूंडों के प्रहारों को, **परिहरन्**=बचाते हुए, **सरसनिचुलात्**=सरस बेतो के, **उदङ्मुखः**=उत्तर की ओर मुख वाले होकर, **खम्**=आकाश में, **उत्पत**=उड़ जाओ ।

**अनुवाद**—**वायु पर्वत की चोटी को लिये जा रहा है क्या ? इस (विचार) से ऊपर को मुख किये हुए भोली-भाली सिद्धों की स्त्रियों द्वारा अत्यधिक आश्चर्य के साथ देखे गये उत्साह वाला, मार्ग में दिग्गजों की मोटी सूंडों के प्रहारों को बचाते हुए (तुम) उस सरस बेतों के स्थान से उत्तर की ओर मुख वाले होकर आकाश में उड़ जाओ ॥१४॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! "वायुः पर्वतस्य शिखरं नयति किम्?" इति विचिन्त्य उन्नतवदनाभिः मुग्धसिद्धसुन्दरीभिः अवलोकिताध्यवसाहः (अति चकिता भविष्यन्ति) । सन् आर्द्र-स्थलवेतसादस्मादाश्रमान्नभोमार्गे प्रतिरोधकानां दिग्गजानां पीवरकराक्षेपान् दूरीकुर्वन् उत्तराभिमुखः सन् आकाशम् उद्गच्छ ।

**सञ्जीवनी**—अद्रेरिति । पवनो वायुरद्रेश्चित्रकूटस्य शृङ्गं हरति किंस्वित् । किंस्विच्छब्दो विकल्पवितर्कार्थादिषु पठितः । इति शङ्कयोन्मुखीभिरुन्नतमुखीभिः । ('स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' इति ङीप् ।) मुग्धाभिर्मूढाभिः । 'मुग्धः सुन्दरमूढयोः' इत्यमरः । सिद्धानां देवयोनिविशेषाणाम-ङ्गनाभिश्चकितचकितं चकितप्रकारं यथा तथा। ('प्रकारे गुणवचनस्य' इति द्विर्भावः ।) दृष्टोत्साहोः दृष्टोद्योगः सन् । सरसा आर्द्रा निचुलाः स्थलवेतसा यस्मिंस्तस्मात् । 'वानीरे कविभेदे स्यान्निचुलः स्थलवेतसे' इति शब्दार्णवे । अस्मात्स्थानादाश्रमात्पथि नभोमार्गे दिङ्नागानां दिग्गजानां स्थूला ये हस्ताः करास्तेषामवलेपानाक्षेपान् परिहरन् । 'हस्तो नक्षत्रभेदे स्यात्करेभकरयोरपि' इति, 'अवलेपस्तु गर्वे स्यात्क्षेपणे दूषणेऽपि च' इति च विश्वः । उदङ्मुखः सन् । अलकाया उदीच्यत्वादित्याशयः खमाकाशमुत्पतोद्गच्छ ।

(अत्रेदमप्यर्थान्तरं ध्वनयति—रसिको निचुलो नाम महाकविः कालिदासस्य सहाध्यायी परापादितानां कालिदासप्रबन्धदूषणानां परिहर्ता यस्मिन्स्थाने तस्मात्स्थानादुदङ्मुखो निर्दोषत्वादुन्नतमुखः सन्पथि सारस्वतमार्गे । दिङ्नागानाम् । पूजायां बहुवचनम् । दिङ्नागाचार्यस्य कालिदासप्रतिपक्षस्य हस्तावलेपान्हस्तविन्यासपूर्वकानि दूषणानि परिहरन् । 'अवलेपस्तु गर्वे स्याल्लेपने दूषणेऽपि च' इति विश्वः । अद्रेरद्रिकल्पस्य दिङ्नागाचार्यस्य शृङ्गं प्राधान्यम् । 'शृङ्गं प्राधान्यसान्वोश्च' इत्यमरः। हरति किंस्विदिति हेतुना सिद्धैः सारस्वतसिद्धैर्महाकविभिरङ्गनाभिश्च दृष्टोत्साहः सन्खमुखत्पतोच्चैर्भवेति स्वप्रबन्धमात्मानं वा प्रति कवेरुक्तिरिति । 'संसर्गतो दोषगुणा भवन्तीत्येतन्मृषा येन जलाशयेऽपि। स्थित्वाऽनुकूलं निचुलश्चलन्तमात्मानमारक्षति सिन्धुवेगात् ।' (इत्येतच्छ्लोकनिर्माणात्तस्य कवेर्निचु-लसञ्ज्ञेत्याहुः) ॥१४॥

**टिप्पणी**—**दृष्टोत्साहः**—कुछ स्थानों पर **दृष्टोच्छ्रायः** यह पाठ भी पाया जाता है । इसका अर्थ होगा—देखी गयी है ऊँचाई जिसकी ।

**चकितचकितम्**—भोली-भोली सिद्धों की स्त्रियों को मेघ के बड़े आकार को देखकर यह भ्रम हो रहा है कि यह पर्वत की चोटी है, क्योंकि मेघ का रंग भी पर्वत की चोटी के समान ही है । इसलिए उन्हें आश्चर्य हो रहा है ।

**सिद्धाङ्गनाभिः**—देवों की अनेक जातियाँ बतायी गयी हैं, जैसे—सिद्ध, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व आदि ।

**सरसनिचुलात्**—इसका अर्थ है कि सरस निचुल (बेंत) है जहाँ पर ऐसे (स्थान) से, परन्तु आचार्य मल्लिनाथ ने इसका अर्थ साहित्यिक कवि निचुल से लिया है, जो महाकवि कालिदास के सहपाठी थे तथा जो कोई कालिदास की कविता में दोष निकालता था तो उसका परिहार भी ये ही करते थे । सम्भवतः निचुल कवि रामगिरि के आस-पास ही कहीं रहते थे । श्री शारदारञ्जन राय के अनुसार 'निचुल' कवि की अपनी ही उपाधि थी, जिसे उसने निम्न श्लोक रचने पर प्राप्त किया था—

*संसर्गतो दोषगुणा भवन्तीत्येतन्मृषा येन जलाशयेऽपि ।*
*स्थित्वाऽनुकूलं निचुलश्चलन्तमात्मानमारक्षति सिन्धुवेगात् ॥*

**दिङ्नागानाम्**—आठों दिशाओं में प्रत्येक दिशा का एक-एक गज अधिष्ठाता माना गया है । उन गजों के निम्न नाम हैं—

*ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमदोऽञ्जनः ।*
*पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ॥*

आचार्य मल्लिनाथ ने इससे "दिङ्नाग" नामक आचार्य अर्थ लिया है जिसको कालिदास का विरोधी बताया गया है—परन्तु यहाँ पर स्पष्ट नहीं है कि यहाँ किस दिङ्नाग की ओर संकेत है, क्योंकि दिङ्नाग नाम के कई आचार्य हुए हैं । एक तो "प्रमाणसमुच्चय" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के लेखक बौद्ध दिङ्नागाचार्य हैं, परन्तु ये कालिदास के विरोधी थे, इस कथन में कोई प्रामाणिकता नहीं है । कालिदास का समय लगभग विक्रम की प्रथम शताब्दी सिद्ध हो चुका है । इस स्थिति में जबकि दोनों के समय में इतना अन्तर है, एक-दूसरे के विरोधी कैसे हो सकते हैं ? प्रो० मैकडोनल ने भी इस कथन को अत्यधिक सन्देहास्पद बताया है । फिर दिङ्नागानाम् इस प्रकार कालिदास द्वारा बहुवचनान्त प्रयोग भी युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता ।

**व्याकरण—अद्रेः**—अद्रि का ष० एकव० । **हरति**—√हृ, लट्, प्र० पु० एकव० । **किंस्वित्**—किम्+स्वित् ये दो अव्यय मिलकर विकल्प, वितर्क आदि अर्थों में प्रयुक्त होते हैं । **उन्मुखीभिः**—उन्नतानि मुखानि यासां ताः, उन्मुख्यः ताभिः (बहुव्रीहि), उत्+मुख+ङीप् । **दृष्टोत्साहः**—दृष्टः उत्साहो यस्य सः (बहुव्रीहि), √दृश्+क्त (कर्मणि)—दृष्टः, **उत्साहः**—उत्+√सह+घञ् (भावे) । **चकितचकितम्**—चकितम् यथा स्यात् तथा (अव्यय), यहाँ "प्रकारे गुणवचनस्य" से द्वित्व हुआ है । **मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः**—सिद्धानाम् अङ्गनः (ष० त०), मुग्धाः सिद्धाङ्गनाः ताभिः (कर्मधा०) । **स्थानात्**—√ष्ठा (स्था) + ल्युट्, प० एकव० । **सरसनिचुलात्**—सरसाः निचुलाः यस्मिन् तस्मात् (बहु०) । **उत्पत**—उत्+√पत्, लोट् म० पु० एकव० । **उदङ्मुखः**—उदक् मुखं यस्य सः (बहु०), उत्+√अञ्चु+क्विन् । **दिङ्नागानाम्**—दिशां नागाः तेषाम् (ष० त०) । **परिहरन्**—परि+√हृ+शतृ, प्र० एकव० । **स्थूलहस्तावलेपान्**—स्थूलाः ते हस्ताः (कर्मधा०) तेषाम् अवलेपान् (ष० त०) ।

आचार्य **मल्लिनाथ** के अनुसार इस श्लोक का दूसरा अर्थ इस प्रकार है—

*(हे मेरे काव्य !) सहृदय निचुल जहाँ रहता है, ऐसे इस स्थान से उन्नत मस्तक हुआ, सरस्वती के मार्ग में दिङ्नाग नाम के आचार्य के हाथ रखकर दिखाये गये दोषों को बचाता हुआ और क्या कालिदास की कीर्ति पर्वत के समान दिङ्नाग के प्राधान्य को ह*

*रही है, इस कारण निपुण कवियों तथा स्त्रियों द्वारा अत्यधिक चकित होकर देखने से उत्साह वाला तू आकाश से उड़ अर्थात् उत्कृष्ट बन जा ।*

इस प्रकार यहाँ मल्लिनाथ के अनुसार कालिदास ने अपने प्रतिद्वन्द्वी दिङ्नाग के प्रति संकेत करके अपने काव्य की श्रेष्ठता का संकेत किया है ।

प्रस्तुत श्लोक में **अभेदोक्ति सन्देहालङ्कार** है, जिसका लक्षण इस प्रकार है—

*सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः ।*
*शुद्धो निश्चयगर्भोऽसौ निश्चयान्त इति त्रिधा ॥ (सा० द० १०/३५)* □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कह रहा है कि तुम इन्द्रधनुष के दृष्टिगोचर होने पर विष्णु (कृष्ण) के समान सुन्दरता को प्राप्त करोगे—

**रत्नच्छायाव्यतिकर[1] इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ताद्**
**वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुः खण्डमाखण्डलस्य[2] ।**
**येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते[3] ते**
**बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥१५॥**

**अन्वयः**—रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यम् एतत् आखण्डलस्य धनुः खण्डं पुरस्तात् वल्मीकाग्रात् प्रभवति, येन ते श्यामं वपुः स्फुरितरुचिना बर्हेण गोपवेषस्य विष्णोः (श्यामं वपुः) इव अतितरां कान्तिम् आपत्स्यते ॥१५॥

**शब्दार्थ**—**रत्नच्छायाव्यतिकरः**=रत्नों की कान्तियों का मिश्रण, **प्रेक्ष्यम्**=दर्शनीय, **एतत्**=यह, **आखण्डलस्य**=इन्द्र का, **धनुः खण्डम्**=धनुष का टुकड़ा, **पुरस्तात्**=सामने, **वल्मीकाग्रात्**=बाँबी के अग्रभाग से, **प्रभवति**=निकल रहा है, **स्फुरितरुचिना**=उज्ज्वल कान्ति वाले, **बर्हेण**=मोर के पंखों से, **गोपवेषस्य**=गोप वेश धारण करने वाले, **अतितराम्**=अत्यन्त, **कान्तिम्**=शोभा को, **आपत्स्यते**=प्राप्त होगा ।

**अनुवाद**—**रत्नों की कान्तियों के मिश्रण के समान दर्शनीय यह इन्द्रधुनष का टुकड़ा सामने बाँबी के अग्र भाग से निकल रहा है, जिससे तुम्हारा श्याममल शरीर उज्ज्वल कान्ति वाले मोर के पंख से गोपवेश धारण करने वाले विष्णु (कृष्ण) के श्यामल शरीर के समान अत्यन्त शोभा को प्राप्त होगा ॥१५॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! पद्मरागादिमणिप्रभामिश्रणमिव दर्शनीयम् इन्द्रस्य इदं दृश्यमानं चापखण्डम् अग्रे वल्मीकविवराद् आविर्भवति । येन धनुष्खण्डेन तव कृष्णवर्णं शरीरम् उज्ज्वलकान्तिना पिच्छेन गोपवेषस्य कृष्णस्येव श्यामं वपुः इव अत्यन्तं शोभां प्राप्स्यते ।

**सञ्जीवनी**—रत्नेति । रत्नच्छायानां पद्मरागादिमणिप्रभाणां व्यतिकरो मिश्रणमिव प्रेक्ष्यं दर्शनीयमाखण्डलस्येन्द्रस्यैतद्धनुःखण्डम् । एतदिति हस्तेन निर्देशो विवक्षितः । पुरस्तादग्रे वल्मीकाग्राद्वामलूरविवरात् । 'वामलूरश्च नाकुश्च वल्मीकं पुंनपुंसकम्' इत्यमरः । प्रभवत्याविर्भवति। येन धनुःखण्डेन ते तव श्यामं वपुः । स्फुरितरुचिनोज्ज्वलकान्तिना बर्हेण पिच्छेन । 'पिच्छबर्हे नपुंसके' इत्यमरः । गोपवेषस्य विष्णोर्गोपालस्य कृष्णस्य श्यामं वपुरिव । अतितरां कान्तिं शोभामापत्स्यते प्राप्स्यते ॥१५॥

---

१. रत्नच्छाया ।
२. धनुष्खण्ड० ।
३. आलप्स्यते ।

**टिप्पणी—रत्नच्छायाव्यतिकरः**—इन्द्रधनुष के सात रङ्गों के मिश्रण को अनेक र की रत्नों की कान्तियों के मिश्रण के समान बताया गया है । कहीं-कहीं 'रत्नच्छायव्यतिक' यह पाठ भी पाया जाता है, क्योकि 'छाया बाहुल्ये' के अनुसार 'इक्षूणां छाया' इक्षुच्छा के समान तत्पुरुष समास में छाया को छायम् हो जाता है । परन्तु 'रत्नच्छायाव्यतिक' यह पाठ भी शुद्ध है, क्योंकि 'विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानम्' के अनुसार सेना, सु छाया, शाला और निशा को नपुंसकलिङ्ग विकल्प से होता है ।

**वल्मीकाग्रात् प्रभवति**—इन्द्रधनुष वल्मीक के भीतर स्थित महानाग की मणि किरण समूह से उत्पन्न होता है । ऐसा कहते हैं—'इन्द्रचापं किल वल्मीकान्तरव्यवस्थितम नागशिरोमणिकिरणसमूहात् समुत्पद्यते ।' कुछ आचार्य इसे शेषनाग के कुल के सर्पों नि:श्वास से उत्पन्न बताते हैं—'अनन्तकुलोरगनिश्वासोद्भूतमाहुराचार्याः' । वराहमिहिर ने इन्द्रध की उत्पत्ति के विषय में इस प्रकार लिखा है—'सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघट्टिताः क साभ्रं वियति धनुःसंस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः ।' अर्थात् जो सूर्य की अनेक वर्णों किरणें वायु से बिखरी हुई होकर मेघ-युक्त आकाश में धनुष के आकार की दिखलायी दे हैं, उसे इन्द्रधनुष कहते हैं ।

**धनुःखण्डम्**—वल्लभ ने पाणिनीय व्याकरण का अनुसरण करते हुए '**धनुष्खण्ड**' पाठ रखा है, परन्तु चन्द्रगोमी के व्याकरण के अनुसार '**धनुःखण्डम्**' पाठ भी शुद्ध है आचार्य मल्लिनाथ ने भी यही पाठ स्वीकार किया है ।

**आखण्डल**—टुकड़े करने वाला, इन्द्र । यहाँ आखण्डल शब्द का प्रयोग करके क ने एक कथा की ओर संकेत किया है । वह कथा है—'**इन्द्र द्वारा पर्वतों के पंख का की कथा**' । यद्यपि यह कथा मूलरूप से पौराणिक है, परन्तु इसके बीज वैदिक साहि में भी मिलते हैं—

*यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुम्पितॉं अरम्णात् ।*
*यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥*

मत्स्यपुराण में भी यह प्रसङ्ग इस प्रकार आया है—

*इत्येते पर्वताविष्टाश्चत्वारो लवणोदधिकम् ।*
*छिद्यमानेषु पक्षेषु पुरा इन्द्रस्य वैभयात् ॥ (१२१/७८)*

**गोपवेषस्य विष्णोः**—ग्वाले का वेश धारण करने वाले विष्णु के । श्रीमद्भाग पुराण के अनुसार विष्णु ने कृष्ण के रूप में अवतार लिया था । उन्होंने अपना बचपन न के पुत्र के रूप में बिताया था, जहाँ वे ग्वाले का वेश धारण करते थे । सिर पर मोर का मुकुट धारण करते थे । हरिवंश पुराण तथा श्रीमद्भागवत पुराण में इस प्रकार की की लीलाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है । इसी ओर यहाँ कवि का संकेत है ।

**व्याकरण—रत्नच्छायाव्यतिकर इव**—रत्नानां छायाः, तासां व्यतिकरः (ष० त० **व्यतिकर**—वि+अति+√कृ+अप् (भावे) । **प्रेक्ष्यम्**—प्र+√ईक्ष्+ण्यत् । **पुरस्तात्**—पूर्वस्यां दि इति अस्तीति स्वार्थे, पुर आदेश । **वल्मीकाग्रात्**—वल्मीकस्य अग्रात् (ष० त०) । **धनुःखण्डम्** धनुषः खण्डम् (ष० त०) । **आखण्डलस्य**—आ समन्तात् खण्डयति पर्वतान् आखण्डलः त आ+ √खण्ड्+कलच् (अल) । **अतितराम्**—अति+तरप्+आम् । **आपत्स्यते**—आ+ √पद् प्र० पु० एकव० । **स्फुरितरुचिना**—स्फुरिता रुचिर्यस्य तत् तेन् (बहु०) स्फुर+क्त+टा **गोपवेषस्य**—गाः पातीति गोपः—गो+√पा+क (उपपद०) गोपस्येव वेषो यस्य तस्य (बहु०)

प्रस्तुत श्लोक में **पूर्णोपमा** अलङ्कार है जिसका लक्षण इस प्रकार है—

*सा पूर्णा यदि सामान्यधर्म औपम्यवाचि च ।*
*उपमेयं चोपमानं भावेद्वाच्यम्— (सा० द० १०/१४ के बाद)*

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ की महत्ता को बताते हुए मार्ग समझा रहा है कि पहले पश्चिम की ओर जाकर फिर उत्तर की ओर जाना—

**त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः[1]**
**प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ।**
**सद्यः सीरोत्कषणसुरभि[2] क्षेत्रमारुह्य मालं**
**किञ्चित्पश्चाद् व्रज[3] लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥१६॥**

**अन्वयः**—कृषिफलं त्वयि आयत्तम् इति प्रीतिस्निग्धैः भ्रूविलासानभिज्ञैः जनपदवधूलोचनैः पीयमानः मालं क्षेत्रं सद्यः सीरोत्कषणसुरभि आरुह्य किञ्चित् पश्चात् व्रज भूयः लघुगतिः उत्तरेण एव (व्रज) ॥१६॥

**शब्दार्थ**—**कृषिफलं**=खेती का फल, **आयत्तम्**=अधीन, **प्रीतिस्निग्धैः**=स्नेह से आर्द्र, **भ्रूविलासानभिज्ञैः**=भौंहों के विलास से अपरिचित, **जनपदवधूलोचनैः**=ग्रामीण स्त्रियों की आँखों से, **पीयमानः**=पिया जाता हुआ (अत्यन्त प्रेमपूर्वक देखा जाता हुआ), **सद्यः**=तत्काल, **सीरोत्कषणसुरभि**=हल से जोता जाने के कारण सुगन्धित, **किञ्चित्पश्चात्**=कुछ पश्चिम की ओर, लघुगतिः=तीव्र गति वाला ।

**अनुवाद**—**खेती का फल तुम्हारे अधीन है, इस कारण स्नेह से आर्द्र भौंहों के विलास से अपरिचित ग्रामीण स्त्रियों की आँखों से पिये जाते हुए (अत्यन्त प्रेमपूर्वक देखे जाते हुए) (तुम) माल नामक देश पर, जो तत्काल हल से जोता जाने के कारण सुगन्धित हो जायेगा, चढ़कर कुछ पश्चिम की ओर जाना (और) फिर तीव्र गति वाला होकर उत्तर की ओर ही (जाना) ॥१६॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! सस्यादीनां फलं त्वदधीनम् अस्मात्कारणात् प्रेमार्द्रैः भ्रूविकारापरिचितैः ग्रामीणललनानयनैः सादरम् अवलोक्यमानः सन् शीघ्रमेव हलविदारणेन सौरभसम्पन्नं मालाख्यं उन्नतभूतलं वर्षणेनानुगृह्य किञ्चित्कालानन्तरं सत्वरगत्या पुनरप्युत्तरमार्गेण एव गच्छ ।

**सञ्जीवनी**—त्वय्येति । कृषेर्हलकर्मणः फलं सस्यं त्वयि । (अधिकरणविवक्षायां सप्तमी) । आयत्तमधीनम् । 'अधीनो विघ्न आयत्तः' इत्यमरः । इति हेतोः प्रीत्या स्निग्धैः । अकृत्रिमप्रेमार्द्रैरित्यर्थः । भ्रूविकाराणां भ्रूविलासानामनभिज्ञैः । पामरत्वादिति शेषः । जनपदवधूनां पल्लीयोषितां लोचनैः पीयमानः सादरं वीक्ष्यमाणः सन् । मालं मालाख्यं क्षेत्रं शैलप्रायमुन्नतस्थलम् 'मालमुन्नतभूतलम्' इत्युत्पलामालायाम्। सद्यस्तत्कालमेव सीरैर्हलैरुत्कर्षणेन सुरभि घ्राणतर्पणं यथा स्याम् तथाऽऽरुह्य तत्राभिवृष्येत्यर्थः । 'सुरभिर्घ्राणतर्पणः' इत्यमरः । किञ्चित्पश्चाल्लघुगतिस्तत्र निर्वृष्टत्वात्क्षिप्रगमनः सन् । 'लघु क्षिप्रतरं द्रुतम्' इत्यमरः । भूयः पुनरप्युत्तरेणैवोत्तरमार्गेणैव व्रज गच्छ । (तृतीयाविधाने 'प्रकृत्यादिभ्य उपसङ्ख्यानम्' इति तृतीया ।) यथा कश्चिद् बहुवल्लभः पतिः कुत्रचित्क्षेत्रे गूढं विहृत्य । क्षेत्रं शरीरे केदारे 'सिद्धस्थानकलत्रयोः' इति विश्वः । दाक्षिण्यभङ्गभयान्नीचमार्गेण निर्गत्य पुनः सर्वाध्यक्ष इव सञ्चरति तद्वदिति ध्वनिः ॥१६॥

**टिप्पणी**—**भ्रूविलासानभिज्ञैः**—भौंहों के विलास से अपरिचित । यह जनपदवधूलोचनैः का विशेषण है। कुछ स्थानों पर **भ्रूविकारानभिज्ञैः** पाठ भी मिलता है, जिसका अर्थ भी भौंहों के विलास से अपरिचित ही होगा ।

---

१. भ्रूविकारानभिज्ञैः ।
२. ०सुरभिक्षेत्रम् ।
३. पश्चात्प्रबलयगतिं भूयः ।

**जनपदवधूलोचनैः**—जनपद कहने का यहाँ कवि का अभिप्राय ग्रामीण व नागरि स्त्रियों में तुलना करना है। ग्रामीण स्त्रियाँ नागरिक स्त्रियों की अपेक्षा भोली-भाली होती तथा वे कटाक्षपात आदि श्रृङ्गारिक चेष्टाओं से अनभिज्ञ रहती हैं।

**सीरोत्कषणसुरभि**—वर्षा करने के पश्चात् भूमि को हल से जोतने पर वह सुगन्धि हो उठेगी। जब सूखी भूमि पर पहले-पहले वर्षा होती है तो उसमें सुगन्ध निकलती है कुछ स्थानों पर 'सीरोत्कषणसुरभिक्षेत्रम्' ऐसा पाठ भी मिलता है। तब इसका अर्थ होगा—हल से जोता जाने के कारण सुगन्धित खेतों वाले (मालदेश पर चढ़कर)।

**मालं क्षेत्रम्**—मल्लिनाथ ने इसका अर्थ माल नाम का क्षेत्र (पठार) किया है, जबकि प्रो० विल्सन छत्तीसगढ़ में रत्नपुर के पास माल्दा से इसका सम्बन्ध जोड़ते हैं। कुछ टीकाकारों ने इसका अर्थ मालवदेश भी किया है।

**किञ्चित्पश्चात्**—कुछ पश्चिम की ओर। कुछ टीकाकार इसका अर्थ 'कुछ देर बाद' भी करते हैं। तब अर्थ होगा—मालदेश पर चढ़कर कुछ देर बाद तीव्र गति वाला होकर।

**लघुगतिः**—वर्षा करने के बाद मेघ हल्का हो जायेगा, तो उसकी गति तेज हो जायेगी। कुछ स्थानों पर **प्रबलयगतिम्** ऐसा पाठ भी मिलता है। तब अर्थ होगा—कुछ देर बाद उत्तर की ओर ही गति को अधिक करना।

**व्याकरण**—**आयत्तम्**—आ+√यत्+क्त। **कृषिफलम्**—कृषेः फलम् (ष० त०) **भ्रूविलासानभिज्ञैः**—भ्रुवोः विलासः तस्य अनभिज्ञानि तैः (ष० त०), **विलासः**—वि+√लस् +घञ्, **अभिज्ञानि**—अभि+√ज्ञा+क, न अभिज्ञानि, अनभिज्ञानि (नञ् त०)। **प्रीतिस्निग्धैः**—प्रीत्या स्निग्धानि तैः (तृ० त०), **प्रीतिः**—√प्री+क्तिन्, **स्निग्धम्**—√स्निह्+ क्त। **जनपदवधूलोचनैः**—जनपदस्य वधूनां लोचनैः (ष० त०)। **पीयमानः**—√पा+ कर्मणि+शानच्। **सीरोत्कषणसुरभिः**—सीरेण उत्कषणम् (तृ० त०) तेन सुरभि यथा स्यात् तथा (तृ० तृ०), **उत्कषण**—उद्+√कष्+ल्युट् (भावे)। **आरुह्य**—आ+√रुह्+ल्युट्। **व्रज**—√व्रज, लोट्, म० प्र० एकव०। **लघुगतिः**—लघ्वी गतिः यस्य सः (बहु०)। **उत्तरेण**—'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' से तृतीया वि० है।

प्रस्तुत श्लोक में **परिवृत्ति** अलङ्कार है, जिसका लक्षण इस प्रकार है—

*परिवृत्तिर्विनिमयः समन्यूनाधिकैर्भवेत्। (सा० द० १०/८० के बाद)*

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि जब तुम उत्तर की ओर जाओगे तो वहाँ आम्रकूट पर्वत पर पहुंचोगे—

**त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं[1] साधुमूर्ध्ना**
**वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः।**
**न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय**
**प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥१७॥**

**अन्वयः**— आम्रकूटः सानुमान् आसारप्रशमितवनोपप्लवम् अध्वश्रमपरिगतं त्वां साधु मूर्ध्ना वक्ष्यसि। क्षुद्रः अपि मित्रे संश्रयाय प्राप्ते प्रथमसुकृतापेक्षया विमुखः न भवति। यः तथा उच्चैः (सः) पुनः किम्? ॥१७॥

१. ०दवोपप्लवं।

**शब्दार्थ**—**सानुमान्**=पर्वत, **आसारप्रशमितवनोपप्लवम्**=मूसलाधार वर्षा से दावाग्नि को बुझाने वाले, **अध्वश्रमपरिगतम्**=मार्ग की थकान से व्याप्त, **साधु**=अच्छी प्रकार, **वक्ष्यति**=धारण करेगा, **संश्रयाय**=आश्रय के लिए, **प्रथमसुकृतापेक्षया**=पहले के उपकारों को विचार कर, **उच्चै:**=ऊँचा (महान्), **किम्**=कहना ही क्या ?

**अनुवाद**—आम्रकूट पर्वत, मूसलाधार वर्षा से दावाग्नि को बुझाने वाले, मार्ग की थकान से व्याप्त तुमको अच्छी प्रकार सिर पर धारण करेगा, (क्योंकि) अधम (व्यक्ति) भी मित्र के आश्रय के लिए आने पर पहले के उपकारों को विचार कर, विमुख नहीं होता, (फिर) जो उतना ऊंचा (महान्) है, उसका तो कहना ही क्या ? ।।१७।।

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! आम्रकूटपर्वत: धारासम्पातेन निवारितदावानलं मार्गक्लान्तं त्वां शिखरेण सम्यग्धारयिष्यति । यत: निकृष्टोऽपि आश्रयाय संप्राप्तं मित्रं वीक्ष्य पूर्वकृतोपकारस्मृत्या पराङ्मुखो न भवति, आम्रकूटस्तु तथा उन्नत: स पराङ्मुखो न भवति ।

**सञ्जीवनी**—त्वामिति । आम्राश्चूता: कूटेषु शिखरेषु यस्य स आम्रकूटो नाम सानुमान्पर्वत: । 'आम्रश्चूतो रसालोऽसौ' 'कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गम्' इति चामर: । आसारो धारावृष्टि:। 'धारासम्पात आसार:' इत्यमर: । तेन प्रशमितो वनोपल्लवो दावाग्निर्येन तम् । कृतोपकारमित्यर्थ:। अध्वश्रमेण परिगतं व्याप्तं त्वां साधु सम्यग् मूर्ध्ना वक्ष्यति वोढा । (वहेर्लृट्) । तथा हि । क्षुद्र: कृपणोऽपि 'क्षुद्रो दरिद्र: कृपणे नृशंसे' इति यादव: । संश्रयाय संश्रयणाय मित्रे सुहृदि । 'अथ मित्रं सखा सुहृत्' इत्यमर: । प्राप्ते आगते सति । प्रथमसुकृतापेक्षया पूर्वोपकारपर्यालोचनया विमुखो न भवति, यस्तथा तेन प्रकारेणोच्चैरुन्नत: स: आम्रकूट: किं पुनर्विमुखो न भवतीति किमु वक्तव्यमित्यर्थ: । एतेन प्रथमावसथे सौख्यलाभात्ते कार्यसिद्धिरस्तीति सूचितम् । तदुक्तं निमित्तनिदाने—प्रथमावसथे यस्य सौख्यं तस्यांखिलेऽध्वनि । शिवं भवति यात्रायामन्यथा त्वशुभं ध्रुवम् । इति ।।१७।।

**टिप्पणी**—**अध्वश्रमपरिगतम्**—यहां यक्ष मेघ से कहता है कि जब तुम मार्ग में चलोगे, तो निश्चय ही उससे तुम्हें थकान उत्पन्न हो जायेगी और तुम्हारा मन आराम करने के लिए करेगा ।

**आम्रकूट:**— आम्रकूट नाम वाला पर्वत, इसका यह नाम सार्थक है, क्योंकि इसके आस-पास के जंगलों में आम के वृक्ष अधिकता से पाये जाते हैं । यह विन्ध्याचल पर्वत का पूर्वी भाग है। यहां से नर्मदा नदी निकलती है । प्रो० विल्सन ने इसे आधुनिक अमरकण्टक माना है ।

**विमुखो न भवति**—कोई भी व्यक्ति पहले किये गये उपकारों को नहीं भूलता है और फिर यदि कोई मित्र, जिसने उसके ऊपर उपकार किये हैं, उसके पास आता है तो वह उन पूर्व उपकारों को सोचकर उसका स्वागत सत्कार करता है तथा यथासम्भव सहायता भी करता है ।

**व्याकरण**—**आसारप्रशमितवनोपप्लवम्**—आसारेण धारापातेन प्रशमितो वनोपप्लवो दावाग्नि: येन (बहु०), **आसारेण**—आ+√सृ+घञ् (भावे), **प्रशमित:**—प्र+√शम्+णिच्+क्त, **उपप्लवम्**—उप+√प्लु+अप् (भावे) । **वक्ष्यति**—√वह् लृट् प्र० पु० एकव० । **अध्वश्रमपरिगतम्**—अध्वन: श्रम: (ष० त०) तेन परिगत: तम् (तृ० त०), **श्रम:**— श्रम्+घञ् । **सानुमान्**—सानु+मतुप्। **आम्रकूट:**— आम्र: कूटेषु यस्य स: अथवा आम्राणां कूटो राशि: यत्र (बहु०) । **प्रथमसुकृतापेक्षया**—प्रथमानि सुकृतानि (कर्मधा०) तेषाम् अपेक्षा तया (ष० त०) । **सुकृत**—सु+√कृ+क्त । **संश्रयाय**—संश्रय का च० एकव०, सम्+√श्रि+अच् (भावे) । **प्राप्ते**—प्र+√आप्+क्त स० एकव०। **तथा**—तत्+थाल् ।

प्रस्तुत श्लोक में पूर्वार्द्ध के अर्थ का उत्तरार्द्ध से समर्थन करने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है, जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/५) में दिया गया है ।

**प्रसङ्ग**—आम्रकूट पर्वत तुम्हारे वहां पहुंचने से कितना सुन्दर लगेगा, इसका वर्णन करते हुए यक्ष मेघ से कहता है कि—

**छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै**
**स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे[1] ।**
**नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां**
**मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥१८॥**

**अन्वयः**—परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रैः छन्नोपान्तः अचलः स्निग्धवेणीसवर्णे त्वयि शिखरम् आरूढे (सति), मध्ये श्यामः शेषविस्तारपाण्डुः भुवः स्तन इव नूनम् अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम् अवस्थां यास्यति ॥१८॥

**शब्दार्थ**—**परिणतफलद्योतिभिः**=पके हुए फलों से चमकते हुए, **काननाम्रैः**=वन के आमों से, **छन्नोपान्तः**=ढके हुए पार्श्व भागों वाला, **अचलः**=(आम्रकूट) पर्वत, **स्निग्धवेणीसवर्णे**=चिकनी चोटी के समान रंग वाले, **शिखरम्**=चोटी पर, **आरूढे**=चढ़ने पर, **शेषविस्तारपाण्डुः**=शेष विस्तार भाग पीला-सा, **अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम्**=देवों के जोड़ों के द्वारा देखने योग्य, **अवस्थाम्**=अवस्था को, **यास्यति**=प्राप्त करेगा ।

**अनुवाद**—**पके हुए फलों से चमकते हुए वन के आमों से ढके हुए पार्श्व भागों वाला (आम्रकूट) पर्वत, चिकनी चोटी के समान रंग वाले तुम्हारे चोटी पर चढ़ने पर, मध्य भाग में काला तथा शेष विस्तार भाग पीला-सा, पृथिवी के स्तन के समान (होकर), निश्चय ही देवों के जोड़ों द्वारा देखने योग्य अवस्था को प्राप्त करेगा ॥१८॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! परिपक्वफलशोभिभिः वनरसालैः आवृतपार्श्व आम्रकूटपर्वतः श्यामवर्णे त्वयि शृङ्गमारूढे सति मध्ये कृष्णोऽन्यत्र विस्तृतत्वेन शुक्लः पृथिव्याः पयोधर इव देवयुगलदर्शनीयां दशां निश्चयेन प्राप्स्यति ।

**सञ्जीवनी**—छन्नेति । हे मेघ ! परिणतैः परिपक्वैः फलैर्द्योतन्त इति तथोक्तैः । आषाढे वनचूताः फलन्ति पच्यन्ते च मेघवातेनेत्याशयः । काननाम्रैर्वनचूतैश्छन्नोपान्त आवृतपार्श्वोऽचल आम्रकूटाद्रिः स्निग्धवेणीसवर्णे मसृणकेशबन्धच्छाये । श्यामवर्णे इत्यर्थः । 'वेणी तु केशबन्धे जलस्रुतौ' इति यादवः । त्वयि शिखरं शृङ्गमारूढे सति । ('यस्य च भावेन् भावलक्षणम्' इति सप्तमी) । मध्ये श्यामः शेषे मध्यादन्यत्र विस्तारे परितः पाण्डुर्हरिणः । 'हरिणः पाण्डुरः' इत्यमरः । भुवः स्तन इव अमरमिथुनानाम् । खचराणामिति भाव । प्रेक्षणीयां दर्शनीयामवस्थां नूनं यास्यति । (मिथुनग्रहणं कामिनामेव स्तनत्वेनोत्प्रेक्षा सम्भवतीति कृतम् । यथा परिश्रान्तः कश्चित्कामी कामिनीनां कुचकलशे विश्रान्तः सन्स्वपिति तद्वद्धवानपीति भुवो नायिकायाः स्तन इति ध्वनिः) ॥१८॥

**टिप्पणी**—**स्निग्धवेणीसवर्णे**—चिकनी चोटी के समान रंग वाले, परन्तु दक्षिणावर्त ने इसके स्थान पर, '**सर्पवेणीसवर्णे**' पाठ माना है, जिसका अर्थ होगा—सर्पवेणी के समान रंग वाले ।

**अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम्**—मल्लिनाथ के अनुसार यहा '**मिथुन**' पद साभिप्राय है क्योंकि कामकेलिरत अमर-मिथुन ही पर्वत में स्तन की उत्प्रेक्षा कर सकता है । भाव यह है कि

---

१. सर्पवेणीसवर्णे ।

आम्रकूट पर्वत के पार्श्व भागों में पके हुए वनों के आमों का समूह है । ऊपर उठा हुआ पर्वत अपने पार्श्व भागों में पीले आमों से ढका है, उसकी चोटी पर काला मेघ स्थित होगा तो वह पर्वत देव-दम्पत्तियों को पृथिवी रूपी नायिका का स्तन प्रतीत होगा, क्योंकि स्तन भी मध्य में कृष्ण तथा शेष विस्तृत भाग में गौर वर्ण होता है । वह पर्वत गौर वर्ण वाली तरुणी के स्तन के समान होगा ।

**व्याकरण**—**छन्नोपान्त**:=छन्ना: उपान्ता: यस्य स: (बहु०), **छन्न:**—√छद् +क्त । **परिणतफलद्योतिभि:**—परिणतानि फलानि (कर्म धा०) तै: द्योतन्ते इति परिणतफल+√द्युत्+णिनि—परिणतफलद्योतिन: तै:, **परिणत**—परि+√नम्+क्त । **काननाम्रै:**— काननस्य आम्रै: (ष० त०) । **त्वयि**—'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' सूत्र से सप्तमी वि० हुई है । **आरूढे**—आ+√रुह्+क्त । **स्निग्धवेणीसवर्णे**-स्निग्धा वेणी (कर्म धा०) तस्या: सवर्ण: (ष० त०) तस्मिन् समान: वर्ण: यस्य स: सवर्ण: (बहु०), **स्निग्धा**—√स्निह+क्त+टाप् । **यास्यति**—√या लृट् प्र० पु० एकव० । **अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम्**—अमराणां मिथुनानि (ष० त०) तै: प्रेक्षणीया (तृ० त०) ताम्, **प्रेक्षणीयाम्**—प्र+√ईक्ष्+अनीयर्+टाप् । **शेषविस्तारपाण्डु**:—शेषश्च असौ विस्तार: (कर्म धा०) तस्मिन् पाण्डु: (स० त०) ।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलङ्कार है, जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/१५) में दिया है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि तुम आम्रकूट पर्वत से आगे चलकर रेवा नदी पर पहुंचोगे—

**स्थित्वा तस्मिन् वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तं**
**तोयोत्सर्गद्रुततर**[१]**गतिस्तत्परं वर्त्म तीर्ण: ।**
**रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां**
**भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥१९॥**

**अन्वय**:—वनचरवधूभुक्तकुञ्जे तस्मिन् मुहूर्तं स्थित्वा तोयोत्सर्गद्रुततरगति: तत्परं वर्त्मतीर्ण: उपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णं रेवां गजस्य अङ्गे भक्तिच्छेदै: विरचितां भूतिम् इव द्रक्ष्यसि ॥१९॥

**शब्दार्थ**—**वनचरवधूभुक्तकुञ्जे**=वन में विचरण करने वालों की स्त्रियों द्वारा उपभुक्त कुञ्जों वाले, **तस्मिन्**=उस (आम्रकूट पर्वत) पर, **तोयोत्सर्गद्रुततरगति**:=जल की वर्षा कर देने से अत्यन्त तीव्र गति वाला, **तत्परम्**=उससे आगे का, **वर्त्म**=मार्ग का, **तीर्ण**:=पार कर, उपलविषमे=पत्थरों के कारण ऊबड़-खाबड़, **विन्ध्यापादे**=विन्ध्याचल की तलहटी में, **विशीर्णाम्**=फैली हुई, **भक्तिच्छेदै**:=चित्रकारी की रेखाओं (रचनाओं) के प्रकारों से, **विरचिताम्**=बनायी गयी, **भूतिम्**=शृङ्गार रेखा को, **द्रक्ष्यसि**=देखोगे ।

**अनुवाद**—**वन में विचरण करने वालों की स्त्रियों द्वारा उपभुक्त कुञ्जों वाले उस (आम्रकूट पर्वत) पर क्षण भर ठहर कर, जल की वर्षा कर देने से अत्यन्त तीव्र गति वाला होकर, उससे (आम्रकूट से) आगे के मार्ग को पार कर, पत्थरों के कारण ऊबड़-खाबड़ विन्ध्याचल की तलहटी में फैली हुई नर्मदा नदी को, हाथी के शरीर पर चित्रकारी की रेखाओं के प्रकारों से बनायी गयी शृङ्गार रेखा के समान देखोगे ॥१९॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! किरातवनितोपभुक्तलतागृहे तस्मिन् आम्रकूटपर्वते क्षणं

१. तोयोत्सर्गात् ।
२. लघुतर० ।

विश्रम्य जलमोचनतीव्रतरगमनः सन् तत्परं मार्गम् अतिक्रान्तः पाषाणदुर्गमे विन्ध्यप्रत्यन्तपर्वते विस्तीर्णां नर्मदां हरितशरीरे रचनाभङ्गिभिः विलिखितां श्रृङ्गारमिव विलोकयिष्यसि ।

**सञ्जीवनी**—स्थित्वेति । हे मेघ, वने चरन्ति ते वनचराः । 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इति बहुलग्रहणाल्लुग्भवति । तेषां वधूभिर्भुक्ताः कुञ्जा लतागृहा यत्र तस्मिन् 'निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीवे लतादिपिहितोदरे' इत्यमरः । तत्र ते नयनविनोदोऽस्तीत्यर्थः । तस्मिन्नाम्रकूटे मुहूर्तमल्पकालम्, न तु चिरं, स्वकार्यविरोधादिति भावः । 'मुहूर्तमल्पकाले स्याद्घटिकाद्वितयेऽपि च' इति शब्दार्णवे । स्थित्वा विश्रम्य तोयोत्सर्गेण 'त्वामासार०' इत्युक्तवर्षणेन द्रुततरगतिर्लाघवाद्धेतोरतिक्षिप्रगमनः सन् । तस्मादाम्रकूटात्परमनन्तरं तत्परं वर्त्म मार्गं तीर्णोऽतिक्रान्तः । उपलैः पाषाणैर्विषमे विन्ध्यस्याद्रेः पादे प्रत्यन्तपर्वते । 'पादाः प्रत्यन्तपर्वताः' इत्यमरः । विशीर्णां समन्ततो विसृमराम् (एतेन कस्याश्चित्कामुक्याः प्रियतमचरणपातोऽपि दृवन्यते ।) रेवां नर्मदाम् ।'रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका' इत्यमरः । गजस्याङ्गे शरीरे भक्तयो रचनाः रेखा इति यावत्। 'भक्तिर्निशेवणे भागे रचनायाम्' इति शब्दार्णवे । तासां छेदैर्भङ्गिभिर्भाभिर्विरचितां भूतिं शृंङ्गारमिव भसितमिव वा । 'भूतिर्मातङ्ग-शृङ्गारे जातौ भस्मानि सम्पदि' इति विश्वः । द्रक्ष्यसि । अयमपि महांस्ते नयनकौतुकलाभ इति भावः ॥१९॥

**टिपण्णी—वनचरवधूभुक्तकुञ्जे**—किरात आदि कुछ विशेष जातियाँ जंगल में घूमती रहती हैं । उनकी स्त्रियाँ लकड़ी, फल, शहद आदि एकत्र करने के लिए इधर-उधर घूमती रहती हैं । वहीं जंगल में पत्तों की शय्या बनाकर कुञ्जों में अपने पति के साथ रमण करती हैं । यक्ष मेघ से उन कुञ्जों को देखकर आनन्द लेने का संकेत करता है ।

**तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः**—मेघ जब जल से युक्त रहते हैं तो उनकी गति धीमी रहती है । वर्षा द्वारा जल बरसा देने पर वे हल्के हो जाते हैं और उनकी गति तीव्र हो जाती है ।

**रेवाम्**—नर्मदा का ही दूसरा नाम रेवा है । यह आम्रकूट पर्वत से निकलती है। भारतवर्ष की पवित्र सात नदियों में से यह भी एक है, जैसा कि निम्न श्लोक से स्पष्ट है—

*''गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।*
*नर्मदे सिन्धु-कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥''*

एक स्थल पर इस प्रकार कहा गया है—

*'गंगा स्नानेन यत्पुण्यं रेवादर्शनेन च ।'*

**विन्ध्यपादे**—विन्ध्य सात कुल पर्वतों में से एक है । ये कुल पर्वत निम्न हैं—

*महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः ।*
*विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥*

**भूतिम् इव**—विन्ध्याचल की तलहटी में अनेक धाराओं में बहती हुई नर्मदा नदी उस प्रकार से सुशोभित होगी जैसे हाथी के शरीर पर रङ्ग-बिरङ्गी रेखाओं से की गयी सजावट ।

**व्याकरण—स्थित्वा**—√स्था+क्त्वा । **वनचरवधूभुक्तकुञ्जे**—वने चरन्तीति वनचराः (उपपद०) वन+√चर्+ट, वनचराणां वध्वः (ष० त०), ताभिः भुक्ताः कुञ्जाः यस्य: सः (बहु०) तस्मिन्, **भुक्त**—भुज्+क्त । **मुहूर्तम्**—'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' से द्वि० वि० । **तोयोत्सर्गद्रुतगतिः**—तोयस्य उत्सर्गः (ष० त०) तेन द्रुततरा गतिः यस्य सः (बहु०), **उत्सर्गः**—उत्+√सृज्+घञ् । **तत्परम्**—तस्मात् परं (प० त०)। **तीर्णः**—√तृ+क्त । **द्रक्ष्यसि**—√दृश्, लृट् म० प्र० एकव० । **उपलविषमे**—उपलैः विषमः (तृ० त०) तस्मिन् । **विन्ध्यपादे**—विन्ध्यस्य पादे (ष० त०) तस्मिन् । **विशीर्णाम्**—वि+√शॄ+क्त+टाप्। **भक्तिच्छेदैः**—भक्तीनां छेदाः (ष० त०) तैः, **भक्तिः**—√भज्+क्तिन्, **छेदः**—छिद्+घञ्। **विरचिताम्**—वि+√रच्+णिच्+क्त+टाप्।

प्रस्तुत श्लोक में अनेक धाराओं में बँटी हुई रेवा (नर्मदा) की उपमा हाथी के शरीर पर बनायी गयी, अनेक प्रकार की चित्र-रचना से की गयी है। इसलिये यहाँ उपमालङ्कार है। इसका लक्षण (पूर्वमेघ/१५) में दिया गया है।

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को निर्देश देता है कि वह नर्मदा से जल लेकर आगे बढ़े—

तस्यास्तिक्तै[1]र्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि-
र्जम्बू[2]कुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ।
अन्तःसारं घन तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥२०॥

**अन्वयः**—वान्तवृष्टिः (त्वं) तिक्तैः वनगजमदैः वासितं जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तस्याः तोयम् आदाय गच्छेः। घनः अनिलः अन्तःसारं त्वां तुलयितुं न शक्ष्यति। हि रिक्तः सर्वः लघुः भवति, पूर्णता गौरवाय (भवति) ॥२०॥

**शब्दार्थ**—**वान्तवृष्टिः**=वर्षा कर चुके हुए, **तिक्तैः**=तीव्र गन्ध वाले, **वनगजमदैः**= जंगली हाथियों के मद से, **वासितम्**=सुगन्धित, **जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयम्**=जामुनों के कुञ्जों द्वारा रोके गये वेग वाले, **अन्तःसारम्**=अन्दर बल से युक्त, **तुलयितुम्**=हिलाने में, **न शक्ष्यति**= समर्थ न हो सकेगा, **गौरवाय**=भारीपन का कारण।

**अनुवाद**—**वर्षा कर चुके हुए (तुम) तीव्र गन्ध वाले, जंगली हाथियों के मद से सुगन्धित (और) जामुनों के कुञ्जों द्वारा रोके गये वेग वाले उसके (नर्मदा के) जल को लेकर जाना। हे मेघ! वायु अन्दर बल से युक्त तुझको हिलाने में समर्थ न हो सकेगा; क्योंकि खाली हुए सब हल्के होते हैं (तथा) भरा हुआ होना भारीपन का कारण होता है ॥२०॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! तत्र वर्षणोत्तरं त्वां सुगन्धिभिः आरण्यकगजमदैः सुरभितं जम्बूकुञ्जप्रतिबद्धवेगं तस्याः नर्मदायाः जलं गृहीत्वा गच्छ । वायुः अन्तर्जलबलं त्वां मेघम् उत्थापयितुं समर्थो न भविष्यति, यतः अन्तःसारशून्यः सर्वोऽपि लघुर्भवति पूर्णश्च गुरुः सम्पद्यते।

**सञ्जीवनी**—तस्या इति । हे मेघ ! वान्तवृष्टिरुद्गीर्णवर्षः सन् । कृतवमनश्च व्यज्यते। तिक्तैः सुगन्धिभिस्तिक्तरसवद्भिश्च । 'तिक्तो रसे सुगन्धौ च' इति विश्वः । वनगजमदैर्वासितं सुरभितं भावितं च । ('हिमवद्विन्ध्यमलया गजानां प्रभवाः' इति विन्ध्यस्य गजप्रभवत्वादिति भावः ।) जम्बूकुञ्जैः प्रतिहतरयं प्रतिबद्धवेगम् । सुखपेयमित्यर्थः । अनेन लघुत्वं कषायभावना च व्यज्यते । तस्या रेवायास्तोयमादाय गच्छेर्व्रज । हे घन मेघ ! अन्तः सारः बलं यस्य तं त्वामनिलः आकाशवायुः, शरीरस्थश्च गम्यते । तुलयितुं न शक्ष्यति शक्तो न भविष्यति । तथा हि । रिक्तोऽन्तःसारशून्यः सर्वोऽपि लघुर्भवति । प्रकम्प्यो भवतीत्यर्थः । पूर्णता सारवत्ता गौरवायाप्रकम्प्यत्वाय भवतीत्यर्थः ।

(अयमत्र ध्वनिः—आदौ वमनशोधितस्य पुंसः पश्चाच्छ्लेष्मशोषणाय लघुतिक्तकषायाम्बुपानाल्लब्धबलस्य वातप्रकम्पो न स्यादिति । तथाह वाग्भटः—'कषायाश्चाहिमास्तस्य विशुद्धौ श्लेष्मणो हिताः । किमु तिक्तकषाया वा ये निसर्गात्कफावहाः । कृतशुद्धेः क्रमात्पीतपेयादेः पथ्यभोजिनः । वातादिभिर्न बाधा स्यादिन्द्रियैरिद योगिनः' । इति) ॥२०॥

**टिप्पणी—तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितम्**—हाथियों के गंडस्थल से टपकने वाला मदजल

१. तीक्ष्णैः ।
२. खण्ड ।

कड़वा तथा सुगन्धित होता है तथा जंगली हाथी नर्मदा के जल में क्रीड़ा करते हैं, कारण उस नर्मदा का जल उनके मदजल से सुगन्धित बताया गया है।

**जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयम्**—नर्मदा जामुन के निकुञ्जों में होकर बहती है। आषाढ़ मास में जामुन के फल पकते हैं। निकुञ्ज नर्मदा के वेग को मन्द कर देते हैं तथा जामुन के फल उसके जल में मिश्रित हो जाता है जिस कारण उसका जल स्वास्थ्यवर्द्धक हो जाता है।

इस श्लोक में वान्तवृष्टि आदि पदों से मल्लिनाथ ने दूसरा अर्थ निकाला है, जो इस प्रकार है—आयुर्वेद के अनुसार वमन करने के बाद कफ का शोषण करने के लिए लघु, कड़वा और कषाय पानी पिलाने से वात प्रकोप नहीं होता।

**व्याकरण**—**वनगजमदैः**—वनस्य गजाः (ष० त०) तेषां मदैः। **वासितम्**—√वस् + णिच् +क्त। **वान्तवृष्टिः**—वान्ता वृष्टिः येन सः (बहु०), **वान्त**—√वम् + क्त, **वृष्टिः**—√वृष् + क्तिन्। **जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयम्**—जम्बूनां कुञ्जाः (ष० त०) तैः प्रतिहतः रयः यस्य तम् (बहु०), **प्रतिहत**—प्रति+√हन्+क्त। **आदाय**—आ+√दा+क्त्वा (ल्यप्)। **गच्छेः**—√गम्, विधिलिङ्, म० पु० एकव०। **अन्तःसारम्**— अन्तः सारः यस्य तम् (बहु०)। **तुलयितुम्**—तुल्+णिच्+तुमुन्। **शक्ष्यति**—√शक्, लृट् प्र० पु० एकव०। **रिक्तः**—√रिच्+क्त। **पूर्णता**—पूरी+क्त। **गौरवाय**—गुरु+अण्, चतुर्थी वि०, 'क्लृपि सम्पद्यमाने च' इस वार्तिक से चतुर्थी हुई है।

प्रस्तुत श्लोक के तृतीय चरण के विशेष अर्थ का चतुर्थ चरण के सामान्य अर्थ से समर्थन करने से **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार है। इसका लक्षण पहले दिया गया है। [

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कह रहा है कि जब तुम नर्मदा का जल लेकर आगे बढ़ोगे तो सारङ्ग तुम्हारा मार्ग निर्देश करेंगे—

**नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै-**
**राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्।**
**[1]जग्ध्वारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः**
**सारङ्गास्ते जललवमुचः[2] सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥२१॥**

**अन्वयः**—अर्धरूढैः केसरैः हरितकपिशं नीपं दृष्ट्वा अनुकच्छम् आविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीः च जग्ध्वा अरण्येषु उर्व्याः अधिकसुरभिं गन्धं च आघ्राय सारङ्गाः जललवमुचः ते मार्गं सूचयिष्यन्ति ॥२१॥

**शब्दार्थ**—**अर्धरूढैः**=आधे उगे हुए, **केसरैः**=केसरों से, **हरितकपिशम्**=हरे और पीले, **नीपम्**=कदम्ब के पुष्पों को, **दृष्ट्वा**=देखकर, **अनुकच्छम्**=दलदलों में, **आविर्भूतप्रथममुकुलाः**=प्रथम बार प्रकट हुई कलियों वाली, **कन्दलीः**=केलियों को, **जग्ध्वा**=खाकर, **अरण्येषु**=वनों में, **उर्व्याः**=पृथ्वी की, **अधिकसुरभिम्**=अधिक सुगन्धित, **सारङ्गाः**=मृग, हरिण, हाथी, मोर, **जललवमुचः**=जलकणों की वर्षा करने वाले, **ते**=तुम्हारे, **मार्गम्**=मार्ग को, **सूचयिष्यन्ति**=सूचित करेंगे।

**अनुवाद**—**आधे उगे हुए केसरों से हरे और पीले कदम्ब के पुष्पों को देखकर दलदलों में प्रथम बार प्रकट हुई कलियों वाली केलियों को खाकर वनों में पृथ्वी की**

---

१. दग्धारण्येषु।
२. नवजलमुचः।

**अधिक सुगन्धिवाली गन्ध को सूँघकर हरिण जल-कणों की वर्षा करने वाले तुम्हारे मार्ग को सूचित करेंगे ॥२१॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! अर्धोत्पन्न किञ्जल्कैः हरितं कृष्णलोहितं च स्थलकदम्बकुसुमं विलोक्य ज़लप्रायदेशे प्रादूर्भूतप्रथमकलिका: भूमिकन्दलीश्च भक्षयित्वा वनेषु अतिशयसुरभिं भूमिगन्धं घ्रात्वा हरिणाः सलिलकणांस्त्यजतस्ते मार्गमनुमापयिष्यन्ति ।

**सञ्जीवनी**—नीपमिति । सारङ्गा मतङ्गजाः कुरङ्गा भृङ्गा वा । 'सारङ्गश्चातके भृङ्गे कुरङ्गे च मतङ्गजे' इति विश्वः । अर्धरूढैरेकदेशोद्गतैः केसरैः किञ्जल्कैर्हरितं पालाशवर्णं कपिशं कृष्णपीतं च । 'पालाशो हरितो हरित्' इति, 'श्यावः स्यात्कपिशो धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते' इति चामरः । श्यामवर्णमिति यावत् । 'वर्णो वर्णेन' इति समासः । नीपं स्थलकदम्बकुसुमम् । 'अथ स्थलकदम्बके नीपः स्यात्पुलके' इति शब्दार्णवे । दृष्ट्वा सम्प्रेक्ष्य । विदित्वेति यावत् । तथा कच्छेष्वनूपेष्वनुकच्छम् । ('अव्ययं विभक्ति—' इत्यादिना विभक्त्यर्थेऽव्यीभावः ।) 'जलप्रायमनूपं स्यात्पुंसि कच्छस्तथाविधः' इत्यमरः । आविर्भूताः प्रथमाः प्रथमोत्पन्ना मुकुला यासां ताः कन्दलीर्भूमिकदलीः । 'द्रोणपर्णी स्निग्धकन्दा कन्दली भूकदल्यपि' इति शब्दार्णवे । जग्ध्वा भक्षयित्वा। ('अदो जग्धिः—' इति जग्ध्यादेशः ।) अरण्येष्वधिकसुरभिमतिघ्राणतर्पणम् । 'दग्धारण्येषु' इति पाठे 'दग्धम्' इत्यधिकविशेषणम् । अर्थवशात्कन्दलीश्च दृष्ट्वैवेत्यन्वयो द्रष्टव्यः । उर्व्याभूमेर्गन्धिमाघ्राय जललवमुचो मेघस्य ते तव मार्गं सूचयिष्यन्त्यनुमाप्रयिष्यन्ति । यत्र यत्र वृष्टिकार्यं कन्दलीमुकुलनीपकुसुमादिकं दृश्यते तत्र-तत्र त्वया वृष्टमित्यनुमीयत इति भावः ॥२१॥

**टिप्पणी—जग्ध्वाऽरण्येषु**—कुछ स्थानों पर जग्ध्वा के स्थान पर दग्ध्वा पाठ भी मिलता है । तब इसका अर्थ होगा—वन की आग से जले हुए जंगलों में । आचार्य मल्लिनाथ ने जग्ध्वा पाठ ही स्वीकार किया है; जो कि अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।

**सारङ्गाः**—सारङ्ग शब्द का विभिन् आचार्यों ने भिन्न-भिन्न अर्थ किया है । इसका कारण यह है कि कोषकारों ने सारङ्ग शब्द के अनेक अर्थ दिए हैं । आचार्य मल्लिनाथ ने सारङ्ग के हाथी, हरिण या भ्रमर अर्थ माने हैं, जबकि सारोद्धारिणी टीका में उपर्युक्त तीनों अर्थों के अतिरिक्त चातक अर्थ भी स्वीकार किया है । सरस्वतीतीर्थ का कहना है कि इस श्लोक में 'सारङ्गाः' शब्द से 'हरिणी' ही अर्थ लिया जा सकता है । यद्यपिं तीनों अर्थों के साथ सङ्गति बैठ जाती है; जैसे—भ्रमर अधखिले कदम्ब के पुष्पों को देखकर, हरिण कच्छों में मुकलित कन्दलियों को खाकर और हाथी पृथ्वी की गन्ध को सूँघकर तेरे मार्ग को सूचित करेंगे। परन्तु सारङ्ग शब्द का अर्थ हरिण लेना ही अधिक उपयुक्त जान पड़ता है; क्योंकि कालिदास ने भी सारङ्ग शब्द का प्रायः हरिण के अर्थ में ही प्रयोग किया है—

*"एष राजेव दुष्यन्तः साररङ्गेणातिरहंसा ।"*

**व्याकरण—नीपं**—नीपस्य विकारः नीपं तत्, यहाँ 'तस्य विकारः' इस सूत्र से अण् प्रत्यय होकर 'पुष्पमूलेषु बहुलम्' वार्तिक से लुप् हुआ है। **दृष्ट्वा**—√ दृश्+क्त्वा । **हरितकपिशम्**—हरितं च तत् कपिशं च (कर्मधा०) । **अर्धरूढैः**—अर्धं यथा स्यात् तथा रूढैः (केवल समास), **रूढः**—√रुह्+क्त । **आविर्भूतप्रथममुकुलाः**—आविर्भूताः प्रथमाः मुकुलाः यासां ताः (बहु०) । **अनुकच्छम्**—कच्छेषु, कच्छानाम् समीपम् वा (अव्ययी भाव०) । **जग्ध्वा**—√अद्+क्त्वा । **अधिकसुरभिम्**—अधिकं यथा स्यात् तथा सुरभिः तम् (केवल स०) । **आघ्राय**—आ+√घ्रा+ क्त्वा (ल्यप्) । **सारङ्गाः**—साराणि अङ्गाणि येषां ते (बहु०), √सृ+अङ्गच्+अण्=सारङ्ग। **जललवमुचः**—जलस्य लवाः (ष० त०) तान् मुञ्चतीति जललवमुक्, तस्य (उपपद०), जललव+मुच्+क्विप् । **सूचयिष्यन्ति**—√सूच्+णिच्+लृट्, प्र० पु० बहु० । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि सिद्ध पुरुष तुम्हारी गर्जना के समय अपनी प्रिया का आलिङ्गन प्राप्त होने के कारण तुम्हारे प्रति कृतज्ञ होंगे—

**अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान्[१] वीक्षमाणाः**
**श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः ।**
**त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः**
**सोत्कम्पानि[२] प्रियसहचरीसंभ्रमालिङ्गितानि[३] ॥२२॥**

**अन्वयः**—अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान् चातकान् वीक्षमाणाः श्रेणीभूताः बलाकाः प गणनया निर्दिशन्तः सिद्धाः स्तनितसमये सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि आसाद्य त मानयिष्यन्ति ॥२२॥

**शब्दार्थ**—**अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान्**=जल-बिन्दुओं के ग्रहण करने में निपुण, **वीक्ष माणाः**=देखते हुए, **श्रेणीभूताः**=पङ्क्तिबद्ध, **बलाकाः**=बगुलों को, **निर्दिशन्तः**=(अङ्गुलि से) दिखाते हुए, **स्तनितसमये**=गर्जन के समय, **सोत्कम्पानि**=कँपकँपी सहित, **प्रियसहचरीसं भ्रमालिङ्गितानि**=प्रिय पत्नियों द्वारा घबराहट से (किये गये) आलिङ्गनों को, **आसाद्य**=पाक **मानयिष्यन्ति**=कृतज्ञ होंगे ।

**अनुवाद**—**जल-बिन्दुओं के ग्रहण करने में निपुण चातकों को देखते हु पंक्तिबद्ध बगुलों को गिनती के द्वारा (अङ्गुलियों से) दिखाते हुए, सिद्ध लोग गर्ज के समय कँपकँपी सहित प्रिय पत्नियों द्वारा घबराहट से (किये गये) आलिङ्गनों क पाकर तुम्हारे प्रति कृतज्ञ होंगे ॥२२॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! वृष्टिजलबिन्दुस्वीकरणनिपुणान् चातकान् पयश्न्तः बद्धपङ्क्ति बलाकाः संख्यानेन दर्शयन्तः सिद्धाः त्वद्गर्जितकाले उत्कम्पपूर्वकाणि भीतानां प्रियाणां स्वयं ग्रह श्लेषसुखं प्राप्य त्वां पूजयिष्यन्ति ।

**सञ्जीवनी**—अम्भ इति । अम्भोबिन्दूनां वर्षोदबिन्दूनां ग्रहणे । ('सर्वसहापतितमम्बु चातकस्य हितम्' इति शास्त्राद् भूस्पृष्टोदकस्य तेषां रोगहेतुत्वादन्तराल एव) स्वीकारे चतुरांश्चा तकान्वीक्षमाणाः कौतुकात्पश्यन्तः श्रेणीभूताः बद्धपङ्क्तीः । अभूततद्भावे च्विः । बलाकाः बकपङ्क्तीः परिगणनयैका द्वेतिस्र इति सङ्ख्यानेन निर्दिशन्तो हस्तेन दर्शयन्तः सिद्धाः स्तनितसमये त्वद्गर्जितकाले सोत्कम्पान्युत्कम्पपूर्वकाणि प्रियसहचरीणां सम्भ्रमेणालिङ्गितान्यासाद्य । स्वयं ग्रहणाश्लेषसुखमनुभूये त्यर्थः । त्वां मानयिष्यन्ति । त्वन्निमित्तत्वासुखलाभस्येति भावः ॥२२॥

**टिप्पणी**—**अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान्**—यह प्रसिद्ध है कि चातक मेघ की बूँदों क (विशेष रूप से स्वाति नक्षत्र में) पृथ्वी पर गिरने से पहले ही अपनी चोंच में ले लेता है वह पृथ्वी पर गिरे हुए जल को ग्रहण नहीं करता, भले ही मर जाये । किसी स्थान प ''अम्भोबिन्दुग्रहणरयसान्'' यह पाठ भी मिलता है, जिसका अर्थ होगा—जल की बूँदों के ग्रहण करने में उत्साह वाला ।

**श्रेणीभूताः**—मेघ के आने पर बगुले पंक्तिबद्ध होकर आकाश में उड़ते हैं, इसलि यहाँ बगुलों को श्रेणीभूताः कहा गया है ।

**बलाका**—बगुलों की पंक्तियों को । बलाका वकपङ्क्तिः स्यात् । परन्तु यहाँ बला का अर्थ वक मात्र करना ही अधिक उपयुक्त जान पड़ता है; क्योंकि वकपङ्क्ति अर्थ कर पर ''श्रेणीभूताः'' यह विशेषण व्यर्थ हो जायेगा ।

**प्रियसहचरीसंभ्रमालिङ्गितानि**—कुछ स्थलों पर ''प्रिय सहचरीविभ्रमालिङ्गितानि'' य पाठ भी मिलता है । इसका अर्थ होगा—प्रिय पत्नियों द्वारा विलासपूर्वक किये गये आलिङ्ग

---

१. अम्भोबिन्दुग्रहणरसांश्चातकान् ।
२. सोत्कण्ठानि ।
३. ०सहचरीविभ्रमा० ।

**मानयिष्यन्ति**—कृतज्ञ होंगे । अभिप्राय यह है कि प्रायः पुरुष स्त्रियों का आलिङ्गन करने के लिये उतावले रहते हैं और वे ही अपनी ओर से पहल किया करते हैं । परन्तु जब मेघ की गर्जना को सुनकर भयभीत होकर स्त्रियाँ स्वयं ही अपनी ओर से पहल करके अपने प्रिय सिद्ध पुरुषों का आलिङ्गन करेंगी, तो सिद्ध पुरुष बहुत ही प्रसन्न होंगे । इस कारण मेघ को धन्यवाद देंगे और उसके कृतज्ञ होंगे ।

**व्याकरण—अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान्**—अम्भसः बिन्दवः (ष० त०) तेषां ग्रहणम् (ष० त०) तस्मिन् चतुरान् (स० त०) । **वीक्षमाणः**—वि+√ईक्ष+शानच् । **श्रेणीभूताः**—अश्रेणयः श्रेणयो यथा संपद्यन्ते तथाभूता इति (त०), **श्रेणी**—श्रेणि+च्वि, **भूता**—√भू+क्त+टाप् । **परिगणनया**—परि+√गण्+ युच्+टाप् । **निर्दिशन्तः**—निर्+दिश्+शतृ । **आसाद्य**—आ+√सद्+क्त्वा (ल्यप्) । **स्तनितसमये**—स्तनितस्य समये (ष० त०) । **मानयिष्यन्ति**—√मन्+णिच्, लृट प्र० पु० बहुव० । **सोत्कम्पानि**—उत्कम्पेन सह सहितानि वा (तुल्ययोग बहुव०) । **प्रियसहचरीसंभ्रमालिङ्गितानि**—प्रियाश्च ताः सहचर्यः (कर्मधा०) तासां संभ्रमः (ष० त०) तेन आलिङ्गितानि, तानि (तृ० त०) । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से पुनः कहता है कि यद्यपि तुमको मार्ग में कुछ देर हो सकती है तथापि तुम शीघ्रता करके आगे बढ़ जाना, क्योंकि मयूर तुम्हारी अगवानी के लिए अत्यधिक उतावले होंगे—

**उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः**
**कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते ।**
**शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः[१] स्वागतीकृत्य केकाः**
**प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥२३॥**

**अन्वयः**—सखे ! मत्प्रियार्थं द्रुतं यियासोः अपि ते ककुभसुरभौ पर्वते-पर्वते कालक्षेपम् उत्पश्यामि । सजलनयनैः शुक्लापाङ्गैः केकाः स्वागतीकृत्य प्रत्युद्यातो भवान् कथमपि आशु गन्तुं व्यवस्येत् ॥२३॥

**शब्दार्थ—मत्प्रियार्थम्** = मेरे प्रिय (अभीष्ट) के लिए, **यियासोः**—जाने के इच्छुक, **ककुभसुरभौ**= कुटज के पुष्पों से सुगन्धित, **कालक्षेपम्**=देर हो जाने की, **उत्पश्यामि**=सम्भावना कर रहा हूँ, **सजलनयनैः**:=आँसुओं से भरे नेत्रों वाले, **शुक्लापाङ्गैः**:= श्वेत नेत्र प्रान्त वाले मयूरों द्वारा, **केकाः**:= मयूर की वाणी, **स्वागतीकृत्य**= स्वागत का शब्द बनाकर, **प्रत्युद्यातः**:=अगवानी किए गये, **आशु**=शीघ्र, **व्यवस्येत्**= प्रयत्न करना ।

**अनुवाद—(हे) मित्र ! प्रिय (अभीष्ट) के लिए शीघ्र जाने के इच्छुक भी तुम्हें कुटज के पुष्पों से सुगन्धित प्रत्येक पर्वत पर देर हो जाने की सम्भावना कर रहा हूँ । (आनन्द के) आँसुओं से युक्त नेत्रों वाले मयूरों द्वारा अपनी वाणी को स्वागत का शब्द बनाकर अगवानी किए गये आप शीघ्र जाने का प्रयत्न करना ॥२३॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मित्र ! मदभीष्टसिद्ध्यर्थं क्षिप्रं गन्तुमिच्छोः अपि तव कुटजकुसुमसुरभौ शैले-शैले कालविलम्बं संभावयामि । त्वदागमनेन आनन्दाश्रुयुक्तनेत्रा मयूरा मधुरशब्दैः स्वागतवचनीकृत्य प्रत्युद्गतः भवान् कथमपि शीघ्रगमनाय प्रयत्नं कुर्यात् ।

**सञ्जीवनी**—उत्पश्यामीति । हे सखे मेघ ! मत्प्रियार्थं यथा तथा द्रुतं क्षिप्रम् । 'लघु क्षिप्रतरं द्रुतम्' इत्यमरः । यियासोर्यातुमिच्छोरपि । यातेः सन्नन्तादु प्रत्ययः । ते तव ककुभैः

---

१. सनयनजलैः ।

कुटजकुसुमैः सुरभौ सुगन्धिनि । 'ककुभः कुटजेऽर्जुने' इति शब्दार्णवे । पर्वते-पर्वते प्रतिपर्वतं (वीप्सायां द्विरुक्तिः ।) कालक्षेपं कालविलम्बम् । 'क्षेपो विलम्बे निन्दायाम्' इति विश्वः उत्पश्याम्युत्प्रेक्षे । विलम्बहेतुं दर्शयन्नाशुगमनं प्रार्थयते—शुक्लेति (सजलनयनैः) सजलानि आनन्दवाष्पाणि नयनानि येषां तैः, शुक्लापाङ्गैर्मयूरैः 'मयूरो बर्हिणो बर्ही शुक्लापाङ्गः शिखावलः' इति यादवः । केकाः स्ववाणीः । 'केकाः वाणी मयूरस्य' इत्यमरः । स्वागतीकृत्य स्वागतवचनीकृत्य प्रत्युद्यातः प्रत्युद्गतः मयूरवाणीकृतातिथ्य इत्यर्थः । भवान् कथमपि यथाकथञ्चिदाशु गन्तुं व्यवस्येदुद्यूञ्जीत । प्रार्थने लिङ् । 'शेषे प्रथमः' इति प्रथमपुरुषः । (शेषश्चायं भवच्छब्दो युष्मदस्मच्छब्दव्यतिरेकात् ।) 'स्वागतीकृत्य केकाः' इत्यत्र केकास्वारोप्यमाणस्य स्वागतवचनस्य प्रकृतप्रत्युद्गमनोपयोगात्परिणामालङ्कारः । तदुक्तमलङ्कारसर्वस्वे—आरोप्यमाणस्य प्रकृतोपयोगित्वे परिणामः, इति ॥२३॥

**टिप्पणी—शुक्लापाङ्गैः**—मोरों की आंखें के कोये (कोने) श्वेत होते हैं। इसलिए उनको ''शुक्लापाङ्ग'' भी कहते हैं ।

**सजलनयनैः**—ऐसी प्रसिद्धि है कि वर्षा ऋतु में मयूर जब मस्त होकर नाचते हैं तो उनकी आंखों से आँसू गिरते हैं, जिन्हें पीने से मोरनी गर्भवती हो जाती है ।

**स्वागतीकृत्य केकाः**—अभिप्रायः यह है कि मेघ के आने से प्रसन्नता के कारण मयूर बोलेंगे तो उनकी यह वाणी ही मेघ के स्वागत में कहे जाने वाले वचन होंगे ।

**व्याकरण—उत्पश्यामि**—उत्+√दृश्, लट्, उ० पु० एकव० । **मत्प्रियार्थम्**—मत्प्रियम् मत्प्रियं (ष० त०) मत्प्रियाय इदं यथा तथा (च० त०) । **यियासोः**—√या+सन्+उः **कालक्षेपम्**—कालस्य क्षेपः तम् (ष० त०), **क्षेपः**—क्षिप्+घञ् । **ककुभसुरभौ**—ककुभैः सुरभि तस्मिन् (तृ० त०) । **पर्वते-पर्वते**—यहां वीप्सा अर्थ में द्विरुक्ति है । **शुक्लापाङ्गैः**—शुक्लौ अपाङ्गौ येषां तैः शुक्लापाङ्गैः (बहु०) । **सजलनयनैः**—सजलानि नयनानि येषां तैः (बहु०) **स्वागतीकृत्य**—न स्वागतम् अस्वागतम् (नञ् त०), अस्वागतं स्वागतं सम्पद्यमानं कृत्वा इति स्वागतीकृत्य, स्वागत+च्वि+कृ+क्त्वा (ल्यप्) । **प्रत्युद्यातः**—प्रति+√उद्+√या+क्त । **गन्तुम्**—√गम्+तुमुन् । **व्यवस्येत्**—वि+अव+√सो+विधि० प्र० पु० एकव० ।

प्रस्तुत श्लोक में केका पर आरोप्यमाण स्वागत वचन का प्रकृत अगवानी में उपयोगी होने से **परिणाम** अलङ्कार है । इसका लक्षण इस प्रकार है—

*विषयात्मतयारोप्ये प्रकृतार्थोपयोगिनि ।*
*परिणामो भवेत्तुल्यातुल्याधिकरणो द्विधा ॥ (सा० द० १०/३४)*

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि इसके बाद दशार्ण जनपद में पहुंचोगे—

**पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै-**
**र्नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः ।**
**त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः**
**संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥२४॥**

**अन्वयः**—त्वयि आसन्ने दशार्णाः सूचिभिन्नैः केतकैः पाण्डुच्छायोपवनवृतयः गृहबलिभुजां नीडारम्भैः आकुलग्रामचैत्याः परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः कतिपयदिनस्थायिहंसाः (च) सम्पत्स्यन्ते ॥२४॥

**शब्दार्थ—आसन्ने**=पास आने पर, **सूचिभिन्नैः**=कलियों के अग्रभाग में विकसित **केतकैः**=केतकी के पुष्पों से, **पाण्डुच्छायोपवनवृतयः**=पीली-सी कान्ति वाले उपवनों के घेरे वाला, **गृहबलिभुजाम्**=घर की बलि को खाने वाले (कौए आदि) पक्षियों के, **नीडारम्भैः**=घोंसले

की रचना से, **आकुलग्रामचैत्याः**=व्याप्त ग्राम की गलियों के पवित्र (पीपल आदि) वृक्ष वाले, **परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः**=पके हुए फलों से काले बने हुए जामुन वनों के भाग वाला, **कतिपयदिनस्थायि हंसा**=कुछ दिन ठहरने वाले हंसों से युक्त, **सम्पत्स्यन्ते**=हो जायेगा।

**अनुवाद**—(हे मेघ !) तुम्हारे पास आने पर दशार्ण देश कलियों के अग्रभाग में विकसित केतकी के पुष्पों से पीली-सी कान्ति वाले उपवनों के घेरों वाला, घर की बलि को खाने वाले (कौए आदि) पक्षियों के घोंसले की रचना से व्याप्त ग्राम की गलियों के पवित्र (पीपल आदि) वृक्ष वाले, पके हुए फलों से काले बने हुए जामुन वनों के भाग वाला और कुछ दिन ठहरे हुए हंसों वाला हो जायेगा ॥२३॥

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! त्वयि समीपवर्तिनि सति दशार्णदेशोपवनानि केतकीकुसुमैः पीतवर्णोद्यानकण्टकशाखावरणाः काकादिग्रामपक्षिणां कुलायनिमार्णप्रयत्नैः सङ्कीर्णग्राममन्दिराः पक्वफलकृष्णजम्बूवृक्षसमूहरम्याः किञ्चित्कालपर्यन्तनिवासिहंसाः भविष्यन्ति ।

**सञ्जीवनी**—पाण्डिवति । हे मेघ, त्वय्यासन्ने सन्निकृष्टे सति दशार्णाः नाम जनपदाः सूचिभिन्नैः सूचिषु मुकुलाग्रेषु भिन्नैर्विकसितैः । 'केतकीमुकुलाग्रेषु सूचिः स्यात्' इति शब्दार्णवे। केतकैः केतकीकुसुमैः पाण्डुच्छाया हरितवर्णा उपवनानां वृतयः कण्टकशाखावरणा येषु ते तथोक्ता। 'प्राकारो वरणः सालः प्राचीरं प्रान्ततो वृतिः' इत्यमरः । तथा गृहबलिभुजां काकादिग्रामपक्षिणां नीडारम्भैः कुलायनिर्माणैः । 'कुलायो नीडमस्त्रियाम्' इत्यमरः । चित्याया इमानि चैत्यानि रथ्यावृक्षाः। 'चैत्यमायतने बुद्धवन्द्ये चोद्देशपादपे' इति विश्वः आकुलानि सङ्कीर्णानि ग्रामेषु चैत्यानि येषु ते तथोक्ताः । तथा परिणतैः पक्वैः फलैः श्यामानि जम्बूवनानि तैरन्ता रम्याः । 'मृतावनवसिते रम्ये समाप्तावन्त इष्यते' इति शब्दार्णवे । तथा कतिपयेष्वेव दिनेषु स्थायिनो हंसा येषु ते तथोक्ता एवंविधाः संपत्स्यन्ते भविष्यन्ति । ('पोटायुवतिस्तोककतिपय—' इत्यादिना कतिपयशब्दस्योत्तरपदत्वेऽपि न तच्छब्दस्योत्तरत्त्वमस्त्हस्य शास्त्रस्य प्रायिकत्वात्) ॥२४॥

**टिप्पणी—आकुलग्रामचैत्याः**—''चैत्य'' शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न किया है । वल्लभदेव ने इसका अर्थ बुद्धालय किया है । मल्लिनाथ ने गली का वृक्ष किया है । कुछ अन्य टीकाकार इसका अर्थ चौराहे का वृक्ष, पवित्र मन्दिर, पवित्र वृक्ष आदि करते हैं ।

**परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः**—प्रस्तुत पद में आये हुए अन्त शब्द का अर्थ आचार्य मल्लिनाथ ने रम्य अर्थात् सुन्दर किया है, परन्तु इसका भाग (हिस्सा) अर्थ करना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है । कालिदास द्वारा प्रणीत रघुवंश में भी प्रयुक्त वनान्त शब्द का अर्थ वन का किनारा ही है (रघु० २/१९) ।

**दशार्णाः**—दशार्ण एक जनपद का नाम है । दश ऋणानि (दुर्गभूमयः) येषां ते । ऋण शब्द दुर्गभूमि और जल दोनों का वाचक है अर्थात् जिनके पास दश दुर्ग थे उन्हें दशार्ण कहा जाता था । ऋण शब्द का अर्थ जल लेने पर 'दश ऋणानि (जलप्रवाहः) यस्या सा दशार्णा' यह व्युत्पत्ति करने पर दशार्ण शब्द किसी नदी का वाचक बैठता है । कुछ विद्वानों की दृष्टि में यह प्रदेश छत्तीसगढ़ हो सकता है, क्योंकि छत्तीसगढ़ में से होकर दशार्ण नामक नदी बहती है, जो विन्ध्याचल से निकलती है । विल्सन के अनुसार दशार्ण 'दोसारेने' से मिलता-जुलता है । सरस्वती तीर्थ के अनुसार यह प्रदेश विन्ध्याचल के उत्तर में स्थित है ।

**व्याकरण—पाण्डुच्छायोपवनवृतयः**—पाण्डुः छाया यस्य तत् (बहु०) तादृशम् उपवनम् (कर्मधा०) तस्य वृतिः येषु ते (बहु०) । **सूचिभिन्नैः**—सूचिषु भिन्नानि तैः (स० त०) √भिद्+क्त—भिन्नः । **नीडारम्भैः**—नीडानाम् आरम्भाः तैः (ष० त०), आ+√रभ+घञ् (भावे) । **गृहबलिभुजाम्**—गृहेषु बलिं भुञ्जते ते गृहबलिभुजः तेषाम् (उपपद), गृह+बलि+भुज्+क्विप् । **आकुलग्रामचैत्याः**—आकुलानि ग्रामेषु चैत्यानि येषु ते (बहु०) । **चैत्याः**—चित्य+अण् । **आसन्ने**—आ+√सद्+क्त । **परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः**—परिणतानि फलानि (कर्मधा०) तैः श्यामानि

(तृ० त०) तादृशनि जम्मबूवनानि (कर्मधा०) तैः अन्ताः (तृ० त०) अथवा परिणतजम्बू श्यामाः जम्बूवनानाम् अन्ताः येषु ते (बहु०) । **परिणत**—परि+√नम्+क्तः। **सम्पत्स्यन्ते**-सम्+√पद्, लृट् प्र० पु० बहुव० । **कतिपयदिनस्थायिहंसाः**—कतिपयानि च तानि दि (कर्मधा०) तेषु तिष्ठन्ति इति (उपपद त०) कतिपयदिनस्थायिनः हंसा येषु ते (बहु०), **स्थायिन**-स्था+णिनिः ।

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि दशार्ण प्रदेश की राजधानी विदिशा में पहुंच वेत्रवती को प्राप्त कर कामुकता का फल प्राप्त करोगे—

**तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं**
**गत्वा सद्यः फलमविकलं[1] कामुकत्वस्य लब्धा ।**
**तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मात्[2]**
**सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि[3] ॥२५॥**

**अन्वयः**—दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां तेषां राजधानीं गत्वा सद्यः कामुकत्वस्य अविक फलं लब्धा, यस्मात् स्वादु चलोर्मि वेत्रवत्याः पयः सभ्रूभङ्गं मुखमिव तीरोपान्तस्तनितसुभ पास्यसि ॥२५॥

**शब्दार्थ**—**दिक्षु**=दिशाओं में, **प्रथितविदिशालक्षणाम्**=प्रसिद्ध विदिशा नाम वाली **कामुकत्वस्य**=कामुकता के, **अविकलम्**=सम्पूर्ण, **लब्धा**=प्राप्त करोगे, **स्वादु**=मधु **चलोर्मि**=चञ्चल तरङ्गों वाले, **वेत्रवत्याः**=वेत्रवती के, **सभ्रूभङ्गं**=भ्रूभङ्ग युक्त, **तीरोपान्तस्तनितसुभगम्**=तट प्रान्त में गर्जन से सुन्दर लगते हुए, **पास्यसि**=पान करोगे ।

**अनुवाद**—**दिशाओं में प्रसिद्ध विदिशा नाम वाली उसकी (दशार्ण प्रदेश की) राजधानी पहुंचकर तुरन्त कामुकता के सम्पूर्ण फल को प्राप्त करोगे, क्योंकि (तुम मधुर, चञ्चल तरङ्गों वाले वेत्रवती के जल को भ्रूभङ्ग युक्त मुख की भांति तट प्रा में गर्जन से सुन्दर लगते हुए पान करोगे ॥२५॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! दिशासु प्रसिद्ध विदिशा नामधेयां तेषां दशार्णानां प्रधा नगरीं प्राप्य त्वं तत्क्षणमेव विलासितायाः सकलं फलं प्राप्स्यसि । यतो हि त्वं मधुरं तरङ्गि वेत्रवत्याः एतन्नामिकायाः नद्याः जलं भ्रकुटियुक्तम् आननम् इव कस्याश्चिन्नायिकाया अधरमि इत्यर्थः तट प्रान्त गर्जन रमणीयं यथा स्यात् तथा पास्यसि ।

**सञ्जीवनी**—तेषामिति । दिक्षु प्रथितं प्रसिद्धं विदिशेति लक्षणं नामधेयं यस्यास्ताम् 'लक्षणं नाम्नि चिह्ने च' इति विश्वः । तेषां दशार्णानां सम्बन्धिनीम् । (धीयन्तेऽस्यामिति धानी 'करणाधिकरणयोश्च' इति ल्युट्) राज्ञां धानी राजधानी । ('कृद्योगलक्षणा षष्ठी समस्यते' इ वक्तव्यात्समासः ।) तां प्रधाननगरीम् । 'प्रधान-नगरी राज्ञां राजधानीति कथ्यते' इति शब्दार्ण गत्वा प्राप्य सद्यः कामुकत्वस्य विलासितायाः । 'विलासी कामुकः कामी स्त्रीपरो रतिलम्पटः इति शब्दार्णवे । अविकलं समग्रं फलं प्रयोजनं लब्धा लप्स्यते । त्वयेति शेषः । (कर्मणि लुट् ।) कुतः । यस्मात्कारणात्स्वादु मधुरम् । चला ऊर्मयो यस्य तच्चलोर्मि तरङ्गितं वेत्रवत्या नाम नद्याः पयः सभ्रूभङ्गं भ्रूकुटियुक्तम् । दशनपीडयेति भावः । मुखमिवाधरमिवेत्यर्थः । तीरोपा तटप्रान्ते यत्स्तनितं गर्जितं तेन सुभगं यथा तथा । (स्तनितशब्देन भणितमपि व्यपदिश्यते 'ऊर्ध्वमुच्वलितकण्ठनासिकं हुङ्कृतं स्तनितमल्पघोषवत्' इति लक्षणात् ।) पास्यसि । (पिबतेर्लृट 'कामिनीमधरास्वादः सुरतादतिरिच्यते' इति भावः ॥२५॥

१. फलमतिमहत् ।
२. यत्तत्, यत्र ।
३. चलोर्म्याः ।

**टिप्पणी—विदिशा**—प्राचीन समय में वेत्रवती (बेतवा) नदी के किनारे स्थित एक नगर था, जो दशार्ण देश की राजधानी था। कादम्बरी में विदिशा को मालव जनपद की राजधानी बताया गया है। आधुनिक काल में मध्यप्रदेश का भिलसा नगर ही प्राचीन काल का विदिशा था, जो कि वेत्रवती के तट पर मालवा में स्थित है।

**कामुकत्वस्य लब्धा**—यहां मेघ को नायक तथा वेत्रवती को नायिका बताया गया है। तरङ्गित जल ही उस नायिका का मुख है तथा नायक अधरोष्ठ पान करने का इच्छुक है, किन्तु नायिका भ्रुकुटी चढ़ाकर मना करती है, परन्तु फिर भी नायक अधरोष्ठपान में सफल हो जाता है। यही मेघ का कामुकत्व बताया गया है।

**वेत्रवत्याः**—प्राचीन कालीन वेत्रवती को आधुनिक युग में बेतवा नाम से जाना जाता है। यह विन्ध्याचल के उत्तर से निकलती है तथा भिलसा में होती हुई कालपी के निकट यमुना नदी में मिल जाती है।

**व्याकरण—दिक्षु**—दिक्+सुप् स० एकव०। **प्रथितविदिशालक्षणाम्**—प्रथितं विदिशेति लक्षणं यस्याः सा ताम् (बहु०), **प्रथित**—प्रथ+क्त, **लक्षण**—√लक्ष्+ल्युट्। **राजधानीम्**—राज्ञाम् धानीम् (ष० त०), राजन्+धा+ल्युट्+ङीप्। **गत्वा**—√गम्+क्त्वा। **कामुकत्वस्य**—कामुकस्य भावः कामुकत्वं तस्य, √कम्+उकञ्—**कामुक**, कामुक+त्व। **अविकलम्**—विगता कला यस्य तत् विकलम् (बहु०) न विकलम् अविकलम् (नञ् त०)। **लब्धा**—√लभ्+लुट् प्र० पु० एकव०। **तीरोपान्तस्तनितसुभगम्**—तीरस्य उपान्तः (ष० त०), तस्मिन् स्तनितं (स० त०) तेन सुभगं यथा तथा (तृ० त०)। **पास्यसि**—√पा० लृट् म० पु० एकव०। **यस्मात्**—हेतौ पञ्चमी। **सभ्रूभङ्गं**—भ्रुवोः भङ्गः (ष० त०) तैः सहितम् (बहु०)। **वेत्रवत्याः**—वेत्र+मतुप्+ङीप्। **चलोर्मि**—चलाः ऊर्मयो यस्य तत् (बहु०)।

प्रस्तुत श्लोक में मेघ और वेत्रवती में नायक और नायिका का व्यवहार होने के कारण **समासोक्ति** अलङ्कार है। इसका लक्षण इस प्रकार है—

*समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिङ्गविशेषणैः ॥ (सा० द० १०/५३)*

*व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः।*

तथा 'सभ्रूभङ्गं मुखमिव' इसमें **उत्प्रेक्षा** अलङ्कार है, जिसका लक्षण इस प्रकार है—
*भवेत्संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना। (सा० द० १०/४० के पहले)* □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि विदिशा के पास 'नीच' नामक पर्वत पर ठहर कर विश्राम करना—

**नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो[1]-**
**स्त्वत्सम्पर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः।**
**यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-**
**मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥२६॥**

**अन्वयः**—तत्र विश्रामहेतोः प्रौढपुष्पैः कदम्बैः त्वत्संपर्कात् पुलकितम् इव नीचैराख्यं गिरिम् अधिवसेः, यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः शिलावेश्मभिः नागराणाम् उद्दामानि यौवनानि प्रथयति ॥२६॥

**शब्दार्थ—तत्र**=वहां, **विश्रामहेतोः**=विश्राम के लिए, **प्रौढपुष्पैः**=विकसित पुष्पों वाले,

---

१. विश्रान्तिहेतोः।

**कदम्बै:**=कदम्बों से, **त्वत्सम्पर्कात्**=तुम्हारे सम्पर्क के कारण, **पुलकितम्**=रोमाञ्चित, **अधिवसे:**= ठहरना, **पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभि:**=वेश्याओं की रति-क्रीड़ा सम्बन्धी सुगन्ध को फैलाने वाले **शिलावेश्मभि:**=शिलागृहों से, **नागराणाम्**=नागरिकों के, **उद्दामानि**=उत्कट, **प्रथयति**=प्रकट करता है ।

**अनुवाद**--**वहाँ (विदिशा में) विश्राम के लिए, विकसित पुष्पों वाले कदम्बों से (युक्त) मानो, तुम्हारे सम्पर्क के कारण रोमाञ्चित हुए, ''नीचै:'' नाम वाले पर्वत पर ठहरना, जो वेश्याओं की रतिक्रीड़ा सम्बन्धी सुगन्ध को फैलाने वाले शिलागृहों से नागरिकों के उत्कट यौवन को प्रकट करता है ।।२६।।**

**संस्कृत-टीका**--हे मेघ, तत्र विदिशासमीपे मार्गश्रमापनयनार्थं विकसितकुसुमै: नीपवृक्षै: तव सम्पर्कात् सञ्जातरोमाञ्चम् इव नीचैर्नामके पर्वते वासं कुर्या: । य: पर्वत: वेश्यारमणक्रिया गन्धविशेषामाविष्कुर्वद्भि: कन्दरै: पौराणाम् उत्कटानि यौवनानि प्रकटयति ।

**सञ्जीवनी**--नीचैरिति । हे मेघ ! तत्र विदिशासमीपे । विश्रामो विश्रम: खेदापनय: (भावार्थे घञ् प्रत्यय: ।) तस्य हेतो: । विश्रामार्थमित्यर्थ: । ('षष्ठी हेतुप्रयोगे' इति षष्ठी । विश्रामेत्यत्र 'नोदात्तोपदेशस्य मानन्तस्यानाचमे:' इति पाणिनीये वृद्धिप्रतिषेधेऽपि 'विश्रामो वा' इति चान्द्रव्याकरणे विकल्पेन वृद्धिविधानाद्रूपसिद्धि: ।) प्रौढपुष्पै: प्रबुद्धकुसुमै: कदम्बैर्नीपवृक्षैस्त्वत्सम्पर्कात्तव सङ्गात् । पुलका अस्य संजाता: पुलकितमिव सञ्जातपुलकमिव स्थितम्। (तारकादित्वादितच्प्रत्यय:) नीचैरित्याख्या यस्य तं नीचैराख्यं गिरिमधिवसे: । गिरौ वसेरित्यर्थ: ('उपान्वध्याङ्वस:' इति कर्मत्वम् ।) यो नीचैर्गिरि: । पण्या: क्रेया: स्त्रिय: पण्यस्त्रियो वेश्या । 'वारस्त्री गणिका वेश्या पण्यस्त्री रूपजीविनी' इति शब्दार्णवे । तासां रतिषु य: परिमलो गन्धविशेष: । 'विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे' इत्यमर: । तमुद्गिरन्त्याविष्कुर्वन्तीति तथोक्तानि तै: । शिलावेश्मभि: कन्दरैर्नागराणां, पौराणामुद्दामान्युत्कटानि यौवनानि प्रथयति प्रकटयति । (उत्कटयौवना: क्वचिदनुरक्ता वाराङ्गना विश्रम्भविहाराकाङ्क्षिण्यो मात्रादिभयान्निशीथसमये कञ्चन विविक्तं देशमाश्रित्य रमन्ते तच्चात्र बहुलमस्तीति प्रसिद्धि: । अत्रोद्गारशब्दो गौणार्थत्वान्न जुगुप्सावह: । प्रत्युत काव्यस्यातिशोभाकर एव । तदुक्तं दण्डिना-- 'निष्ठ्यूतोद्गीर्णवान्तादि गौणवृत्तिव्यपाश्रयम् । अतिसुन्दरमन्यत्र ग्राम्यकक्षां विगाहते ।' इति) ।।२६।।

**टिप्पणी**--**पुलकितम् इव**--मेघ के आगमन पर कदम्ब की कलियाँ खिल उठती हैं; अत: कवि ने यहाँ कल्पना की है कि मानो मेघ के आने के हर्ष से विकसित पुष्पों वाले कदम्ब के रूप में पर्वत रोमाञ्चित हो जायेगा ।

**पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभि:**--भाव यह है कि विदिशा नगरी में वेश्याएँ स्वच्छन्द विहार करती हुई, पर्वत की कन्दराओं में पहुँचकर वहाँ के नागरिकों के साथ रमण करती थीं । वेश्याएँ अपने शरीर पर इत्र आदि सुगन्धित द्रव्य इतनी मात्रा में लगाती थीं कि जिससे उस पर्वत की कन्दराएं सुगन्धित हो उठती थीं ।

**व्याकरण**--**नीचैराख्यम्**--नीचै: इति आख्या यस्य स: तम् (बहु०), आ+√ख्या+अङ् (भावे) । **अधिवसे:**--अधि+√वस्, विधि० म० पु० एकव० । **विश्रामहेतो:**--विश्रामस्य हेतु: तस्य (ष० त०), वि+√श्रम+घञ् । **त्वत्संपर्कात्**--तव सम्पर्क: (ष० त०) तस्मात्, सम्+√पृच्+घञ्--सम्पर्क: । **पुलकितम्**--पुलका: जाता: अस्य इति (तद्धित), पुलक +इतच् । **प्रौढपुष्पै:**--प्रौढानि पुष्पाणि येषाम् तै: (बहुव०), प्रोह्यते स्म प्र+√वह्+क्त । **पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभि:**--पण्या: स्त्रिय: (कर्मधा०), तासां रतय:--(ष० त०), तत्प्रयुक्त: परिमल: (मध्यमपदलोपी स०) तम् उद्गरितुं शीलमेषाम् इति पण्यस्त्रीरतिपरिमलम् उद्गिरन्तीति तच्छीलानि, पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारीणि तै:, उद्+√गृ+णिनि । **नागराणाम्**--नगरे भवा: नागरा: नगर+अण्, तेषाम् । **उद्दामानि**-दाम्न: उद्गतानि (प्रादि समास) । **प्रथयति**--√प्रथ्+णिच्, लट्, प्र० पु० एकव० । **शिलावेश्मभि:**-शिलानां वेश्मानि, तै: (ष० त०) । **यौवनानि**--युवन+ अण्--यौवनानि ।

प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है, जिसका लक्षण (पूर्व मेघ/२५) में दिया गया है। □

**प्रसङ्ग**— यक्ष मेघ से कहता है कि नीचैः नामक पर्वत पर विश्राम करके मालिनों के मुखों को छाया देते हुए आगे बढ़ना—

**विश्रान्तः सव्रज वननदीतीरजातानि सिञ्च[1]-**
**न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि ।**
**गण्डस्वेदापनयनरुजा क्लान्तकर्णोत्पलानां**
**छायादानात्क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥२७॥**

**अन्वयः**—विश्रान्तः सन् वननदीतीरजातानि उद्यानानाम् यूथिकाजालकानि नवजलकणैः सिञ्चन् गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां पुष्पलावी मुखानां छाया-दानात् क्षणपरिचितः (सन्) व्रज ॥२७॥

**शब्दार्थ**—**विश्रान्तः** सन्=विश्राम करके, **वननदीतीरजातानि**=वन नदी के किनारे पर उत्पन्न, **यूथिकाजालकानि**=जूही की कलियों को, **गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानाम्**=कपोलों पर पसीने को हटाने से उत्पन्न पीड़ा से मुरझा गये हैं कानों के कमल जिनके ऐसे, **पुष्पलावीमुखानाम्**=पुष्प तोड़ने वाली स्त्रियों (मालिनों) के मुखों को, **छायादानात्**=छाया देने के कारण, **क्षणपरिचितः**=क्षण भर परिचित, **सन्**=होते हुए, **व्रज**=आगे बढ़ना ।

**अनुवाद**—**(वहाँ नीचैः पर्वत पर) विश्राम करके वन नदी के किनारे उत्पन्न उपवनों की जूही की कलियों को नये जल की बूँदों से सींचते हुए (और) कपोलों पर पसीने को हटाने से उत्पन्न पीड़ा से मुरझा गये हैं कानों के कमल जिनके ऐसे, पुष्प तोड़ने वाली स्त्रियों (मालिनों) के मुखों को छाया देने के कारण क्षण भर परिचित होते हुए आगे बढ़ना ॥२७॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! नीचैर्गिरौ विश्रम्य वननदीतटोत्पन्नानाम् आरामाणां मागधी-पुष्पमुकुलानि नवीनजलेन सिञ्चन् कपोलस्वेदविनयनपीडाम्लानश्रवणकमलानां कुसुमावचायिकामुखानाम् अनातपदानात् आतपापहरणात् इत्यर्थः क्षणमनुगृह्य गच्छ ।

**सञ्जीवनी**—विश्रान्तः इति । विश्रान्तः संस्तत्र नीचैर्गिरौ विनीताध्वश्रमः सन् । अथ विश्रान्तेरनन्तरम् । वनेऽरण्ये या नद्यस्तासां तीरेषु जातानि स्वयंरूढानि, अकृत्रिमाणीत्यर्थः ('नदनदी' इति पाठे 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषो दुर्वारः ।) तेषामुद्यानानामारामाणां संबन्धीनि यूथिकाजालकानि मागधीकुसुममुकुलानि । अथ मागधी । 'गणिका यूथिका' इत्यमरः । 'कोरकजालककलिकाकुड्मलमुकुलानि तुल्यानि' इति हलायुधः । नवजलकणैः सिञ्चन्नार्द्रीकुर्वन् । (अत्र सिञ्चतेरार्द्रीकरणार्थत्वाद् द्रवद्रव्यस्य करणत्वम् । यत्र तु क्षरणमर्थस्तत्र द्रवद्रव्यस्य कर्मत्वम् । यथा 'रेतः सिक्त्वा कुमारीषु'। 'सुखैर्निषिञ्चन्तमिवामृतं त्वचि' इत्येवमादि । एवं किरतीत्यादीनामपि 'रजः किरति मारुतः'। 'अवाकिरन्वयोवृद्धास्तं लाजैः पौरयोषितः' इत्यादिष्वर्थभेदाश्रयणेन रजोलाजादीनां कर्मत्वकरणत्वे गमयितव्ये ।) तथा गण्डयोः कपोलयोः स्वेदस्यापनयनेन प्रमार्जनेन या रुजा पीडा। (भिदादित्वादङ्प्रत्ययः ।) तया क्लान्तानि कर्णोत्पलानि येषां तेषां तथोक्तानाम् । पुष्पाणि लुनन्तीति पुष्पलाव्यः पुष्पावचायिकाः स्त्रियः । ('कर्मण्यण्' । 'टिड्ढाणञ्—' इत्यादिना ङीप् ।) तासां मुखानि छायाया अनातपस्य दानात् । कान्तिदानं च ध्वन्यते । 'छाया सूर्य्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः' इत्यमरः।

---

१. वननदीतीरजानां निषिञ्चन्, नगनदीतीरजानां निषिञ्चन्, नदनदी० ।

कामुकदर्शनात्कामिनीनां मुखविकासो भवतीति भावः । क्षणपरिचितः क्षणं संसृष्टः सन् । न चिरम् । व्रज गच्छ ॥२७॥

**टिप्पणी—वननदीतीरजातानि**—कुछ विद्वान् **नदनदीतीरजानां** यह पाठ मानते हैं परन्तु आचार्य मल्लिनाथ **वननदीतीरजातानि** यह पाठ स्वीकार करते हैं । उन्होंने इसका अर्थ 'जंगल की नदी' ऐसा किया है । प्रो० **के० पी० पाठक** वननदी से किसी विशेष नदी का अर्थ लेते हैं और उसके समर्थन में निम्न पंक्तियाँ देते हैं—"*अथवा मालवदेशे यूथिका-खण्ड-मण्डितोद्यानमालित-तीरदेशा वननदी नाम्ना सरिदस्तीति ।*" प्रो० **विल्सन** तथा **वल्लभ** ने वननदी के स्थान पर **नगनदी** पाठ माना है तथा इसका अर्थ पहाड़ी नदी (पार्वती नदी) किया है, जो विन्ध्य पर्वत से निकलती है और शिप्रा नदी में मिल जाती है ।

**पुष्पलावीमुखानाम्**—पुष्प तोड़ने वाली स्त्रियों अर्थात् मालिनों के मुख तेज धूप के कारण पसीने से भीग रहे हैं, बार-बार पसीने को पोंछने के कारण उनके कानों में लगे कमल मुरझा गये हैं। ऐसी उन स्त्रियों के ऊपर जब मेघ आयेगा, तो धूप के स्थान पर छाया आ जायेगी तो उन्हें शीतलता मिलेगी, जिससे वे ऊपर को दृष्टि उठाकर मेघ को प्रेम सहित देखेंगी । यही मेघ का उनके साथ क्षण भर का परिचय होगा ।

**व्याकरण—विश्रान्तः**—वि+√श्रम्+क्त । **व्रज**—√व्रज लोट् म० पु० एकव० **वननदीतीरजातानि**—वनस्थाः नद्यः (मध्यम पद लोपी स०), तासां तीराणि (ष० त०) तेषु जातानि (स० त०) । **सिञ्चन्**—√सिच्+शतृ । **नवजलकणैः**—नवानि जलानि (कर्मधा०) तेषां कणाः तैः (ष० त०) । **यूथिकाजालकानि**—यूथिकानां जालकानि कोरकाणि (ष० त०) **गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानाम्**—गण्डयोः स्वेदः (स० त०), तस्य अपनयनं (ष० त०), तेन रुजा (तृ० त०) तया क्लान्तानि कर्णोत्पलानि याषां तानि (बहु०), **स्वेदः**—√स्विद्+घञ्, **अपनयनम्**—अप+ नी+ल्युट्, **रुजा**—रुज्+अङ्+टाप्, **क्लान्तम्**—क्लम्+क्त । **छायादानात्**—छायाया दानं, तस्मात् (ष० त०) हेतौ पञ्चमी, **दान**—√दा+ल्युट् । **परिचितः**—परि+√चि+क्त । **पुष्पलावीमुखानाम्**—पुष्पाणि लुनन्ति इति पुष्पलाव्यः (उप० त०), तासां मुखानि तेषाम् (ष० त०), पुष्प √लृ+अण्+ङीप्—पुष्पलावी ।

प्रस्तुत श्लोक में मेघ में कामुक व्यवहार का आरोप होने से **समासोक्ति** अलङ्कार है । इसका लक्षण (पूर्वमेघ/२५) में दिया गया है ।

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से आग्रह करता है कि भले ही तुम्हारा मार्ग वक्र हो जावे परन्तु तुम उज्जयिनी अवश्य जाना—

**वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां**
**सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म[1] भूरुज्जयिन्याः।**
**विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र[2] पौराङ्गनानां**
**लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि[3] ॥२८॥**

**अन्वयः**—उत्तराशां प्रस्थितस्य भवतः पन्था यदपि वक्रः उज्जयिन्या सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखः मा स्म भूः । तत्र, पौराङ्गनानां विद्युद्दामस्फुरितचकितैः लोलापाङ्गैः लोचनैः रमसे यदि, वञ्चितः असि ॥२८॥

**शब्दार्थ—उत्तराशां**=उत्तर दिशा की ओर, **प्रस्थितस्य**=प्रस्थान किये हुए, सौ

१. च ।
२. ०स्फुरण ०र्यत्र ।
३. वञ्चितः स्याः ।

**सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखः**=प्रासादों के ऊर्ध्व भागों के परिचय से पराङ्मुख, **पौराङ्गनानाम्**=नगर की सुन्दरियों की, **विद्युद्दामस्फुरितचकितैः**=बिजली की रेखा के चमकने से चकित, **लोलापाङ्गैः**=चञ्चल चितवन वाले, **लोचनैः**=नेत्रों से, **न रमसे**=आनन्द नहीं लिया, **वञ्चितः**=ठगे गये ।

**अनुवाद**—**उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किये हुए आपका मार्ग यद्यपि टेढ़ा (हो जायेगा), (फिर भी) उज्जयिनी के प्रासादों के ऊर्ध्व भागों के परिचय से पराङ्मुख मत होना । वहाँ नगर की सुन्दरियों की बिजली की रेखा के चमकने से चकित चञ्चल चितवन वाले नेत्रों से यदि (तुमने) आनन्द नहीं लिया तो (तुम निश्चित ही) ठगे गये ॥२८॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! उत्तरदिशं प्रति गच्छतः भवतः मार्गः यद्यपि वक्रस्तथापि उज्जयिन्याः भवनोर्ध्वभागपरिचयपराङ्मुखः न भव । तत्र उज्जयिन्यां यदि नगरसुन्दरीणां विद्युल्लतास्फुरणचकितैः चञ्चलकटाक्षैः नेत्रैः न आनन्दितो भवसि तर्हि त्वं निश्चितरूपेण प्रतारितोऽसित्वदीयजन्मलाभो निष्फलः स्यात् इत्यर्थः ।

**सञ्जीवनी**—वक्र इति । उत्तराशामुदीची दिशं प्रति प्रस्थितस्य भवतः पन्था उज्जयिनीमार्गो वक्रो यदपि । दूरो यद्यपीत्यर्थः । (विन्ध्यादुत्तरवाहिन्या निर्विन्ध्यायाः प्राग्भागे कियत्यपि दूरे स्थितोज्जयिनी । उत्तरापथस्तु निर्विन्ध्यायाः पश्चिम इति वक्रत्वम् ।) तथाप्युज्जयिन्या विशालानगरस्य। 'विशालोज्जयिनी समा' इत्युत्पलः । सौधानामुत्सङ्गेषूपरिभागेषु प्रणयः परिचयः । 'प्रणयः स्यात् परिचये याच्ञायां सौहृदेऽपि च' इति यादवः । तस्य विमुखः पराङ्मुखो मा स्म भूः । न भवेत्यर्थः। ('स्मोत्तरे लङ् च' इति चकारादाशीरर्थे लुङ् । 'न माङ्योगे' इत्यडागमप्रतिषेधः ।) तत्रोज्जयिन्यां विद्युद्दाम्नो विद्युल्लतानां स्फुरितेभ्यः स्फुरणेभ्यश्चकितैर्लोलापाङ्गैश्चलकटाक्षैः पौराङ्गनानां लोचनैर्न रमसे यदि तर्हि त्वं वञ्चितः प्रतारितोऽसि । जन्मवैफल्यं भवेदित्यर्थः ॥२८॥

**टिप्पणी**—**वक्रःपन्था**—उज्जयिनी नगरी विन्ध्यपर्वत से निकलकर उत्तर की ओर बहने वाली निर्विन्ध्या नदी के पूर्व में कुछ दूरी पर स्थित है और अलकापुरी जहाँ कि मेघ को जाता है, वह निर्विन्ध्या के पश्चिम में है, इसलिये मेघ के मार्ग को वक्र कहा है ।

**सौधेत्सङ्गप्रणयविमुखः**—कवि का कहने का अभिप्राय यह है कि उज्जयिनी की सुन्दरियाँ शाम को महलों पर खड़ी होती हैं या घूमती हैं । जब तुम्हारी बिजली चमकेगी तो उनकी आँखें भय के कारण चञ्चल हो उठेंगी; अतः यदि तुमने इस दृश्य को नहीं देखा तो वास्तव में तुम जीवन के वास्तविक आनन्द से वञ्चित रह जाओगे ।

**उज्जयिन्याः**—उज्जयिनी प्राचीन काल में अवन्ति प्रदेश की राजधानी थी, यह शिप्रा नदी के तट पर स्थित हैं और यहाँ पर महाकाल शङ्कर का मन्दिर है । अनेक स्थलों पर इसे राजा विक्रमादित्य की राजधानी भी कहा गया है । इसे विशाला तथा अवन्ती भी कहते हैं । मोक्ष प्रदान करने वाली सात पुरियों में इसकी भी गणना की गयी है—

*अयोध्या मथुरा मायाकाशी काञ्ची ह्यवन्तिका ।*
*पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥*

इस प्रकार इस श्लोक से प्रकट होता है कि कालिदास का उज्जयिनी के प्रति विशेष झुकाव है; क्योंकि मेघ के सीधे मार्ग में उज्जयिनी नहीं आती है, फिर भी यक्ष उससे आग्रह करता है कि तू उज्जयिनी होकर अवश्य जाना, भले ही तेरा मार्ग वक्र हो जाये ।

**व्याकरण**—**प्रस्थितस्य**—प्र+√स्था+क्त । **उत्तराशाम्**—उत्तरा आशा (कर्मधा०) ताम्। **सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखः**—सुधया निर्मिताः सौधाः, सौधानाम् उत्सङ्गा (ष० त०) तेषु प्रणयः (स० त०), तस्मात् विमुखः (प० त०) सुधा+अण्—**सौधः**, प्र+√णीज+अच्—**प्रणयः** । **मा स्म भूः**—मा स्म का योग होने के कारण लोट् लकार के अर्थ में लुङ् लकार का प्रयोग हुआ है, √भू+लुङ् म० पु० एकव० । **विद्युद्दामस्फुरितचकितैः**—विद्युद्दाम्नः स्फुरितानि (ष० त०)

तैः चकितानि तैः (तृ० त०), **विद्युत्**—वि+√द्युत्+क्विप्, **स्फुरित**—स्फुर्+√क्त । **पौराङ्गनानाम्**—पौराणाम् अङ्गनाः तासाम् (ष० त०), पुर+अण्=पौराः, **अङ्गना**—अङ्ग+नङ्+टाप् । **लोलापाङ्गैः**—लोलाः अपाङ्गाः यासां तानि, तैः (बहु०) । **रमसे**—'√रम'+लट् म० पु० एकव० । **वञ्चितः**—√वञ्च्+क्त । **असि**—√अस् लट् म० प्र० एकव० ।

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि इसके बाद तुम निर्विन्ध्या नदी पर पहुँचना—

**वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः**[1]
**संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः ।**
**निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः**[2] **सन्निपत्य**
**स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं**[3] **विभ्रमो हि प्रियेषु ॥२९॥**

**अन्वयः**—वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः स्खलितसुभगम् संसर्पन्त्याः दर्शितावर्तनाभेः निर्विन्ध्यायाः पथि सन्निपत्य रसाभ्यन्तरः भव । हि स्त्रीणां प्रियेषु विभ्रमः आद्यं प्रणयवचनम् ॥२९॥

**शब्दार्थ**—**वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः**=तरङ्गों के चलने से शब्द करते हुए पक्षियों की पङ्क्ति रूपी करधनी वाली, **स्खलितसुभगम्**=स्खलन के कारण सुन्दर रूप में (मदमाती चाल से), **संसर्पन्त्या**=बहने वाली, **दर्शितावर्तनाभेः**=भँवर रूपी नाभि को दिखाने वाली, **संनिपत्य**=पहुँकर, **रसाभ्यन्तरः**=जल से पूर्ण मध्य भाग वाले, **प्रियेषु**=प्रेमियों के प्रति **विभ्रमः**=शृङ्गार चेष्टा ही, **प्रणय-वचनम्**=प्रणय वाक्य ।

**अनुवाद**—**तरङ्गों के चलने से शब्द करते हुए पक्षियों की पङ्क्ति रूपी करधनी वाली, स्खलन के कारण सुन्दर रूप में (मदमाती चाल से) बहने वाली तथा भँवर रूपी नाभि को दिखाने वाली निर्विन्ध्या नदी के मार्ग में पहुँचार जल से पूर्ण मध्य भाग वाले हो जाना; क्योंकि स्त्रियों की प्रेमियों के प्रति शृङ्गार-चेष्टा (हाव-भाव) ही प्रथम प्रणय वाक्य होता है ॥२९॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! तरङ्गसञ्चलनमुखरपक्षिपङ्क्तिरशनागुणायाः उपस्खलनेन मनोहरं यथा स्यात्तथा प्रवहन्त्याः प्रकटिताम्भोर्भ्रमनाभेः निर्विन्ध्यायाः एतन्नामिकायाः नद्याः मार्गे सङ्गत्य जलाभ्यान्तर शृङ्गाररसान्वितश्च भव । यतः कामिनीनां कान्तेषु विलासप्रदर्शनमेव प्राथमिकं प्रार्थनावाक्यं भवति ।

**सञ्जीवनी**—संप्रत्युज्जयिनीं गच्छतस्तसय मध्येमार्गं निर्विन्ध्यासम्बन्धमाहवीचीति । हे सखे, पथ्युज्जयिनीपथे वीचिक्षोभेण तरङ्गचलनेन स्तनितानां मुखराणाम् (कर्तरि क्तः) विहगानां हंसानां श्रेणिः पङ्क्तिरेव काञ्चीगुणो यस्यास्तसयाः । स्खलितेनोपस्खलनेन मदस्खलितेन च सुभगं यथा तथा संसर्पन्त्याः प्रवहन्त्याः गच्छन्त्याश्च । तथा दर्शितः प्रकटितः आवर्तोऽम्भसां भ्रम एव नाभिर्यया । 'स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः' इत्यमरः । निष्क्रान्ता विन्ध्यान्निर्विन्ध्यानाम नदी ('निरादायः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या' इति समासः । 'द्विगुप्राप्तापन्नालम्—' इत्यादिना परवल्लिङ्गताप्रतिषेधः ।) तस्या नद्याः संनिपत्य सङ्गत्य रसो जलमभ्यन्तरे यस्य सः । अन्यत्र रसेन शृङ्गारेणाभ्यन्तोऽन्तरङ्गो भव । सर्वथा तस्या रसमनुभवेत्यर्थः । शृङ्गारादौ जले वीर्ये सुवर्णे विषशुक्रयोः । तिक्तादावमृते चैव निर्यासे पारदे ध्वनौ । आस्वादे च रसं प्राहुः' इति शब्दार्णवे

---

१. ०क्षोभस्वनितः, ०क्षोभक्वणित०।
२. रसाभ्यन्तरं ।
३. प्रणयिवचनं ।

ननु तत्प्रार्थनामन्तरेण कथं तत्रानुभवो युज्येतेत्यत आह—स्त्रीणामिति । स्त्रीणां प्रियेषु विषये विभ्रमो विलास एवाद्यं प्रणयवचनं प्रार्थनावाक्यं हि । स्त्रीणामेष स्वभावो सद्विलासैरेव रागप्रकाशनं न तु कण्ठत इति भावः । विभ्रमश्चात्र नाभिसंदर्शनादिरुक्त एव ॥२९॥

**टिप्पणी—वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः**—प्रस्तुत श्लोक में मेघ को नायक तथा निर्विन्ध्या नदी को नायिका बताया गया है । नायिका की कमर पर बाँधी हुई करधनी, झन-झन करती हुई कामोद्दीपक मानी जाती है । यहाँ तरङ्गों के चलायमान होने पर शब्द करते हुए पक्षियों की पङ्क्तियाँ निर्विन्ध्या की करधनी मानी गयी है । किसी-किसी स्थल पर '**०क्षोभ क्वणित**' पाठ भी पाया जाता है । उसका वही अर्थ होगा ।

**प्रणयवचनम्**—जिस प्रकार नायिका कमर की करधनी की झंकार बढ़ाकर मदमाती चाल से बार-बार नाभि प्रदर्शन द्वारा नायक को प्रणय का निमन्त्रण देती है, उसी प्रकार निर्विन्ध्या भी तरङ्गों के चलने से शब्द करते हुये पक्षियों की पंक्तियों से, पत्थरों पर लड़खड़ा कर बहने से अर्थात् मदमाती चाल से तथा बार-बार भँवरों के प्रदर्शन से अपने नायक मेघ को प्रणय का निमन्त्रण दे रही है । इसलिए हे मेघ । जल से पूर्ण मध्य भाग वाला (रति-भाव को धारण करने वाला) होना चाहिए, इस प्रकार के हाव-भाव के द्वारा ही प्रेमिका प्रेमी को प्रणय का प्रथम वचन कहती है, मुख से नहीं बोलती, अपितु इस प्रकार अङ्ग प्रदर्शन करती है । ये ही उसके प्रणय वचन हैं ।

**व्याकरण—वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः**—वीचीनां क्षोभः (ष० त०) तेन स्तनिताः (तृ० त०) तादृशाः विहगाः (कर्मधा०) तेषां श्रेणिः (ष० त०) सा एव काञ्चीगुणो यस्याः सा तस्याः (बहु०), **क्षोभः**—क्षुभ्+घञ् । **संसर्पन्त्या**—सम+√सृप+शतृ+ङीप्, ष० एकव० । **स्खलितसुभगम्**—स्खलितेन सुभगं यथा स्यात् तथा (क्रिया विशेषण तृ० त०) । **दर्शितावर्तनाभेः**—दर्शितः आवर्तः एव नाभिः यया सा तस्याः (बहु०), **दर्शितः**—√दृश+णिच्+क्त । **निर्विन्ध्या**—निर्विन्ध्यात् निष्क्रान्ता तस्याः (गति त०) । **रसाभ्यन्तरः**—रसः अभ्यन्तरे यस्य सः (बहु०) । **संनिपत्य**—सम्+नि+√पत्+क्त्वा (ल्यप्) । **प्रणयवचनम्**—प्रणयस्य वचनम् (ष० त०), **प्रणयः**—प्र+√नी+अच्, **वचनम्**—√ब्रू+ल्युट् । **आद्यम्**—आदि+यत् । **प्रियेषु**—√प्री+कः ।

प्रस्तुत श्लोक में **रूपक** अलङ्कार है । रस शब्द यहाँ दो अर्थ रखता है । शृङ्गार रस तथा जल, इसलिए उसमें **श्लेष** अलङ्कार है, चतुर्थ चरण से पूर्व वाक्य का समर्थन होने से **अर्थान्तरन्यासालङ्कार** है जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/५) में दिया गया है । रूपक और श्लेष के लक्षण निम्न हैं—

*रूपकं रूपितारोपाद्विषये निरपह्नवे । (सा० द० १०/२६ के बाद)*

*श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते । (सा० द० १०/११)* □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को निर्देश देता है कि ऐसा उपाय करना जिससे सिन्धु नदी क्षीणता को छोड़ दे—

**वेणीभूतप्रतनुसलिला, तामतीतस्य[१] सिन्धुः**
**पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः[२] ।**
**सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती ।**
**कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥३०॥**

**अन्वयः**—वेणीभूतप्रतनुसलिलाः तटरुहतरुभ्रंशिभिः जीर्णपर्णैः पाण्डुच्छाया सिन्धुः ताम्

---

१. तामतीतस्य, सा त्वतीतस्य ।
२. ०भ्रंशिभि: शीर्णपर्णैः ।

अतीतस्य सौभाग्यं विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती येन विधिना कार्श्यं त्यजति, हे सुभग ! सः त्वया उपपाद्य एव ॥३०॥

**शब्दार्थ—वेणीभूतप्रतनुसलिला**=वेणी के समान बने हुए क्षीण जल वाली, **तटरुहतरुभ्रंशिभिः**=तट पर उगे हुए वृक्षों से गिरने वाले, **जीर्णपर्णैः**=सूखे पत्तों से, **पाण्डुच्छाया**=पीली कान्ति वाली, **अतीतस्य**=पार किये हुए, **विरहावस्थया**=विरह की दशा से, **व्यञ्जयन्ती**=प्रकट करती हुई, **कार्श्यम्**=क्षीणता को, **त्यजति**=छोड़ दे, **सुभग**=सौभाग्यशाली मेघ, **उपपाद्य एव**=करना ही चाहिए ।

**अनुवाद—वेणी के समान बने हुए क्षीण जल वाली, तट पर उगे हुए वृक्षों से गिरने वाले सूखे पत्तों से पीली कान्ति वाली (काली) सिन्धु नदी उसको (निर्विन्ध्या को) पार किये तेरे सौभाग्य को (अपनी) विरह की दशा से प्रकट करती हुई, जिस उपाय से (अपनी) क्षीणता छोड़ दे, हे सौभाग्यशाली मेघ ! वह तुम्हें करना ही चाहिए ॥३०॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! वेण्याकारस्वल्पजला तीरोत्पन्नवृक्षस्रंसिभिः शुष्कपत्रैः पीतवर्णा सिन्धु इति नाम्ना नदी ताम् निर्विन्ध्याम् अतीतस्य तव सुभगत्वं सवियोगदशया प्रकाशयन्ती यादृशेन व्यापारेण दुर्बलतां मुञ्चति, हे सौभाग्यशालिन् मेघ ! तथा त्वया करणीयम् ।

**सञ्जीवनी**—निर्विन्ध्यायां विरहावस्थां वर्णयंस्तन्निराकरणं प्रार्थयते—वेणीति । अवेणी वेणीभूतं वेण्याकारं प्रतनु स्तोकं च सलिलं यस्याः सा तथोक्ता । अन्यत्र वेणीभूतकेशपाशेति च ध्वन्यते । (रुहन्तीति रुहाः । इगुपधलक्षणः क प्रत्ययः ।) तटयो रुहा ये तरवस्तेभ्यो भ्रश्यन्तीति तथोक्तैः जीर्णपर्णैः शुष्कपत्रैः पाण्डुवर्णा । अतएव हे सुभग, विरहावस्थया पूर्वोक्तप्रकारया करणेन । सा अतीतसयैतावन्तं कालमतीत्य गतस्य प्रोषितस्येत्यर्थः । ते तव सौभाग्यं सुभगत्वम्। 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' इत्युभयपदवृद्धिः । व्यञ्ज्यन्ती प्रकाशयन्ती । स खलु सुभगो यमङ्गना कामयन्त इति भावः । असौ पूर्वोक्ता सिन्धु नदी निर्विन्ध्या । 'स्त्री नद्यां न नदे सिन्धुर्देशभेदेऽम्बुधौ गजे' इति वैजयन्ती । येन विधिना व्यापारेण कार्श्यं त्यजति स विधिस्त्वयै वोपपाद्यः कर्त्तव्य इत्यर्थः । स च विधिरेकत्र वृष्टिरन्यत्र सम्भोगस्तद्भावनिबन्धनत्वात्कार्श्यस्येति भावः । (इयं पञ्चमी मदनावस्था । तदुक्तं रतिरहस्ये—'नयनप्रीतिः प्रथमं चित्तासङ्गस्ततोऽथ सङ्कल्पः । निद्रोच्छेदस्तनुता विषयनिवृत्तिस्त्रपानाशः । उन्मादो मूर्च्छा मृतिरित्येताः स्मरदशा दशैव स्युः ।' इति) 'तामतीतस्य' इति पाठमाश्रित्य सिन्धुर्नाम् नद्यन्तरमिति व्याख्यातम् । किन्तु सिन्धुर्नाम कश्चिन्नदः कश्मीरदेशेऽस्ति । नदी तु कुत्रापि नास्तीत्युपेक्ष्यमित्याचक्षते ॥३०॥

**टिप्पणी—वेणीभूतप्रतनुसलिला**—यहाँ नदी में विरहणी नायिका का आरोप किया गया है, इसलिए उसकी क्षीण जलधारा को वेणी कहा गया है । प्राचीन काल में विरहिणी स्त्रियाँ केशों की केवल एक वेणी बनाती थीं । रतिरहस्य के अनुसार यहाँ पाँचवीं कामावस्था का वर्णन किया गया है—

*नयनप्रीतिः प्रथमं चित्ताऽऽसङ्गस्ततोऽथ सङ्कल्पः ।*
*निद्राच्छेदस्तनुता विषयनिवृत्तिस्त्रपानाशः ॥*
*उन्मादो मूर्च्छा मृतिरित्येताः स्मरदशाः दशैव स्युः ।*

अर्थात् पहली नेत्र प्रीति, दूसरी चित्र की आसक्ति, तीसरी सङ्कल्प, चौथी निद्रानाश, पाँचवी कृशता, छठी शब्द स्पर्श आदि विषयों की निवृत्ति, सातवीं लज्जानाश, आठवीं पागलपन, नवीं मूर्च्छा और दसवीं मृत्यु—इस प्रकार दस कामावस्थायें हैं ।

**सिन्धु**—सिन्धु के अर्थ के विषय में टीकाकारों ने बड़ी खींचतान की है । आचार्य मल्लिनाथ ने सिन्धु शब्द का अर्थ नदी सामान्य किया है, न कि नदी विशेष । इसके समर्थन में उन्होंने वैजयन्ती का यह उद्धहरण किया है— *'स्त्री नद्यां न नदे सिन्धुर्देशेऽम्बुधौ गजे ।'* **'तामतीतस्य सिन्धुः'** इसके स्थान पर मल्लिनाथ ने **'सात्वतीतस्य सिन्धुः'** यह पाठ स्वीकार किया है । तामतीतस्य का खण्डन करते हुए उन्होंने लिखा है— *'तामतीतस्य इति पाठमाश्रित्य*

*सिन्धुर्नाम नद्यन्तरमिति व्याख्यातम् । किन्तु सिन्धुर्नाम कश्चिन्नदः कश्मीरदेशे अस्ति । नदी तु कुत्रापि नास्तीत्युपेक्ष्यमित्याचक्षते'* अर्थात् निर्विन्ध्या के अतिरिक्त सिन्धु नाम की कोई और नदी है, यह अर्थ ठीक नहीं, क्योंकि सिन्धु कोई नदी नहीं है एक महानदी है, जो कश्मीर में ही बहती है न कि मालवा में । परन्तु तामतीतस्य पाठ ही उचित प्रतीत होता है, क्योंकि मालवा में **''काली सिन्धु''** नाम की एक छोटी पहाड़ी नदी है, जो कि चम्बल की सहायक है । यह नदी जिला धार, तहसील बागली में बरझोरी ग्राम के पास विन्ध्य पर्वत के २३७० फीट ऊँचे शिखर से निकलती है । अर्थ की दृष्टि से भी 'काली सिन्धु' अर्थ लेना ही अधिक उचित प्रतीत होता है, क्योंकि इससे पूर्व के ही श्लोक में निर्विन्ध्या को बड़े वेग वाली, चट्टानों से टकराकर गिरने वाली, भँवरों वाली बताया है, जबकि इस श्लोक में क्षीण जल वाली एक धार में बहने वाली बताया है , इसलिए यह निर्विन्ध्या नदी नहीं हो सकती, अतः उससे भिन्न 'काली सिन्धु' ही अर्थ लेना ठीक है ।

**सौभाग्यम्**—सौभाग्यम् से अभिप्राय यह है कि काली सिन्धु तुम्हारे वियोग में दुर्बल हो गयी है, सूखे पत्तों से पीली हो रही है, परन्तु पतिव्रता धर्म का पालन कर रही है अर्थात् किसी अन्य पुरुष से प्रेम नहीं करती है, यह तुम्हारे लिए सौभाग्य की बात है ।

**व्याकरण**—**वेणीभूतप्रतनुसलिला**—अवेणी वेणीभूतम् (त०) वेणीभूतम् प्रतनु सलिलम् यस्याः सा (बह०), **वेणीभूत**—वेणी+च्वि+√भू+क्त । **अतीतस्य**—अति+√इण्+क्त । **पाण्डुच्छाया**—पाण्डुः छाया यस्या सा (बहु०) । **तटरुहतरुभ्रंशिभिः**—रुहन्ति इति रुहाः तटयोः रुहाः (स० त०) ते च ते तरवः (कर्मधा०) तेभ्यः भ्रश्यन्ति इति तैः (उपपद त०), **रुहाः**—रुह् कः । **जीर्णपर्णैः**—जीर्णानि पर्णानि तैः (कर्मधा०) । **सौभाग्यम्**—सुभग+ष्यञ्, **सुभगः**—शोभनः भगः यस्य सः (बह०) । **विरहावस्थाया**—विरहस्य अवस्थया (ष० त०) । **व्यञ्जयन्ती**—वि +√अञ्ज्+णिच्+शतृ+ङीप । **कार्श्यम्**—कृश+ष्यञ् । **त्यजति**—√त्यज्, लट्, प्र० पु० एकव० । **विधिना**—वि+√धा+किः, करणे तृतीया । उपपाद्यः—उप+√पद्+णिच्+ण्यत् ।

प्रस्तुत श्लोक में मेघ में नायक तथा नदी में नायिका का आरोप है, अतः **समासोक्ति** अलङ्कार है, जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/२५) में दिया गया है । यहाँ कवि मेघ (नायक) को निर्देश देता है कि वह बरसकर अर्थात् संभोग द्वारा नदी की (नायिका की) कृशता दूर कर दे । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को निर्देश देता है कि अवन्ति प्रदेश में पहुँचकर उज्जयिनी में अवश्य जाना—

**प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्[1]**
**पूर्वोद्दिष्टामुपसर[2] पुरीं श्रीविशालां विशालाम् ।**
**स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां**
**शेषैः पुण्यैर्हृतमिव[3] दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ॥३१॥**

**अन्वयः**—उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् अवन्तीन् प्राप्य पूर्वोद्दिष्टां श्रीविशालां विशालां पुरीम् उपसर, (या) सुचरितफले स्वल्पीभूते गां गतानां स्वर्गिणां शेषैः पुण्यैः हृतं दिवः एकं कान्तिमत् खण्डम् इव ॥३१॥

**शब्दार्थ**—**उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्**=जहाँ के ग्रामों के वृद्ध जन उदयन की कथाओं के जानने वाले हैं, **अवन्तीन्**=अवन्ति प्रदेश को, **पूर्वोद्दिष्टाम्**=पहले बतायी गयी,

१. प्राप्यावन्तीमुदयकथाकोविदग्रामवृद्धान् ।
२. ०मनुसर ।
३. पुण्यैः कृतमिव ।

**श्रीविशालाम्**=सम्पत्ति से सम्पन्न, **विशालाम्**=उज्जयिनी को, **उपसर**=जाना, **सुचरितफले**=पुण्य कर्मों के फल के, **स्वल्पीभूते**=कम हो जाने पर, **गाम्**=पृथ्वी पर, **गतानाम्**=आये हुए, **स्वर्गिणाम्**=स्वर्ग वालों के, **दिवः**=स्वर्ग का, **कान्तिमत्**=उज्जवल, **खण्डम्**=टुकड़ा ।

**अनुवाद**–**जहाँ के ग्रामों के वृद्ध जन उदयन की कथाओं के जानने वाले हैं, ऐसे अवन्ति प्रदेश को प्राप्त कर, पहले बतायी गयी, सम्पति से सम्पन्न, उज्जयिनी नाम की नगरी में जाना, (जो) मानो पुण्य कर्मों के फल के कम हो जाने पर पृथ्वी पर आये हुए स्वर्ग वालों के (देवताओं के) शेष पुण्यों के द्वारा लाया गया स्वर्ग का एक उज्जवल टुकड़ा है ॥३१॥**

**संस्कृत-टीका**–हे मेघ ! वत्सराजोपाख्यानाऽभिज्ञवृद्धजलयुक्तान्, अवन्तीन् एतन्नामजनपदान् आसाद्य सौधोतसङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः इत्यादि प्रकारेण पूर्वोक्ताम् संपत्तियुक्ताम् उज्जयिनीं नगरीं व्रज । या नगरी पुण्यफले अल्पावशिष्टे सति पृथ्वीं प्राप्तानां स्वर्गवताम् अवशेषैः सुकृतैः आनीतं स्वर्गस्य भुक्तात् अन्यत् किमपि उज्जवलं शकलमिव अस्ति ।

**सञ्जीवनी**–प्राप्येति । विदन्तीति विदाः । (इगुपधलक्षणः कः ।) ओकसो वेद्यस्थानस्य विदाः कोविदाः । (ओकारलुप्ते पृषोदरादित्वत्साधुः ।) उदयनस्य वत्सराजस्य कथानां वासवदत्ताहरणाद्यद्भुतोपाख्यानानां कोविदास्तत्त्वज्ञाः ग्रामेषु ये वृद्धास्ते येषु तानवन्तीसतन्नामजनपदान्प्राप्य तत्र पूर्वोद्दिष्टां पूर्वोक्तां 'सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः' इत्युक्तां श्रीविशालां सम्पत्तिमतीम् । 'शोभासंपत्तिपद्मसु लक्ष्मीः श्रीरिव दृश्यते' इति शाश्वतः । विशालां पुरीमुज्जयिनीमनुसर व्रज। कथमिव स्थिताम् ? सुचरितफले पुण्यफले स्वर्गोपभोगलक्षणे स्वल्पीभूते । अत्यल्पावशिष्टे सतीत्यर्थः । गां भूमिं गतानाम् । 'गौरिला कुम्भिनी क्षमा' इत्यमरः । पुनरपि भूलोकगतानामित्यर्थः। स्वर्गिणां स्वर्गवतां जनानां शेषैर्भुक्तशिष्टैः पुण्यैः सुकृतैर्हृतमानीतम् । स्वर्गिग्यमनुष्ठितकर्मशेषाणां स्वर्गदानामवश्यम्भावादिति भावः । कान्तिरस्यास्तीति कान्तिमदुज्जवलम् । सारभूतमित्यर्थः । एकं भुक्तादन्यत् । 'एके मुख्यान्यकेवलाः' इत्यमरः । दिवः स्वर्गस्य खण्डमिव स्थितामित्युत्प्रेक्षा । एतेनातिकान्तसकलभूलोकनगर सौभाग्यसारत्वमुज्जयिन्या व्यज्यते ॥३१॥

**टिप्पणी**–**उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्**—यहाँ उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् लिखकर कवि ने उदयन की कथा की ओर सङ्केत किया है । यह कथा मूलरूप से गुणाढ्य की वृहत्कथा में मिलती है, परन्तु यह ग्रन्थ पैशाची में लिखा है और अपने मूलरूप में आज अप्राप्य है । इसका संस्कृत अनुवाद सोमदेव ने कथासरित्सागर तथा क्षेमेन्द्र ने वृहत्कथा-मञ्जरी नाम से किया है । कथासरित्सागर में यह कथा लम्बक २ से ८ तक विस्तृत रूप में वर्णित है । संक्षेप में कथा इस प्रकार है—'पृथ्वी पर वत्स नाम का एक देश है, जिसमें कौशाम्बी नाम की नगरी है । वहां परीक्षित का पौत्र जनमेजय का पुत्र शतानीक राजा था । उसके सहस्रानीक नामक पुत्र था । सहस्रानीक की पत्नी का नाम मृगावती था । उनके पुत्र का नाम उदयन था । उदयन ने उज्जैन के राजा चण्डमहासेन की पुत्री वासवदत्ता का अपहरण कर उससे विवाह किया । उसके बाद मगध के राजा प्रद्योत की पुत्री पद्मावती से विवाह कर लिया । उसके वासवदत्ता से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम नरवाहनदत्त रखा ।

इसके अतिरिक्त यह कथा भास के स्वप्नवासदत्तम् तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् नामक नाटकों में भी लगभग इसी रूप में मिलती है ।

**विशालाम्**–यह उज्जयिनी का ही दूसरा नाम है । वल्लभादि कुछ टीकाकारों ने विशालाम् को नाम न मानकर पुरीम् का विशेषण माना है । तब इसका अर्थ इस प्रकार होगा–*श्रीविशालां विशालां पूर्वोद्दिष्टां पुरीमुपसर* अर्थात् सम्पत्ति से सम्पन्न महान् पूर्वोक्त नगरी (उज्जयिनी) जाओ । आचार्य मल्लिनाथ ने 'उपसर' के स्थान पर 'अनुसर' पाठ स्वीकार किया है ।

**स्वल्पीभूते सुचरितफले**–उज्जयिनी नगरी अति समृद्ध, सम्पत्तिशालिनी तथा स्वर्गिक सुखों से युक्त है, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्वर्ग का ही एक टुकड़ा है । पुण्य कर्मों से स्वर्ग में बहुत समय तक निवास करने वाले पुण्यशाली व्यक्ति पुण्यों के भोग के

अनन्तर शेष पुण्य के साथ जब पृथ्वी पर लौटने लगे तो स्वर्ग का टुकड़ा भी वहां से लेते आये । कवि ने कल्पना की है कि मानो वह उज्जयिनी ही स्वर्ग का एक टुकड़ा है । हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार पुण्य कर्म करने वाले व्यक्ति स्वर्ग में चले जाते हैं तथा उन कर्मों के फल के रूप में स्वर्ग का सुख भोग कर फिर वापिस पृथ्वी पर लौट आते हैं । श्रीमद्भगवद्गीता (९/२१) में भी बताया गया है–

*ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं, क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।*

**व्याकरण–प्राप्य**–प्र+√आप्+क्त्वा (ल्यप्) । **अवन्तीन्**–देश वाचक शब्द संस्कृत में बहुवचनान्त प्रयुक्त होते हैं, इसलिए यह बहुवचनान्त प्रयोग है । **उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्**–उदयनस्य कथा, तासां कोविदा: (ष० त०) तादृशा: ग्रामवृद्धा: येषु तान् (बहु०), **विद**–√विद्+क:। **पूर्वोद्दिष्टाम्**–पूर्वम् उद्दिष्टा ताम् (सुप्सुपा स०), **उद्दिष्टा**–उद्+√दिश्+क्त टाप् । **उपसर**–उप+√सृ, लोट् म० पु० एकव० । **श्रीविशालाम्**–श्रिया विशाला ताम् (तृ० त०) । **स्वल्पीभूते**–स्वल्प+च्वि+भू+क्त, स० एकव० । **सुचरितफले**–शोभनं चरितम् सुचरितम् ''कुगतिप्रादय:'' से समास हुआ है, सुचरितस्य फलं तस्मिन् (ष० त०), **सुचरित**–सु+चर्+क्त । **स्वर्गिणाम्**–स्वर्ग: अस्ति एषाम् (तद्धित) स्वर्ग+इनि ष० बहुव० । **गतानाम्**–√गम्+क्त, ष० बहुव० । **शेषै:**–शिष्+घञ् (कर्मणि) । **हृतम्**–हृ+क्त (कर्मणि) । **कान्तिमत्**–कान्ति: अस्य अस्ति इति (तद्धित), कान्ति+मतुप् ।

प्रस्तुत श्लोक में श्रीविशालां विशालां में **यमक** अलङ्कार है, जिसका लक्षण इस प्रकार है–

*सत्यर्थे पृथगर्थाया: स्वरव्यञ्जनसंहते: ।*
*क्रमेण तनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ॥ (सा० द० १०/८)*

तथा दिव: खण्डम् इव में **उत्प्रेक्षा** अलङ्कार है, जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/२५) में किया गया है । □

**प्रसङ्ग**–शिप्रा नदी की वायु का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि–

**दीर्घीकुर्वन्पटु मदकलं कूजितं सारसानां**
**प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषाय: ।**
**यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूल: ।**
**शिप्रावात: प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार: ॥३२॥**

**अन्वय:**–यत्र प्रत्यूषेषु सारसानां पटु मदकलं कूजितं दीर्घीकुर्वन् स्फुटितकमलामोदमैत्रिकषाय: अङ्गानुकूल: शिप्रावात: प्रार्थनाचाटुकारु प्रियतम: इव स्त्रीणां सुरतग्लानिं हरति ॥३२॥

**शब्दार्थ–यत्र**=जहां (उज्जयिनी में), **प्रत्यूषेषु**=प्रात:काल में, **सारसानां**=सारसों के, **पटु**=तीव्र, **मदकलम्**=मद से अव्यक्तम्, मधुर, **कूजितम्**=कूजन को, **दीर्घीकुर्वन्**=अधिक बढ़ाता हुआ, **स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषाय:**=खिले हुए कमलों की सुगन्ध के सम्पर्क से सुगन्धित, **अङ्गानुकूल:**=अङ्गों को सुख देने वाला, **शिप्रावात:**=शिप्रा नदी का पवन, **प्रार्थनाचाटुकार:**=(रति) याचना में मीठे वचन बोलने वाले, **सुरतग्लानिम्**=सम्भोग की थकान को, **हरति**=दूर करता है ।

**अनुवाद–जहां (उज्जयिनी में) प्रात:काल में सारसों के तीव्र मद से अव्यक्त मधुर कूजन को अधिक बढ़ाता हुआ, खिले हुए कमलों की सुगन्ध के सम्पर्क से**

सुगन्धित, अङ्गों को सुख देने वाला शिप्रा नदी का पवन, (रति) याचना में मीठे वचन बोलने वाले प्रियतम के समान, स्त्रियों की सम्भोग की थकान को दूर करता है ॥३२॥

**संस्कृत-टीका**—यस्यां उज्जयिन्यां प्रभातकालेषु सारसानां तीव्रं मदेन अव्यक्तमधुरं कूजनं विस्तारयन् विकसितपद्मपरिमलसंसर्गसुरभिः गात्रसुखदः शिप्रानीवायुः रतियाचनायां प्रियवचनप्रयोक्ता प्रियतम इव ललनानां रतिपरिश्रमं निवारयति ।

**सञ्जीवनी**—दीर्घीकुर्वन्निति । यत्र विशालायां प्रत्युषेष्वहर्मुखेषु । 'प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यम्' इत्यमरः । पटु प्रस्फुटम् । मदकलं मदेनाव्यक्तमधुरम् । 'ध्वनौ तु मधुरास्फुटे कलः' इत्यमरः । सारसानां पक्षिविशेषाणम् । 'सारसो मैथुनी कामी गोनर्दः पुष्करुह्वयः' इति यादवः। 'यद्वा सारसानां हंसानाम् चक्राङ्गः सारसो हसंः' इति शब्दार्णवे । कूजितं रुतं दीर्घीकुर्वन् । विस्तारयन्नित्यर्थः । यावद्वातं शब्दावृत्तेरिति भावः । एतेन प्रियतमः स्वचाटुवाक्यानुसारि क्रीडापक्षिकूजितमविच्छिन्नीकुर्वन्निति च गम्यते । स्फुटितानां विकसितानां कमलानामामोदेन परिमलेन सह या मैत्री संसर्गस्तेन कषायः सुरभिः । 'रागद्रव्ये काषायोऽस्त्री निर्यासे सौरभे रसे' इति यादवः । अन्यत्र विमर्दगन्धीत्यर्थः । विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे । 'आमोदः सोऽतिनिर्हारी' इत्यमरः । अङ्गानुकूलो गात्रसुखस्पर्शः । अन्यत्र गाढालिङ्गनदत्तगात्रसंवाहन इत्यर्थः । (भवभूतिना चोक्तम्—'अशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि' इति । संवाह्यान्ते च सुरतश्रान्ताः प्रियैर्युवतयः । एतत्कविरेव वक्ष्यति—'सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहानानाम्' इति) शिप्रा नाम काचित्तत्रत्या नदी तस्याः वातः शिप्रावातः । शिप्राग्रहणं शैत्यद्योतनार्थम् । प्रार्थना सुरतस्य याच्ञा तत्र चाटु करोतीति तथोक्तः । पुनः सुरतार्थं प्रियवचनप्रयोक्तेत्यर्थः । (कर्मण्यण् प्रत्ययः ।) प्रियतमो वल्लभ इव स्त्रीणां सुरतग्लानिं सम्भोगखेदं हरति नुदति । चाटूक्तिभिर्विस्मृतपूर्वरतिखेदाः स्त्रियः प्रियतमप्रार्थनां सफलयन्तीति भावः ('प्रार्थनाचाटुकारः' इत्यत्र खण्डितनायिकाऽनुनीता इति व्याख्याने सुरतग्लानिहरणं न सम्भवति । तस्याः पूर्वं सरताभावात्पश्चात्तत्सुरुग्लानिहरणं तु नेदानीन्तमकोपशमनार्थं चाटुवचनसाध्यमित्युत्प्रेक्षैवोचिता विवेकिनाम् । ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेष्यार्कषायिता' इति दशरूपके) ॥३२॥

**टिप्पणी**—**शिप्रा**—शिप्रा एक नदी है, उज्जयिनी इसी के तट पर स्थित है ।

**प्रार्थनाचाटुकारः**—प्रिया के रमण करने से थक जाने पर प्रेमी फिर रमण करने के लिए उसकी खुशामद करता है, मीठी-मीठी बातें करता है तथा थकान को दूर कर शरीर में ताजगी उत्पन्न करता है, उसी प्रकार शिप्रा नदी का पवन प्रेमियों के समान रमणियों की सम्भोग-थकान को दूर कर रहा है ।

कुद टीकाकारों ने यहां खण्डिता नायिका की कल्पना की है । जब खण्डिता नायिका पति के चरित्र पर सन्देह करती है तो नायक उसे प्रसन्न करने के लिए मीठी-मीठी बातें बनाते हैं । साहित्य दर्पण में खण्डिता नायिका का लक्षण इस प्रकार किया है—

*''पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्यसंयोगचिह्नितः ।*
*सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकिषायिता ॥''(२/७५)*

अर्थात् दूसरी स्त्री से संभोग से चिह्नित होकर प्रिय जिसके पास जाता है, ईर्ष्या से युक्त उस नायिका को 'खण्डिता' कहते हैं ।

परन्तु आचार्य मल्लिनाथ ने पूर्वोक्त खण्डिता नायिका की कल्पना का खण्डन किया है । उनका कथन है कि खण्डिता नायिका के साथ पहले जब रति ही नहीं हुई, फिर रति की थकावट को दूर करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता । इसलिए टीकाकारों का यह कथन ठीक नहीं है ।

**व्याकरण**—**दीर्घीकुर्वन्**—दीर्घ+च्वि+√कृ+शतृ, अदीर्घं दीर्घं कुर्वन् (गति० त०) । **कुजितम्**—कुज् (अव्यक्ते शब्दे)+क्त । **मदकलं**—मदेन कलं तत् (तृ० त०) । **सारसानाम्**—सरसि चरन्ति इति सारसा, सरस्+अण् । **स्फुटितकमलामोदमैत्री कषायः**—स्फुटितानि कमलानि स्फुटितकमलाति (कर्म धा०) तेषाम् आमोदः (ष० त०), तेन मैत्री (तृ० त०), तया कषायः

(तृ० त०), **मैत्री**—मित्र+अण्+ङीप्, **स्फुटित**—स्फुट्+क्त । **हरित**—√हृ, लट् प्र० पु० एकव० । **सुरतग्लानिम्**—शोभनं रतं, सु+√रम्+क्त—**सुरतम्** (गति स०), √ग्लै:+क्तिन्—**ग्लानि,** सुरतस्य ग्लानिम् (ष० त०) । **अङ्गानुकूल:**—अङ्गानाम् अनुकूल: (ष० त०) । **शिप्रावात:**—शिप्राया: वात: (ष० त०) । **प्रियतम**—प्री+क:—प्रिय+तमप् । **प्रार्थनाचाटुकार:**—प्रार्थनायां चाट्रकार: (स० त०), **प्रार्थना**—प्र+√अर्थ+ युज+टाप्, **चाटुकार:**—चाटु+√कृ+अण् ।

प्रस्तुत श्लोक में **पूर्णोपमा** अलङ्कार है । जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/१८) में दिया गया है । □

**प्रसङ्ग**—उज्जयिनी के अपार वैभव का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—

**हारांस्तारांसतरलगुटिकान्[1] कोटिश: शङ्खशुक्ती:**
**शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान् ।**
**दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणां च भङ्गान्**
**संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषा: ॥३३॥**

**अन्वय:**—यस्यां कोटिश: विपणिरचितान् तारान् तरलगुटिकान् हारान् शङ्खशुक्ती: शष्पश्यामान् उन्मयूखप्ररोहान् मरकतमणीन् विद्रुमाणां भङ्गान् च दृष्ट्वा सलिलनिधय: तोयमात्रावशेषा: संलक्ष्यन्ते ॥३३॥

**शब्दार्थ:**—**यस्यां**=जिस (उज्जयिनी) में, **विपणिरचितान्**=बाजारों में (बिक्री के लिए) सजाये गये, **तारान्**=शुद्ध, **तरलगुटिकान्**=हारों के मध्य मणि वाले, **शष्पश्यामान्**=घास के समान हरे, **उन्मयुखप्ररोहान्**=अंकुरों के समान ऊपर को उठी हुई किरणों से चमकती हुई, **मरकतमणीन्**=मरकत मणियों को, **विद्रुमाणां**=मूंगों के, **भङ्गान्**=टुकड़ों को, **सलिलनिधय:**=समुद्र, **तोयमात्रावशेषा:**=केवल जल मात्र शेष रह गया हो, **संलक्ष्यते**=दिखायी देते हैं ।

**अनुवाद**—**जिस (उज्जयिनी) में करोड़ों की संख्या में बाजारों में (बिक्री के लिए) सजाये गये, शुद्ध मध्यमणि वाले हारों को, शङ्ख और सीपियों को, घास के समान हरे, अङ्कुरों के समान ऊपर को उठी हुई किरणों से चमकती हुई मरकत मणियों कों और मूंगों के टुकड़ों को देखकर समुद्र केवल जलमात्र शेष रह गया हो, (ऐसा) दिखायी देता है ॥३३॥**

**संस्कृत-टीका**—यस्याम् उज्जयिन्यां नगर्या कोटिसंख्याकान् पण्यवीथीप्रसारितान् शुद्धान् मध्यभूतमहारत्नान् मुक्तावली: कम्बुमुक्ता स्फोटान् बालतृणश्यामलान् उद्गतसुन्दराङ्कुरान् गारुडरत्नानि प्रवालानां खण्डांश्च विलोक्य समुद्रा: जलमात्रावशिष्टा: उन्नीयन्ते ।

**सञ्जीवनी**—हारानिति । यस्यां विशालायां कोटिशो विपणिषु पण्यवीथिकासु । 'विपणि: पण्यवीथिका' इत्यमर: । रचितान्प्रसारितान् । इदं विशेषणं यथालिङ्गं सर्वत्र सम्बध्यते । ताराञ्छुद्धान्। 'तारो मुक्तादिसंशुद्धौ तरणे शुद्धमौक्तिके' इति विश्व: । तरलगुटिकान्मध्यमणीभूतमहारत्नान् । 'तरलो हारमध्यग:' इत्यमर: । 'पिण्डे मनौ महारत्ने गुटिका बद्धपारदे' इति शब्दार्णवे । हारान्मुक्तावली: । तथा कोटिश: शङ्खाश्च शुक्तीश्च मुक्तास्फोटांश्च । 'मुक्तास्फोट: स्त्रियां शुक्ति: शङ्ख: स्यात्कम्बुरस्त्रियाम्' इत्यमर: । शष्पं बालतृणं तद्वच्छ्यामान् । 'शष्पं बालतृणं घासो यवसं तृणमर्जुनम्' इत्यमर: । उन्मयूखप्ररोहानुद्गतरम्याङ्कुरान्मरकतमणीगारुडरत्नानि । तथा विद्रुमाणां भङ्गान्प्रवालखण्डांश्च दृष्ट्वा सलिलनिधय: समुद्रास्तोयमात्रमवशेषो येषां ते तादृशा: संलक्ष्यन्ते । तथानुमीयन्त इत्यर्थ: । रत्नाकरादप्यतिरिच्यते रत्नसंपद्भिरिति भाव: ॥३३॥

---

१. गुलिकान् ।

**टिप्पणी—तोयमात्रावशेषाः**—समुद्र में जल तो रहता ही है तथा उसमें रत्न भी रहते हैं, परन्तु विशाला के बाजारों में रत्नों के ढेरों को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि समुद्र के सारे रत्न निकालकर इस बाजार में ही रख दिये गये हैं । अब समुद्र में केवल जलमात्र ही शेष बचा है और उसका रत्नाकर नाम अयथार्थ हो गया है ।

**व्याकरण—तरलगुटिकान्**—तरलाः गुटिकाः येषु तान् (बहु०) । **कोटिशः**—कोटि+√शस् । शङ्खशुक्तीः शङ्खाश्च शुक्तयश्च ताः (द्वन्द्व) । **शष्पश्यामान्**—शष्पाणि इव श्यामाः तान् (उपमित) । **मरकतमणीन्**—मरकतानि च ते मणयः तान् (कर्म धा०) । **उन्मयूखप्ररोहान्**—उद्गताः मयूखाः (प्रादि०) त एव प्ररोहा येषां ते (बहु०) तान्, **प्ररोहः**—प्र+√रुह्+घञ् । **दृष्ट्वा**—√दृश+क्त्वा । **विपणिरचितान**—विपणिषु रचिताः (स० त०) तान्, **रचित**—√रच्+क्त । **संलक्ष्यन्ते**—सम्+√लक्ष् आत्मने लट् प्र० पु० बहुव० । **सलिलनिधयः**—सलिलानांनिधयः (ष० त०) । **तोयमात्रावशेषाः**—तोयम् एव तोयमात्रम् (तोय मात्रम्) तत् अवशेषो येषाम् ते (बहु०) ।

प्रस्तुत श्लोक में समृद्ध वस्तुओं का अधिकता से वर्णन होने के कारण उदात्त अलङ्कार है जिसका लक्षण इस प्रकार है—

*लोकातिशयसम्पत्तिवर्णनोदात्तमुच्यते ।*
*यद्वापि प्रस्तुतस्याङ्गं महतां चरितं भवेत् ॥ (सा० द०—१०/११)*

कुछ टीकाकारों ने इस श्लोक को उत्तर मेघ के ११वें श्लोक के पश्चात् रखा है । □

**प्रसङ्ग**—दूसरे देशों से आये हुये व्यक्तियों का उज्जयिनी में रहने वाले व्यक्ति किन-२ कथाओं को सुनाकर मनोरंजन करते हैं, यह बताते हुए कवि कहता है—

**प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे**
**हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः ।**
**अत्रोद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाट्य दर्पा-**
**दित्यागन्तून् रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः ॥३४॥**

**अन्वयः**—अत्र वत्सराज प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं जह्रे, अत्र तस्य एव रज्ञः हैमं तालद्रुमवनम् अभूत् । अत्र नलगिरिः दर्पात् स्तम्भम् उत्पाट्य उद्भ्रान्तः किल इति अभिज्ञो जनः आगन्तून् बन्धून् यत्र रमयति ॥३४॥

**शब्दार्थ—अत्र**—यहां (उज्जयिनी में), **वत्सराजः**=वत्सदेश के राजा उदयन ने, **प्रियदुहितरम्**=प्रिय पुत्री (वासवदत्ता) का, **जह्रे**=अपहरण किया था, **तस्य एव राज्ञः**=उसी राजा (प्रद्योत) का, **हैमम्**=स्वर्णमय, **तालद्रुमवनम्**=तालवृक्षों का वन, **नलगिरिः**=नलगिरि नामक हाथी, **उत्पाट्य**=उखाड़कर, **उद्भ्रान्तः**=घूमता फिरा, **इति अभिज्ञः**=इस प्रकार (पुरानी कथाओं के) जानकार, **आगन्तून्**=बाहर से आये हुये, **रमयति**=मनोरञ्जन करते हैं ।

**अनुवाद—यहाँ (उज्जयिनी में) वत्सदेश के राजा (उदयन) ने प्रद्योत की प्रिय पुत्री (वासवदत्ता) का अपहरण किया था, यहाँ उसी राजा (प्रद्योत) का स्वर्णमय ताल (ताड़) वृक्षों का वन था, यहाँ नलगिरि नामक हाथी मद से खम्बे को उखाड़कर घूमता फिरा । इस प्रकार (पुरानी कथाओं के) जानकार लोग बाहर से आये हुये बन्धुओं का मनोरंजन करते हैं ॥३४॥**

**संस्कृत-टीका—हे** मेघ ! अस्मिन् प्रदेशे वत्सनरेशः उदयनः प्रद्योतनामकस्योज्जयिनीश्वरस्य प्रियपुत्रीं वासवदत्ताम् जहार, अस्मिन् स्थाने प्रद्योतस्य राज्ञः सौवर्ण तालवृक्षविपिनम् आसीत् । अस्मिन् स्थाने च इन्द्रदत्तो नीलगिरिः नामकः प्रद्योतगजो मदात्

आलानम् उद्धृत्य भ्रमण्न कृतवानिति उज्जयिनीस्थः पूर्वोक्तकथाया ज्ञाता पुरुषः देशान्तरादागतान् बान्धवान् विनोदयति ।

**संज्जीवनी**—प्रद्योतस्येति । अत्र प्रदेशे वत्सराजो वत्सदेशाधीश्वर उदयनः । प्रद्योतस्य नामोज्जयिनीनायकस्य राज्ञः प्रियदुहितरं वासवदत्तां जह्रे जहार । अत्र स्थले तस्यैव राज्ञः प्रद्योतस्य हैमं सौवर्णं तालद्रुमवनमभूत् । अत्र नलगिरिं नामेन्द्रदत्तस्तदीयो गजो दर्पान्मदात्स्तम्भमालानमुत्पाट्योद्धृत्योद्भान्त उत्पत्य भ्रमणं कृतवान् । इतीत्थं भूताभिः कथाभिरित्यर्थः । अभिज्ञः पूर्वोक्तकथाभिज्ञः कोविदो जनः आगन्तून्देशान्तरादागतान् । (औणादिकस्तुन्प्रत्ययः ।) बन्धून् यत्र विशालायां रमयति विनोदयति । अत्र भाविकालङ्कारः । तदुक्तम्—'अतीतानागते यत्र प्रत्यक्षत्वेन लक्षिते । अत्यद्भुतार्थकथनाद्भाविकं तदुदहृतम् ।' इति) ॥३४॥

**टिप्पणी—प्रद्योतस्य प्रियदुहितरम्**—यहाँ महाकवि कालिदास ने वत्स देश के राजा उदयन के द्वारा उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की प्रिय पुत्री वासवदत्ता के अपहरण की कथा की ओर संकेत दिया है । वासवदत्ता के अपहरण की कथा विस्तृत रूप में कथासरित्सागर में आयी है ।[१] परन्तु कथासरित्सागर में प्रद्योत को मगध का राजा बनाया गया था जो कि चण्डमहासेन से भिन्न व्यक्ति था । उसकी पुत्री का नाम पद्मावती था,[२] जिसका राजा प्रद्योत ने स्वेच्छया उदयन के साथ विवाह कर दिया था[३] । परन्तु टीकाकारों ने प्रद्योत का ही दूसरा नाम चण्डमहासेन माना है, जो कि अधिक उपयुक्त नहीं जान पड़ता । यह सम्भव है कि प्रद्योतस्य के स्थान पर चण्डस्य ऐसा पाठ रहा हो । श्री सुधीरकुमार गुप्त ने भी यही सम्भावना व्यक्त की है और उन्होंने बताया है कि एक पुराने हस्तलेख में **प्रद्योतस्य** के स्थान पर **चण्डस्य** पाठ मिलता है ।[४] इसी प्रकार स्वर्गीय वामन शास्त्री इस्लामपुरकर ने एक प्राचीन पाण्डुलिपि में **चण्डस्यात्र** पाठ के होने का अपने द्वारा सम्पादित मेघदूत के संस्करण में उल्लेख किया है ।[५] अतः इतना निश्चित है कि उज्जयिनी के राजा का नाम चण्डामहासेन था जिसकी पुत्री वासवदत्ता थी । जिसका अपहरण राजा उदयन ने किया था ।

**नलगिरिः**—प्रद्योत के हाथी का नाम नलगिरि बताया है, जबकि कथासरित्सागर में **नलगिरि** के स्थान पर **नडागिरि** बताया है और यह राजा चण्डमहासेन का हाथी था ।

**व्याकरण—प्रियदुहितरम्**—प्रिया चाऽसौ दुहिता ताम् (कर्मधा०) । **वत्सराजः**—वत्सानां राजा वत्सराजः "राजाऽहःसखिभ्यष्टच्" सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय । राजन् में टच् प्रत्यय लगकर राज शब्द बना । **जह्रे**—√हृ लिट् प्र० पु० एकव० । **हैमम्**—हेम्नो विकारः, हेमन्+अण् । **तालद्रुमवनम्**—तालस्य द्रुमाः (ष० त०) तेषाम् वनम् (ष० त०) । **अभूत्**—√भू+लुङ् प्र० पु० एकव० । **उद्भ्रान्तः**—उद्+√भ्रम्+क्त । **उत्पाट्य**—उत्+√पट्+णिच्+ल्यप् । **दर्पात्**—हेतौ पच्चमी । **आगन्तून्**—आ+√गम्+तुन्=आगन्तु द्वि० व० । **रमयति**—√रम् (ण्यन्त) लट्, प्र० पु० एकव० । **अभिज्ञः**—अभि+√ज्ञा+क ।

प्रस्तुत श्लोक में **भाविक** अलङ्कार है । इसका लक्षण इस प्रकार है—

*अद्भुतस्य पदार्थस्य भूतस्याथ भविष्यतः ।*
*यतप्रत्यक्षायमाणत्वं तद्भाविकमुदाहृतम् ॥ (सा० द० १०/९३)* □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि वह उज्जयिनी के महलों की शोभा देखते हुए अपनी मार्ग की थकान को दूर करे—

---

१. कथासरित्सागर—२/३—५/— ।
२. परिपन्थी च तत्रैकः प्रद्योतो मगधेश्वरः ।
तत्तस्य कन्यकारत्नमस्ति पद्मावतीति यत् ॥ ३/१/१९ ।
३. कथा सरित्सागर । ३/१/२० ।
४. मेघदूत—श्री सुधीरकुमार गुप्त टिप्पणियाँ पृ० ५९ ।
४. मेघदूत—एम० आर० काले द्वारा सम्पादित मेघदूत के ३४वें श्लोक पर टिप्पणी ।
५. [illegible]

जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै[१] –
बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः[२] ।
हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं[३]नयेथाः
लक्ष्मीं पश्यं[४]ल्ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ॥३५॥

**अन्वयः**—जालोद्गीर्णैः केशसंस्कारधूपैः उपचितवपुः बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिः दत्तनृत्योपहारः कुसुमसुरभिषु ललितवनितापादरागाङ्कितेषु हर्म्येषु अस्या लक्ष्मीं पश्यन् अध्वखेदं नयेथाः ॥३५॥

**शब्दार्थ**—**जालोद्गीर्णैः**=जालियों में से निकलते हुए, **केशसंस्कारधूपैः**=(स्त्रियों के) केशों को सुगन्धित करने वाले धूपों (सुगन्धित द्रव्यों के धुँए) से, **उपचितवपुः**=पुष्ट शरीर वाले, **भवनशिखिभिः**=भवनों के मोरों द्वारा, **दत्तनृत्योपहारः**=नृत्य का उपहार दिये गये, **कुसुमसुरभिषु**=पुष्पों से सुगन्धित, **ललितवनितापादरागाङ्कितेषु**=सुन्दरियों के चरणों के लाक्षारस से चिन्हित, हर्म्येषु महलों में, **लक्ष्मीं पश्यन्**=शोभा को देखते हुए, **अध्वखेदम्**=मार्ग की थकान को, **नयेथाः**=दूर करना ।

**अनुवाद**—**जालियों में से निकलते हुए केशों को सुगन्धित करने वाले धूपों (सुगन्धित द्रव्यों के धुँए) से पुष्ट शरीर वाले, मित्र के स्नेह के कारण भवनों के मोरों द्वारा नृत्य का उपहार दिये गये, पुष्पों से सुगन्धित सुन्दरियों के चरणों के लाक्षारस से चिन्हित महलों में इस (उज्जयिनी) के महलों की शोभा को देखते हुए मार्ग की थकान को दूर करना ॥३५॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! तत्रोज्जयिन्यां गवाक्षमार्गनिर्गतैः सीमन्तिनीनां केशवासनाऽर्थैर्गन्धिद्रव्यधूपैः परिपुष्टदेहः सुहृद्स्नेहेन भवनमयूरैः प्रदत्तनृत्योपहारः पुष्पसुगन्धिषु अङ्गनाचरणलाक्षारसचिह्नितेषु धनिकभवनेषु अस्या उज्जयिन्याः शोभां विलोकयन् मार्गपरिश्रमं अपनय ।

**सञ्जीवनी**—जालोद्गीर्णैरिति । जालोद्गीर्णैर्गवाक्षमार्गनिर्गतैः । 'जालं गवाक्ष आनाये जालके कटपे गणे' इति यादवः । केशसंस्कारधूपैः वनिताकेशवासनार्थैर्गन्धिद्रव्यधूपैरित्यर्थः । (अत्र संस्कारधूपयोस्तादर्थ्येऽपि यूपदार्वादिवत्प्रकृतिविकारत्वाभवादश्वघासादिवत्षष्ठीसमासो न चतुर्थी समासः ।) उपचितवपुः परिपुष्टशरीरः बन्धौ बन्धुरिति पर प्रीत्या भवनशिखिभिगृहमयूरैर्दत्तो नृत्यमेवोपहार उपायनं यस्मै स तथोक्तः । 'उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा' इत्यमरः । कुसुमैः सुगन्धिषु । ललितवनिताः सुन्दरस्त्रियः । 'ललितं त्रिषु सुन्दरम्' इति शब्दार्णवे । तासां पादरागेण लाक्षारसेनाङ्कितेषु चिह्नितेषु हर्म्येषु धनिकभवनेष्वस्याः उज्जयिन्याः लक्ष्मीं पश्यन्नध्वगमनेन खेदं क्लेशं नयेथाः अपनय ॥३५॥

**टिप्पणी**—**केशसंस्कारधूपैः**—कुछ स्थलों पर **केशसंस्कारधूमैः** यह पाठ भी मिलता है । प्राचीन काल में स्त्रियाँ सिर धोने के बाद केशों को सुगन्धित द्रव्यों के धुएँ से सुखाती थीं, इसी का वर्णन यहाँ इस पद के द्वारा किया गया है ।

**बन्धुप्रीत्या**—मेघ और मोर की मैत्री स्वाभाविक है, इसी कारण मोरों को मेघ का बन्धु कहा है । उत्तरमेघ १९ में भी **नीलकण्ठः सुहृद्** लिखकर मोर को मेघ का मित्र कहा है । मेघ को देखकर मयूर नाच उठते हैं ।

**अध्वखेदं नयेथाः**—कुछ स्थलों पर **अध्वखिन्नान्तरात्मा** यह पाठ मिलता है । इसका

---

१. ०धूमैः ।
२. ०नृत्तोपचारः ।
३. अध्वखिन्नान्तरात्मा ।
४. मुक्त्वाखेदं खेदं नीत्वा, त्यक्त्वा खेदं, नीत्वा खेदं, रात्रिं नीत्वा । मुक्त्वा नडागिरिं सोऽपि तां दृष्ट्वैव न युध्यते ॥ कथा० २/५॥

अर्थ है—मार्ग से जिसका अन्तरात्मा थक गया है । यह पाठ मानने पर प्रकृत श्लोक में क्रिया पद न होने के कारण इसका तथा आगे वाले श्लोक (भर्तुः कण्ठ०) का अर्थ इकट्ठा ही मानते हैं ।

**लक्ष्मीं पश्यन्**—दस पद के सथानं पर अनेक पाठान्तर मिलते हैं—बल्लभ ने **मुक्त्वा खेदं** पाठ स्वीकार किया है, जबकि विल्सन महोदय ने **त्यक्त्वा खेदं** यह पाठ माना है । पाठक महोदय ने **नीत्वा खेदं** पाठ माना है । सारोद्धारिणी में **खेदं नीत्वा** पाठ है ।

**व्याकरण—जालोद्गीर्णैः**—जालेभ्यः उद्गीर्णाः तैः (प० त०), **उद्गीर्णः**—उद्+√गॄ+क्त, तृ० बहुव० । **उपचितवपुः**—उपचितं वपुः यस्य सः (ब० व्री०), उप+√क्त। **केशसंस्कारधूपैः**—केशानां संस्कारः, तस्य धूपाः (ष० त०) तैः, **संस्कारः**—सम्+√कृ+घञ् । **बन्धुप्रीत्या**—बन्धोः प्रीतिः तया (ष० त०) तैः, **प्रीतिः**—प्री+क्तिन् । **भवनशिखिभिः**—भवनानां शिखिनः (ष० त०) तैः । **दत्तनृत्योपहारः**—दत्तः नृत्यमेव उपहारः यस्मै सः (ब० व्री०), **दत्तः**—√दा+क्त, **उपहारः**—उप+√हृ+घञ् । **कुसुमसुरभिः**—कुसुमैः सुरभीनि (तृ० त०) तेषु । **अध्वखेदम्**—अध्वना खेदः (तृ० त०) तम्, **खेद**—√खिद्+घञ् । **नयेथाः**—√नी, विधिलिङ्, म० पु० एकव० । **लक्ष्मीं**=लक्ष्+ई+(मुट्) । **पश्यन्**—√दृश (पश्य)+शतृ । **ललितवनितापादरागाङ्कितेषु**—ललिताश्च ताः वनिताः (कर्मधा०) तासां पादरागः (ष० त०) तेन अङ्कितानि (तृ० त०) तेषु, **राग**—√रञ्ज+घञ्।

प्रस्तुत श्लोक में **उदात्त** अलङ्कार है । इसका लक्षण (पूर्वमेघ /३३) में दिया गया है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को निर्देश देता है कि उज्जयिनी नगरी में स्थित शिव के मन्दिर में अवश्य जाना—

**भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः**
**पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य[१] ।**
**धूतोद्यानं कुवलयजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-**
**स्तोयक्रीडानिरत[२] युवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः ॥३६॥**

**अन्वयः**—भर्तुः कण्ठच्छविः इति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः त्रिभुवनगुरोः चण्डीश्वरस्य पुण्यं धाम यायाः (यत्) कुवलयरजोगन्धिभिः तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैः गन्धवत्या मरुद्भिः धूतोद्यानम् (अस्ति) ॥३६॥

**शब्दार्थ—भर्तुः**—स्वामी के, शिव के, **कण्ठच्छविः**—कण्ठ के समान कान्ति वाला, **वीक्ष्यमाणः**=देखा जाता हुआ, **त्रिभुवनगुरोः**=तीनों लोकों के गुरु, **चण्डीश्वरस्य**=पार्वती के पति शिव के, **पुण्यं धाम**=पवित्र स्थान मन्दिर, **यायाः**=जाना, **कुवलयरजोगन्धिभिः**=कमलपराग से सुगन्धित, **तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैः**=जलक्रीड़ा में लगी हुई युवतियों के स्नान से सुवासित, **गन्धवत्या**=गन्धवती नदी के, **मरुद्भिः**=वायुओं से, **धूतोद्यानम्**=कम्पित उद्यान वाला।

**अनुवाद—(यह मेघ हमारे) स्वामी (शिव) के कण्ठ के समान कान्ति वाला है, इस विचार से गणों द्वारा आदरपूर्वक देखा जाता हुआ, तीनों लोकों के गुरु, पार्वती के पति शिव के पवित्र स्थान (मन्दिर) जाना, (जो) कमल पराग से सुगन्धित (तथा) जल-क्रीड़ा में लगी हुई युवतियों के स्नान से सुवासित गन्धवन्ती नदी के वायुओं से कम्पित उद्यान वाला है ॥३६॥**

**संस्कृत-टीका**—अयं मेघः अस्माकम् स्वामिनः शिवस्य कण्ठच्छविः अस्मात् हेतोः प्रमथादिभिः सेवकैः ससम्मानम् अवलोक्यमानः सन् त्वं त्रैलोक्यनाथस्य महाकालस्य शिवस्य पावनं स्थानं मन्दिरम् इत्यर्थः गच्छः चत् स्थानम् उत्पलपरागसौरभयुक्तैः जलक्रीडाव्यापृततरुणीस्नानीयद्रव्यसुगन्धितैः गन्धवत्या नद्या वातैः कम्पितोपवनम् अस्ति ।

१. चण्डेश्वरस्य ।
२. स्तोयक्रीडानिरत ।

**सञ्जीवनी**—भर्तुरिति । भर्तुः स्वामिनो नीलकण्ठस्य भगवतः कण्ठस्येव छविर्यस्य कण्ठच्छविरिति हेतोर्गणैः प्रमथैः । 'गणस्तु गणनायां स्याद्गणेशे प्रथमे चये' इति शब्दार्णवे सादरं यथा तथा वीक्ष्यमाणः सन् । प्रियवस्तुसादृश्यादतिप्रियत्वं भवेदिति भावः । त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रिभुवनम् । ('तद्धितार्थ–' इत्यादिना समासः ।) तस्य गुरोस्त्रैलोक्यनाथस्य चण्डीश्वरस्य कात्यायनीवल्लभस्य पुण्यं पावनं धामं महाकालाख्यं स्थान यायाः गच्छेः । (विध्यर्थे लिङ्) श्रेयस्करत्वात्सर्वथा यातव्यमिति भावः । (उक्तं च स्कान्दे—'आकाशे तारकलिङ्गं पाताले हाटकेश्वरम् । मर्त्यलोके महाकालं दृष्ट्वा काममवाप्नुयात् ।' इति ।) न केवलं मुक्तिस्थानमिदं किन्तु विलासस्थानमपीत्याह—कुवलयरजोगन्धिभिरुत्पलपरागगन्धवद्भिस्तोयक्रीडासु निरतानामासक्तानां युवतीनां स्नानं स्नानीयं चन्दनादि । (करणे ल्युट् ।) 'स्नानीयेऽभिषवे स्नानम्' इति यादवः । तेन् तिक्तैः सुरभिः 'कटुतिक्तकषायास्तु सौरभे च प्रकीर्तिताः' इति हलायुधः । सौगन्ध्यातिशयार्थः विशेषणद्वयम् । गन्धवत्याः नामा नद्यास्तत्रत्यायाः मरुद्भिर्मारुतैर्धूतोद्यानं कम्पिताक्रीडमिति धाम्नो विशेषणम् ॥३६॥

**टिप्पणी—कण्ठच्छविः**—कण्ठ के समान कान्ति वाला, यह विशेषण मेघ के लिये आया है । कहने का आशय यह है कि क्षीर सागर के मंथन के समय कालकूट नामक विष भी निकला था, जिसका पान शिव ने किया था । परिणामतः उनका कण्ठ विष के प्रभाव से नीला पड़ गया था । इसी कारण उन्हें नीलकण्ठ भी कहा जाता है ।

यहाँ महाकवि कालिदास ने एक कथा की ओर संकेत किया है—''शिव के द्वारा विष पान की कथा'' । यह कथा समुद्र मंथन की कथा के साथ जुड़ी हुई है । यह कथा वाल्मीकि रामायण में बालकाण्ड के ४५वें अध्याय में तथा पुराणों में भी अनेक स्थानों पर आयी है ।

**चण्डीश्वरस्य पुण्यं धाम**—यह कहने का अभिप्राय उज्जयिनी पुरी में स्थित महाकाल मन्दिर से है । कहीं-कहीं चण्डेश्वरस्य पाठ भी मिलता है । इसका अर्थ है—चण्डस्य ईश्वरः अर्थात् चण्ड नाम के गण स्वामी । यक्ष का मेघ से आग्रह है कि वह उज्जयिनी में स्थित शिव के महाकाल मन्दिर में अवश्य जाये । इससे कवि की शिव के प्रति श्रद्धा स्पष्ट होती है तथा महाकाल मन्दिर की श्रेष्ठता भी सिद्ध होती है । महाकाल को देखकर मुक्ति मिल जाती है, ऐसा भी प्रसिद्ध है—

*आकाशे तारकं लिङ्गं पाताले हाटकेश्वरम् ।*
*मृत्युलोके महाकालं दृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नुयात् ॥*

**गन्धवत्याः**—गन्धवती नामक नदी । यह मालव देश की एक नदी है, जो उज्जयिनी के समीप बहती है तथा शिप्रा नदी से मिलती है ।

**व्याकरण—भर्तुः**—√भृ+तृच्, ष० एकव० । **कण्ठच्छविः**—कण्ठस्य छविरिव छविर्यस्य सः (बहु०) । **सादरम्**—आदरेण सहितं तथा (तुल्ययोग० बहु०) । **वीक्ष्यमाणः**—वि+ईक्ष्+यक् (य)+मुक् (म्)+√शानच् । **यायाः**—√या+विधिलिङ्, म० पु० एकव० । **त्रिभुवनगुरोः**—त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनम् (द्विगु०) तस्य गुरुः (ष० त०) तस्य । **चण्डीश्वरस्य**—चण्ड्याः ईश्वरः (ष० त०) । **धूतोद्यानम्**—धूतानि उद्यानि यस्मिन् तत् (बहु०), **धूत**—धूञ्+क्त । **कुवलयरजोगन्धिभिः**—कुवलयानां रजः तस्य गन्धः (ष० त०) स एषामस्तीति कुवलयरजोगन्धिनः कुवलयरजो गन्ध+इति, तैः । **गन्धवत्याः**—गन्ध+मतुप्+ङीप्, ष० एकव० । **तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैः**—तोये क्रीडा, तस्यां निरताः (स० त०), तादृशः युवतयः (कर्मधा०) तासां स्नानम् (ष० त०), तेन् तिक्ताः (तृ० त०) तैः ।

प्रस्तुत श्लोक में प्रसिद्ध नील पदार्थ मेघ की उपमेय के रूप में कल्पना से **प्रतीप** अलङ्कार है, जिसका लक्षण इस प्रकार है—

*प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम् ।*
*निष्फलत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते ॥ (सा० द० १०/७)*

शङ्कर तथा मेघ की उत्कृष्टता का वर्णन होने से **उदात्त** अलङ्कार है । इसका लक्षण (पूर्वमेघ/३३) पर दिया है ।

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से निवेदन करता है कि तुम वहाँ उज्जयिनी के महाकाल मन्दिर में सन्ध्याकालीन पूजा में सम्मिलित होकर गर्जन करके पुण्यफल प्राप्त करना—

**अप्यन्यस्मिञ्जलधर महाकालमासाद्य काले**
**स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति[1] भानुः ।**
**कुर्वन्सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-**
**मामन्द्राणां[2] फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥३७॥**

**अन्वयः**—हे जलधरः ! महाकालम् अन्यस्मिन् काले अपि आसाद्य यावत् भानुः नयनविषयम् अत्येति (तावत्) ते स्थातव्यम् । शूलिनः श्लाघनीयां सन्ध्याबलिपटहतां कुर्वन् आमन्द्राणां गर्जितानाम् अविकलं फलं लप्स्यसे ॥३७॥

**शब्दार्थ**—**जलधर**=मेघ, **महाकालम्**=महाकाल मन्दिर में, **अन्यस्मिन् काले अपि**=अन्य समय में भी, **आसाद्य**=पहुँचकर, **यावत्**=जब तक, **नयनविषयम्**=नेत्रों के विषय को (दृष्टिपथ को), **अत्येति**=पार करता है, **स्थातव्यम्**=ठहरना चाहिये, **श्लाघनीयाम्**=प्रशंसनीय, **शूलिनः**=शूलधारी शिव की, **सन्ध्याबलिपटहताम्**=सन्ध्याकालीन पूजा में नगाड़े का काम, **कुर्वन्**=करते हुए, **आमन्द्राणाम्**=गम्भीर, **गर्जिताम्**=गर्जनों के, **अविकलम्**=पूर्ण, **लप्स्यसे**=प्राप्त करोगे ।

**अनुवाद**—**हे मेघ ! महाकाल मन्दिर में अन्य समय में भी पहुँचकर जब तक सूर्य नेत्रों के विषय को पार करता है (अस्त होता है) तब तक ठहरना चाहिये । शूलधारी शिव की सन्ध्याकालीन प्रशंसनीय पूजा में नगाड़े का काम करते हुए गम्भीर गर्जनों के पूर्ण फल को प्राप्त करोगे ॥३७॥**

**संस्कृत टीका**—हे मेघ ! चण्डीश्वरस्थानं सन्ध्यातिरिक्तायामपि वेलायां प्राप्य त्वं सूर्यास्तकालपर्यन्तं प्रतीक्षस्व । शूलधरिणः शिवस्य प्रशंसनीयां संध्याकालीनपूजापटहताम् सम्पादयन् त्वं गम्भीराणां गर्जनानां सकलं फलं प्राप्स्यसि ।

**सञ्जीवनी**—अपीति । हे जलधर ! महाकालं नाम पूर्वोक्तं चण्डीश्वरस्थानमन्यस्मिन्सन्ध्यातिरिक्तेऽपि काल आसाद्य प्राप्य ते तव स्थातव्यम् । त्वया स्थातव्यमित्यर्थः । ('कृत्यानां कर्तरि वा' इति षष्ठी) यावद्यावता कालेन भानुः सूर्यो नयनविषयं दृष्टिपथमत्येत्यतिक्रामति । अस्तमयकालपर्यन्तं स्थातव्यमित्यर्थः । यावदित्येतदवधारणार्थे । 'यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे' इत्यमरः । किमिर्थमत आह कुर्वन्निति । श्लाघनीयां प्रशस्यां शूलिनः शिवस्य संध्यायां बलिः पूजा तत्र पटहतां कुर्वन्सम्पादयन् आमन्द्राणामीषद्गम्भीराणां गर्जितानामविकलमखण्डं फलं लप्स्यसे प्राप्स्यसि । (लभेः कर्तरि लृट् ।) महाकालनाथबलिपटहत्वेन विनियोगात्ते गर्जितसाफल्यं स्यादित्यर्थः ॥३७॥

**टिप्पणी**—**महाकालम्**—उज्जयिनी में स्थित एक मन्दिर जिसमें स्थापित शिवलिङ्ग १२ ज्योतिर्लिङ्गों में से एक है । शिव पुराण में कहा गया है—

*सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।*
*उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारं परमेश्वरम् ॥*

**सन्ध्याबलिपटहताम्**—सन्ध्या-समय तक वहीं महाकाल मन्दिर में रुके रहना तथा सन्ध्या के समय होने वाली शिव की पूजा में सम्मिलित होकर गर्जन करके नगाड़े का कार्य करना, जिसमें तुम गर्जन के विशेष फल को प्राप्त करोगे ।

**व्याकरण**—**जलधर**—धरतीति धरः √धृ+अच्, जलस्य धरः जलधरः (ष० त०) । **महाकालम्**—महान् च असौ कालः (कर्मधा०) तम् । **आसाद्य**—आ+√सद्+णिच्+क्त्वा । **स्थातव्यम्**—√स्था+तव्यत् । **नयनविषयम्**—नयनयोः विषयः (ष० त०) तम् । **अत्येति**—अति+

१. अभ्येति ।
२. आमन्त्राणाम् ।

इण्+लट्, प्र० पु० एकव० । **कुर्वन्**—√कृ+शतृ । **सन्ध्याबलिपटहताम्**—सन्ध्यायां ब (स० त०) तत्र पटहता (सुप्सुपा स०) ताम्, पटहस्य भवः, **पटहता**—पटह+तल्+टाप्, सन्ध्या—सन्ध्यै+अङ्+टाप्, **शूलिनः**—शूलम् अस्य अस्ति इति शूल+इनि, प० एकव० **श्लाघनीयाम्**—श्लाघ्+अनीयर्+टाप्, द्वि० वि० एकव । **आमन्द्राणाम्**—आ+ईषत् मन्द्राणि (प्रा० स०) तेषाम् । **अविकलम्**—विगता कला यस्मात्तत् विकलं (बहु०), न विकलम् तत् (नञ् ०) । **लप्स्यसे**—लभ्+लृट्, म० पु० एकव० । **गर्जितानाम्**—√गर्ज्+क्त भावे—गर्जितानि तेषाम्

प्रस्तुत श्लोक में पूर्वार्द्ध कथित वाक्यार्थ के प्रति उत्तरार्द्ध कथित वाक्यार्थ हेतु है । अतः **काव्यलिङ्ग** अलङ्कार है, जिसका लक्षण इस प्रकार है—

*"हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते ।"* (सा० द० १०/६२ के बाद)

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि तुम वहाँ महाकाल मन्दिर में नृत्य करने में लगी हुई वेश्याओं के कटाक्षपात का आनन्द प्राप्त करोगे—

**पादन्यासैः[1] क्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतै-**
**[2]रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः[3] ।**
**वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान्प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू-**
**नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान् ॥३८॥**

**अन्वयः**—तत्र पादन्यासैः क्वणितरशनाः लीलावधूतैः रत्नच्छायाखचितवलिभिः चामरैः क्लान्तहस्ताः वेश्याः त्वत्तः नखपदसुखन् वर्षाग्रबिन्दून् पाप्य त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् आमोक्ष्यन्ते ॥३८॥

**शब्दार्थ**—**तत्र**=वहाँ (सन्ध्या-समय में), **पादन्यासैः**=पैरों की गति के साथ, **क्वणितरशनाः**=बजती हुई करधनियों वाली, **लीलावधूतैः**=विलास पूर्वक डुलाये हुए, **रत्नच्छायाखचितवलिभिः**=रत्नों की कान्तियों से विभूषित दण्डों वाले, **चामरैः**=चंवरों से, **क्लान्तहस्ताः**=थके हुए हाथें वाली, **नखपदसुखान्**=नखक्षतों को सुख देने वाली, **वर्षाग्रबिन्दून्**=वर्षा की प्रथम बूँदों को, **मधुकरश्रेणिदीर्घान्**—भ्रमरों की पंक्तियों के समान लम्बे, **कटाक्षान्**=कटाक्षों को, **आमोक्ष्यन्ते**=छोड़ेंगी ।

**अनुवाद—वहाँ (सन्ध्या-समय में) पैरों की गति के साथ बजती हुई करधनियों वाली, विलासपूर्वक डुलाये हुए, रत्नों की कान्तियों से विभूषित दण्डों वाले चँवरों से थके हुए हाथों वाली वेश्यायें तुमसे नखक्षतों को सुख देने वाली वर्षा की प्रथम बूँदों को प्राप्त करके तुम पर भ्रमरों की पंक्तियों के समान लम्बे कटाक्षों को छोड़ेंगी ॥३८॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! तत्रोज्जयिन्यां सन्ध्यासमये चरणनिक्षेपैः शब्दायमानकाञ्च्यः विलासकम्पितैः कङ्कणमणिकान्तिरूषितदण्डैः प्रकीर्णकैः वालव्यजनैरित्यर्थः खिन्नकराः गणिकाः तव सम्पर्कात् नखक्षतसुखकरान् वर्षाप्रथमबिन्दून् प्राप्य त्वयि भ्रमरपङ्क्तिलम्बायमानान् अपाङ्गान् पातयिष्यन्ति ।

**सञ्जीवनी**—पादन्यासैरिति । तत्र संध्याकाले पादन्यासैश्चरणनिक्षेपैर्नृत्याङ्गैः क्वणिताः शब्दायमाना रशना यासां तास्तथोक्ताः । (क्वणतेरकर्मकत्वात् 'गत्यर्थाकर्मक—' इत्यादिना कर्तरि क्तः ।) लीलया विलासेनावधूतैः कम्पितैः रत्नानां कङ्कणमणीनां छायया कान्त्या खचिता रूषिता वलयश्चामरदण्डा येषां तैः । 'वलिश्चामरदण्डे च जराविश्लथचर्मणि' इति विश्वः । चामरैः

१. पादन्यासक्वणित० ।
२. रचित ।
३. कान्त ।

बालव्यजनैः क्लान्तहस्ताः । एतेन दैशिकं नृत्यं सूचितम् । (तदुक्तं नृत्यसर्वस्वे—'खड्गकन्दुकवस्त्रादिदण्डिकाचामरस्रजः । वीणां च धृत्वा यत्कुर्युर्नृत्यं तद् देशिकं भवेत् ।' इति)। वेश्या महाकालनाथमुपेत्य नृत्यन्त्यो गणिकास्त्वत्तो नखपदेषु सुखान् सुखकरान् । 'सुखहेतौ सुखे सुखम्' इति शब्दार्णवे । वर्षस्याग्रबिन्दून्प्रथमबिन्दून्प्राप्य त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षानपाङ्गानामोक्ष्यन्ते । 'परैरुपकृताः सन्तः सद्यः प्रत्युपकुर्वते' इति भावः । कामिनीदर्शनीयत्वलक्षणं शिवोपासनाफलं सद्यो लप्स्यस इति ध्वनिः ॥३८॥

**टिप्पणी—पादन्यासैः**—कुछ स्थलों पर इसके स्थान पर पादन्यास यह पाठ भी मिलता है, परन्तु इससे अर्थ में अन्तर नहीं आता ।

**रत्नच्छायाखचितवलिभिः**—नखपद से अभिप्राय प्रेमियों द्वारा प्रेमिकाओं के शरीर पर किये गये नाखूनों के घावों से है । आचार्य मल्लिनाथ ने भी यही अर्थ किया है । परन्तु कुछ टीकाकारों ने इसका अर्थ नखपदवत् सुखान् अर्थात् नख-क्षत के समान सुख देने वाला किया है । देखिये—

*नखपदवत्सुखजनकान् अथवा नखपदानां सुखान् ।* *(सारोद्धारिणी टीका)*

कामशास्त्र के अनुसार भी रतिक्रीड़ा के दश बाह्य व्यापारों में नखक्षत भी एक काम-व्यापार है, देखिये—

*आलिङ्गश्चुम्बनं वंशो भगस्थाने विमर्दनम्,*
*नखदानं च घाताश्च ग्रहणं कुचकेशयोः ।*
*कर्णे च जल्पनं हास्यं तथा जिह्वाधरग्रहः,*
*एतद्दश प्रभेदं हि रतं बाह्यं प्रचक्ष्यते ॥ (स्मरदीपिका में)*

**व्याकरण—पादन्यासैः**—पादानां न्यासाः (ष० त०) तैः, **न्यासः**—नि+√अस्+घञ्। **क्वणितरशनाः**—क्वणिताः रशनाः यासाम् ताः (बहु०), **क्वणिता**—√क्वण्+क्त+टाप् । **लीलावधूतैः**—लीलया अवधूतानि (तृ० त०) तैः, **अवधूतैः**—अव+√धूञ्+क्त (तृ० बहुव०) । **रत्नच्छायाखचितवलिभिः**—रत्नानाम् छाया (ष० त०) ताभिः खचिताः वलयो येषां तानि (बहु०) तैः, **खचिता**—खच्+क्त (कर्मणि) । **क्लान्तहस्ताः**—क्लान्ताः हस्ताः यासाम् ताः (बहु०), **क्लान्तः**—क्लम्+क्त । **वेश्याः**—वेशे भवाः, **वेश्याः**—वेश+यत्+टाप् । **त्वत्तः**—त्वत्+तसिल् । **नखपदसुखान्**—नखानां पदानि (ष० त०), तेषु सुखान् (स० त०) । **प्राप्य**—प्र+आप्+क्त्वा । **वर्षाग्रबिन्दून्**—वर्षायाः अग्रबिन्दवः (ष० त०) तान् । **आमोक्ष्यन्ते**—आ+√मुच्+लृट् (प्र० पु० बहुव०) । **मधुकरश्रेणिदीर्घान्**—मधुकराणां श्रेणिः (ष० त०), तद्वत् दीर्घान् (उपमित स०), **मधुकराः**—मधु+√कृ+ट, **कटाक्षान्**—कट्+√अक्ष्+अण्, तान् ।

प्रस्तुत श्लोक में '**मधुकरश्रेणिदीर्घान्**' इस पद में लुप्तोपमा है, जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/२) में दिया गया है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि वहाँ महाकाल मन्दिर में शिव के ताण्डव नृत्य के समय तुम स्वयं हस्तिचर्म का काम देना—

**पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः**
**सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः ।**
**नृत्यारम्भे[1] हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां**
**शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ॥३९॥**

---

१. नृत्तारम्भे

**अन्वय:**—पश्चात् पशुपतेः नृत्यारम्भे प्रतिनवजपापुष्परक्तं सान्ध्यं तेजः दधानः उच्चैः भुजतरुवनं मण्डलेन अभीलीनः भवान्या शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिः (त्वं तस्य) आर्द्रनागाजिनेच्छां हर ॥३९॥

**शब्दार्थ**—**पश्चात्**=सन्ध्या की पूजा के बाद, **पशुपतेः**=शिव के, **नृत्यारम्भे**=नृत्य के आरम्भ में, **प्रतिनवजपापुष्परक्तम्**=ताजे जपा के पुष्प के समान लाल, **दधानः**=धारण करते हुए, **भुजतरुवनम्**=भुजा रूपी वृक्षों के बन को, **मण्डलेन**=मण्डलाकर रूप में, **अभिलीनः**=व्याप्त करके, **भवान्या**=पार्वती द्वारा, **शान्तोद्वेगस्तिमितनयनम्**=भय रहित निश्चल नयनों से, **दृष्टभक्तिः**=देखी गयी भक्ति वाले, **आर्द्रनागाजिनेच्छाम्**=गीले हस्ति चर्म की इच्छा को, **हर**=दूर कर देना।

**अनुवाद—सन्ध्या की पूजा के बाद शिव के (ताण्डव) नृत्य के आरम्भ में, ताजे जपा के पुष्प के समान लाल सन्ध्याकालीन कान्ति को धरण करते हुए ऊँचे भुजा रूपी वृक्षों के बन को मण्डलाकार रूप में व्याप्त करके, पार्वती द्वारा भय रहित निश्चल नेत्रों से देखी गयी भक्ति वाले (तुम, उस शिव की) गीले हस्ति-चर्म की इच्छा को दूर कर देना ॥३९॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! सन्ध्यापूजानन्तरं शिवस्य ताण्डवोपक्रमे नूतनजपाकुसुमारुणं सायङ्कालिकं प्रकाशं धारयन् उन्नतं बाहुवृक्षविपिनं मण्डलाकारेण अभिव्याप्तः सन् पार्वत्या विगतभयनिश्चललोचनं यथा स्यात् तथा अवलोकितभक्तिः सन् त्वम् शिवस्य शोणितक्लिन्नगजचर्माभिलाषं निवर्तय ।

**सञ्जीवनी**—पश्चादिति । पश्चात्सन्ध्याबल्यनन्तरं पशुपतेः शिवस्य नृत्तारम्भे ताण्डवप्रारम्भे प्रतिनवजपापुष्परक्तं प्रत्यग्रजपाकुसुमारुणं सन्ध्यायां भवं सान्ध्यं तेजो दधानः । उच्चैरुन्नतं भुजा एव तरवस्तेषां वनं मण्डलेन मण्डलाकारेणभिलीनोऽभिव्याप्तः सन् । (कर्तरि क्तः । भवान्या भवपत्न्या ।) शान्त उद्वेगो गजाजिनदर्शनभयं ययोस्ते अत एव स्तिमिते निश्चले नयने यस्मिन् कर्मणि तत्तथोक्तम्। 'उद्वेगस्त्वरिते क्लेशे भये मन्थरगामिनि' इति शब्दार्णवे । भक्तिः पूज्येष्वनुरागः (भावार्थे क्तिन्प्रत्ययः ।) दृष्टा भक्तिर्यस्य स दृष्टभक्तिः सन् । पशुपतेरार्द्रं शोणितार्द्रं यन्नागाजिनं गजचर्म । 'अजिनं चर्म कृत्तिः स्त्री' इत्यमरः । तत्रेच्छां हर निवर्तय । त्वमेव तत्स्थाने भवेत्यर्थः। गजासुरमर्दनानन्तरं भगवान्महादेवस्तदीयमार्द्राजिनं भुजमण्डिलेन विभ्रत्ताण्डवं चकारेति प्रसिद्धिः ।

(दृष्टभक्तिरिति कथं रूपसिद्धिः । दृष्टशब्दस्य 'स्त्रियाः पुंवत् इत्यादिना पुंवद्भावस्य दुर्घटत्वादपूर्णीप्रियादिष्विति निषेधात् । भक्तिशब्दस्य प्रियादिषु पाठादिति । तदेतच्चोद्यं दृढभक्तिरिति शब्दमाश्रित्य प्रतिविहितं गणव्याख्याने दृढं भक्तिरस्येति नपुंसकं पूर्वपदम् । अदादर्यनिवृत्तिपरत्वे दृढशब्दाल्लिङ्गविशेषस्यानुपकारित्वात्स्त्रीत्वमविवक्षितमिति । भोजराजस्तु—'भक्तौ च कर्मसाधनायामित्यनेन सूत्रेण भज्यते सेव्यत इति कर्मार्थत्वे भवानीभक्तिरित्यादि भवति । भावसाधनायां तु स्थिर भक्तिर्भवान्यामित्यादि भवति' इत्याह । तदेतत्सर्वं सम्यग्विवेचितं रघुवंशसञ्जीविन्यां 'दृढभक्तिरिति ज्येष्ठे' इत्यत्र । तस्माद् दृष्टभक्तिरित्यत्रानि मतभेदेन पूर्वपदस्य स्त्रीत्वेन नपुंसकत्वेन च रूपसिद्धिरस्तीति स्थितम्) ॥३९॥

**टिप्पणी—नृत्यारम्भे**—सृष्टि संहार के समय शिव द्वारा किया जाने वाला नृत्य प्रसिद्ध है, उसे ताण्डव नृत्य कहते हैं । नाट्यशास्त्रियों ने नृत्य और नृत्त में अन्तर किया है । दशरूपक में लिखा है— *"अन्यद् भावाश्रयं नृत्यं नृत्तं ताललयाश्रयम्"* अर्थात् भाव पर आश्रित अङ्गसञ्चालन नृत्य कहलाता है तथा ताल व लय पर आश्रित हस्त-पाद के सञ्चालन को नृत्त कहते हैं ।

**पशुपतेः**—पशु के स्वामी । यहाँ पशु से अभिप्राय सामान्य पशु से नहीं है, अपितु शैव दर्शन के अनुसार पदार्थ के तीन भेद हैं—पशु, पाश और पति । अविद्या रूपी पाश से बद्ध जीवात्मा को पशु, पाश के समान बन्धन करने के कारण अविद्या को पाश तथा अविद्यापाश से मुक्त शिव को पति कहते हैं ।

**आर्द्रनागाजिनेच्छाम्**—इस पद का प्रयोग कर कालिदास ने शिव पुराण की ओर सङ्केत किया है । गजासुर (गज का रूप धारण करने वाले असुर) को मार कर शिव ने

रक्त से सने हुए चर्म को भुजाओं में धारण करते हुए ताण्डव नृत्य किया था। यहाँ पर यक्ष मेघ से कहता है कि तुम गजासुर की गीली चर्म बनकर शिव की इच्छा पूर्ति करना; क्योंकि गजासुर के गीले चर्म को शिव को ओढ़े हुए देख कर पार्वती जी डर जाती हैं और वह ताण्डव नृत्य भी नहीं देख सकतीं। यदि तुम गीले चर्म कसा स्थान ले लो तो पार्वती जी भी निर्भय होकर ताण्डव नृत्य देख सकेंगी। शिवपुराण में यह कथा रुद्र सं०—युद्ध खण्ड अ० ५७ में आयी है। कुमारसम्भव ५/६७-६८ में भी कालिदास ने इसी प्रकार का सङ्केत दिया है।

**व्याकरण—भुजतरुवनम्**—भुजा एव तरवः (ष० त०)। **अभिलीनः**—अभि +√ली+क्त, **सान्ध्यम्**—सन्ध्यायां भवं, सान्ध्यम्, सन्ध्या+अण्। **प्रतिनवजपापुष्परक्तम्**—प्रतिनवानि जपापुष्पाणि (कर्मधा०) तद्वत् रक्तम् (उपमित स०)। **दधानः**—√धा+शानच्। **नृत्यारम्भे**—नृत्यस्य आरम्भे (ष० त०)। **हर**—√हृ+लोट् म० प्र० एकव०। **पशुपतेः**—पशूनां पति (ष० त०) तस्य। **आर्द्रनागाजिनेच्छाम्**—नागस्य अजिनम् (ष० त०), आर्द्रम् च तत् आर्द्र नागाजिनम् (कर्मधा०), तस्य इच्छा (ष० त०) ताम्। **शान्तोद्वेगस्तिमितनयनम्**—शान्त उद्वेगः (कर्मधा०) तेन स्तिमिते नयने यस्मिन् कर्मणि तत् (बहु०), **शान्तः**—शम्+क्त (कर्तरि), **उद्वेगः**—उद्+विज्+घञ्। **दृष्टभक्तिः**—दृष्टा भक्ति यस्य सः (बहु०), दृश्+क्त+टाप्—**दृष्टा**। **भवान्या**—भवस्य स्त्री भवानी, भव+आनुक्+ङीष्, तया।

प्रस्तुत श्लोक में **'भुजतरुवनम्'** पद में तरु का आरोप होने के कारण रूपक अलङ्कार है जिसका लक्षण इस प्रकार है— *रूपकं रूपितारोपाद् विषये निरपह्नवे। (सा द० १०/२७ के बाद)*। **''प्रतिनवजपापुष्परक्तम्''** में **लुप्तोपमा** है जिसका लक्षण (पूर्वमेघ ६/२) में दिया है। सन्ध्या के तेज को मेघ द्वारा धारण करने में **निदर्शना** है। इसका लक्षण इस प्रकार है—

*सम्भवन् वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन्वाऽपि कुत्रचित्।*
*यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत्सा निदर्शना॥ (सा० द० १०/५१)* 

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से अनुरोध करता है कि उज्जयिनी में विद्युत् के प्रकाश से अभिसारिकाओं को मार्ग दिखलाये—

**गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं**[1]
**रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः।**
**सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया**[2] **दर्शयोर्वी**
**तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो**[3] **मा स्म**[4] **भूर्विक्लवास्ताः॥४०॥**

**अन्वय**—तत्र नक्तं रमणवसतिं गच्छन्तीनां योषितां सूचिभेद्यैः तमोभिः रुद्धालोके नरपतिपथे कनकनिकषस्निग्धया सौदामिन्या उर्वीं दर्शय, तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः मा स्म भूः ताः विक्लवाः॥४०॥

**शब्दार्थ—तत्र**=वहाँ (उज्जयिनी में), **नक्तं**=रात्रि में, **रमणवसतिम्**=प्रेमियों के घर, **गच्छन्तीनाम्**=जाती हुई, **योषिताम्**=स्त्रियों को, **सूचिभेद्यैः**=अत्यन्त गाढ़े, **तमोभिः**=अंधकार के कारण, **रुद्धालोके**=दिखायी न देने वाले, **नरपतिपथे**=राजमार्ग में, **कनकनिकषस्निग्धया**=कसौटी

---

१. रात्रौ।
२. ०च्छायया।
३. ०विमुखो।
४. च।

पर खींची गयी स्वर्ण रेखा के समान चमकने वाली, **सौदामिन्या**=बिजली से, **उर्वीम्**=भूमि को (मार्ग को), **दर्शय**=दिखलाना, **तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः**=जल वर्षा तथा गर्जन द्वारा शब्दायमान (वाचाल), **मा स्म भूः**=न होना, **ताः**=वे, **विक्लवाः**=डरपोक ।

**अनुवाद—वहाँ (उज्जयिनी में) रात्रि में प्रेमियों के घर जाती हुई स्त्रियों को अत्यन्त गाढ़े अन्धकार के कारण दिखायी न देने वाले राजमार्ग को कसौटी पर खींची गयी स्वर्ण रेखा के समान चमकने वाली बिजली से भूमि को (मार्ग को) दिखलाना । जलवर्षा तथा गर्जन द्वारा शब्दायमान (वाचाल) मत होना । वे स्त्रियाँ डरपोक होती हैं ।।४०।।**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! तत्र उज्जयिन्यां रात्रौ प्रियभवनं यान्तीनाम् अभिसारिकाणां निबिडैरन्धकारैः निरुद्धदृष्टिप्रसारे राजमार्ग सुवर्णशाणरेखातेजसा विद्युता पृथिवीं मार्गभूमिम् इत्यर्थः दर्शय जलवर्षणगर्जनशब्दायमानः न भव यतो हि ताः अभिसारिकाः भीरवः भवन्ति ।

**सञ्जीवनी**—इत्थं महाकालनाथस्य सेवाप्रकारमभिधाय पुनराऽपि नगरसञ्चारप्रकारमाह—गच्छन्तीनामिति । तत्रोज्जयिन्यां नक्तं रात्रौ रमणवसतिं प्रियभवनं प्रति गच्छन्तीनां योषिताम् । अभिसारिकाणामित्यर्थः । सूचिभिर्भेद्यैः । अतिसान्द्रैरित्यर्थः । तमोभी रुद्धालोके निरुद्धदृष्टिप्रसारे नरपतिपथे राजमार्गे कनकस्य निकषो निकष्यत इति व्युत्पत्त्या निकष उपलगतरेखा तस्येव स्निग्धं तेजो यस्यास्तया । 'स्निग्धं तु मसृणे सान्द्रे रम्ये क्लीवे च तेजसि' इति शब्दार्णवे । सुदाम्नाद्रिणैकदिक्सौदामनी विद्युत् । ('तेनैकदिक्' इत्यणप्रत्ययः) । तयोर्वीं मार्गं दर्शय । किंच तोयोत्सर्गस्तनिताभ्यां वृष्टिगर्जिताभ्यां मुखरः शब्दायमानो मा स्मः भूः । कुतः । ता योषितो विक्लवा भीरवः । ततो वृष्टिगर्जिते न कार्ये इत्यर्थः । (नात्र तोयोत्सर्गसहितं स्तनितमिति विग्रहः । विशिष्टस्येव केवलस्तनितस्याप्यनिष्टत्वात् । न च द्वन्द्वपक्षेऽल्पाच्तरपूर्वनिपातशास्त्रविरोधः, 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' इति सूत्र एव विपरीतनिर्देशेन पूर्वनिपातशास्त्रस्यानित्यत्वज्ञापनादिति ।।४०।।

**टिप्पणी—योषिताम्**—योषित् शब्द सामान्यतः साधारण स्त्री का वाचक है, किन्तु यहाँ प्रकारण के कारण उसका तात्पर्य "अभिसारिका" से है । जो स्त्री रात के अन्धकार में अपने प्रियतम से मिलने उसके घर अथबा किसी विशेष संकेत स्थल पर जाती है उसे अभिसारिका कहते हैं । **अमरकोश** के अनुसार— *कान्तार्थिनी तु या याति सङ्केतं साऽभिसारिका ।"* नाट्यशास्त्र के अनुसार अभिसारिका का लक्षण इस प्रकार किया है—

*या निर्लज्जीकृता वाढं मदनेन मदेन च ।*
*अभियाति प्रियं नक्तं कथिता साभिसारिका ।।*

**सूचिभेद्यैः**—इतना प्रगाढ़ अन्धकार जो कि सुई से छेदा जा सके । जब धागे में गाँठ पड़ जाती है, तब उसे सुई की नोक से खोलते हैं । इससे गाँठ की सूक्ष्मता और घनिष्ठता सूचित होती है । अतः कवि ने अन्धकार की गहनता को सूचित करने के लिए उसे सूचिभेद्य कहा है ।

**विक्लवास्ताः**—यक्ष मेघ को निर्देश देता है कि तुम अभिसारिकाओं को बिजली चमकाकर उन्हें मार्ग तो दिखलाना, परन्तु वर्षा या गर्जन करके उन्हें भयभीत न कर देना; क्योंकि वे अभिसारिकाएँ एक तो स्वभावतः ही डरपोक होती हैं तथा दूसरे छिपकर अपने प्रेमी के पास रमण करने जा रही हैं । इससे उन्हें लोक निन्दा आदि का भय बना रहता है । ऐसे में मेघ-गर्जन आदि से और भी अधिक भयभीत हो जायेंगी ।

**व्याकरण—गच्छन्तीनाम्**—√गम्+शतृ+ङीप्, ष० बहुव० । **रमणवसितम्**—रमणस्य वसतिः (ष० त०) ताम्, रमयति इति रमणः√रम्+ णिच्+ल्युट् (कर्तरि) । **योषिताम्**—योषित् का ष० बहुव० । **रुद्धालोके**—रुद्धः आलोकः यस्मिन् सः (बहु०) तस्मिन् । **रुद्धः**—रुध्+क्त, **आलोकः**—आ+√लोक+घञ् (करणे) । नरपतिपथे—नराणां पतिः, तस्य पन्थाः (ष० त०) तस्मिन् । **सूचिभेद्यैः**—सूचिभिः भेद्यानि (तृ० त०) तै, **भेद्यैः**—√भिद्+ण्यत्+तृ० बहुव० । **तमोभिः**—तमस् का तृ० बहुव० अनुक्ते कर्मणि तृतीया । **सौदामन्या**—सुदामन्+अण्+ङीप्,

सौदामनी, तथा । **कनकनिकषस्निग्धया**—कनकस्य निकष: कनकनिकष: (ष० त०) तद्वत् स्निग्धा (उपमित स०) तया, **निकषः**—निस्+√कष्+अच् । **दर्शय**—दृश्+णिच् लोट् म० पु० एकव० । **तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः**—तोयस्य उत्सर्ग: (ष० त०), तोयोत्सर्गश्च स्तनितं च (द्वन्द्व स०) ताभ्यां मुखर: (तृ० त०), **उत्सर्ग**—उत्+√सृज्+घञ्, **स्तनित**—स्तन+क्त, **मुखरः**—मुख+र:। **भूः**—√भू+लुङ्+म० पु० एकव० (लोट् लकार के अर्थ में माङ् (मा) का योग होने के कारण लुङ् लकार का प्रयोग हुआ है) । **विक्लवाः**—वि+√क्लु+अच्+टाप् ।

प्रस्तुत श्लोक में '**कनकनिकषस्निग्धया**' पद में लुप्तोपमा तथा वर्षा वर्णन आदि निषेध के प्रति विक्लवास्ता: इसकी हेतुता होने से **काव्यलिङ्ग** अलङ्कार है । दोनों अलङ्कारों के लक्षण क्रमशः पूर्वमेघ/१२, पूर्वमेघ/३८ में दिये गये हैं । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि रात्रि वहीं पर व्यतीत करके शेष मार्ग को तय करने के लिए सूर्योदय से पूर्व ही चल पड़ना—

**तां कस्याञ्चिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां**
**नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः ।**
**दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं**
**मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥४१॥**

**अन्वयः**–चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्र: भवान् सुप्तपारावतायां कस्याञ्चिद् भवनवलभौ तां रात्रिं नीत्वा सूर्ये दृष्टे पुन: अपि अध्वशेषं वाहयेत् सुहृदाम् अभ्युपेतार्थकृत्या: न मन्दायन्ते खलु ॥४१॥

**शब्दार्थ**—**चिरविलसनात्**=बहुत देर तक चमकने के कारण, **खिन्नविद्युत् कलत्रः**=थकी हुई बिजली रूपी स्त्री वाले, **सुप्तपारावतायाम्**=सोये हुए कबूतरों वाले, **कस्याञ्चित्**=किसी, **भवनवलभौ**=महल की छत पर, **नीत्वा**=बिताकर, **सूर्ये**=सूर्य के, **दृष्टे**= दिखायी देने पर, **अध्वशेषम्**=शेष मार्ग को, **वाहयेत्**=तय करना, **सुहृदाम्**=मित्र का, **अभ्युपेतार्थकृत्याः**=प्रयोजन के कार्य को स्वीकार कर लेने वाले, **न मन्दायन्ते**=विलम्ब नहीं करते ।

**अनुवाद**—**बहुत देर तक चमकने के कारण थकी हुई बिजली रूपी स्त्री वाले आप, सोये हुए कबूतरों वाली किसी महल की छत पर वह रात्रि बिताकर सूर्य के दिखायी देने पर पुनः शेष मार्ग को तय करना । (क्योंकि) मित्र के प्रयोजन का कार्य स्वीकार कर लेने वाले (व्यक्ति) विलम्ब नहीं करते ॥४१॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! बहुसमयस्फुरणात् क्लान्तविद्युत्पत्नीको भवान् सुप्तकपोतायां कस्याञ्चित् गृहाच्छादनोपरिभागे तां रात्रिं यापयित्वा सूर्ये उदिते सति पुनरपि मार्गावशिष्टभागं पारं कुर्यात्, यतो हि मित्राणाम् अङ्गीकृतप्रयोजनकार्या: जना: न विलम्बते खलु ।

**सञ्जीवनी**—तामिति । चिरं विलसनात्स्फुरणात्खिन्नं विद्युदेव कलत्रं यस्य स भवान् सुप्ता: पारावता: कलरवा यस्यां तस्यां विविक्तायामित्यर्थ: । 'पारावत: कलरव: कपोत:' इत्यमर:। जनसंचारस्तत्रासम्भावित एवेति भाव: । कस्याञ्चिद्भवनवलभौ । गृहाच्छादनोपरिभाग इत्यर्थ: । 'आच्छादनै स्याद्वलभी गृहाणाम्' इति हलायुध: । तां रात्रिं नीत्वा सूर्ये दृष्टे सति । उदिते सतीत्यर्थ: पुनरुष्यध्वशेषं वाहयेत् । तथाहि सुहृदां मित्राणामभ्युपेताङ्गीकृतार्थस्य प्रयोजनस्य कृत्या यैस्ते: । अभ्युपेतसुहृदर्था इत्यर्थ: । (सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समास:) कृत्या क्रियादेवतयो: कार्ये स्त्री कुपिते त्रिषु इति यादव: । 'कृञ: श च' इति चकारात्क्यप् । न मन्दायन्ते खलु न मन्दा भवन्ति हि । न विलम्बन्त इत्यर्थ: ।

*('लोहितादिडाज्भ्य: क्यष्' इति क्यष् । 'वा क्यष:' इत्यात्मनेपदम्) ॥४१॥*

**टिप्पणी**—**चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्र**:—विलसन का सामान्य अर्थ चमकना है, परन्तु यहाँ विद्युत् को मेघ की पत्नी कहा है। इसलिए इसका अर्थ रतिक्रीड़ा करना, इठलाना आदि भी किया जा सकता है अर्थात् जिस प्रकार पत्नी अपने पति की गोद में लेटकर, इठलाती रहती है और काम क्रीड़ा को बढ़ाकर, उसमें सहयोग कर, फिर थक कर सो जाती है, उसी प्रकार विद्युत् भी इठलाकर तुम्हारी काम-क्रीड़ा बढ़ाकर, रतिक्रीड़ा कर थक कर सो जायेगी। उस दशा में तुम उसे विश्राम देना।

**सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः**—इसका अभिप्राय यह है कि कोई भी सज्जन यदि अपने मित्र के किसी भी कार्य को अपने हाथ में ले लेता है तो वह उस कार्य की सिद्धि होने तक प्रयत्न करता रहता है, वह उस कार्य को करने में मन्द नहीं पड़ता। इसी प्रकार तुमने भी अपने मित्र का जो कार्य अपने हाथ में लिया है, उसे पूरा करने के लिये जो मार्ग शेष बचा है, उसे प्रातः सूर्योदय होते ही पूरा करने के लिये चल पड़ना।

**व्याकरण**—**भवनवलभौ**—भवनस्य वलभिः (श० त०), तस्याम्। **सुप्तपारावतायाम्**—सुप्ताः पारावताः यस्याम् सा (बहु०) तस्याम्, **सुप्त**—स्वप्+क्त। **नीत्वा**—√नी+क्त्वा। **चिरविलसनात्**—चिरं विलसनम् (सुप्सुपा स०) तस्मात् हेतौ पञ्चमी, **विलसनम्**—वि+√लस्+ल्युट्। **खिन्नविद्युत्कलत्र**:—खिन्ना विद्युत् (कर्मधा०) सा एव कलत्रं यस्य सः (बहु०), **खिन्न**—√खिद्+क्त, **विद्युत्**—वि+√द्युत्+क्विप्। **दृष्टे**—दृश+क्त (भावे सप्तमी)। **वाहयेत्**—√वह्+णिच्+विधिलिङ् प्र० पु० एकव०। **अध्वशेषम्**—अध्वनः शेषः (ष० त०) तम्। **मन्दायन्ते**—मन्द+क्यप्—√मन्दाय+लट् प्र० पु० बहुव०। **सुहृदाम्**—शोभनं हृदयं येषाम् तेषाम् (बहुव्रीहि)। **अभ्युपेतार्थकृत्याः**—अभ्युपेता अर्थस्य कृत्या यैः ते (बहुव्रीहि), **अभ्युपेता**—अभि+उप्+√इण्+क्त+टाप्, **कृत्याः**—√कृ+क्यप्+टाप्।

प्रस्तुत श्लोक में विद्युत् में कलत्र का आरोप होने के कारण **रूपक** तथा सामान्य से विशेष का समर्थन होने से **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार है, जिनके लक्षण क्रमशः पूर्व मेघ/३९ तथा पूर्वमेघ/५ में दिये गये हैं। □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को निर्देश देता है कि तुम प्रांतःकाल सूर्य के मार्ग को छोड़ देना—

**तस्मिन्काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां**
**शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।**
**प्रालेयास्त्रं कमलवदनात्सोऽपि[1] हर्तुं नलिन्याः**
**प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥४२॥**

**अन्वयः**—तस्मिन् काले प्रणयिभिः खण्डितानां योषितां नयनसलिलं शान्तिं नेयम् अतः भानोः वर्त्म आशु त्यज। नलिन्याः कमलवदनात् प्रालेयास्त्रं हर्तुं प्रत्यावृत्तः सः अपि त्वयि कररुधि (सति) अनल्पाभ्यसूयः स्यात् ॥४२॥

**शब्दार्थ**—**तस्मिन्काले**=उस समय (सूर्योदय के समय), **प्रणयिभिः**=प्रियतमों को, **खण्डितानां योषिताम्**=खण्डिता नायिकाओं के, **नयनसलिलम्**=आँसुओं को, **शान्तिं नेयम्**=शान्त करना है, **वर्त्म**=मार्ग को, **आशु**=शीघ्र, **त्यज**=छोड़ देना, **नलिन्याः**=कमलिनी के, **कमलवदनात्**=कमल रूपी मुख से, **प्रालेयास्रम्**=ओस रूपी आँसू को, **हर्तुम्**=पोंछने के लिये, **प्रत्यावृत्तः**=वापिस आया हुआ, **सः अपि**=वह (सूर्य) भी, **कररुधि**=किरण (रूपी हाथों को) रोक लेने पर, **अनल्पाभ्यसूयः**=अत्यधिक क्रुद्ध, **स्यात्**=हो जायेगा।

---

१. कमलनयनात्सोऽपि।

**अनुवाद**—उस समय (सूर्योदय के समय) प्रियतमों को (अपनी) खण्डिता नायिकाओं के आँसुओं को शान्त करना है, (अत:) तुम सूर्य के मार्ग को शीघ्र छोड़ देना। कमलिनी के कमल रूपी मुख से ओस रूपी आँसू पोंछने के लिये वापिस आया हुआ, वह (सूर्य) भी तुम्हारे द्वारा किरण (रूपी) हाथों को रोक लेने पर अत्यधिक क्रुद्ध हो जायेगा ॥४२॥

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! सूर्योदयसमये प्रियतमै: खण्डितानायिकाविशेषाणां अश्रु शमं नेतव्यम् अस्माद् हेतो: सूर्यस्य मार्गं शीघ्रं मुञ्च, कमलिन्या: पद्मपुष्पमुखात् हिमाश्रु शमयितुं प्रत्यागत: स: भनुरपि त्वयि किरणरोधके सति अत्यधिकं विद्वेषेत् ।

**सञ्जीवनी**—तस्मिन्निति । तस्मिन्काले पूर्वोक्ते सूर्योदयकाले प्रणयिभि: प्रियतमै: खण्डितानां योषितां नायिकाविशेषाणाम् । ('ज्ञातोऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेर्ष्याकषायिता' इति दशरूपके ।) नयनसलिलं शान्तिं नेयं नेतव्यम् । (नयतिर्द्विकर्मक: ।) अतो हेतोर्भानोर्वर्त्माशु शीघ्रं त्यज । तस्यावरको मा भूरित्यर्थ: । विपक्षेऽनिष्टमाचष्टे—सोऽपि भानु: । नलिनन्यम्बुजानि यस्या: सन्तीति नलिनी पद्मिनी । 'तृणेऽम्बुजे नलं ना तु राज्ञि नाले तु न स्त्रीयाम्' इति शब्दार्णवे । तस्या: स्वकान्ताया: कमलं स्वकुसुममेव वदनं तस्यात्प्रालेयं हिममेवास्त्रमश्रु हर्तुं शमयितुं प्रत्यावृत्त: प्रत्यागत: । नलिन्याश्च भर्तुर्भनिदेशान्तरे नलिन्यन्तरगमनातखण्डितात्वमित्याशय:। ततस्त्वयि । करानंशूरुणद्धीति कररुत् । (क्विप् ।) तस्मिन्कररुधि सति । हस्तरोधिनि सतीति च गम्यते । 'बलिहस्तांशव: करा:' इत्यमर: । अनल्पाभ्यसूयोऽधिकविद्वेष: स्यात् । (प्रायेणेच्छाविशेषविघाताद् द्वेषे रोषविशेषश्च कामिनां भवतीति भाव: । 'किं च आत्मानं चार्कमीशानं विष्णुं वा द्वेष्टि यो जन: । श्रेयांसि तस्य नश्यन्ति रौरवं च भवेद् ध्रुवम् ।' अति निषेधात्कार्यहानिर्भविष्यतीति ध्वनि:) ॥४२॥

**टिप्पणी**—**योषितां खण्डितानाम्**—आठ प्रकार की नायिकाओं में खण्डिता नायिका प्रमुख नायिका है । दशरूपककार ने खण्डिता नायिका की परिभाषा इस प्रकार की है—

*ज्ञातेऽन्यासङ्गविवृते खण्डितेर्ष्याकषायिता''* २/२५ अर्थात् (प्रियतम को) अन्य स्त्री के सहवास से विकृत (चिह्नित) देखकर जो ईर्ष्या से क्रुद्ध हो उठती हो, उसे खण्डिता नायिका कहते हैं, कहने का अभिप्राय यह है कि पति के लिए पत्नी शृङ्गार करके बैठी थी, परन्तु वह किसी अन्य स्त्री के साथ रात्रि में सहवास करके प्रात: घर आया है, उसके होठों पर लाली तथा कपोलों पर सिंदूर लगा है, उसे देख कर पत्नी जल-भुन जाती है, ऐसी स्त्री को पति चाटुवचनों से पैरों में गिरकर प्रसन्न करता है ।

**कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूय:**—कमलिनी सूर्य की पत्नी के रूप में प्रसिद्ध है । यहाँ उसे खण्डिता नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है । कामुक क्रीडाओं में विघ्न डालने वाले को कोई भी नहीं चाहता है । सूर्य ने रात्रि कहीं अन्यत्र व्यतीत की है, प्रात: जब आया तो उसका कपोल सिन्दूर से लाल था; अत: उसे देखकर कमलिनी रो पड़ी, उस पर पड़ी हुई ओस की बूँदें ही उसके आँसू हैं । सूर्य को उसके आँसू पोंछने हैं, अत: आँसू पोंछने के लिए कर (किरण) बढ़ाया है; अत: यदि मेघ उसके कार्य में विघ्न डालकर उसके कर को रोक देता है, तो वह अत्यन्त क्रुद्ध हो जायेगा । सूर्य से द्वेष करना शास्त्र-विरोधी है, उससे कल्याण का नाश तथा रौरव नरक की प्राप्ति होती है ।

**व्याकरण**—**नयनसलिलम्**—नयनयो: सलिलम् (ष० त०) । **खण्डितानाम्**—√खण्ड+क्त+टाप् । **योषिताम्**—योषित् शब्द का ष० बहुव० । **शान्तिम्**—√शम्+क्तिन् । **नेयम्**—√नी+यत् । **प्रणयिभि:**—प्रणय+इन्, प्रणयिन् का तृ० बहुव० । **त्यज**—√त्यज्+लोट्, म० पु० एकव० । **प्रालेयास्रम्**—प्रालेयम् एव अस्रम् (कर्मधा०) प्रकर्षेण लीना: सन्ति पदार्था: अत्र इति प्रलय: (हिमालय:) तत: आगतम् इति, **प्रालेयम्**—प्रलय+अण्, **प्रलय:**—प्र+√ली+अच्। **कमलवदनात्**—कमलम् एव वदनम् (कर्मधा०) तसमात् । **हर्तुम्**—√हृ+तुमुन् । **नलिन्या:**—नलानि सन्ति अस्या: इति, नल+इनि+ङीप्—नलिनी तस्या: । **प्रत्यावृत्त:**—प्रति+आ+√वृत्+क्त । **कररुधि**—करान् रुणद्धि इति कररुत् (उप पद त०) तस्मिन्, कर+√रुध्+क्विप्+स० एकव०।

**स्यात्**—√अस् विधिलिङ् प्र० पु० एकव० । **अनल्पाभ्यसूयः**—न अल्पा अनल्पा (नञ् त०), अनल्पा अभ्यसूया यस्य सः (बहुव्रीहि०) ।

प्रस्तुत श्लोक में सूर्य के मार्ग छोड़ने के प्रति उत्तरार्द्ध का वाक्यार्थ हेतु है; अतः **काव्यलिङ्ग** अलङ्कार है जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/३७) में दिया गया है ।

सूर्य और नलिनी में नायक और नायिका के व्यवहार का आरोप होने के कारण **समासोक्ति** अलङ्कार है जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/३०) में दिया गया है ।

कररुधि में कर के किरण तथा हाथ अर्थ होने के कारण **श्लेष** अलङ्कार है, जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/२१) में दिया गया है ।

☐

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि आगे गम्भीरा नदी मिलेगी । मेघ को निर्देश देता हुआ कहता है कि वहाँ उसे क्या करना है—

**गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने**
**छायात्माऽपि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ।**
**तस्मादस्याः[१] कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या-**
**न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि ॥४३॥**

**अन्वयः**—गम्भीरायाः सरितः प्रसन्ने चेतसि इव पयसि प्रकृतिसुभगः ते छायात्मा अपि प्रवेशं लप्स्यते, तस्मात् त्वम् अस्याः कुमुदविशदानि चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि धैर्यात् मोघीकर्तुं न अर्हसि ॥४३॥

**शब्दार्थ**—**गम्भीरायाः सरितः**=गम्भीरा नदी के, **प्रसन्ने**=निर्मल, **चेतसि इव** =चित्त की तरह, **प्रकृतिसुभगः**=स्वाभव से सुन्दर, **छायात्मा**=छाया शरीर, **प्रवेशम्**=प्रवेश को, **लप्स्यते**=प्राप्त करेगा, **तस्मात्**=इस कारण से, **कुमुदविशदानि**=कुमुद की तरह उज्ज्वल, **चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि**=चञ्चल मछलियों की उछाल रूपी चितवनों को, **धैर्यात्**=धीरता के कारण, **मोघीकर्तुम्**=निष्फल करने के, न **अर्हसि**=योग्य नहीं हो ।

**अनुवाद**—**गम्भीरा नदी के निर्मल चित्त की तरह जल में स्वभाव से सुन्दर तुम्हारा छाया शरीर भी प्रवेश प्राप्त करेगा, इस कारण से तुम उसकी (गम्भीरा नदी की) कुमुद की तरह उज्ज्वल चञ्चल मछलियों की उछाल रूपी चितवनों को, धीरता के कारण निष्फल करने के योग्य नहीं हो ॥४३॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! गम्भीरायाः नद्या निर्मले हृदये इव जले स्वभाव सुन्दरः तव प्रतिबिम्बं शरीरम् अपि निवेशं प्राप्स्यति तस्मात् कारणात् त्वं तस्याः गम्भीरायाः कुमुदधवलानि चञ्चलमीनोल्लुण्ठनावलोकनानि धीरतायाः निफलीकर्तुं न योग्योऽसि ।

**सञ्जीवनी**—गम्भीराया इति । गम्भीरा नाम सरित् । उदात्तनायिका च ध्वन्यते । तस्याः प्रसन्नेऽनुक्तत्वाद्दोषरहिते चेतसीव प्रसन्नेऽतिनिर्मले पयसि । प्रकृत्या स्वभावेनैव सुभगः सुन्दरः। 'सुन्दरेऽधिकभाग्ये च दुर्दिनेतरवासरे तुरीयांशे श्रीमति च सुभगः' इति शब्दार्णवे । ते तव छाया चासावात्मा च । सोऽपि प्रतिबिम्बशरीरं च प्रवेशं लप्स्यते । अपिशब्दात्प्रवेशमनिच्छोरपीति भावः । तस्माच्छायाद्वाराऽपि प्रवेशावश्यंभावित्वादस्या गम्भीरायाः । कुमुदवद्विशदानि धवलानि चटुलानि शीघ्राणि शफराणां मीनानामुद्वर्तनान्युल्लुण्ठनानचेव प्रेक्षितानयवलोकनानि । 'त्रिषु स्याच्चटुलं शीघ्रम्' इति विश्वः । एतावदेव गम्भीराया अनुरागलिङ्गम् । धैर्यद्धाष्ट्र्यात् । वैयात्यादिति यावत् । मोघीकर्तुं विफलीकर्तुं नार्हसि । नानुरक्ता विप्रलब्धवयेत्यर्थः (धूर्तलक्षणं तु—'क्लिश्नाति नित्यं गमितां कामिनीमतिसुन्दरः । उपेत्य रक्तां यत्नेन रक्तां धूर्तो विमुञ्चति ।)' इति ॥४३॥

**टिप्पणी**—**गम्भीरायाः**—गम्भीरा नाम की एक छोटी-सी नदी, जो कि मालव देश में ही बहती है । यहाँ गम्भीरा पद से उदात्त नायिका की भी व्यञ्जना होती है ।

---

१. तस्या०।

**चेतसीव प्रसन्ने**—गम्भीरा नदी का जल निर्मल है तथा गम्भीरा नायिका का मन भी निर्मल होता है, अर्थात् जैसे गम्भीरा नायिका के प्रेम युक्त हृदय में प्रिय की मूर्ति प्रविष्ट हो जाती है, उसी प्रकार गम्भीरा नदी के निर्मल जल में मेघ की परछाईं पड़ेगी।

**धैर्यात्**—आचार्य मल्लिनाथ ने इसका अर्थ धाष्ट्‌र्यात् अर्थात् ढीठपन से किया है, जबकि वल्लभ आदि उन्य टीकाकारों ने इसका अर्थ धीरत्वात् किया है। आचार्य मल्लिनाथ की अपेक्षा दूसरा अर्थ अधिक स्वाभाविक लगता है।

**व्याकरण**—**पयसि**—पयस् शब्द का सप्तमी एकव०। **प्रसन्ने**—प्र+√सद्+क्त सप्तमी एकव०। **छायात्मा**—छाया च असौ आत्मा (कर्मधा०)। **प्रकृतिसुभगः**—प्रकृत्या सुभगः (तृ०त०), **प्रकृति**—प्र+√कृ+क्तिन्। **लप्स्यते**—√लभ्+लृट् प्र० पु० एकव०। **ते**—युष्मद् ष० एकव०। **प्रवेशम्**—प्र+√विश्+घञ्। **कुमुदविशदानि**—कुमुदानि इव विशदानि (उपमित स०)। **अर्हसि**—√अर्ह् लट् ल० म० पु० एकव०। **धैर्यात्**—धीरस्य भावः धैर्यम्, धीर+ ष्यञ्। **मोघीकर्तुम्**—अमोघानि मोघानि कर्तुम् (गति त०), मोघ+√च्वि+√कृ+तुमुन्। **चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि**—चटुलाः शफराः (कर्मधा०) तेषाम् उद्वर्तनानि (ष० त०) तान्येव प्रेक्षितानि (कर्मधा०), **उद्वर्तनानि**—उद्+√वृत्+ल्युट्, **प्रेक्षित**—प्र+√ईक्ष् +क्त।

प्रस्तुत श्लोक में जल का चित्त के साथ तथा प्रेक्षितों का कुमुद के साथ शब्दतः सादृश्य वर्णित है तथा गम्भीरा का नायिका के साथ सादृश्य गम्यमान रखा गया है; अतः **उपमा** अलङ्कार है, जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/१५) में किया गया है।

उद्वर्तनप्रेक्षितानि में स्पष्ट रूप से **रूपक** है। जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/२९) में किया गया है। □

**प्रसङ्ग**—मेघ के समक्षा गम्भीरा नदी का नायिका के रूप में वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि—

**तस्याः किञ्चित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं**
**हत्वा[1] नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम्।**
**प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि**
**ज्ञातास्वादो विवृतजघनां[2] को विहातुं समर्थः ॥४४॥**

**अन्वयः**—सखे, प्राप्तवानीरशाखं किञ्चित्करधृतम् इव मुक्तरोधोनितम्बं तस्याः नीलं सलिलवसनं हृत्वा लम्बमानस्य ते प्रस्थानं कथमपि भावि। ज्ञातास्वादः कः विवृतजघनां विहातुं समर्थः॥४४॥

**शब्दार्थ**—**प्राप्तवानीरशाखम्**=बेंत की शाखाओं तक पहुँचे हुए, **किञ्चित्करधृत-मिव**=मानो हाथ में कुछ पकड़े हुए, **मुक्तरोधोनितम्बम्**=तट रूपी नितम्बों को छोड़े हुए, **सलिलवसनम्**= जल रूपी वस्त्र को, **हृत्वा**=हटाकर, **लम्बमानस्य**=झुके हुए, **प्रस्थानम्**=गमन, **कथमपि भावि**=बड़ी कठिनाई से होगा, **ज्ञातास्वाद**=(भोग विलास के) स्वाद को जान लेने वाला, **विवृतजघनाम्**=उघड़ी जांघों वाली को, **विहातुम्**=छोड़ने में, **समर्थः**=समर्थ होगा।

**अनुवाद**—**हे मित्र! बेंत की शाखाओं तक पहुँचे हुए (अतः) मानों कुछ हाथ में पकड़े हुए तट रूपी नितम्ब को छोड़े हुए, उसके (गम्भीरा के) नीले जल रूपी वस्त्र**

१. नीत्वा।
२. विपुलजघनाम्, पुलिनजघनाम्।

**को हटाकर (उस पर) झुके हुए तुम्हारा गमन बड़ी कठिनाई से होगा। (भोग-विला... के) स्वाद को जान लेने वाला कौन (पुरुष) उघड़ी जांघों वाली (कामिनी) को छोड़... में समर्थ होगा ॥४४॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मित्र ! आसादितवेतसविटपं किञ्चिद्धस्तवलम्बितमिव त्यक्त... रूपनितम्बं तस्याः गम्भीरायाः नीलं जलमेव वस्त्रमपनीय नतस्य तव गमनं कष्टेन भविष्यति, ... हि अनुभूतरसः को नरः प्रकटितजघनां नारी त्यक्तुं शक्तो भवेत् न कोऽपीत्यर्थः।

**सञ्जीवनी**—तस्या इति। हे सखे, प्राप्ता वानीरशाखा वेतसशाखा येन तत्तथोक्त... एव किंचिदीषत्करधृतं हस्तावलम्बितमिव स्थितम्। मुक्तरूत्यक्तो रोधस्तटमेव नितम्बः कटि... तत्तथोक्तम्। 'नितम्बः पश्चिमे श्रोणिभागेऽद्रिकटके कटौ' इति यादवः। नीलं कृष्णवर्णं तस्... गम्भीरायाः सलिलमेव वसनं नीत्वाऽपनीय। प्रस्थानसमये प्रेयसीवसनग्रहणं विरहतापविनोदनार्थमि... प्रसिद्धम्। लम्बमानस्य पीतसलिलभराल्लम्बमानस्य अन्यत्र जघनारूढस्य। ते तव प्रस्थानं प्र... कथमपि कृच्छ्रेण भावि। कृच्छ्रत्वे हेतुमाह—ज्ञातेति। ज्ञातास्वादोऽनुभूतरसः कः पुमान्विवृ... प्रकटीकृतं जघनं कटिस्तत्पूर्वभागो वा यस्यास्ताम् 'जघनं स्यात्कटौ पूर्वश्रोणिभागापरांशयोः' इ... यादवः। विहातुं त्यक्तुं समर्थः। न कोऽपीत्यर्थः ॥४४॥

**टिप्पणी**—**प्राप्तवानीरशाखम्**—ग्रीष्म ऋतु आने पर नदी का प्रवाह कम हो जा... है और किनारे छोड़ देता है, किन्तु फिर भी झुकी हुई बेंत की शाखायें उसका स्पर्श कि... रहती हैं।

**सलिलवसनम्**—यहाँ कवि ने कल्पना की है कि जिस प्रकार कोई प्रियतम नवयुव... के नितम्बों से वस्त्र खिसकाता है और वह नवयुवती उस वस्त्र को अपने हाथों में पक... लेती है उसी प्रकार मेघ ने अपनी प्रेयसी गम्भीरा के जल रूपी वस्त्र को उसके नितम्बों ... हटा दिया है। उसका कुछ भाग ही गम्भीरा के हाथ में रह गया है। इस प्रकार यहाँ कवि ने मेघ में नायक का, गम्भीरा में नायिका का, वानीर शाखा में हाथ का, जल में नील व... का और तट में नितम्ब का आरोप किया है।

**व्याकरण**—**किञ्चित्करधृतमिव**—किञ्चित् करेण धृतम् इव (तृ० त०), **धृतम्**—धृ+क्त... **प्राप्तवानीरशाखम्**—प्राप्ताः वानीराणां शाखाः येन यस्मिन् वा तत् (बहुव्रीहि)। **हत्वा**—√ह... क्त्वा। **सलिलवसनम्**—सलिलमेव वसनम् (कर्मधा०)। **मुक्तरोधोनितम्बम्**—मुक्तः रोधोनितम्... येन तत् (बहु०), **मुक्त**—मुच्+क्त। **प्रस्थानम्**—प्र+√स्था+ल्युट्। **लम्बमानस्य**—√लम्ब्+ शान... ष० एकव०। **भावि**—√भू+णिनि। **ज्ञातास्वादः**—ज्ञातः स्वादः येन सः (बहुव्रीहि), **ज्ञातः**—√ज्ञा+ क्त, **आस्वादः**—आ+√स्वद्+घञ्। **विवृतजघनाम्**—विवृतं जघनं यस्याः ताम् (बहुव्रीहि) **विवृत**—वि+√वृ+क्त। **विहातुम्**—वि+√हा+तुमुन्।

प्रस्तुत श्लोक में करधृतमिव में **उत्प्रेक्षा** अलङ्कार है, जिसका लक्षण पूर्वमेघ/१८ ... किया गया है। सलिल में वसन का, रोधस् में नितम्ब का तथा गम्भीरा में नायिका ... आरोप होने से **रूपक** अलङ्कार है, जिसका लक्षण पूर्वमेघ/३९ में किया है। सामान्य ... विशेष का कथन होने से **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार है, जिसका लक्षण पूर्वमेघ/५ पर कि... गया है।

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि जब तुम गम्भीरा से जल का पान करके देवगि... पर्वत की ओर बढ़ोगे तो वायु तुम्हारे नीचे से बहेगा—

**त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः[1]**
**स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः ।**
**नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते**
**शीतो वायुः[2] परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥४५॥**

**अन्वयः**—त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः दन्तिभिः स्रोतोरन्ध्ररध्वनितसुभगं पीयमानः काननोदुम्बराणां परिणमयिता शीतो वायुः देवपूर्वं गिरिम् उपजिगमिषोः ते नीचैः वास्यति ॥४५॥

**शब्दार्थ**—**त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः**=तेरे बरसने से फूली हुई पृथ्वी की गन्ध के संसर्ग से रमणीय, **दन्तिभिः**=हाथियों द्वारा, **स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगम्**=नाक के छिद्रों में शब्द के साथ सुन्दर, **पीयमानः**=पिया जाता हुआ, **काननोदुम्बराणाम्**=वन के गूलरों को, **परिणमयिता**=पकाने वाला, **उपजिगमिषोः**=पास जाने के इच्छुक, **वास्यति**=बहेगा ।

**अनुवाद**—**तेरे बरसने से फूली हुई पृथ्वी की गन्ध के संसर्ग से रमणीय हाथियों द्वारा नाक के छिद्रों में शब्द के साथ सुन्दर रूप में पिया जाता हुआ, वन के गूलरों को पकाने वाला शीतल वायु देवगिरि की ओर जाने के इच्छुक तेरे नीचे बहेगा (चलेगा) ॥४५॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! त्वद्वर्षणोपबृंहितभूमिगन्धसंसर्गमनोहरः हस्तिभिः नासाच्छिद्रशब्दरमणीयं यथा स्यात् तथा पीयमानः आरण्यकजन्तुफलानां परिपाकयिता शीतलो वातः देवगिरिम् उपगन्तुमिच्छो तव नीचैः वास्यति ।

**सञ्जीवनी**—त्वदिति ! त्वन्निष्यन्देन तव वृष्ट्योच्छ्वसिताया उपबृंहिताया वसुधाया भूमेर्गन्धस्य सम्पर्केण रम्यः । सुरभिरित्यर्थः । स्रोतः शब्देनेन्द्रियवाचिना तद्विशेषो घ्राणं लक्ष्यते । 'स्रोतोऽम्बुवेगेन्द्रिययोः' इत्यमरः । स्रोतोरन्ध्रेषु नासाग्रकुहरेषु यद् ध्वनितं शब्दस्तेन सुभगं यथा स्यात् तथा । दन्तिभिर्गजैः पीयमानः । वसुधागन्धलोभादाघ्रायमाण इत्यर्थः । अनेन मान्द्यमुच्यते। काननेषु वनेषूदुम्बराणां जन्तुफलानाम् 'उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञाङ्गो हेमदुग्धकः' इत्यमरः । परिणमयिता परिपाकयिता । ('मितां ह्रस्वः' इति ह्रस्वः ।) शीतोः वायुः । देवपूर्वं देवशब्दपूर्वं गिरिम् । देवगिरिमित्यर्थः । उपजिगमिषोरुपगन्तुमिच्छोः । (गमेः सन्नन्तादुप्रत्ययः ।) ते तव नीचैः शनैर्वास्यति। त्वां बीजयिष्यतीर्त्यर्थः । (संबन्धमात्रविवक्षायां षष्ठी ।) 'देवपूर्वं गिरिम्' इत्यत्र देवपूर्वत्वं गिरिशब्दस्य। न तु संज्ञिनस्तदर्थस्येति संज्ञायाः संज्ञित्वाभावादवाच्यवचनं दोषमाहुरालङ्कारिकाः । तदुक्तमेकावल्याम्—'यदवाच्यस्य वचनमवाच्यवचनं हि तत्' इति । समाधानं तु देवशब्दविशेषितेन गिरिशब्देन शब्दपरेण मेघोपगमनयोग्यो देवगिरिर्लक्ष्यत इति कथंचित्संपाद्यम् ॥४५॥

**टिप्पणी**—**स्रोतोरन्ध्रध्वनित**—वल्लभ आदि का कथन है कि स्रोतस् स्वयं करिकर का पर्यायवाची है तथा शिशुपालवध के १८/४९ श्लोक को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करते हैं । आचार्य मल्लिनाथ ने स्रोत का अर्थ नासिका का अग्रभाग किया है, परन्तु अमरकोश के अनुसार स्रोत का अर्थ इन्द्रिय है ।

**देवपूर्वं गिरिम्**—यहाँ आचार्य मल्लिनाथ ने एकावली का उदाहरण प्रस्तुत करके अवाच्य वचन दोष सिद्ध किया है, जबकि इस प्रकार के प्रयोग प्रायः साहित्य में दिखायी पड़ते हैं, देखिये—*"पुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः" (अभि० २/१४), "दशपूर्वरथं यमाख्यया दशकण्ठारि गुरुं विदुर्बुधाः" (रघु० ८/२९), "हिरण्यपूर्वं कशिपुं प्रचक्षते" (शिशुपा० १/४२)।* प्रो० शारदारञ्जन राय मल्लिनाथ के इस विवाद को अनावश्यक बतलाते हैं, क्योंकि देवगिरि शब्द व्यक्ति वाचक नहीं है ।

---

१. ०पुण्य ।
२. वात ।

प्रो० विल्सन के अनुसार देवगिरि आधुनिक देवगढ़ है, जो चम्बल नदी से दक्षिण में मालवा के केन्द्र में स्थित है, जबकि डा० फ्लीट इसे देवगढ़ गांव मानते हैं, जो झाँसी से दक्षिण पश्चिम की ओर स्थित है, परन्तु अधिकांश विद्वानों का झुकाव इसे आधुनिक देवगढ़ मानने की ओर है ।

**व्याकरण—त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः**—तव निष्यन्दः (ष० त०), तेन उच्छ्वसिता (तृ० त०), तादृशी वसुन्धरा (कर्मधा०), तस्याः गन्धः (ष० त०) तस्य सम्पर्कः (ष० त०), तेन रम्यः (तृ० त०), **निष्यन्दः**—नि+√स्यन्द्+घञ्, **उच्छ्वसित**—उत्+√श्वस्+क्त, **सम्पर्कः**—सम्+√पृच्+घञ् । **स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगम्**—स्रोतसः रन्ध्राणि (ष० त०), तेषां ध्वनितः (ष० त०), तेन सुभगं यथा तथा (तृ० त०), **ध्वनित**—√ध्वन्+क्त । **दन्तिभिः**—प्रशस्ताः दन्ताः एषाम् सन्ति इति (म० तद्धित) तैः, दन्त+इनि, दन्तिन्, तृ० बहुव०। **पीयमानः**—√पा+क्यच्+शानच् । **वास्यति**—√वा+लृट् ल० प्र० पु० एकव०। **उपजिगमिषोः**—उप्+√गम्+सन्+उ, ष० एकव०। **देवपूर्वम्**—देवः देवशब्दः पूर्वे यस्य सः (बहुव्रीहि), तम्, युष्मद् का ष० एकव० । **शीतः**—√श्यै+क्त । **परिणमयिता**—परि+√नम्+णिच्+तृच्, प्र० एकव० । **काननोदुम्बराणाम्**—काननेषु उदुम्बराः तेषाम् (स० पु०) ।

प्रस्तुत श्लोक में **स्वभावोक्ति** अलङ्कार है । जिसका लक्षण इस प्रकार है—
*"स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम् ।" (सा० द० १०/९२ के बाद)* □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को निर्देश देता हुआ कहता है कि तुम देवगिरि पर स्थित भगवान् कार्तिकेय पर पुष्पों की वर्षा करना—

**तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा**
**पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्व्योमगङ्गाजलार्द्रैः ।**
**रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां[1] चमूना-**
**मत्यादित्यं हुतवहमुखे सम्भृतं तद्धि तेजः ।।४६।।**

**अन्वयः**—पुष्पमेघीकृतात्मा भवान् व्योमगङ्गाजलार्द्रैः पुष्पासारैः तत्र नियतवसतिं स्कन्दं स्नपयतु तत् हि वासवीनां चमूनां रक्षाहेतोः नवशशिभृता हुतवहमुखे संभृतम् अत्यादित्यं तेजः।।४६।।

**शब्दार्थ—पुष्पमेघीकृतात्मा**=अपने आपको पुष्पों का मेघ बनाये हुए, **व्योमगङ्गाजलार्द्रैः**=आकाश गङ्गा के जल से भीगे हुए, **पुष्पासारैः**=पुष्पों की धारावृष्टियों से, **तत्र**=वहाँ (देवगिरि पर), **नियतवसितम्**=स्थायी रूप से निवास करने वाले, **स्कन्दम्**=कार्तिकेय को, **स्नपयतु**=स्नान कराना, **वासवीनाम्**=इन्द्र को, **चमूनाम्**=सेनाओं की, **नवशशिभृता**=नवीन चन्द्रमा को धारण करने वाले (शिव) के द्वारा, **हुतवहमुखे**=अग्नि के मुख में, **संभृतम्**=सञ्चित किया हुआ, **अत्यादित्यम्**=सूर्य का भी अतिक्रमण करने वाला ।

**अनुवाद—अपने आपको पुष्पों का मेघ बनाये हुए आप आकाश गङ्गा के जल से भीगे हुए पुष्पों की धारावृष्टियों से वहाँ (देवगिरि पर) स्थायी रूप से निवास करने वाले कार्तिकेय को स्नान कराना, क्योंकि वह (कार्तिकेय) इन्द्र की सेनाओं की रक्षा के लिए नवीन चन्द्रमा को धारण करने वाले (शिव) के द्वारा अग्नि के मुख में सञ्चित किया हुआ, सूर्य का भी अतिक्रमण करने वाला तेज है ।।४६।।**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ! तत्र देवगिरौ नित्यस्थितं कार्तिकेयं भवान् पुष्पवर्षणमेघीकृत

१. वसूनाम् ।

विग्रह: आकाशगङ्गासलिलार्द्रैः पुष्पसंपातैः अभिषिञ्चतु । तत् स्कन्दः निश्चयेन ऐन्द्रीणां सेनानां रक्षणार्थं चन्द्रशेखरेण शिवेन अग्निमुखे संचितं सूर्यातिक्रमणकारि ओजः अस्ति ।

**सञ्जीवनी**—तत्रेति । तत्र देवगिरौ नियता वसतिर्यस्य तम् । नित्यसंनिहितमित्यर्थः । (पुरा किल तारकाख्यासुरविजयसंतुष्टः सुरप्रार्थनावशाद् भगवान् भवानीनन्दनः स्कन्दो नित्यमहमिह सह शिवाभ्यां वसामीत्युक्त्वा तत्र वसतीति प्रसिद्धिः ।) स्कन्दं कुमारं स्वामिनम् । पुष्पाणां मेघः पुष्पमेघः । पुष्पेघीकृतात्मा कामरूपत्वात्पुष्पवर्षुकमेघीकृतविग्रहः सन्व्योमगङ्गाजलार्द्रैः पुष्पासारैः पुष्पसंपातैः । 'धारासंपात आसारः' इत्यमरः । भवान्स्वयमेव स्नपयत्वभिषिञ्चतु । स्वयंपूजाया उत्तमत्वादिति भावः । (यथा च शंभुरहस्ये—'स्वयं यजति चेद् देवमुत्तमा सोदरात्मजैः । मध्यमा या यजेद् भृत्यैरधमा याजनक्रिया ।' इति) स्कन्दस्य पूज्यत्वसमर्थनेनार्थेनार्थान्तरं न्यस्यति-रक्षति । तत् भगवान् स्कन्द इत्यर्थः । (विधेयप्राधान्यान्नपुंसकनिर्देशः ।) वासवस्येमा वासव्याः । ('तस्येदम्' इत्यण् ।) तासां वासवीनामैन्द्रीणां चमूनां सेनानां रक्षाहेतोः रक्षायाः कारणेन । रक्षार्थमित्यर्थः । ('षष्ठी हेतुप्रयोगे' इति षष्ठी ।) नवशशिभृता भगवता चन्द्रशेखरेण । वहतीति वहः । पचाद्यच् । हुतस्य वहो हुतवहो वह्निस्तस्य मुखे संभृतं संचितम् । आदित्यमतिक्रान्तमत्यादित्यम् । ('अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इति समासः ।) तेजो हि साक्षाद्भगवतो हरस्येव मूर्त्यन्तरमित्यर्थः । अतः पूज्यमिति भावः । मुखग्रहणं तु शुद्धत्वसूचनार्थम् । तदुक्तं शंभुरहस्ये—'गवां पश्चाद् द्विजस्याङ्घ्रियोगिनां हृत्कवेर्वर्यः । परं शुचितमं विद्यान्मुखं स्त्रीवह्निवाजिनाम् ।' इति।।४६।।

**टिप्पणी—तत्र स्कन्दं नियतवसतिम्**—वहाँ देवगिरि पर्वत पर भगवान् कार्तिकेय स्थायी रूप से निवास करते हैं, वहीं कार्तिकेय का मन्दिर भी है ।

**पुष्पमेघीकृतात्मा**—इससे पूर्व, पूर्वमेघ श्लोक ६ में मेघ को कामरूप कहा है, अर्थात् इच्छानुसार रूप धारण करने वाला, इसलिये वह अपने आपको पुष्पों की वर्षा करने वाले मेघ के रूप में भी परिणत कर सकता है ।

**व्योमगङ्गा**—गङ्गा की आकाश, पृथ्वी और पाताल तीनों लोकों में स्थिति मानी जाती है तथा क्रमशः देवता, मनुष्य और नागों का सन्ताप हरती है। इसलिये इसे त्रिपथगा भी कहते हैं तथा क्रमशः आकाश गङ्गा, भागीरथी गङ्गा और भोगवती गङ्गा भी कहते हैं—

*"क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागांस्तारयतेऽप्यधः ।*
*दिवि तारयते देवांस्तेन त्रिपथगा स्मृता ॥"*

**नवशशिभृता**— यहाँ नवशशिभृता शब्द का प्रयोग करके महाकवि ने पौराणिक कथा की ओर संकेत किया है, समुद्र मंथन के समय उत्पन्न हलाहल का शिव ने पान किया था तथा उसके प्रभाव को शान्त करने के लिये समुद्र मंथन से निकले हुये चन्द्रमा को उन्होंने धारण किया था । इसीलिये इन्हें नवशशिभृता कहते हैं ।

वैदिक साहित्य में यद्यपि शिव और चन्द्रमा का उल्लेख है, परन्तु शिव द्वारा चन्द्रमा को धारण करने का उल्लेख नहीं है, वाल्मीकि रामायण में समुद्र मंथन की कथा है, परन्तु शिव द्वारा चन्द्रमा को धारण करने का वर्णन नहीं है । यह वर्णन विष्णुपुराण १/९/८२-९७ में वर्णित है ।

**हुतवहमुखे सम्भृतम्**— यह तेज का विशेषण है अर्थात् तारकासुर के वध के लिये देवताओं की प्रार्थना पर महादेव ने अपने वीर्य को पार्वती में आधान किया, जब वे उसको धारण करने में समर्थ न हुईं तो उन्होंने अग्नि के मुख में रख दिया । इसी कथा की ओर महाकवि कालिदास ने यहाँ संकेत किया है । इसके बाद जब अग्नि भी सहन न कर सकी तो उसे गङ्गा में तथा गङ्गा ने उसे सरकण्डों में डाल दिया । इस प्रकार स्कन्द की उत्पत्ति हुई ।

यद्यपि महाभाष्य तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र में स्कन्द का उल्लेख मिलता है, परन्तु स्कन्द की उत्पत्ति की कथा पूर्णरूप से सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड अ० ३६-३७ में मिलती है, जहाँ विश्वामित्र ने इस कथा को राम और लक्ष्मण को सुनाया है । महाभारत

के वन पर्व, शल्य पर्व तथा अनुशासन पर्व में भी यह कथा आयी है । महाभारत में स्क॰ के नाम की सार्थकता इस प्रकार बतायी है—

*स्कन्नत्वात्स्कन्दतां प्राप्तो गुहावासाद् गुहोऽभवत् ।*

अर्थात् वीर्य के स्खलित होने के कारण वे स्कन्द कहलाये तथा गुहा में निवा॰ करने के कारण गुह कहलाये ।

**व्याकरण—नियतवसतिम्**—नियता वसतिः यस्य सः (बहु०) तम्, **नियता**—नि +√यम् + क्त + टाप् । **पुष्पमेघीकृतात्मा**—पुष्पाणां मेघः (ष० त०), अपुष्पमेघः पुष्पमे॰ कृतः (गति त०) पुष्पमेघीकृतः आत्मा यस्यः सः (बहु०), **पुष्पमेघीकृतः**—पुष्पमेघ +च्वि+ कृ + क्त । **पुष्पासारैः**—पुष्पाणाम् आसाराः (ष० त०) तैः । **स्नपयतु**—√स्ना+णिच् +लो॰ प्र० पु० एकव०। **व्योमगङ्गाजलार्द्रैः**—व्योम्नि गङ्गा (स० त०) तस्याः जलम् (ष० त०), ते॰ आर्द्राः (तृ० त०) तैः । **रक्षाहेतोः**—रक्षायाः हेतोः (ष० त०) । **नवशशिभृता**— नवः असौ शशिः (कर्मधा०) तम् विभर्ति इति (उपपद त०) तेन, **शशी**—शश+इनिः, नवशशि॰ +√भृ+क्विप्, तृ० एकव० । **वासवीनाम्**—वासव+अण्+ङीप्, ष० बहुव० । **अत्यादि॰ त्यम्**–आदित्यम् अतिक्रान्तम्, अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया इति वार्तिकेन तत्पुरुष समासः **हुतवहमुखे**—हुतस्य वहः (ष० त०) तस्य मुखम् (ष० त०) तस्मिन्, **हुत**–√हु+क्त **वह**–√वह्+अच् । **सम्भृतम्**—सम्+√भृ+क्त ।

प्रस्तुत श्लोक में **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार है, जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/५) में कि॰ गया है ।

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि वहाँ देवगिरि पर स्थित कार्तिकेय पर पुष्प व॰ करने के उपरान्त अपने गर्जन से कार्तिकेय के वाहन मयूर को नचाना—

**ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी**
**पुत्रप्रेम्णा[1] कुवलयदलप्रापि[2] कर्णे करोति ।**
**धौताऽपाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं[3] मयूरं**
**पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः ॥४७॥**

**अन्वयः**—ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति, हरशशिरुचा धौताऽपाङ्गं पावके तं मयूरं पश्चात् अद्रिग्रहणगुरुभिः गर्जितै॰ नर्तयेथाः ॥४७॥

**शब्दार्थ—ज्योतिर्लेखावलयि**=कान्ति की रेखाओं के मण्डल वाले, **गलितम्** =गिरे हुये, **बर्हम्**=पंख को, **कुवलयदलप्रापि**=कमल की पंखुड़ी के साथ, **हरशशिरुचा** =शिव के सिर पर स्थित चन्द्रमा की कान्ति से, **धौताऽपाङ्गम्**=धुले हुये नेत्र-प्रान्तों वाले, **पावकेः**=कार्तिकेय के, **अद्रिग्रहणगुरुभिः**=पर्वत के द्वारा ग्रहण करने से बढ़े हुये, **गर्जितैः**=गर्जनों से, **नर्तयेथाः**=नचाना ।

**अनुवाद—कान्ति की रेखाओं के मण्डल वाले, गिरे हुये जिसके पंख को पार्वती पुत्र स्नेह से कमल की पंखुड़ी के साथ कान में धारण करती हैं, शिव के सिर पर स्थित चन्द्रमा की कान्ति से धुले हुये नेत्र-प्रान्तों वाले कार्तिकेय के (वाहन)**

---

१. पुत्रप्रीत्या ।
२. ०पदप्रापि, ०दलक्षेपि ।
३. ०रुचाऽऽप्याययेस्तम् ।

उस मयूर को, बाद में पर्वत के द्वारा ग्रहण करने से (अर्थात् प्रतिध्वनि से) बढ़े हुये गर्जनों से नचाना ।।४७।।

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! तत्र तेजोराशिमण्डलयुक्तं पतितं यस्य मयूरस्य पिच्छं पार्वती पुत्रस्नेहेन कमलपत्रसंयोगि यथास्यात् तथा श्रवणे धारयति शिवशिरश्चन्द्रिकाया धवलितनेत्रप्रान्तं कार्तिकेयवाहनं मयूरं पुष्पाभिषेचनान्तरं देवगिरिसंक्रमणमहद्भिः स्तनितैः नृत्यं कारय ।

**सञ्जीवनी**—ज्योतिरति । ज्योतिषस्तेजसो लेखा राजयस्तासां वलयं मण्डलं यस्यास्तीति तथोक्तम् गलितं भ्रष्टम् । न तु लौल्यात्स्वयं छिन्नमिति भावः । यस्य मयूरस्य बर्हं पिच्छम् । 'पिच्छबर्हे नपुंसके' इत्यमरः । भवानी गौरी । पुत्रप्रेम्णा पुत्रस्नेहेन कुवलयस्य दलं पत्रं तत्प्रापि तद्योगि यथा तथा कर्णे करोति । दलेन सह धारयतीत्यर्थः। यद्वा कुवलयस्य दलप्रापि दलभाजि दलार्हे कर्णे करोति । (क्विबन्तात्सप्तमी) दलं परिमहृत्य तत्स्थाने बर्हं धत्त इत्यर्थः । नाथस्तु 'कुवलयदलक्षेपि' इति पाठमनुसृत्य 'क्षेपो निन्दापसारणं वा' इति व्याख्यातवान् ।) हरशशिरुचा हरशिरश्चन्द्रिकया धौतापाङ्गं स्वतोऽपि शौक्ल्यादतिधवलितनेत्रान्तम् । 'अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ' इत्यमरः। पावकस्याग्नेरपत्यं पावकिः स्कन्दः । (अत इञ् इति इञ् ।) तस्य तं पूर्वोक्तं मयूरं पश्चातु- ष्पाभिषेचनान्तरमद्रेर्देवगिरेः कर्तुः । ग्रहणेन गुहासंक्रमणेन गुरुभिः । प्रतिध्वनिमहद्भिरित्यर्थः । गर्जितैर्नर्तयेथाः नृत्यं कारय । मार्दङ्गिकभावेन भगवन्तं कुमारमुपास्वेति भावः । ('नर्तयेथाः') इत्यत्र 'अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्' इत्यात्मनेपदापवादः । 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' इति परस्मैपदं न भवति तस्य 'न पाम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः' इति प्रतिषेधात्) ।।४७।।

**टिप्पणी**—**पुत्रप्रेम्णा**—मयूर कार्तिकेय का वाहन माना जाता है और पार्वती अपने कानों में कमल की पंखुड़ी धारण करती थीं, परन्तु पुत्र कार्तिकेय से स्नेह रखने के कारण वे मयूर के गिरे हुये पंख को कानों मे धारण करती हैं ।

**कुवलयदलप्रापि**—आचार्य मल्लिनाथ ने दो प्रकार से इसका अर्थ किया है—**एक**—करोति का विशेषण मानकर, *कुवलयस्य दलं कुवलयदलं तत्प्रापि यथा स्यात् तथा* अर्थात् कमल की पंखुड़ी के साथ कान में धारण करती हैं । दूसरे—कर्णे का विशेषण मानकर *कुवलयदलं प्राप्नोतीति कुवलयदलप्राप् तस्मिन्* अर्थात् कुवलयदल को प्राप्त करने वाले (कान में) मयूर पंख को धारण करती हैं ।

**पावकेः**—पौराणिक कथा के अनुसार स्कन्द का जन्म अग्नि से हुआ है । शिव के वीर्य को अग्नि ने मुख में धारण किया था, इसलिये इसे पावकि, अग्निभू कहा जाता है ।

**व्याकरण**— **ज्योतिर्लेखावलयि**—ज्योतिषः लेखाः तासां वलयम् (ष० त०) तत् अस्ति अस्य इति ज्योतिर्लेखावलय+इनिः । **गलितम्**—√गल+क्त । **भवानी**—√भव+आनुक् +ङीष् । **पुत्रप्रेम्णा**—पुत्रस्य प्रेम्णा (ष० त०) । **कुवलयदलप्रापि**—कुवलयस्य दलं (ष० त०) तत् प्राप्नोति यथास्यात् तथा (कृदन्त, उप० त०) अथवा कुवलयदल+प्र+√आप्+णिनि, स० एकव० । **धौताऽपाङ्गम्**—धौतौ अपाङ्गौ यस्य तम् (बहु०) । **हरशशिरुचा**—हरस्य शशिः (ष० त०) अथवा हरशिरः स्थितः शशी (मध्यम पदलोपी स०) तस्य रुक् (ष० त०) तया । **पावकेः**—पावकस्यापत्यं पुमान् पावकिः पावक+इञ् । **अद्रिग्रहणगुरुभिः**—अद्रेः ग्रहणं (ष० त०) तेन गुरूणि (तृ० त०) तैः । **गर्जितैः**—√गर्ज्+क्त (भावे) । **नर्तयेथाः**—√नृत्+णिच् (नर्तय्), आत्मनेपद, विधिलिङ्, म० पु० एकव० ।

प्रस्तुत श्लोक में **उपमा** तथा **तद्गुण** अलङ्कार है । उपमा अलंङ्कर का लक्षण (पूर्वमेघ/१५) में दिया है । तद्गुण का लक्षण इस प्रकार है—

*"तद्गुणः स्वगुणत्यागादत्युत्कृष्टगुणग्रहः ।"* (सा० द० १० /९०) 

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को निर्देश देता है कि तुम देवगिरि से आगे बढ़कर चर्मण्वती नदी का सम्मान करते हुये नीचे उतरकर ठहर जाना—

**आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा**
**सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः[1] ।**
**व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्य-**
**स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ॥४८॥**

**अन्वयः**—एनं शरवणभवं देवम् आराध्यं वीणिभिः सिद्धद्वन्द्वैः जलकणभयात् मुक्तमार्गः (सन्) उल्लङ्घिताध्वा सुरभितनयालम्भजां भुवि स्रोतोमूर्त्या परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिं मानयिष्यन् व्यालम्बेथाः ॥४८॥

**शब्दार्थ**—**शरवणभवम्**=सरकण्डों के वन में उत्पन्न, **वीणिभिः सिद्धद्वन्द्वैः**= वीणाधारी सिद्ध युगलों द्वारा, **जलकणभयात्**=जल कणों के भय से, **मुक्तमार्गः**=छोड़े गये मार्ग वाले, **उल्लङ्घिताध्वा**=मार्ग तय करके, **सुरभितनयालम्भजाम्**=गवालम्भ यज्ञ से उत्पन्न, **स्रोतोमूर्त्या**=नदी रूप में परिवर्तित, **मानयिष्यन्**=सम्मान करते हुये, **व्यालम्बेथाः**=झुक जाना ।

**अनुवाद**—**इस सरकण्डों के वन में उत्पन्न देव (कार्तिकेय) की आराधना करके वीणाधारी सिद्धयुगलों द्वारा जल कणों के भय से छोड़े गये मार्ग वाले (तुम, कुछ) मार्ग तय करके गवालम्भ यज्ञ से उत्पन्न पृथ्वी पर नदी रूप में परिवर्तित हुई रन्तिदेव की कीर्ति का सम्मान करते हुये झुक जाना ॥४८॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! एनं बाणतृणवनजन्मानं स्वामिनं कार्तिकियम् उपास्य वीणाधारिभिः सिद्धयुगलैः जलबिन्दुत्रासात् त्यक्तमार्गः सन् अतिकान्तमार्गः गोसंज्ञपनजातां पृथिव्यां प्रवाहरूपेण रूपान्तरमापन्नां रन्तिदेव एतन्नामकस्य राज्ञः यशःरूपां चर्मण्वती नदीं सत्कारमिष्यन् आलम्ब्यावतरेरित्यर्थः ।

**सञ्जीवनी**—आराध्येति । एनं पूर्वोक्तं शरा बाणतृणानि । 'शरो बाणे बाणतृणे' इति शब्दार्णवे । तेषां वनं शरवणम् । ('प्रनिरन्तःशरे'—इत्यादिना णत्वम् ।) तत्र भवो जन्म यस्य तं शरवणभवम् । ('अवर्ज्यो बहुव्रीहिर्व्यधिकरणो जन्माद्युत्तरपदः' इति वामनः । अवर्ज्योऽगतिकत्वादाश्रयणीय इत्यर्थः ।) देवं स्कन्दम् । 'शरजन्मा षडाननः' इत्यमरः । आराध्योपास्य । वीणिभिर्वीणावद्भिः । (व्रीह्यादित्वादिनिः ।) सिद्धद्वन्द्वैः सिद्धमिथुनैः । भगवन्तं स्कन्दमुपवीणयितुमागतैरिति भावः । जलकणभयात् । जलसेकस्य वीणावादनं प्रतिबन्धकत्वादिति भावः । मुक्तमार्गस्त्यक्तवर्त्मा सन् उल्लङ्घिताध्वा । कियन्तमध्वानं गत इत्यर्थः । सुरभितनयानां गवामालम्भेन संज्ञपनेन जायत इति तथोक्ताम् । भुवि लोके स्रोतोमूर्त्या प्रवाहरूपेण परिणतां रूपविशेषमापन्नां रन्तिदेवस्य दशपुरपतेर्महाराजस्य कीर्तिम् । चर्मण्वत्याख्यां नदीमित्यर्थः । मानयिष्यन्सत्कारयिष्यन्व्यालम्बेथाः । आलम्ब्यावतरेरित्यर्थः । पुरा किल राज्ञो रन्तिदेवस्य गवानम्भेष्वेकत्र संभृताद्रक्तनिष्यन्दाच्चर्मणाशेः काचिन्नदी सस्यन्दे । सा चर्मण्वतीत्याख्यायत इति ॥४८॥

**टिप्पणी**—**शरवणभवम्**=यह कार्तिकेय का विशेषण है । स्कन्द की उत्पत्ति सरकण्डों के वन में मानते हैं (देखिये टिप्पणी श्लोक ४६) ।

**सुरभितनयालम्भजाम्**=महाभारत वनपर्व अ० २०८ श्लोक ८-१० के अनुसार राजा रन्तिदेव ने गोमेध यज्ञ किया था, उसमें दो सहस्र गायों की बलि दी गयी । उनके विपुल रक्त प्रवाह ने एक नदी का रूप ले लिया, जिस लोग चर्मण्वती कहते थे, आजकल इसे चम्बल कहा जाता है ।

---

१. दत्तमार्गः, दत्तवर्त्मा ।

**रन्तिदेवस्य**—रन्तिदेव की कीर्ति के सम्बन्ध में अनेक कथायें महाभारत के शान्तिपर्व, द्रोणपर्व, वनपर्व में वर्णित हैं । ये संस्कृति के छोटे पुत्र तथा दशपुर के राजा थे । ये दानदाता तथा यज्ञकर्ता के रूप में प्रसिद्ध थे, सपरिवार भूखे रहकर भी ये अतिथियों को दान देकर उनका सम्मान करते थे । महाभारत शान्तिपर्व अ० २९ में यह कथा विस्तृत रूप में वर्णित है तथा भागवत् पुराण स्क० ९ अ० २१ में भी वर्णित है ।

**व्याकरण**—**आराध्य**—आ+√राध्+क्त्वा (ल्यप्) । **शरवणभवम्**—शराणां वनम् (ष० त०) तत्र भवः यस्य सः (बहु०) तम् । **उल्लङ्घिताध्वा**—उल्लङ्घितः अध्वा येन सः (बहु०), **उल्लङ्घित्**—उत्+√लघि (लङ्घ्)+क्त । **सिद्धद्वन्द्वैः**—सिद्धानां द्वन्द्वानि (ष० त०) तैः। **जलकणभयात्**—जलस्य कणाः (ष० त०) तेभ्यः भयात् (प० त०) । **वीणिभिः**—वीणाः सन्ति एषाम् इति वीणा+इनि, तैः । **मुक्तमार्गः**—मुक्तः मार्गः यस्य सः (बहु०) । **व्यालम्बेथाः**—वि+आ+√लम्ब् विधिलिङ्, म० पु० एकव० । **सुरभितनयालम्भजाम्**—सुरभेः तनया (ष० त०) तासाम् आलम्भः (ष० त०) तस्मात् जाता (कृदन्त, उपपद स०) ताम् । **मानयिष्यन्**—√मान् (मानय)+णिच्+शतृ । **स्रोतोमूर्त्या**—स्रोतसः मूर्तिः (ष० त०) तया । **परिणताम्**—परि+√नम्+क्त+टाप् ।

प्रस्तुत श्लोक में **अतिशयोक्ति** अलङ्कार है । इसका लक्षण इस प्रकार है—

*सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते । (सा० द० १०/४६)* □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि जब तुम चर्मण्वती नदी में जल लेने के लिये झुकोगे तब उसकी शोभा इस प्रकार होगी—

**त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे**
**तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम् ।**
**प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो[1] नूनमावर्ज्य दृष्टि-**
**रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥४९॥**

**अवन्यः**—शार्ङ्गिणः वर्णचौरे त्वयि जलम् आदातुम् अवनते, गगनगतयः पृथुम् अपि दूरभावात् तनुं तस्याः सिन्धोः प्रवाहं नूनं दृष्टीः आवर्ज्य एकं स्थूलमध्येन्द्रनीलं भुवः मुक्तागुणम् इव प्रेक्षिष्यन्ते ।

**शब्दार्थ**—**शार्ङ्गिणः**=कृष्ण की, **वर्णचौरे**=क्रान्ति को चुराने वाले, **आदातुम्**=लेने के लिये, **अवनते**=झुकने पर, **गगनगतयः**=आकाश में विचरण करने वाले, **पृथुम् अपि**=विशाल होते हुये भी, **दूरभावात्**=दूर होने के कारण, **तस्याः सिन्धोः**=उस चर्मण्वती के, **दृष्टीः आवर्ज्य**=दृष्टि बाँधकर, **स्थूलमध्येन्द्रनीलम्**=बीच में स्थित स्थूल इन्द्रनील मणि वाले, **भुवः**=पृथ्वी के, **मुक्तागुणम्**=मोतियों का हार, **प्रेक्षिष्यन्ते**=देखेंगे ।

**अनुवाद**—**कृष्ण की कान्ति को चुराने वाले तुम्हारे जल लेने के लिये झुकने पर आकाश में विचरण करने वाले (देवगण) विशाल होने पर भी दूर होने के कारण क्षीण उस चर्मण्वती के प्रवाह को अवश्य ही दृष्टि बाँध कर (इस प्रकार) देखेंगे मानो पृथ्वी के एक लड़े हार के बीच एक स्थूल इन्द्रनील मणि (सुशोभित) हो ॥४९॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! कृष्णस्य कान्त्यपहारके तत्तुल्यवर्णे इत्यर्थः त्वयि सलिलं गृहीतुं लम्बमाने सति स्थूलमपि दूरत्वात् सूक्ष्मं पूर्वोक्ताया नद्याः चर्मण्वत्या इत्यर्थः प्रवाहम्

१. दूरम् ।

आकाशचारिणः निश्चितरूपेण नेत्राणि नमयित्वा एकं पृथुमध्येन्द्रनीलं पृथिव्याः मुक्ताहारम् इव द्रक्ष्यन्ति ।

**सञ्जीवनी**—त्वयीति । शार्ङ्गिणः कृष्णस्य वर्णस्य कान्तेश्चौरे । तत्तुल्यवर्ण इत्यर्थः। त्वयि जलमादातुमवनते सति पृथुमपि दूरत्वात्तनुं सूक्ष्मतया प्रतीयमानं तस्यासिन्धोश्चर्मण्वत्याख्यायाः प्रवाहम् । गगने गतिर्येषां ते गगनगतयः खेचराः सिद्धगन्धर्वादयः । (अयमपि बहुव्रीहिः पूर्वज्जन्माद्युत्तरपदेषु द्रष्टव्यः ।) नूनं सत्यं दृष्टीरावर्ज्य नियम्यैकमेकयष्टिकं स्थूलो महान्मध्यो मध्यमणीभूत इन्द्रनीलो यस्य तं भुवो भूमेर्मुक्तागुणं मुक्ताहारमिव प्रेक्षिष्यन्ते । (अत्र अत्यन्तनीलमेघसङ्गतस्य प्रवाहस्य भूकण्ठमुक्तागुणत्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षैवेयमितीवशब्देन व्यज्यते । निरुक्तकारस्तु 'तत्र तत्रोपमा यत्र इव शब्दस्य दर्शनम्' इतीवशब्ददर्शनादत्राप्युपमैवेति बभ्राम) ।।४९।।

**टिप्पणी—शार्ङ्गिणः वर्णचौरे**—कृष्ण के धनुष का नाम शार्ङ्ग है, इसलिये उसे शार्ङ्गी कहते हैं । कृष्ण का वर्ण श्याम है तथा मेघ का वर्ण भी श्याम है; अतः उसे कृष्ण के वर्ण को चुराने वाला कहा गया है ।

**गगनगतयः**—दिव्य सिद्ध गन्धर्व आदि कुछ देव योनियाँ आकाश में विचरण करती हैं; अतः उनके लिये गगनगति कहा गया है ।

**मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम्**—यहाँ कवि ने कल्पना की है कि जब आकाश में विचरण करने वाले मेघ चर्मण्वती के प्रवाह को देखेंगे तो ऐसा प्रतीत होगा कि मानो वह पृथ्वी का मोतियों का हार हो, जिसमें बीच में इन्द्रनील मणि पिरोया गया हो ।

**व्याकरण—आदातुम्**—आ+√दा+तुमुन् । **अवनते**—अव+√नम्+क्त स० एकव०। **शार्ङ्गिणः**—शृङ्गस्येदं शार्ङ्गम्, तत् अस्य अस्तीति, शार्ङ्ग+इनि । **वर्णचौरे**—वर्णस्य चौरः (ष० त०) तस्मिन् । **प्रवाहम्**—प्र+√वह+घञ् । **प्रेक्षिष्यन्ते**—प्र+√ईक्ष्+लृट् ल० प्र० पु० बहुव० । **गगनगतयः**—गगने गतिः येषाम् ते (बहुव०) । **आवर्ज्य**—आ+√वृज्+णिच्+क्त्वा (ल्यप्) । **दृष्टीः**—दृष्टि द्वितीया बहुव० √दृश्+क्तिन् । **मुक्तागुणम्**—मुक्तानां गुणः (ष० त०) तम् । **स्थूलमध्येन्द्रनीलम्**—मध्यः इन्द्रनीलः (कर्मधा०) स्थूलः मध्यः इन्द्रनीलः यस्य सः (बहु०) तम् ।

प्रस्तुत श्लोक में **निदर्शना** तथा **उत्प्रेक्षा** अलङ्कार है, जिनके लक्षण क्रमशः (पूर्वमेघ/३९) तथा (पूर्वमेघ/१८) में किये गये हैं । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि चर्मण्वती नदी को पार करके दशपुर की स्त्रियों के नयनों के कौतहूल का विषय बनते हुये आगे बढ़ना—

**तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलता विभ्रमाणां**
**पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् ।**
**कुन्दक्षेपानुगमधुकर श्रीमुषामात्मबिम्बं**
**पात्रीकुर्वन्दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ।।५०।।**

**अन्वयः**—ताम् उत्तीर्य आत्मबिम्बं परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां पक्ष्मोत्क्षेपात् उपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणां कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषां दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानां पात्रीकुर्वन् व्रज ।

**शब्दार्थ—उत्तीर्य**=पार करके, **आत्मबिम्बम्**=अपने स्वरूप को, **परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम्**=भौंह रूपी लताओं के विलास से परिचित, **पक्ष्मोत्क्षेपात्**=पलकों को ऊपर उठाने से, **उपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम्**=ऊपर शोभायमान श्याम, श्वेत तथा लाल कान्ति से युक्त, **कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषाम्**=कुन्द पुष्पों के हिलाने का अनुसरण करने वाले भौंरों को चुराने वाले, **दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्**=दशपुर की स्त्रियों के नयनों के कौतूहलों का, **पात्रीकुर्वन्**=पात्र बनाते हुये, **व्रज**=जाना ।

**अनुवाद**—उस (चर्मणवती) को पार करके अपने स्वरूप को, भौंहरूपी लताओं के विलास से परिचित, पलकों को ऊपर उठाने से, ऊपर शोभायमान् श्याम-श्वेत तथा लाल कान्ति से युक्त (और) कुन्द पुष्पों के हिलने-डुलने का अनुसरण करने वाले भौरों की शोभा को चुराने वाले, दशपुर की स्त्रियों के नयनों को कौतूहलों का पात्र बनाते हुये जाना ॥५०॥

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! तां चर्मण्वतीं नदीं पारं कृत्वा स्वमूर्तिं ज्ञातभूवल्लीविलासानां नेत्र लोमोन्नयनात् उर्ध्वशोभमाननीलशबलकान्तीनां कुन्दपुष्प संचलनानुसारिभ्रमरसदृशानां दशपुर-स्त्रीनयनाभिलाषाणां सकौतुकदृष्टीनाम् इत्यर्थः भाजनीकुर्वन् गच्छ ।

**सञ्जीवनी**—तामिति । तां चर्मण्वतीमुत्तीर्य भुवो लता इव भूलताः (उपमितसमासः।) तासां विभ्रमा विलासाः परिचिताः क्लृप्ता येषु तेषाम् । पक्ष्माणि नेत्रलोमनि । 'पक्ष्म सूत्रे च सूक्ष्मांशे किञ्जल्के नेत्रलोमनि' इति विश्वः । तेषामुत्क्षेपादुन्नमनोद्धेतोः । कृष्णाश्च ताः शाराश्च कृष्णशारा नीलशबलाः । ('वर्णो वर्णेन' इति समासः) । 'कृष्णरक्तसिताः शाराः' इति यादवः। (ततश्च शाराशब्दादेव सिद्धे कार्ष्ण्ये पुनः कृष्णपदोपादानं कार्ष्ण्यप्राधान्यार्थम् । रक्तत्वं तु न विवक्षितमुपमानानुसारत्तस्य स्वाभाविकस्य स्त्रीनेत्रेषु सामुद्रिकविरोधादितरस्याप्रसङ्गात् । क्वचिद्भावकथनं तूपपत्तिविषयम् ।) उपरि विलसन्त्यः कृष्णशाराः प्रभा येषां तेषाम् । कुन्दानि माध्यकुसुमानि । 'माध्यं कुन्दम्' इत्यमरः । तेषां क्षेप इतस्ततश्चलनं तस्यानुगा अनुसारिणो ये मधुकरास्तेषां श्रियं मुष्णन्तीति तथोक्तानाम् । क्षिप्यमाणकुन्दानुविधायिमधुकरकल्पनामित्यर्थः दशपुरं रन्तिदेवस्य नगरं वध्वः स्त्रियः । 'वधूर्जाया सुषा स्त्री च' इत्यमरः । तासां नेत्रकौतूहलानां नेत्राभिलाषाणाम्। साभिलाषदृष्टीनामित्यर्थः । आत्मबिम्बं स्वमूर्ति पात्रीकुर्वन विषयीकुर्वन् व्रज गच्छ ॥५०॥

**टिप्पणी—कुन्दक्षेपानुगमधुकर**—यहाँ कवि ने कल्पना की है कि कुन्दपुष्प श्वेत होता है और भ्रमर उसके पीछे मतवाले हो जाते हैं । यदि कोई कुन्द की शाखा को हिला दे तो भ्रमर भी शाखा के पीछे-पीछे दौड़ते हैं । मेघ के दर्शन से दशपुर की स्त्रियों के नेत्र ऐसे लग रहे हैं जैसे श्वेत कुन्द पुष्प के साथ-साथ भ्रमर चल रहा हो ।

**दशपुर**—दशपुर रन्तिदेव की राजधानी थी । इसकी स्थिति के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं । आप्टे के अनुसार आधुनिक धौलपुर दशपुर है । कुछ विद्वानों का विचार है कि आधुनिक मन्दसौर अथवा दसौर ही दशपुर है ।

**व्याकरण—उत्तीर्य**—उद्+√तृ+क्त्वा (ल्यप्) । **व्रज**—√व्रज्+लोट् म० पु० एकव० । **परिचितभूलताविभ्रमाणाम्**—भुवः लता इव इति भूलताः (उपमित स०), तासां विभ्रमाः (ष० त०), परिचिताः भूलता विभ्रमाः येषु तानि (बहु०) तेषाम् । **परिचितः**—परि+√चि+क्त । पक्ष्मोत्क्षेपात्—पक्ष्मणाम् उत्क्षेपः (ष० त०) तस्मात्, **उत्क्षेप**—उत्+√क्षिप्+घञ् । **उपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम्**—कृष्णाश्च ताः शाराश्च इति कृष्णशाराः (कर्मधा०), उपरि विलसन्त्यः (सुप्सुपा स०), उपरिविलसन्त्यः कृष्णशाराः प्रभाः येषां तानि (बहु०) तेषाम् । **कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषाम्**—कुन्दानां क्षेपः (ष० त०) तस्य अनुगाः (ष० त०) तादृशः मधुकराः (कर्मधा०) तेषां श्री (ष० त०) ताम् मुष्णाति इति (कृदन्त, उपपद त०), **क्षेपः**—√क्षिप्+घञ्, **अनुग**—अनु+√गम्+ड, **श्रीमुषाम्**—श्री+√मुष्+क्विप् । पात्रीकुर्वन्—पात्र+च्वि+√कृ+शतृ । **दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्**—दशपुरस्य वध्वः (ष० त०) तासां नेत्राणि तेषां कौतूहलानि (ष० त०) तेषाम् ।

प्रस्तुत श्लोक में **निदर्शना** व **उपमा** अलङ्कार है । जिनका लक्षण क्रमशः (पूर्वमेघ/३९) व (पूर्वमेघ/१५) में किया गया है ।

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि दशपुर के बाद तुम कुरुक्षेत्र में पहुँचना—

**ब्रह्मावर्तं जनपदमथ[1]च्छायया गाहमानः**
**क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः ।**
**राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा**
**धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि[2] ॥५१॥**

**अन्वयः**—अथ ब्रह्मावर्तं जनपदं छायया गाहमानः क्षत्रप्रधनपिशुनं तत् कौरवं क्षेत्रं भजेथाः, यत्र गाण्डीवधन्वा शितशरशतैः राजन्यानां मुखानि धारापातैः कमलानि त्वमिव अभ्यवर्षत् ॥५१॥

**शब्दार्थ**—**गाहमानः**=प्रवेश करते हुये, **क्षत्रप्रधनपिशुनम्**=क्षत्रियों के युद्ध के सूचक, **कौरवं-क्षेत्रम्**=कुरुक्षेत्र का, **भजेथाः**=सेवन करना, **गाण्डीवधन्वा**=गाण्डीव धनुष को धारण करने वाले, **शितशरशतैः**=सैंकड़ों तीक्ष्ण वाणों से, **राजन्यानाम् मुखानि**=राजाओं के मुखों पर, **धारापातैः**=धारा वृष्टि से, **अभ्यवर्षत्**=वर्षा की थी ।

**अनुवाद**—**इसके बाद ब्रह्मावर्त नामक जनपद में (अपनी) छाया द्वारा प्रवेश करते हुए (तुम) क्षत्रियों के युद्ध के सूचक कुरुक्षेत्र का सेवन करना, जहाँ गाण्डीव धनुष को धारण करने वाले (अर्जुन) ने असंख्य तीक्ष्ण बाणों की राजाओं के मुखों पर वर्षा की थी, जिस प्रकार तुम जलधाराओं की वर्षा कमलों पर करते हो ॥५१॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ! तदनन्तरम् ब्रह्मावर्तम् एतन्नामकं प्रदेशं छायया प्रविशन् क्षत्रिययुद्धसूचकं प्रसिद्धं कुरुक्षेत्रस्थानं सेवस्व, यत्र गाण्डीवधनुर्धारी अर्जुनः असंख्यतीक्ष्णवाणैः राज्ञां मुखानि जलधारावृष्टिभिः पंकजानि मेघः इव वृष्टवान् ॥५१॥

**सञ्जीवनी**—ब्रह्मावर्तमिति । अथानन्तरं ब्रह्मावर्तं नाम जनपदं देशम् । (अत्र मनुः— 'सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् । तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ।' इति ।) छाययाऽनातपमण्डलेन गाहमानः प्रविशन्न तु स्वरूपेण । ('पीठक्षेत्राश्रमादीनि परीवृत्यान्यतो व्रजेत्' इति वचनात् ।) क्षत्रप्रधनपिशुनम् । अद्यापि शिरःकपालादिमत्तया कुरुपाण्डवयुद्धसूचकमित्यर्थः । 'युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्' इत्यमरः । तत्प्रसिद्धम् । कुरूणामिदं कौरवं क्षेत्रं भजेथाः । कुरुक्षेत्रं व्रजेत्यर्थः । यत्र कुरुक्षेत्रे गाण्ड्यस्यास्तीति गाण्डीवं धनुर्विशेषः । ('गाण्ड्यजगात्संज्ञायाम्' इति मत्वर्थीयो व प्रत्ययः ।') 'कपिध्वजस्य गाण्डीव-गाण्डिवौ पुंनपुंसकौ' इत्यमरः । तद्धनुर्यस्य स गाण्डीवधन्वाऽर्जुनः । (वा संज्ञायाम् इत्यनङादेशः ।) शितशरशतैर्निशितवाणसहस्रैः राजन्यानां राज्ञां मुखानि धाराणामुदकधाराणां पातैः कमलानि त्वमिवाभ्यवर्षदभिमुखं वृष्टवान् । शरवर्षेण शिरांसि चिच्छेदेत्यर्थः ॥५१॥

**टिप्पणी**—**ब्रह्मावर्तम्**—मनुस्मृति के अनसार सरस्वती और दृषद्वती नदियों के बीच स्थित स्थान को ब्रह्मावर्त कहा जाता है—

*सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।*
*तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥ (मनु २/१७)*

**छायया गाहमानः**—यक्ष मेघ को निर्देश देता है कि वह छाया द्वारा ही ब्रह्मावर्त में प्रवेश करे, शरीर से नहीं; क्योंकि पवित्र स्थलों को लाँघना नहीं चाहिए । कहा भी है—*'पीठक्षेत्राश्रमादीनि परिवृत्यान्यतो व्रजेत्'*। ब्रह्मावर्त भी पूजनीय प्रदेश है अतः इसी कारण उसे न लाँघने को कहा है ।

---

१. अधः अदः ।
२. ०न्यभ्यषिञ्चन्मुखानि ।

**क्षत्रप्रधनपिशुनम्**—कहा जाता है कि महाभारत के युद्ध में मारे गये मनुष्यों के रुधिर से वहाँ की भूमि अब भी लाल है। अब भी वहाँ मनुष्यों के कपाल, अस्थि आदि निकल आते हैं। इसलिये इसे युद्ध के चिह्नों से युक्त कहा गया है।

**कौरवं क्षेत्रम्**—कुरुक्षेत्र थानेसर से दक्षिण-पूर्व दिशा में स्थित प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। शतपथ ब्राह्मण में भी इसे धर्मक्षेत्र कहा गया है। यहाँ सूर्यकुण्ड या ब्रह्मसर नाम का तालाब है। जिस पर सूर्य ग्रहण के अवसर पर धार्मिक मेला लगता है। महाभारत का युद्ध इसी क्षेत्र में हुआ था।

**गाण्डीवधन्वा**—गाण्डीव अर्जुन के धनुष का नाम है। कहा जाता है कि यह धनुष सोम ने वरुण को तथा वरुण ने अग्नि को दिया था। खाण्डव को जलाने के समय अग्नि से यह अर्जुन को प्राप्त हुआ।

**व्याकरण**—**ब्रह्मावर्तम्**—ब्रह्मणः आवर्तम् (ष० त०) अथवा ब्रह्मणः आवर्तः यस्मिन् (बहु०) तम्, **आवर्त**—आ+√वृत्+घञ् (भावे)। **जनपदम्**—जनानां पदम् (ष० त०)। **गाहमानः**—√गाह्+शप्+मुक्+शानच्। **क्षत्रप्रधनपिशुनम्**—क्षत्राणां प्रधनं (ष० त०) तस्य पिशुनम् (ष० त०), **प्रधनम्**—प्र+√धा+ल्युट्। **कौरवम्**—कुरूणामिदं कुरु+अण्। **भजेथाः**—√भज्+विधिलिङ् म० पु० एकव०। **राजन्यानाम्**—राज्ञोऽपत्यं राजन्यः राजन्+यत् ष० बहुव०। **शितशरशतैः**—शिताः शराः (कर्मधा०), तेषां शतानि (ष० त०) तैः। **गाण्डीवधन्वा**—गाण्डीवं धनुः यस्य सः (बहु०)। **धारापातैः**—धाराणां पातैः (ष० त०)। **अभ्यवर्षत्**—अभि+√वृष्+लङ् प्र० पु० एकव०।

प्रस्तुत श्लोक में **उपमा** अलङ्कार है। इसका लक्षण (पूर्वमेघ/१५) में किया गया है। □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि सरस्वती नदी के जल का पान करके अन्तःकरण को पवित्र कर लेना—

**हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां**
**बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे।**
**कृत्वा तासामधिगममपां[1] सौम्य सारस्वतीना-**
**मन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥५२॥**

**अन्वयः**—सौम्य ! बन्धुप्रीत्या समरविमुखः लाङ्गली अभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां हालां हित्वा याः सिषेवे तासां सारस्वतीनाम् अपाम् अधिगमं कृत्वा त्वम् अपि अन्तः शुद्धः भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥५२॥

**शब्दार्थ**—**बन्धुप्रीत्या**=बन्धुओं के स्नेह के कारण, **समरविमुखः**=युद्ध से पराङ्मुख, **लाङ्गली**=हल को धारण करने वाला, **अभिमतरसाम्**=अभीष्ट स्वाद वाली, **हालां हित्वा**=मदिरा को छोड़कर, **सिषेवे**=सेवन किया, **अपाम्**=जलों को, **अधिगमम्**=प्राप्त, **वर्णमात्रेण**=केवल रंग से।

**अनुवाद**—**बन्धुओं के स्नेह के कारण युद्ध से पराङ्मुख, हल धारण करने वाले (बलराम) ने अभीष्ट स्वाद वाली और रेवती की आँखों के प्रतिबिम्ब वाली मदिरा को छोड़कर जिस (जल) का सेवन किया था, उस सरस्वती नदी के जलों को प्राप्त करके तुम भी हृदय से शुद्ध हो जाओगे, केवल रंग से ही श्याम (रहोगे)।॥५२॥**

**संस्कृत-टीका**—हे सुभग ! कुरुपाण्डवस्नेहेन युद्धविमुखः हलधरः बलराम इष्टस्वादां

रेवतीनेत्रचिह्नां सुरां त्यक्त्वा जलानि सेवितवान् तासां सरस्वतीसम्बन्धिनीनां सलिलस्य सेवनं कृत्वा त्वमपि शुद्धान्त:करण: भविष्यति केवलं वर्णेनैव श्याम: स्थास्यसि ।

**सञ्जीवनी**—हित्वेति । बन्धुप्रीत्या कुरुपाण्डवस्नेहेन । न तु भयेन । समरविमुखो युद्धनि:स्पृह: । लाङ्गलमस्यास्तीति लाङ्गली हलधर: । अभिमतरसामभीष्टस्वादां तथा रेवत्या स्वप्रियाया लोचने एवाङ्क: प्रतिबिम्बतत्वाच्चिह्नं यस्यास्तां हालां सुराम् । 'सुरा हलिप्रिया हाला' इत्यमर: । ('अभिप्रयुक्तं देशभाषापदमित्यत्र सूत्रं हालेति देशभाषापदमप्यतीव कविप्रयोगात्साधु' इत्युदाजहार वामन: । ) हित्वा त्यक्त्वा । दुस्त्यजाभविता । ('ण्वुल्तृचौ इति तृच् ।) अपि त्वम् एव पूतो भविष्यसीत्यर्थ:। ('वर्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा' इति वर्त्तमानप्रत्यय:) । वर्णमात्रेण वर्णेन कृष्ण: श्याम:। न तु पापेनेत्यर्थ: । अन्त:शुद्धिरेव सम्पाद्या न तु बाह्या । बहि:शुद्धौ सूतवधप्रायश्चित्तार्थं सारस्वतसलिलसेवी तत्र भगवान् बलभद्र एव निदर्शनम् । अतो भवतापि सरस्वती सर्वथा सेवितव्येति भाव: ।।५२।।

**टिपण्णी**—**रेवतीलोचनाङ्काम्**—रेवती बलराम की पत्नी का नाम है । बलराम को सुरा अत्यन्त प्रिय थी । रेवती उसकी सहचरी होती थी । अत: जब रेवती मद्य प्रस्तुत करती थी तो उसके नेत्रों का प्रतिबिम्ब मद्य में पड़ता था । इसलिए बलराम को और भी अधिक अभीष्ट हो जाती थी । इस प्रकार की शराब छोड़ना यद्यपि बलराम के लिए कठिन था किन्तु सरस्वती के जल के लिए उसने यह भी छोड़ दी थी ।

**बन्धुप्रीत्या**—महाभारत के युद्ध में बलराम न तो कौरवों की ओर से लड़े थे और न पाण्डवों की ओर से, अपितु तटस्थ रहे थे और तीर्थ यात्रा के लिए चले गये थे ।

**लाङ्गली**—हल बलराम का विशेष आयुध है, इसलिए उसे लाङ्गली, हली और हलधर कहा जाता है ।

**या: सिषेवे**—यहाँ सरस्वती के जल की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है । भागवत्-पुराण के १०/१७ के अनुसार महाभारत के युद्ध में तटस्थ बलराम नैमिषारण्य में पहुँचे । वहाँ सभी लोगों ने उनका स्वागत किया, किन्तु सूत ने उनकी उपेक्षा की । इस पर बलराम को क्रोध आ गया और उन्होंने अपने हाथ में स्थित कुश की नोक से उसे मार दिया और फिर प्रायश्चित्त के लिए सरस्वती नदी के जल का पान किया था ।

**सरस्वती**—सरस्वती एक प्रसिद्ध प्राचीन नदी है, जो कुरुक्षेत्र के पास होकर बहती थी । आज यह प्राय: लुप्त है ।

**व्याकरण**—**हित्वा**—√हा (त्यागे)+क्त्वा । **अभिमतरसाम्**—अभिमत: रस: यस्या: ताम् (बहु०), **अभिमत:**—अभि+√मन्+क्त । **रेवतीलोचनाङ्काम्**—रेवत्या: लोचने (ष० त०) ते एव अङ्क: यस्या: ताम् (बहु०) । **बन्धुप्रीत्या**—बन्धूनां प्रीत्या (ष० त०) । **समरविमुख:**—समारात् विमुख: (ष० त०) । **लाङ्गली**—लाङ्गलं अस्य अस्ति इति लाङ्गली लाङ्गल+इनि । **सिषेवे**—√सेव+लिट् प्र० पु० एकव० । **कृत्वा**—√कृ+क्त्वा । **अधिगमम्**—अधि+√गम्+अप्, द्वितीया एकव०। **सौम्य**—सोम+ट्यण् । **सारस्वतीनाम्**—सरस्वत्या: इमा: तासाम् (तद्धित), सरस्वती+अण् +ङीप् (ष० बहु०) । **अन्त: शुद्ध:**—अन्त: शुद्ध: (केवल स०) । **भविता**—√भू+लुट् प्र० एकव० । **वर्णमात्रेण**—वर्ण+मात्रच् तृ० एकव० ।

प्रस्तुत श्लोक में **उदात्त** और **उल्लास** अलङ्कार है ।

**प्रसङ्ग**—कुरुक्षेत्र में सरस्वती के जल का पान करके तुम गङ्गा नदी पर पहुँचना—

**तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां**

**जह्नो: कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम् ।**

**गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां[1] या विहस्येव फेनैः**

**शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥५३॥**

**अन्वयः**—तस्मात् अनुकनखलं शैलराजावतीर्णां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिं जह्नोः कन्यां गच्छेः । गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां फेनैः विहस्य इव इन्दुलग्नोर्मिहस्ता या शम्भोः केशग्रहणम् अकरोत् ॥५३॥

**शब्दार्थ**—**तस्मात्**=वहाँ से (कुरुक्षेत्र से), **अनुकनखलम्**=कनखल के समीप, **शैलराजावतीर्णाम्**=पर्वतराज (हिमालय) से उतरी हुई, **सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम्**=सगर के पुत्रों के लिए स्वर्ग की सीढ़ी, **जह्नोः कन्याम्**=जह्नु की पुत्री, **गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनाम्**=पार्वती के मुख पर भ्रूभङ्ग को, **फेनैः**=झागों से, **विहस्य इव**=मानो उपहास करके, **इन्दुलग्नोर्मिहस्ता**=चन्द्रमा में लगे तरङ्ग रूपी हाथों वाली, **केशग्रहणम्**=बाल को पकड़ना ।

**अनुवाद**—**वहाँ से (कुरुक्षेत्र से) कनखल के समीप पर्वतराज (हिमालय) से उतरी हुई, सगर के पुत्रों के लिए स्वर्ग की सीढ़ी, जह्नु की पुत्री गङ्गा पर जाना । पार्वती के मुख पर भ्रूभङ्ग का झागों से मानो उपहास करके चन्द्रमा में लगे तरङ्ग रूपी हाथ वाली जिस (गङ्गा) ने शिव के बालों को पकड़ा था ॥५३॥**

**संस्कृत-टीका**—कुरुक्षेत्रात् कनखलस्य समीपे हिमालयादवतीर्णां सगरपुत्राणां स्वर्गप्राप्तिसाधनभूतां गङ्गां गच्छ, पार्वतीमुखभ्रूभङ्गं डिण्डीरैः उपहस्य इव चन्द्रलग्नतरङ्गकरा सती या गङ्गा शिवस्य कचग्रहणं कृतवती ।

**सञ्जीवनी**—तस्मादिति । तस्मात्कुरुक्षेत्रात्कनखलस्याद्रेः समीपेऽनुकनखलम् ('अनुर्यत्समया' इत्यव्ययीभावः ।) शैलराजाद्धिमवतोऽवतीर्णां सगरतनयानां स्वर्गसोपानपङ्क्तिम् । स्वर्गप्राप्तिसाधनभूतामित्यर्थः। जह्नोर्नाम राज्ञः कन्यां जाह्नवीं गच्छेर्गच्छ । (विध्यर्थे लिङ् ।) या जाह्नवी गौर्या वक्त्रे या भ्रुकुटिरचना सापत्न्यरोषाद् भ्रूभङ्गकरणं तां फेनैर्विहस्यावहस्येव । धावल्यात्फेनानां हासत्वेनोत्प्रेक्षा । इन्दौ शिरोमाणिक्यभूते लग्ना ऊर्मय एव हस्ता यस्याः सेन्दुलग्नोर्मिहस्ता सती शम्भोः केशग्रहणमकरोत् । यथा काचित्प्रौढा नायिका सपत्नीमसहमाना स्ववाल्लभ्यं प्रकटयन्ती स्वभर्तारं सह शिरोरत्नेन केशेष्वाकर्षति तद्वदिति भावः । इदं च पुरा किल भागीरथप्रार्थनया भगवतीं गगनपथात्पतन्तीं गङ्गां गङ्गाधरो जटाजूटेन जग्राहेति कथामुपजीव्योक्तम् ॥५३॥

**टिप्पणी**—**अनुकनखलम्**—कनखल एक पुराना तीर्थ स्थल है, जो हरिद्वार के पास स्थित है । **स्कन्दपुराण** में कनखल की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है—

*खलः को नात्र मुक्तिं वै भजते तत्र मज्जनात् ।*
*अतः कनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रुर्मुनीश्वराः ॥*

इसके अतिरिक्त यह भी मान्यता है कि यहाँ पर स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता है—

*हरिद्वारे कुशावर्ते विल्वके नीलपर्वते ।*
*स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते ॥*

**जह्नोः कन्याम्**—गङ्गा को जह्नु ऋषि की पुत्री कहा गया है । वाल्मीकि रामायण की एक कथा के अनुसार जब गङ्गा भगीरथ का अनुसरण करते हुए पृथ्वी पर आयी तब मार्ग में स्थित जह्नु ऋषि के आश्रम को भी बहा ले गयी । ऋषि ने इसे गङ्गा का गर्व समझकर इसे पी लिया । देवताओं, ऋषियों आदि को महान् आश्चर्य हुआ और उन्होंने

१. गौरी वक्त्रे भ्रुकुटिरचनाम् ।

जह्नु ऋषि से कहा कि यदि आप गङ्गा को प्रकट कर दें तो आप उसके पिता कहलायेंगे। तब जह्नु ऋषि ने उसे कान से निकाल दिया । तभी से गङ्गा को जह्नु ऋषि की कन्या (जाह्नवी) कहते हैं ।

**सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम्**—वा० रा० बालकाण्ड अ० ३९-४० के अनुसार राजा सगर ने इन्द्र पद प्राप्ति के लिए अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया, परन्तु पर्व के दिन इन्द्र ने राक्षस का रूप बनाकर अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को चुराकर पाताल में कपिल मुनि के आश्रम में बाँध दिया । सगर के साठ हजार पुत्र घोड़े को खोजते हुए कपिल मुनि के आश्रम में पहुँचे और उनको ही उस अश्व का चोर समझ लिया । उन्होंने मुनि का अपमान किया । मुनि ने भी अपने तेज से उन सभी को भस्म कर दिया । जब वे नहीं लौटे तो अंशुमान् ने उनकी भस्मी खोजी तथा मुनि से प्रार्थना की । तब मुनि ने कहा कि यदि गङ्गा स्वर्ग से पृथ्वी पर आ जाये तो इनका उद्धार हो सकता है। इस पर राजा भगीरथ घोर तपस्या करके गङ्गा जी को पृथ्वी पर लाये तथा अपने पितरों का उद्धार किया । इसलिये गङ्गा को सगर पुत्रों के लिये स्वर्ग की सीढ़ी कहा जाता है ।

**गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनाम्**—पौराणिक कथा के अनुसार ब्रह्मा ने भगीरथ से कहा कि तुम तपस्या करके शिव को प्रसन्न करो, जिससे कि वे स्वर्ग से गिरती हुई गङ्गा को सिर पर धारण कर लें । राजा भगीरथ ने वैसा ही किया । इससे यहाँ कवि ने कल्पना की है कि जब शिव ने गङ्गा को सिर पर धारण कर लिया, तब पार्वती का भी सौतिया डाह से भ्रुकुटि तान लेना स्वाभाविक था । इसे देखकर गङ्गा ने अपने झाग से पार्वती का उपहास किया, परन्तु गङ्गा ने प्रौढ़ा नायिका के समान पार्वती की उपेक्षा करके शिव के केश पकड़ लिये ।

**व्याकरण—गच्छे:**—√गम्+विधिलिङ् म० पु० एकव०। **अनुकनखलम्**—कनखलस्य समीपे (अव्ययी० स०) । **शैलराजावतीर्णाम्**—शैलानां राजा (ष० त०) तस्मात् अवतीर्णाम् (ष० त०), **अवतीर्ण**—अव+√तृ+क्त+टाप् । **सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम्**—सगरस्य तनयाः (ष० त०) सगरतनयानाम् सोपानपङ्क्तिः (ष० त०) ताम् । **गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनाम्**—गौर्याः वक्त्रम् (ष० त०) तस्मिन् भ्रुकुटिरचना (स० त०) । **विहस्य**—वि+√हस्+क्त्वा (ल्यप्) । **केशग्रहणम्**—केशनां ग्रहणम् (ष० त०) √ग्रह+ल्युट् । **अकरोत्**—√कृ+लङ् ल० प्र० पु० एकव० । **इन्दुलग्नोर्मिहस्ता**—इन्दौ लग्नाः (स० त०) तादृश्यः ऊर्मयः हस्ताः एव यस्याः सा (बहुव्रीहि) ।

प्रस्तुत श्लोक में **उत्प्रेक्षा** व **रूपक** अलङ्कार हैं, जिनके लक्षण क्रमशः (पूर्वमेघ/१८) एवं (पूर्वमेघ/२९) पर दिये गये हैं ।

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि जब तुम गङ्गा पर पहुँचकर जल ग्रहण करोगे, तब तुम दोनों का मिलन गङ्गा-यमुना की शोभा के समान दिखाई पड़ेगा—

**तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि[1] पश्चार्धलम्बी**
**त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः ।**
**संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसिच्छायया ऽसौ[2]**
**स्यादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेवाऽभि[3]रामा ॥५४॥**

**अन्वयः**—सुगरज इव व्योम्नि पश्चार्धलम्बी त्वं चेत् तस्याः अच्छस्फटिकविशदं

१. पूर्वार्धलम्बी ।
२. सा ।
३. ०नतयमुनासङ्गमेना ।

अम्भ: तिर्यक् पातुं तर्कये:, असौ सपदि स्रोतसि संसर्पन्त्या भवत: छायया अस्थानोपगतयमुनासङ्गमा इवअभिरामा स्यात् ॥५४॥

**शब्दार्थ**—**सुरगज इव**=देवों के हाथी के समान, **व्योम्नि**=आकाश में, **पश्चार्धलम्बी**=पिछले आधे भाग से लटके हुए, **अच्छस्फटिकविशदम्**=स्वच्छ स्फटिक के समान निर्मल, **तर्कये:**=विचार करोगे, **सपदि**=तुरन्त ही, **स्रोतसि**=प्रवाह में, **संसर्पन्त्या**=साथ-साथ चलती हुई, **अस्थानोपगतयमुनासङ्गमा**=भिन्न स्थान में यमुना सङ्गम को प्राप्त हुई सी, **अभिरामा**=सुन्दर, **स्यात्**=हो जायेगी ।

**अनुवाद—देवों के हाथी के समान आकाश में पिछले आधे भाग (के सहारे) से लटके हुए तुम यदि उसके (गङ्गा के) स्वच्छ स्फटिक के समान निर्मल जल को तिरछे होकर पीने का विचार करोगे तो वह (गङ्गा) तुरन्त ही प्रवाह में साथ-साथ चलती हुई आपकी परछाईं से, (प्रयाग से) भिन्न स्थान में यमुना सङ्गम को प्राप्त हुई-सी सुन्दर हो जायेगी ॥५४॥**

**संस्कृत-टीका**—हे जलद ! सुरदिग्गज इव आकाशे पश्चार्धभागेन स्थित्वा पूर्वार्धेन जलोन्मुख: भूत्वा त्वं यदि गङ्गाया: निर्मलं जलं पातुं विचारये:, तर्हि शीघ्रमेव गङ्गाप्रवाहे संक्रामन्त्या प्रयागेतरस्थाने यमुना सङ्गम इव मनोहरा भवेत् ।

**सञ्जीवनी**—तस्या इति । सुरगज इव कश्चिद्दिग्गज इव व्योम्नि पश्चादर्ध पश्चिमार्धमित्यर्थ: । पृषोदरादित्वात्साधु: तेन लम्बत इति पश्चार्द्धलम्बी सन्पश्चार्धभागेन व्योम्नि स्थित्वा। पूर्वार्धेन जलान्मुख इत्यर्थ: । केचित् 'पूर्वार्द्धलम्बी' इति पठन्ति । अच्छस्फटिकविशदं निर्मलस्फटिकावदातं तस्या गङ्गाया अम्भस्तिर्यक्तिरश्चीनं यथा तथा पातुं त्वं तर्कयेर्विचारयेश्चेत् । सपदि स्रोतसि प्रवाहे संसर्पन्त्या भवतश्छायया प्रतिबिम्बेनासौ गङ्गा । अस्थाने प्रयागादन्यत्रोपगत: प्राप्त: यमुनासङ्गमो यया सा तथाभूतेवाभिरामा स्यात् ॥५४॥

**टिप्पणी**—**सुरगज इव**—सुरगज से अभिप्राय यहाँ देवताओं के हाथी से है । दिग्गज आठ माने जाते हैं । अमरकोश के अनुसार ये निम्न हैं—

*ऐरावत: पुण्डरीको वामन: कुमुदोऽञ्जन: ।*
*पुष्पदन्त: सार्वभौम: सुप्रतीकश्च दिग्गजा: ॥*

**अस्थानोपगतयमुनासङ्गमा**—स्थान से भिन्न प्राप्त कर लिया है यमुना का सङ्गम जिसने । भाव यह है कि गङ्गा और यमुना के सङ्गम का स्थान प्रयाग है, किन्तु कवि ने कल्पना की है कि कनखल में गङ्गा पर पहुँचकर जब मेघ जल लेने के लिए नीचे झुकेगा तो उसकी परछाईं से ऐसा लगेगा कि जैसे कनखल में ही गङ्गा-यमुना का सङ्गम उपस्थित हो गया हो । यमुना का जल श्याम होता है और मेघ का रंग भी श्याम है ।

**व्याकरण**—**पातुम्**—√पा+तमुन् । **सुरगज:**—सुराणाम् गज: (ष० त०) । **पश्चार्धलम्बी**—पश्चार्धेन लम्बते (उपपद त०), पश्चार्ध+√लम्ब्+णिनि । **अच्छस्फटिकविशदम्**—अच्छश्चासौ स्फटिक: (कर्मधा०) तदिव विशदम् (उपमित स०) । **तर्कये:**—√तर्क्+विधिलिङ्, म० पु० एकव०। **संसर्पन्त्या**—सम्+√सृप्+शतृ+ङीप् तृतीया एकव०। **स्यात्**—√अस्+विधिलिङ् प्र० पु० एकव०। **अस्थानोपगतयमुनासङ्गमा**—न स्थानम् अस्थानम् (न० त०) यमुनाया: सङ्गम:—यमुनासङ्गम: (ष० त०) अस्थानोपगतो यमुनासङ्गमो यस्या: सा (बहु०) । **अभिरामा**—अभि+√रम्+घञ्+टाप् ।

प्रस्तुत श्लोक में **उपमा** और **उत्प्रेक्षा** अलङ्कार हैं । इनके लक्षण क्रमश: (पूर्वमेघ/१५) व (पूर्वमेघ/१८) में किये गये हैं । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि इसके बाद हिमालय पर पहुँचने पर तुम इस प्रकार दिखायी दोगे जैसे कीचड में सने शिव के बैल हो—

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः ।
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य श्रृङ्गे निषण्णः
शोभां[1] शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् ॥५५॥

**अन्वय:**—आसीनानां मृगाणां नाभिगन्धैः सुरभितशिलं तस्याः एव प्रभवं तुषारैः गौरम् अचलं प्राप्य अध्वश्रमविनयने तस्य श्रृङ्गे निषण्णः शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयां शोभां वक्ष्यसि ॥५५॥

**शब्दार्थ**—**आसीनानाम्**=बैठे हुए, **नाभिगन्धैः**=कस्तूरी की गन्ध से, **सुरभितशिलम्**=सुगन्धित शिलाओं वाले, **प्रभवम्**=उद्गम स्थल, **तुषारैः**=बर्फ से, **गौरम्**=श्वेत, **अचलम्**=पर्वत का, **अध्वश्रमविनयने**=मार्ग की थकान को दूर करने वाले, **निषण्णः**=स्थित, **शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम्**=श्वेत शिव के बैल द्वारा उखाड़ी गयी कीचड़ से तुलना किये जाने योग्य, **वक्ष्यसि**=धारण करोगे ।

**अनुवाद**—**बैठे हुए मृगों की कस्तूरी की गन्ध से सुगन्धित शिलाओं वाले, उस (गङ्गा) के ही उद्गमस्थल, बर्फ से श्वेत पर्वत को प्राप्त करके मार्ग की थकावट को दूर करने वाले उसके शिखर पर स्थित (तुम) श्वेत शिव के बैल द्वारा उखाड़ी गयी कीचड़ से तुलना किये जाने योग्य शोभा को धारण करोगे ॥५५॥**

**संस्कृत-टीका**—उपविष्टानां हरिणानां कस्तूरीगन्धैः सुगन्धितप्रस्तरं गङ्गाया एव उत्पत्तिस्थानं हिमैः सितं पर्वतं गत्वा मार्गपरिश्रमापनोदने हिमालयस्य शिखरे स्थितः सन् त्वं शुभ्रं शिववृषोत्खातकर्दमसमानां कान्तिं धारयिष्यसि ।

**सञ्जीवनी**—आसीनानामिति । आसीनानामुपविष्टानां मृगाणां कस्तूरिकामृगाणाम् । अन्यथा नाभिगन्धानुपपत्तेः । नाभिगन्धैः कस्तूरीगन्धैस्तेषां तदुद्भवत्वात् । अतएव मृगनाभिसंज्ञा च । 'मृगनाभिर्मृगमदः कस्तूरी च' इत्यमरः । अथवा नाभयः कस्तूर्यः 'नाभिः प्रधाने कस्तूर्यां मदे च क्वचिदीरितः' इति विश्वः । तासां गन्धैः सुरभिताः सुरभीकृताः शिला यस्य तं तस्याः गङ्गाया एव प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः कारणम् । तुषारैर्गौरं सितम् । 'अवदातः सितो गौरः' इत्यमरः । अचलं प्राप्य। विनीयतेऽनेनेति विनयम् । (करणे ल्युट् ।) अध्वश्रमस्य विनयनेऽपनोदके तस्य हिमाद्रेः श्रृङ्गे निषण्णः सन् । शुभ्रो यस्त्रिनयनस्य त्र्यम्बकस्य वृषो वृषभः । 'सुकृते वृषभे वृषः' इत्यमरः । तेनोत्खातेन विदारितेन पङ्केन सहोपमेयामुपमातुमर्हां शोभां वक्ष्यसि वोढासि । ('वहतेर्लृट् । त्रिनयन—' इत्यत्र 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' इति णत्वं न भवति 'क्षुभ्नादिषु च' इति निषेधात् ।) तस्याः प्रभवमित्यादिना हिमाद्रौ मेघस्य वैवाहिको गृहविहारो ध्वन्यते ॥५५॥

**टिप्पणी**—**शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम्**—बैल आदि जब सींगों से मिट्टी आदि को उखाड़ते हैं तब उसे उत्खातकेलि कहते हैं । यहाँ कवि ने कल्पना की है कि श्वेत हिम युक्त हिमालय पर स्थित काला मेघ ऐसा लगता है जैसे शिव के नन्दी बैल, ने जो कि श्वेत है, अपने ऊपर उखाड़ी हुई कीचड़ डाल ली हो ।

यहाँ महाकवि ने शिव के लिए त्रिनयन शब्द का प्रयोग कर एक कथा की ओर संकेत किया है, यह कथा महाभारत के अनुशासन पर्व के अ० १४० में आयी है कि एक बार हास-परिहास में पार्वती जी ने शिव के दोनों नेत्र बन्द कर लिए, जिससे सम्पूर्ण संसार में अन्धकार व्याप्त हो गया । तब शिव ने ललाट में तृतीय नेत्र का आविर्भाव किया । शिव का यह नेत्र क्रोध के समय खुलता है; क्योंकि कामदेव भी तृतीय नेत्र की अग्नि से ही भस्म हुआ था ।

---

१. शोभां शुभ्राम्, शुभ्रां शोभाम् ।

**व्याकरण**—**आसीनानाम्**— √आस्+लट्+शानच् । **सुरभितशिलम्**—सुरभिता: शिला: यस्य स: (बहु०) तम् । **नाभिगन्धै:**—नाभे: गन्धै: (ष० त०) । **प्रभवम्**—प्र+√भू+अप् । प्राप्य—प्र+ √आप्+ल्यप् । **वक्ष्यसि**—√वह्+लृट्, म० पु० एकव०। **अध्वश्रमविनयने**—अध्वन: श्रम: (ष० त०) तस्य विनयनम् (ष० त०), **विनयन**—वि+√नी+ल्युट् । **निषण्ण:**—नि+√सद्+क्त। **शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम्**—त्रीणि नयनानि यस्य स: त्रिनयन: (बहु०) त्रिनयनस्य वृष: (ष० त०) शुभ्र त्रिनयनवृष: (कर्मधा०) तेन उत्खात: (तृ० त०) तादृश: पङ्क: (कर्मधा०) तेन उपमेया (तृ० त०) ताम्, **उत्खात**—उत्+√खन्+क्त, **उपमेया**—उप+√मा+यत्+ टाप् ।

प्रस्तुत श्लोक में **उपमा** अलङ्कार है जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/१५) में दिया है ।



**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को निर्देश देता है कि यदि हिमालय को दावानल पीड़ित करे तो उसे तुम शान्त कर देना—

> **तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा**
> **बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः ।**
> **अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-**
> **रापन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ॥५६॥**

**अन्वय:**—वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा उल्काक्षपितचमरीबालभार: दवाग्नि: तं बाधेत चेत् एनं वारिधारासहस्रै: अलं शमयितुम् अर्हसि । हि उत्तमानां सम्पद: आपन्नार्तिप्रशमनफला: (भवन्ति) ॥५६॥

**शब्दार्थ**—**सरति**=चलने पर, **सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा**=देवदारु वृक्षों के तनों की रगड़ से उत्पन्न, **उल्काक्षपितबालभार:**=ज्वालाओं से चमरी गायों के बालों के समूह को जला देने वाली, **दवाग्नि:**=वन की आग, **बाधेत**=पीड़ित करे, **वारिधारासहस्रै:**=हजारों धाराओं से, **शमयितुम्**=शान्त करने के लिए, **आपन्नार्तिप्रशमनफला:**= दु:खी लोगों के कष्टों को शान्त करने रूप फल वाली होती है ।

**अनुवाद**—**वायु के चलने पर देवदारु वृक्षों के तनों की रगड़ से उत्पन्न (तथा) ज्वालाओं से चमरी गायों के बालों के समूह को जला देने वाली वन की आग उस (हिमालय) को पीड़ित करे (तो) (तुम) इस (आग) को जल की हजारों धाराओं से शान्त करने के लिए समर्थ हो; क्योंकि श्रेष्ठ (लोगों) की सम्पत्तियाँ दु:खी लोगों के कष्टों को शान्त करने रूप फल वाली होती हैं ॥५६॥**

**संस्कृत-टीका**—वाते प्रवहति सति देवदारुप्रकाण्डसंघर्षणज: स्फुलिङ्गनिर्दग्धचमरीकेशसमूह: दावानल: हिमालयं चेत् बाधेत तर्हि दावानलं जलधारासहस्रै: पर्याप्तं शान्तं कर्तुं योग्योऽसि, यत: उत्तमपुरुषाणां सम्पद: आर्त्तापन्निवारणप्रयोजना: भवन्ति ।

**सञ्जीवनी**—तमिति । वायौ वनवाते सरति वाति सति सरलानां देवदारुद्रुमाणां स्कन्धा: प्रदेशविशेषा: । 'अस्त्रीप्रकाण्ड: स्कन्ध: स्यान्मूलाच्छाखावधेस्तरो:' इत्यमर: । तेषां संघट्टेन संघर्षणेन जन्म यस्य तथोक्त: । (जन्मोत्तरपदत्वाद् व्यधिकरणोऽपि बहुव्रीहि: साधुरित्युक्तम् ।) उल्काभि: स्फुलिङ्गै: क्षपिता निर्दग्धाश्चमरीणां बालभारा: केशसमूहा येन । दव एवाग्निर्दवाग्निर्वनवह्नि:। 'वने च वनवह्नौ च देवो दाव इतीष्यते' इति यादव: । तं हिमाद्रिं बाधेत चेत्पीडयेद्यदि । एनं दवाग्निं वारिधारासहस्रै: शमयितुमर्हसि । युक्तं चैतदित्याह—उत्तमानां महतां संपद: समृद्धय: आपन्नानामार्तानामार्तिप्रशमनमापन्निवारणमेव फलं प्रयोजनं यासां तास्तथोक्ता हि । अतो हिमाचलस्य दावानलस्त्वया शमयितव्य इति भाव: ॥५६॥

**व्याकरण**—**सरति**—√सृ+शतृ, स० एकव० । **सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा**—सरलानां स्कन्धाः (ष० त०) तेषां संघट्टः (ष० त०) तस्मात् जन्म यस्य सः (बहु०), **संघट्टः**—सम्+√घट्ट्+घञ् । **बाधेत**—√बाध+विधिलिङ् प्र० पु० एकव०। **उल्काक्षपितचमरीबालभारः**—उल्काभिः क्षपितः उल्काक्षपितः (तृ० त०) चमरीणां बालभारः चमरीबालभारः (ष० त०) बालानां भारः बालभारः (ष० त०) उल्काभिः क्षपितः चमरीबालभारः येन सः (बहु०), **क्षपितः**—क्षै+णिच्+क्त । **शमयितुम्**—√शम्+णिच्+तुमुन् । **वारिधारासहस्रैः**—वारीणां धारा (ष० त०) तेषां सहस्राणि (ष० त०) तैः । **आपन्नार्तिप्रशमनफलाः**—आपन्नानां आर्तिः (ष० त०) तस्याः प्रशमनम् (ष० त०) तदेव फलं यस्याः ताः (बहु०), **आपन्नः**—आ+√पद्+क्त, **आर्तिः**—आ+√ऋ+ क्तिन् (भावे), **प्रशमन**—√शम्+ल्युट् ।

प्रस्तुत श्लोक में **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार है जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/५) में दिया गया है ।

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि यदि शरभ आदि आपके मार्ग का उल्लङ्घन करें तो ओलों की वृष्टि से उन्हें अलग कर देना—

**ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मिन्**
**मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम् ।**[1]
**तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्**[2]
**के वा**[3] **न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः**[4] **॥५७॥**

**अन्वयः**— तस्मिन् संरम्भोत्पतनरभसाः ये शरभाः मुक्ताध्वानं भवन्तं सपदि स्वाङ्गभङ्गाय लङ्घयेयुः तान् तुमलकरकावृष्टिपातावकीर्णान् कुर्वीथाः । निष्फलारम्भयत्नाः के वा परिभवपदं न स्युः ॥५७॥

**शब्दार्थ**—**संरम्भोत्पतनरभसाः**=क्रोध के कारण उछलने में वेग वाले, **मुक्ताध्वानम्**=रास्ता छोड़ देने वाले, **सपदि**=शीघ्र, **स्वाङ्गभङ्गाय**=अपने अङ्गों को नष्ट करने के लिए, **लङ्घयेयुः**=लाँघे, **तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्**=भयङ्कर ओलों की वर्षा गिराकर तितर-बितर, **कुर्वीथाः**=कर देना, **निष्फलारम्भयत्नाः**=व्यर्थ काम करने वाले, **परिभवपदम्**=तिरस्कार के विषय, **न स्युः**=नहीं होते ।

**अनुवाद**—**उस (हिमालय) पर क्रोध के कारण उछलने में वेग वाले जो शरभ रास्ता छोड़ देने वाले आपको शीघ्र अपने अङ्गों को नष्ट करने के लिए लाँघे उन्हें भयङ्कर ओलों की वर्षा गिराकर तितर-बितर कर देना अथवा व्यर्थ काम करने वाले कौन तिरस्कार के विषय नहीं होते ॥५७॥**

**संस्कृत-टीका**—हिमालये क्रोधोत्प्लवनवेगाः ये अष्टापदजन्तुविशेषाः त्यक्तशरभोत्पतनमार्गं त्वां शीघ्रमेव निजाङ्गनाशाय अतिक्रामयेयुः शरभान् संकुलवर्षोपलवर्षापातविक्षिप्तान् कुरु व्यर्थकर्मोद्योगाः के वा तिरस्कारभाजनानि न भवन्ति । सर्वे तिरस्कृताः भवन्तीति भावः ।

**सञ्जीवनी**—य इति । तस्मिन् हिमाद्रौ संरम्भः कोपः । 'संरम्भः संभ्रमे कोपे' इति शब्दार्णवः । तेनोत्पतने उत्प्लवने रभसो वेगो येषां ते तथोक्ताः । 'रभसो वेगहर्षयोः' इत्यमरः ।

---

१. ये त्वां मुक्तध्वनिमसहनाः कायभङ्गाय तस्मिन्
दर्पोत्सेकादुपरि शरभा लङ्घयिष्यन्त्यलङ्घ्यम् ।
२. ०करकावृष्टिहासावकीर्णान् ।
३. केषाम्
४. परिभवफलाः ।

ये शरभा अष्टापदमृगविशेषा:। 'शरभ: शलभे चाष्टापदे प्रोक्तो मृगान्तरे' इति विश्व: । मुक्तोऽध्वा शरभोत्प्लवनमार्गो येन तं भवन्तं सपदि स्वाङ्गभङ्गाय लङ्घयेयु:। (संभावनायां लिङ् ।) भवतोऽतिदूरत्वात्स्वाङ्गभङ्गातिरिक्तं फलं नास्ति लङ्घनस्येत्यर्थ: । तान्शरभांस्तुमुला: संकुला: करका वर्षोपला:। 'वर्षोपलस्तु करका' इत्यमर: । तासां वृष्टिस्तस्या: पातेनावकीर्णान्विक्षिप्तान्कुर्वीथा: कुरुष्व । (विध्यर्थेलिङ्)। क्षुद्रोऽप्यधिक्षिपन्प्रतिपक्ष: सद्य: प्रतिक्षेप्तव्य इति भाव: । तथा हि । आरभ्यन्त इत्यारम्भा: कर्माणि तेषु यत्न उद्योग: स: निष्फलो येषां तथोक्ता: । निष्फलकर्मोपक्रमा इत्यर्थ:। अत: के वा परिभवपदं तिरस्कारपदं न स्युर्न भवन्ति । सर्वएव भवन्तीत्यर्थ: । (यदत्र 'घनोपलस्तु करके' इति यादववचनात्करकशब्दस्य नियतपुंल्लिङ्गताभिप्रायेण 'करकाणामावृष्टि:' इति केषांचिद्व्याख्यानं तदन्ये नानुमन्यन्ते । 'वर्षोपलस्तु करका' इत्यमरवचनव्याख्याने क्षीरस्वामिना 'कमण्डलौ च करक: सुगते च विनायक:' इति नानार्थे पुंस्यपि वक्ष्यतीति वदतोभयलिङ्गताप्रकाशनात् । यादवस्य तु पुंल्लिङ्गताविधाने तात्पर्यं न तु स्त्रीलिङ्गतानिषेध इति न तद्विरोधोऽपि । 'करकस्तु करङ्के स्यादाक्रोशे च कमण्डलौ । 'पक्षिभेदे करे चापि करका च धनोपले' इति विश्वप्रकाशवचने तूभयलिङ्गता व्यक्तैवेति न कुत्रापि विरोधवार्ता । अतएव रुद्र:—'वर्षोपलस्तु करका करकोऽपि च दृश्यते' इति) ॥५७॥

**टिप्पणी—संरम्भोत्पतनरभसा:**—यह शरभ का विशेषण है । शरभ को सिंह का प्रतिपक्षी कहा जाता है तथा इसे सिंह से भी शक्तिशाली माना जाता है; अत: मेघ की गर्जन को सिंह की दहाड़ समझकर अहंकार के कारण शरभ का मेघ पर आक्रमण करना स्वाभाविक है । अत: कवि यहाँ मेघ पर आक्रमण की कल्पना करता है ।

**शरभा:**—शरभ का अर्थ स्पष्ट नहीं है । आठ चरणों से युक्त यह एक प्राणी विशेष होता है । आजकल यह प्राप्त नहीं होता है । प्रो० विल्सन ने शरभ को शलभ का रूपान्तर माना है और उसका अर्थ टिड्डा किया है । पुराणों में वर्णित कथा के अनुसार भगवान् विष्णु ने नृसिंह का अवतार लेकर हिरण्यकशिपु को चीरकर मार डाला । जब इतने पर भी उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ और उनके क्रोध से लोक संहार का भय उपस्थित हो गया, तब देवताओं ने महादेव से प्रार्थना की । तब महादेव ने शरभ का रूप धारण कर नृसिंह को परास्त कर संसार को संरक्षण प्रदान किया ।

**व्याकरण—संरम्भोत्पतनरभसा:**—संरम्भेण उत्पतनं (तृ० त०) तस्मिन् रभस: येषां ते (बहु०), **संरम्भ**—सम्+√रम्+घञ्, **उत्पतन**—उत्+√ पत्+ल्युट् । **स्वाङ्गभङ्गाय**—स्वानि च तानि अङ्गानि (कर्मधा०), तेषा भङ्ग: (ष० त०) तस्मै । **मुक्ताध्वानम्**—मुक्त: अध्वा येन, तम् (बहु०), **मुक्त:**—मुच्+क्त । **लङ्घयेयु:**—√लङ्घ्+विधिलिङ् , म० पु० एकव० । **तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्**—तुमुलाश्च ता: करका: (कर्मधा०) तासां वृष्टि: (ष० त०) तस्या: पात: (ष० त०) तेन अवकीर्णा: (तृ० त०) तान्, **पात:**—√पत्+घञ्, **अवकीर्ण**—अव्+√कृ+क्त। **परिभवपदम्**—परिभवस्य पदम् (ष० त०), **परिभव**—परि+√भू+अप् (भावे) । **स्यु:**—√ अस्+विधिलिङ्, प्र० पु० बहुव० । **निष्फलारम्भयत्ना:**—निष्फलाश्च ते आरम्भा: (कर्मधा०), तेषु यत्न: येषाम् ते (बहु०), **आरम्भ**—आ+√रभ्+घञ् (कर्मणि) ।

प्रस्तुत श्लोक में **अर्थान्तरन्यास** और **अनुप्रास** अलङ्कार है । अर्थान्तरन्यास का लक्षण (पूर्वमेघ/५) में दिया गया है । अनुप्रास का लक्षण निम्न है—

*''अनुप्रास: शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।''(सा० द० १०/२ के बाद)* □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को निर्देश देता है कि तुम हिमालय पर स्थित शिव के चरण-चिह्नों की प्रदक्षिणा करना—

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौले:
शश्वत्सिद्धैरुपचितबलिं[1] भक्तिनम्रः परीयाः ।
यस्मिन्दृष्टेकरणविगमादूर्ध्वमुद्धूतपापाः
कल्पिष्यन्ते[2] स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः ॥५८॥

**अन्वयः**—तत्र दृषदि व्यक्तं सिद्धैः शश्वत् उपचितबलिम् अर्धेन्दुमौलेः चरणन्यासं भक्तिनम्रः परीयाः यस्मिन् दृष्टे उद्धूतपापाः श्रद्दधानाः करणविगमात् ऊर्ध्वं स्थिरगणपदप्राप्तये कल्पिष्यन्ते ॥५८॥

**शब्दार्थ**—**दृषदि**=शिला पर, **व्यक्तम्**=प्रकट, **सिद्धैः**=सिद्ध नामक देवों द्वारा, **शश्वत्**=निरन्तर, **उपचितबलिम्**=की गयी पूजा वाले, **अर्धेन्दुमौलेः**=भगवान् शिव के, **चरणन्यासम्**=चरण चिह्नों की, **भक्तिनम्रः**=भक्ति से झुककर, **परीयाः**=प्रदक्षिणा करना, **उद्धूतपापाः**=पाप मुक्त हुए, **करणविगमात्**=शरीर त्याग के, **ऊर्ध्वम्**=बाद, **स्थिरगणपदप्राप्तये**=गणो के शाश्वत पद को प्राप्त करने में, **कल्पिष्यन्ते**=समर्थ होते हैं ।

**अनुवाद**—**वहाँ (हिमालय में) शिला पर प्रकट हुए, सिद्ध नामक देवों द्वारा निरन्तर की गयी पूजा वाले, भगवान् शिव के चरण चिह्नों की भक्ति से झुककर प्रदक्षिणा करना, जिस (चरण चिह्न) को देख लेने पर पाप मुक्त हुए श्रद्धालुजन शरीर त्याग के बाद (शिव के) गणों के शाश्वत पद को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं ॥५८॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! हिमालये कस्मिंश्चित् शिलायां प्रकटितं सदा सिद्धदेवैः रचितपूजाविधिं भगवतः शिवस्य पादन्यासं भक्तिभावावनतः सन् प्रदक्षिणां कुरु, चरणन्यासे अवलोकिते सति निरस्तकल्मषाः सन्तः श्रद्धावन्तः जनाः देहत्यागाद् अनन्तरं शाश्वतगणनाधिगमाय समर्थाः भवन्ति ।

**सञ्जीवनी**—तत्रेति । तत्र हिमाद्रौ दृषदि कस्यांचिच्छिलायां व्यक्तं प्रकटं शश्वत्सदा सिद्धैर्योगिभिः । 'सिद्धिर्निष्पत्तियोगयोः' इति विश्वः । उपचितबलिं रचितपूजाविधिम् । 'बलिः पूजोपहारयोः' इति यादवः । अर्धश्चासाबिन्दुश्चेत्यर्धेन्दुः । 'अर्धः खण्डे समेऽशके' इति विश्वः। स मौलौ यस्य तस्येश्वरस्य चरणन्यासं पादविन्यासम् । भक्तिः पूज्येष्वनुरागस्तया नम्रः सन्परीयाः प्रदक्षिणां कुरु । (परिपूर्वादिणो लिङ् ।) यस्मिनन्पादन्यासे दृष्टे सत्यमुद्धूतपापा निरस्तकल्मषाः सन्तः श्रद्दधानाः विश्वसन्तः पुरुषाः श्रद्धा विश्वासः, आस्तिक्यबुद्धिरिति यावत् । ('श्रदन्तरोरुपसर्गवद् वृत्तिर्वक्तव्या' इति श्रत्पूर्वाद्दधातेः शानच् ।) करणस्य क्षेत्रस्य विगमादूर्ध्वं देहत्यागान्तरम् । 'करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि' इत्यमरः । स्थिरं शाश्वतं गणानां प्रमथानां पदं स्थानम् । 'गणाः प्रमथसंख्यौघाः' इति वैजयन्ती । तस्य प्राप्तये संकल्पन्ते समर्था भवन्ति । (क्लृपेः पर्याप्तिवचनस्यालमर्थत्वात्तद्योगे 'नमः स्वस्ति—' इत्यादिना चतुर्थी । 'अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्' इति भाष्यकारः ।) (अव्यक्तं व्यञ्जयामास शिवः श्रीचरणद्वयम् । हिमाद्रौ शाम्भवादीनां सिद्धये सर्वकर्मणाम् । दृष्ट्वा श्रीचरणं सम्यक् साधकः स्थिरयेत्तनुम् । 'इच्छाधीनशरीरो हि विचरेच्च जगत्त्रयम्' इति शम्भुरहस्ये) ॥५८॥

**टिप्पणी—चरणन्यासम्**—पूर्वी देशों में ऐसी मान्यता है कि पर्वत आदि स्थानों पर देवों तथा सन्तों आदि के निशान होते हैं । शम्भुरहस्य में शिव के पैरों के चिह्नों को श्रीचरणन्यास कहा गया है । चरणन्यास को कुछ लोग हरिद्वार में हर की पैड़ी स्थान मानते हैं ।

---

१. ०उपहित, ०उपहृत ।
२. कल्पन्तेऽस्य, संकल्पन्ते ।

**परीया:**—हिन्दू धर्म में देव आदि की परिक्रमा का विशेष विधान है । इसमें श्रद्धा के साथ भक्त लोग अपने दायें हाथ की ओर देवमूर्ति करके उसका चक्कर लगाते हैं, इसे परिक्रमा कहते हैं ।

**व्याकरण—व्यक्तम्**—वि+√अञ्ज्+क्त । **चरणन्यासम्**—चरणयो: न्यास: (ष० त०)। **न्यास:**—नि+√अस्+घञ् । **अर्धेन्दुमौले:**—अर्धश्चासौ इन्दु: अर्धेन्दु: (कर्मधा०) अर्धेन्दु: मौलौ यस्य स: (बहु०) तस्य । **उपचितबलिम्**—उपचित: बलि: यस्य स: (बहु०) तम्, **उपचित**—उप+√चि+क्त । **भक्तिनम्र:**—भक्त्या नम्र: (तृ० त०), **भक्ति:**—√भज्+क्तिन्, **नम्र**—नम्+र । **परीया:**—परि+√इ+विधिलिङ्, म० पु० एकव० । **करणविगमात्**—करणस्य विगम: (ष० त०) तस्मात्, **विगम**—वि+गम्+अप् (भावे) । **उद्धूतपापा:**—उद्धूतानि पापानि येषां ते (बहु०)। **उद्धूत**—उत्+√धू+क्त । **कल्पिष्यन्ते**—√क्लृप्+लृट् ल० प्र० पु० बहुव० । **स्थिरगणपदप्राप्तये**—गणानां पदम् (ष० त०) स्थिरञ्च तत् गणपदम् (कर्मधा०) तस्य प्राप्ति: (ष० त०) तस्मै । **श्रद्दधाना:**—श्रत्+√धा+शानच् (प्र० बहु०) ।

प्रस्तुत श्लोक में **उल्लास** अलङ्कार है । 

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को निर्देश देता है कि तुम अपने गर्जन से शिव के संगीत को पूर्ण करना—

> **शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः**
> **[1]संरक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः ।**
> **निर्ह्रादन्ते[2] मुरज इव चेत्कन्दरेषु[3] ध्वनिः स्यात्**
> **संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः[4] ॥५९॥**

**अन्वय:**—अनिलै: पूर्यमाणा: कीचका: मधुरं शब्दायन्ते, संरक्ताभि: किन्नरीभि: त्रिपुरविजय: गीयते, कन्दरेषु ते निर्ह्राद: मुरजे ध्वनि: इव स्यात् चेत् तत्र पशुपते: संगीतार्थ: ननु समग्रो भावी ॥५९॥

**शब्दार्थ—पूर्यमाणा:**=भरे जाते हुए, **कीचका:**=बाँस, **संरक्ताभि:**=प्रेम से भरी हुई, **किन्नरीभि:**=किन्नर स्त्रियों द्वारा, **गीयते**=गाया जाता है, **कन्दरेषु**=गुफाओं में, **निर्ह्राद:**=गर्जन, **मुरज:**=नगाड़े के, **ध्वनि: इव**=ध्वनि के समान, **संगीतार्थ:**=संगीत की सामग्री, **समग्र:**=पूर्ण, **भावी**=हो जायेगी ।.

**अनुवाद—वायु से भरे हुए बाँस मधुर शब्द करते हैं, प्रेम से भरी हुई किन्नर स्त्रियाँ त्रिपुर विजय का गान गाती हैं, यदि गुफाओं में तुम्हारा गर्जन नगाड़े के शब्द के समान हो जाये (तो) वहाँ शिव के संगीत की सामग्री निश्चय ही पूर्ण हो जायेगी ॥५९॥**

**संस्कृत-टीका**—वायुभि: पूरिता: क्रियमाणा: वेणुविशेषा: श्रुतिसुखं यथा स्यात् तथा शब्दं कुर्वन्ति, अनुरक्ताभि: किन्नरस्त्रीभि: त्रिपुरविजयस्य गानं गीयते, दरीषु तव शब्द: मुरजध्वनिरिव यदि स्यात् चरणन्याससमीपे शिवस्य संगीतसामग्री निश्चितरूपेण पूर्णा भविष्यति ।

---

१. संसक्ताभि: ।
२. निर्ह्रादी तै: ।
३. कन्दरासु ।
४. समस्त: ।

**सञ्जीवनी**—शब्दायन्त इति । हे मेघ ! अनिलैः पूर्यमाणाः कीचकाः वेणुविशेषाः । 'वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः' इत्यमरः । 'कीचको दैत्यभेदे स्याच्छुष्कवंशे द्रुमान्तरे' इति विश्वः । मधुरं श्रुतिसुखं यथा तथा शब्दायन्ते शब्दं कुर्वन्ति । स्वनन्तीत्यर्थः । ('शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे' इति क्यङ् ।) अनेन वंशवाद्यसम्पत्तिरुक्ता । संसक्ताभिः संयुक्ताभिर्वशवाद्यानुषक्ताभिर्वा । 'संरक्ताभिः' इति पाठे संरक्तकण्ठीभिरित्यर्थः । किन्नरीभिः किन्नरस्त्रीभिः । त्रयाणां पुराणां समाहारस्त्रिपुरम् । ('तद्धितार्थोत्तरपद—' इति समासः) । पात्रादित्वान्नपुंसकत्वम् । तस्य विजयो गीयते । कन्दरेषु दरीषु । 'दरी तु कन्दरी वा स्त्री' इत्यमरः । ते तव निर्ह्रादो मुरजे वाद्यभेदे ध्वनिरिव । मुरजध्वनिरिवेत्यर्थः । स्याच्चेत्तर्हि तत्र चरणसमीपे पशुपतेर्नित्यसंनिहितस्य शिवस्य संगीतम् सम्यग्गीतम् । 'तौर्यत्रिकं तु संगीतं न्यायारम्भे प्रसिद्धके । तूर्याणां त्रितये च' इति शब्दार्णवः । तदेवार्थः संगीतार्थः संगीतवस्तु । 'अर्थोऽभिधेयवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु' इत्यमरः । समग्रः संपूर्णो भावी ननु भविष्यति खलु । ('भविष्यति गम्यादयः' इति भविष्यदर्थे णिनिः) ॥५९॥

**टिप्पणी**—**त्रिपुरविजयः**—पुराणों के अनुसार मय नामक राक्षस ने आकाश, अन्तरिक्ष और पृथ्वी पर सोने, चाँदी और लोहे के तीन नगर बनाये थे । त्रिपुर में स्थित होकर विद्युन्माली, रक्ताक्ष और हिरण्याक्ष देवताओं को सताने लगे । इसके बाद देवताओं ने शिव से प्रार्थना की । शिव ने देवताओं की प्रार्थना से उन दैत्यों पर वाणों की वर्षा की, जिससे वह निष्प्राण होकर गिर पड़े । मय राक्षस ने त्रिपुर में स्थित सिद्धाऽमृत रस के कूप में उन्हें डाल दिया, इससे वे पुनः जीवन धारण करके उन देवताओं को पीड़ित करने लगे । तब फिर विष्णु और ब्रह्मा ने गाय और बछड़ा बनकर त्रिपुर में प्रवेश करके उस रसकूपाऽमृत को पी लिया, तदन्तर शिव ने मध्याह्न में त्रिपुर-दहन किया ।

**व्याकरण**—**शब्दायन्ते**—शब्दं कुर्वन्ति इति, शब्द+क्यङ्=शब्दाय+लट्, प्र० पु० बहु० । **पूर्यमाणाः**—√पृ+शानच् प्र० बहुव० । **संरक्ताभिः**—सम्+√रञ्ज्+क्त+टाप्+तृ० बहुव० । **त्रिपुरविजयः**—त्रयाणां पुराणां समाहारः त्रिपुरम् (द्विगु स०) तस्य विजयः (ष० त०)। **गीयते**— √गै+लट् ल० प्र० पु० एकव० । **स्यात्**—√अस्+विधिलिङ्, एकव० । **निर्ह्रादः**—निर्+√ह्राद+घञ् । **संगीतार्थः**—संगीतस्य अर्थः (कर्मधा०) । **पशुपतेः**—पशूनां पतिः (ष० त०) तस्य । **भावी**—√भू+णिनि ।

प्रस्तुत श्लोक में **पर्याय** और **उपमा** अलङ्कार हैं । उपमा का लक्षण (पूर्वमेघ/१५) में दिया गया है । पर्याय का लक्षण निम्न है—

*"एकं क्रमेणानेकस्मिन् पर्यायः ।" (का० प्र० १०/१८०)* □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि तुम क्रौञ्च पर्वत से उत्तर दिशा की ओर जाना—

**प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य[1] तांस्तान्विशेषान्**
**हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम् ।**
**तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी[2]**
**श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव[3] विष्णोः ॥६०॥**

**अन्वयः**—प्रलेयाद्रेः उपतटं तान् तान् विशेषान् अतिक्रम्य, यत् हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म क्रौञ्चरन्ध्रम् (अस्ति) तेन बलिनियमनाभ्युद्यतस्य विष्णोः श्यामः पादः इव तिर्यगायामशोभी (त्वम्) उदीचीं दिशम् अनुसरेः ॥६०॥

१. उपक्रम्यः ।
२. ०मनुपतेस्तिर्य ।
३. बलिनियमनेऽभ्यु०; बलिनियमनायोद्यतस्य; बलिविमथनाभ्यु० ।

**शब्दार्थ—प्रालेयाद्रेः**=हिमालय पर्वत के, **उपतटम्**=तट के पास, **अतिक्रम्य**=लांघकर, **हंसद्वारम्**=हंसों के द्वार को, **भृगुपतियशोवर्त्म**=भृगुकुल के स्वामी (परशुराम) के यश का मार्ग, **क्रौञ्चरन्ध्रम्**=क्रौञ्च पर्वत का छिद्र, **बलिनियमनाभ्युद्यतस्य**=बलि नामक राक्षस को बाँधने के लिए तत्पर, **श्यामः पाद इव**=काले पैर के समान, **तिर्यगायामशोभी**=तिरछे हुए आकार से शोभा वाला, **उदीचीं दिशम्**=उत्तर दिशा को, **अनुसरेः**=जाना ।

**अनुवाद—हिमालय पर्वत के तट के पास उन विशेष (द्रष्टव्य) वस्तुओं को लाँघकर जो हंसों के द्वार (तथा) भृगुकुल के स्वामी (परशुराम) के यश का मार्ग क्रौञ्च पर्वत का छिद्र है, उसमें बलि नामक राक्षस को बाँधने के लिए तत्पर विष्णु के काले पैर के समान तिरछे हुए आकार से शोभा वाले (तुम) उत्तर दिशा में** जाना ॥६०॥

**संस्कृत-टीका**—हिमाद्रेः तटसमीपे प्रसिद्धान् द्रष्टव्यपदार्थान् उल्लङ्घ्य हँसानां प्रवेशद्वारं परशुरामयशःमार्गभूतं यत् क्रौञ्चछिद्रम् अस्ति तेन बलिराक्षसबन्धनतत्परस्य भगवतः वामनस्य कृष्णवर्णश्चरण इव त्वं तिरश्चीनदैर्घ्यशोभी सन् उत्तरदिशमनुगच्छ ।

**सञ्जीवनी**—प्रालेयाद्रेरिति । प्रालेयाद्रेर्हिमाद्रेरुपतटं तटसमीपे । ('अव्ययं विभक्ति—' इत्यादिनां समीपार्थेऽव्ययीभावः ।) तांस्तान् । (वीप्सायां द्विरुक्तिः) विशेषान्द्रष्टव्यार्थान् । 'विशेषोऽवयवे द्रव्ये द्रष्टव्योत्तमवस्तुनि' इति शब्दार्णवः । अतिक्रम्य अनुसरेर्गच्छेरित्यनागतेन सम्बन्धः । हंसानां द्वारं हंसद्वारम् । मानसप्रस्थायिनो हंसाः क्रौञ्चरन्ध्रेण संचरन्ते इत्यागमः । भृगुपतेर्जामदग्न्यस्य यशोवर्त्म यशःप्रवृत्तिकारणमित्यर्थः । यत्क्रौञ्चस्याद्रेः रन्ध्रमस्ति तेन क्रौञ्चबिलेन बलेर्दैत्यस्य नियमने बन्धनेऽभ्युद्यतस्य प्रवृत्तस्य विष्णोर्व्यापकस्य त्रिविक्रमस्य श्यामः कृष्णवर्णः पादः इव तिर्यगायामेन क्षिप्रप्रवेशनार्थं तिरश्चीनदैर्घ्येण शोभत इति तथाविधः सन्नुदीचीमुत्तरां दिशमनुसरेरनुगच्छ ।

(पुरा किल भगवतो देवाद् धूर्जटेर्धनुरुपनिषदमधीयानेन भृगुनन्दनेन स्कन्दस्य स्पर्धया क्रौञ्चशिखरिणमतिनिशितविशिखमुखेन हेलया मृत्पिण्डभेदं भित्वा ततः क्रौञ्चभेदादेव सद्यः समुज्जृम्भिते कस्मिन्नपि यशःक्षीरनिधौ निखिलमपि जगज्जालमाप्लावितमिति कथा श्रूयते) ॥६०॥

**टिप्पणी—हंसद्वारम्**—पौराणिक प्रसिद्धि के अनुसार वर्षा ऋतु में हंस मानसरोवर जाने के लिए क्रौञ्च रन्ध्र में से होकर जाया करते हैं । इसी कारण इसे 'हंस द्वार' कहा जाता है ।

**भृगुपतियशोवर्त्म**—परशुराम भृगु के कुल में प्रमुख पुरुष माना जाता है, इसलिए इसे भृगुपति या भृगूद्वह कहा जाता है । क्रौञ्चरन्ध्र को परशुराम के यश का मार्ग कहा जाता है । इस विषय में दो कथाएं प्रचलित हैं—

१. जब परशुराम शिव से धनुर्विद्या सीख कर आ रहे थे तो उन्होंने क्रौञ्च पर्वत को बींधकर अपना मार्ग बनाया था, इसलिए क्रौञ्चरन्ध्र को परशुराम के यश का मार्ग कहते हैं ।

२. जब परशुराम कैलाश पर शिव से धनुर्विद्या सीख रहे थे, तब एक दिन कार्तिकेय की क्रौञ्च भेदन की क्रीर्ति की ईर्ष्या के कारण परशुराम ने क्रौञ्च भेदन किया । कारण चाहे जो हो, किन्तु इस कार्य को करके परशुराम की संसार में कीर्ति फैल गयी थी ।

**क्रौञ्चरन्ध्रम्**—महाभारत में इसे मैनाक पर्वत का पुत्र बताया गया है । इसकी भौगोलिक स्थिति अस्पष्ट है ।

**तिर्यगायामशोभी**—क्रौञ्च पर्वत का छिद्र छोटा है और मेघ बड़ा है; अतः उस छिद्र में से मेघ नहीं निकल पायेगा । उसमें से निकलने के लिए उसके तिरछा होकर जाने की कल्पना कवि ने विष्णु के वामन अवतार से की है । तिरछा होने पर उसका आकार लम्बा हो जायेगा, जिससे वह विष्णु के फैले हुए पैर के समान प्रतीत होगा ।

**बलिनियमनाभ्युद्यतस्य विष्णोः**—बलि प्रह्लाद का पौत्र तथा विरोचन का पुत्र था ।

यह असुरों का राजा था तथा दानशीलता के लिए प्रसिद्ध था । विष्णु वामन का अवतार लेकर ब्राह्मण के वेश में बलि के यहाँ पहुँचे और तीन पग पृथ्वी की याचना की और बलि के स्वीकार कर लेने पर पहले पग में पृथ्वी तथा दूसरे पग में आकाश को नाप लिया । तीसरे पग के लिए जब कोई स्थान न रहा तब बलि ने अपना सिर विष्णु के समक्ष रख दिया । विष्णु ने तीसरे पग में उसे नापकर बलि को पाताल भेज दिया ।

**व्याकरण—प्रालेयाद्रेः**—प्रालेयस्य अद्रिः (ष० त०) । **उपतटम्**—तटस्य समीपे (अव्ययीभाव) । **अतिक्रम्य**—अति+√क्रम+ल्यप् । **हंसद्वारम्**—हंसानां द्वारम् (ष० त०) **भृगुपतियशोवर्त्म**—भृगूणां पतिः (ष० त०) तस्य यशः (ष० त०) तस्य वर्त्म (ष० त०) **क्रौचरन्ध्रम्**—क्रौञ्चस्य रन्ध्रम् (ष० त०) । **उदीचीम्**—उद्+√अञ्च्+क्विन्+ङीप् । **तिर्यगायामशोभी**—तिर्यक् च असौ आयामः (कर्मधा०) तेन शोभते इति (उपपद त०), **आयामः**—आ+√यम्+घञ् (भावे), **शोभी**—√शुभ+णिनि । **बलिनियमनाभ्युद्यतस्य**—बलेः नियमनं (ष० त०) तस्मिन् अभ्युद्यतः तस्य (स० त०), **नियमन**—नि+√यम्+ल्युट् (अन्), **अभ्युद्यत**—अभि√+उत्+√यम्+क्त ।

प्रस्तुत श्लोक में **उपमा** व **रूपक** अलङ्कार हैं, जिनके लक्षण क्रमशः (पूर्वमेघ/१५) तथा (पूर्वमेघ/२९) में किये गये हैं ।

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि तुम क्रौञ्च रन्ध्र से निकलने के बाद कैलाश पर्वत पर जाना—

**गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः**
**कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः[1] स्याः ।**
**शृङ्गोच्छ्रायैः[2] कुमुदविशदैर्यो[3] वितत्य स्थितः खं**
**राशीभूतः प्रतिदिनमिव[4] त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥६१॥**

**अन्वय**—ऊर्ध्वं च गत्वा दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः त्रिदशवनितादर्पणस्य कैलासस्य अतिथिः स्याः कुमुदविशदैः शृङ्गोच्छ्रायैः खं वितत्य स्थितः यः प्रतिदिनं राशीभूतः त्र्यम्बकस्य अट्टहासः इव ॥६१॥

**शब्दार्थ—ऊर्ध्वम्**=ऊपर को, **गत्वा**=जाकर, **दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः**=दस मुख वाले (रावण) की भुजाओं द्वारा शिथिल किये शिखरों के जोड़ों वाले, **त्रिदशवनितादर्पणस्य**=देवताओं की स्त्रियों के दर्पण, **स्याः**=होना, **कुमुदविशदैः**=कुमुद पुष्पों के समान श्वेत, **शृङ्गोच्छ्रायैः**=शिखरों की ऊँचाईयों से, **खम्**=आकाश को, **वितत्य**=व्याप्त करके, **स्थितः**=स्थित, **राशीभूतः**=इकट्ठा हुआ, **त्र्यम्बकस्य**=शिव का, **अट्टहासः**=ठहाका ।

**अनुवाद—और ऊपर को जाकर (तुम) दश मुख वाले (रावण) की भुजाओं द्वारा शिथिल किये शिखरों के जोड़ों वाले, देवताओं की स्त्रियों के दर्पण, कैलाश के अतिथि होना, कुमुद पुष्पों के समान श्वेत शिखरों की ऊँचाइयों से आकाश को व्याप्त करके स्थित हुआ जो (कैलाश) मानो, प्रतिदिन इकट्ठा हुआ शिव का अट्टहास (ठहाका) है ॥६१॥**

---

१. ०दर्शनस्या०।
२. तुङ्गोच्छ्रयैः ।
३. कुसुम० ।
४. प्रतिदिशमिव, प्रतिनिशमिव ।

**संस्कृत-टीका**—क्रौञ्चरन्ध्रनिर्गमनान्तरम् उपरि च व्रजित्वा रावणबाहुविश्लेषितसानुसन्धेः देवाङ्गनामुकुरस्य कैलासस्य एतन्नामकस्य पर्वतस्य अतिथिः भवेः तत्र गच्छेः इत्यर्थः। कुमुदवत् उज्ज्वलैः शिखरोन्नतिभिः आकाशं व्याप्य स्थितः कैलासस्य दिने-दिने पुञ्जीभूतः त्रिलोचनस्य अट्टहासः इव (वर्तते) ।

**सञ्जीवनी**—गत्वेति । क्रौञ्चबिलनिर्गमनानन्तरमूर्ध्वं च गत्वा दशमुखस्य रावणस्य भुजैर्बाहुभिरुच्छ्वासिता विश्लेषिताः प्रस्थानां सानूनां संधयो यस्य तस्य । एतेन नयनकौतुकसद्भाव उक्तः । त्रिर्दश परिमाणमेषामस्तीति त्रिदशाः ('संख्याव्यया—' इत्यादिना बहुव्रीहिः ।) 'बहुव्रीहौ संख्येये डच्—' इत्यादिना समासान्तो डच्प्रत्ययः । त्रिदशानां देवानां वनितास्तासां दर्पणस्य । कैलासस्य स्फटिकमयत्वाद्रजतमयत्वाद्वा बिम्बग्राहित्वेनेदमुक्तम् । कैलासस्यातिथिः स्याः । यः कैलासः कुमुदविशदैर्निर्मलैः श्रृङ्गाणामुच्छ्रायैरौन्नत्यैः खमाकाशं वितत्य व्याप्य प्रतिदिनं दिने-दिने राशीभूतस्त्र्यम्बकस्य त्रिलोचनस्याट्टाहासोऽतिहास इव स्थितः । 'अट्टावतिशयक्षौमो' इति यादवः । धावल्याद्धासत्वेनोत्प्रेक्षा । हासादीनां धावल्यं कविसमयसिद्धम् ॥६१॥

**टिप्पणी—दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः**—यहाँ महाकवि ने वा० रा० के उत्तरकाण्ड सर्ग १६ की कथा की ओर संकेत किया है कि जब रावण अपने भाई कुबेर को जीतकर वापिस आ रहा था तभी उसका पुष्पक विमान रुक गया । रावण ने देखा वहाँ शिव के गण खड़े थे । उन्होंने रावण को पर्वत से होकर जाने के लिए मना किया, जब गण नहीं माने तब रावण को बड़ा क्रोध आया और उसने कैलाश पर्वत को उखाड़ फेंकना चाहा। तभी शिव ने पर्वत को अपने पैर के अँगूठे से दबा दिया । पीड़ा से वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा; इसीलिए उसे रावण (रुशब्दे-रवीति इति रावणः) कहने लगे। तब उसने शिव की पूजा की तथा शिव ने प्रसन्न होकर उसे चन्द्रहास नामक खड्ग दी।

**त्रिदशवनितादर्पणस्य**—कैलाश पर्वत इतना निर्मल है कि उसमें देवाङ्गनाएँ अपना मुख देखकर प्रसाधन कर लेती हैं । इसीलिए इसको देवताओं की स्त्रियों का दर्पण कहा गया है । त्रिदश देवता को कहते हैं । इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है—*तिस्रः दशाः येषां ते त्रिदशाः* अर्थात् जिनकी तीन अवस्थाएँ शैशव, कौमार्य और युवावस्था होती हैं, उनकी वृद्धावस्था नहीं होती । दूसरे—*तृतीया दशा येषां ते* अर्थात् जिसकी केवल तृतीय ही अर्थात् युवावस्था ही होती है। तीसरे—*त्रिःदश परिमाणमेषामस्तीति त्रिदशाः* अर्थात् तीन बार दश—तीस अर्थात् ३० वर्ष की अवस्था वाले, देवता सदा तीस वर्ष की अवस्था के ही रहते हैं ।

**त्र्यम्बकस्याट्टहासः**—शिव के अट्टहास का संस्कृत में बहुत वर्णन आया है । हास का वर्ण धवल माना गया है । कैलाश भी धवल है; अतः वह ऐसा लगता है कि जैसे कुछ न होकर केवल शिव का अट्टहास मात्र हो ।

**व्याकरण—गत्वा**—√गम्+क्त्वा, **दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः**—दश मुखानि यस्य सः (बहुव्रीहि) तस्य भुजाः (ष० त०) तैः उच्छ्वासिताः प्रस्थानां सन्धयः यस्य सः (बहु०), **उच्छ्वासित**—उत+√श्वस्+णिच्+क्त । **त्रिदशवनितादर्पणस्य**—तिस्रः दशाः येषां ते त्रिदशाः (बहु०) तेषां वनिताः (ष० त०) तासां दर्पणस्य (ष० त०) । **स्याः**—√अस्+विधिलिङ् म० पु० एकव० । **श्रृङ्गोच्छ्रायैः**—श्रृङ्गाणाम् उच्छ्रायाः तैः (ष० त०) । **कुमुदविशदैः**—कुमुदवत् विशदाः तैः (उपमित त०) । **वितत्य**—वि+√तन्+ल्यप् । **स्थितः**—√स्था+क्त । **राशीभूतः**—अराशिः राशिः भूतः (गति त०), राशि+च्वि+√भू+क्त । **प्रतिदिनम्**—दिनं-दिनं प्रति (अव्ययी स०) । **त्र्यम्बकस्य**—त्रीणि अम्बकानि यस्य सः तस्य (बहु०), **अट्टहासः**—अट्टश्चासौ हासः (कर्मधा०) ।

प्रस्तुत श्लोक में **उपमा** व **उत्प्रेक्षा** अलङ्कार हैं, जिनके लक्षण क्रमशः (पूर्वमेघ/१५) तथा (पूर्वमेघ/१८) में किये गये हैं । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि जब तुम कैलाश की चोटी पर पहुँचोगे तो कैलास पर्वत बलराम की शोभा को धारण करेगा—

**उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे**
**सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य[1] तस्य ।**
**शोभामद्रेः[2] स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री-**
**मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥६२॥**

**अन्वयः**—स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे त्वयि तटगते (सति) सद्यः कृत्त द्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य अद्रेः मेचके वाससि अंसन्यस्ते सति हलभृतः इव स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्रीं शोभाम् उत्पश्यामि ॥६२॥

**शब्दार्थ**—**स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे**=चिकने पिसे हुए काजल के समान कान्ति वाले, **तटगते**=(कैलाश की) चोटी पर पहुँचने पर, **सद्यः**=अभी-अभी, **कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य**=काटे हुए हाथी के दाँत के टुकड़े के समान श्वेत, **तस्य अद्रेः**=उस पर्वत की, **मेचके वाससि**=नीले वस्त्र के, **अंसन्यस्ते**=कन्धे पर रखा हुआ, **सति**=होने पर, **हलभृतः इव**=हलधर (बलराम) के समान, **स्तिमितनयनप्रेक्षणीयाम्**=अपलक नेत्रों से देखी जाने योग्य, **भवित्रीम्**=होने वाली, **शोभाम्**=शोभा को, **उत्पश्यामि**=देखने की सम्भावना करता हूँ ।

**अनुवाद**—**चिकने पिसे हुए काजल के समान कान्ति वाले तुम्हारे (कैलाश की) चोटी पर पहुँचने पर अभी-अभी काटे हुए हाथी के दाँत के टुकड़े के समान श्वेत उसी (कैलाश) पर्वत की नीले वस्त्र के कन्धे पर रखा हुआ होने पर हलधर के समान अपलक नेत्रों से देखी जाने योग्य शोभा को देखने की संभावना करता हूँ ॥६२॥**

**संस्कृत-टीका**—मसृणमर्दितकज्जलकान्तौ मेघे कैलासशिखरारूढे सति सपदिच्छिन्नहस्तिदन्तधवलस्य कैलासस्य नीले वस्त्रे स्कन्धधृते सति बलरामस्य इव निश्चलनेत्रदर्शनीयां कान्तिं भाविनीं संभावयामि ।

**सञ्जीवनी**—उत्पश्यामिति । स्निग्धं मसृणं भिन्नं मर्दितं च यदञ्जनं कज्जलं तस्यामेवाभा यस्य तस्मिंत्वयि तटगते सानुङ्गते सति सद्यः कृत्तस्य छिन्नस्य द्विरददशनस्य गजदन्तस्य छेदवद्गौरस्य धवलस्य तस्याद्रेः कैलासस्य मेचके श्यामले । 'कृष्णे नीलासितश्यामकालश्यामलमेचकाः' इत्यमरः। वाससि वस्त्रेऽसन्यस्ते सति हलभृतो बलभद्रस्येव स्तिमिताभ्यां नयनाभ्यां प्रेक्षणीयां शोभां भवित्रीं भाविनीमुत्पश्यामि । शोभा भविष्यतीति तर्कयामीत्यर्थः। श्रौती पूर्णोपमालङ्कारः ॥६२॥

**टिप्पणी**—**हलभृत इव**—बलराम गौरवर्ण के थे और वे नीले वस्त्र धारण करते थे। जब वे कन्धे पर नीला दुपट्टा रखते थे तो और भी सुन्दर प्रतीत होते थे । इसी की कल्पना कवि ने की है कि कैलाश पर्वत श्वेत है और उस पर काला मेघ बलराम की शोभा को धारण कर लेगा ।

**व्याकरण**—**उत्पश्यामि**—उत्+√दृश (पश्य) लट् लकार उ० पु०, एकव० । **तटगते**—तटं गतः (द्वि० त०) तस्मिन् । **स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे**—स्निग्धञ्च तत् भिन्नं (कर्मधा०) तादृशम् अञ्जनम् (कर्मधा०), तस्य आभा इव आभा यस्य सः (बहु०), **स्निग्ध**—√स्निह+क्त, **भिन्नः**—√भिद्+क्त । **सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य**—सद्यः कृत्तं (सप्सुपा स०) द्विरदस्य दशनः (ष० त०) सद्यः कृत्तञ्च तत् द्विरददशनम् (कर्मधा०) तस्य छेदः (ष० त०) तद्वद् गौरः (उपमित स०) तस्य, **कृत**—√कृत्+क्त । **स्तिमितनयनप्रेक्षणीयाम्**—स्तिमिते नयने (कर्मधा०)

---

१. ०रदन० ।
२. लीलामद्रेः ।

ताभ्यां प्रेक्षणीया (तृ० त०) ताम्, **स्तिमित**—√स्तिम्+क्त, **प्रेक्षणीय**—प्र+√ईक्ष+अनीयर् । **भवित्रीम्**—√भू+तृच्+ङीप् (द्वि० एकव०) । **अंसन्यस्ते**—अंसे न्यस्तम् (स० त०) तस्मिन्, **न्यस्त**—नि+√अस्+क्त । **हलभृतः**—हलं बिभर्ति इति हलभृत् (उपपद त०) तस्य, **हलभृत्**—हल+√भृ+क्विप् ।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलङ्कार है, जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/१५) में दिया गया है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि कैलाश पर्वत पर घूमते हुए भगवान् शङ्कर और पार्वती की सेवा करना—

**हित्वा तस्मिन्[1] भुजगवलयं शम्भुना दत्तहस्ता**
**क्रीडाशैले यदि च विचरेत्[2] पादचारेण गौरी ।**
**भङ्गीभक्त्या[3] विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः**
**सोपानत्वं[4] कुरु[5] मणितटारोहणायाग्रयायी[6] ॥६३॥**

**अन्वयः**—तस्मिन् क्रीडाशैले च भुजगवलयं हित्वा शम्भुना दत्तहस्ता गौरी पादचारेण विचरेत् यदि अग्रयायी स्तम्भितान्तर्जलौघः भङ्गी भक्त्या विरचितवपुः मणितटारोहणाय सोपानत्वं कुरु ॥६३॥

**शब्दार्थ**—**क्रीडाशैले**=क्रीड़ा-पर्वत (कैलाश) पर, **भुजगवलयम्**=सर्प रूपी कड़े को, **हित्वा**=त्याग कर, **दत्तहस्ता**=दिये गये हाथ वाली, **गौरी**=पार्वती, **पादचारेण**=पैदल, **विचरेत्**=विचरण कर रही हो, **अग्रयायी**=आगे जाकर, **स्तम्भितान्तर्जलौघः**=अन्दर जल के प्रवाह को ठोस बनाये हुए, **भङ्गीभक्त्या**=पैड़ियों के आकार में, **विरचितवपुः**=शरीर को बना कर, **मणितटारोहणाय**=मणियों के तट पर चढ़ने के लिए, **सोपानत्वम्**=सीढ़ी का काम ।

**अनुवाद**—**और उस क्रीड़ा पर्वत (कैलाश) पर सर्प रूपी कड़े को त्यागकर शिव द्वारा दिये गये हाथ वाली पार्वती यदि पैदल विचरण कर रही हो, (तो) आगे जाकर (अपने) अन्दर जल के प्रवाह को ठोस बनाये हुए होकर पैड़ियों के आकार में शरीर को बनाकर (तुम) मणियों के तट पर चढ़ने के लिए सीढ़ी का काम करना ॥६३॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! क्रीडाशैले कैलासे सर्पकङ्कणं त्यक्त्वा शिवेन दत्तकरावलम्बा पार्वती यदि चरणसंचारेण विहरेत् तर्हि पुरोगतः प्रतिरुद्धान्तरतोयप्रवाहः पर्वरचनया कल्पितशरीरः सन् रत्नतटाऽरोहणाय सोपानभावं विधेहि ।

**सञ्जीवनी**—हित्वेति । तस्मिन् क्रीडाशैले कैलासे । 'कैलासः कनकाद्रिश्च मन्दरो गन्धमादनः । क्रीडार्थं निर्मिताः शंभोर्देवै क्रीडाद्रयोऽभवन्' इति शंभुरहस्ये । शंभुना शिवेन भुजग एव वलयः कङ्कणं तं हित्वा गौर्या भीरुत्वात्त्यक्त्वा दत्तहस्ता सती गौरी पादचारेण विचरेद्यदि तर्ह्यग्रयायी पुरोगतस्तथा स्तम्भितो घनीभावं प्रापितोऽन्तर्जलस्यौघः प्रवाहो यस्य स तथाभूतः ।

---

१. हित्वा नीलम् तस्मिन्हित्वा ।
२. विहरेत् ।
३. भङ्गी भक्त्या ।
४. सोपानं त्वम् ।
५. कुरु सुखपदारोहणायग्रयायी व्रज पदसुखस्पर्शमारोहणेषु ।
६. ०अग्रचारी ।

भङ्गीनां पर्वणां भक्त्या रचनया विरचितवपुः कल्पितशरीरः सन् मणीनां तटं मणितटं तस्यारोहणाय सोपानत्वं कुरु । सोपानभावं भजेत्यर्थः ॥६३॥

**टिप्पणी—क्रीडाशैले**—देवताओं ने शिव की क्रीड़ा के लिए कुछ पर्वतों की रचना की जिसका वर्णन शम्भुरहस्य में इस प्रकार है—

*"कैलासः कनकाऽद्रिश्च मन्दरो गंधमादनः ।*
*क्रीडार्थं निर्मिताः शम्भोर्देवैः क्रीडाद्रयोऽभवन् ॥"*

**भङ्गीभक्त्या**—पर्वत प्रदेश ऊँचे-नीचे हैं, जिन पर भ्रमण करना एक कठिन काम है, परन्तु यदि उस पर सीढ़ी बन जाये तो भ्रमण करना सरल हो जायेगा । इसलिए यक्ष मेघ से निवेदन करता है कि तुम कैलाश पर सीढ़ी का कार्य करना, जिससे शिव के साथ पार्वती जी सरलता से घूम सकें ।

**व्याकरण—हित्वा**—√हा (त्यागे)+क्त्वा । **भुजगवलयम्**—भुजग एव वलयः (कर्मधा०) तम् । **दत्तहस्ता**—दत्तः हस्तः यस्यै सा (बहु०) । **क्रीडाशैले**—क्रीडायाः शैलः (ष० त०) तस्मिन् । **पादचारेण**—पादाभ्यां चारः (तृ त०) तेन, **चारः**—√चर+घञ् । **विचरेत्**—वि+√चर्+क्त, विधिलिङ् प्र० पु० एकव० । **भङ्गीभक्त्या**—भङ्गीनां भक्तिः (ष० त०) तया । **विरचितवपुः**—विरचितं वपुः येन सः (बहु०), **विरचित**—वि+√रच्+क्त । **स्तम्भितान्तर्जलौघः**—अन्तः स्थितं जलम् अन्तर्जलम् (मध्यम पद लोपी स०), तस्य ओघः (ष० त०) स्तम्भितः अन्तःजलौघः येन सः (बहु०), **स्तम्भित**—√स्तम्भ+क्त । **सोपानत्वम्**—सोपानस्य भावः सोपान+त्व । **कुरु**—√कृ+लोट् म० पु० एकव०। **मणितटारोहणाय**—मणीनां तटम् (ष० त०) तस्मिन् आरोहणम् (स० त०) तस्मै । **आरोहण**—आ+√रुह्+ल्युट् । **अग्रयायी**—अग्र+√या+णिनि ।

प्रस्तुत श्लोक में **रूपक** अलङ्कार है, जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/२९) में दिया गया है ।

□

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि कैलाश पर देवाङ्गनाओं द्वारा फव्वारा बनाये गये तुम उनको गर्जन से डराकर छुटकारा पाना—

**तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं[१]**
**नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम् ।**
**ताभ्यो मोक्षस्तव यदि[२] सखे घर्मलब्धस्य न[३] स्यात्**
**क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भाययेस्ताः[४]॥६४॥**

**अन्वयः**—तत्र अवश्यं सुरयुवतयः वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं त्वां यन्त्रधारागृहत्वं नेष्यन्ति । सखे ! घर्मलब्धस्य तव यदि ताभ्यो मोक्षः न स्यात्, (तर्हि) क्रीडालोलाः ताः श्रवणपरुषैः गर्जितैः भाययेः ॥६४॥

**शब्दार्थ—तत्र**=वहाँ (कैलाश पर्वत पर), **सुरयुवतयः**=देवाङ्गनाएँ, **वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयम्**=कङ्गनों की नोकों के प्रहारों से जल बरसाने वाले, **यन्त्रधारागृहत्वम्**=फव्वारे के रूप में, **नेष्यन्ति**=बना डालेंगी, **घर्मलब्धस्य**=गर्मी से प्राप्त हुए का, **ताभ्यः**=उन (देवाङ्गनाओं) से, **मोक्षः**=छुटकारा, **क्रीडालोलाः**=क्रीड़ा में लगी हुई, **श्रवणपरुषैः**=कानों को कठोर लगने वाले, **गर्जितैः**=गर्जनों से, **भाययेः**=डरा देना ।

---

१. जनितसलिलोद्गारमन्तः प्रवेशम् ।
२. ताभ्यो मोक्षो यदि तव ।
३. शर्मलब्धस्य ।
४. भापयेस्ता, भीषयेस्ताः ।

**अनुवाद**—वहाँ (कैलाश पर्वत) पर अवश्य ही देवाङ्गनाएँ कङ्गनों की नोकों के प्रहारों से जल बरसाने वाले तुमको फव्वारे के रूप में बना डालेंगी। हे मित्र ! गर्मी से प्राप्त हुए तुम्हारा यदि उन (देवाङ्गनाओं) से छुटकारा न होवे (तो) क्रीड़ा में लगी हुई उनको कानों को कठोर लगने वाले गर्जनों से डरा देना ॥६४॥

**संस्कृत-टीका**—तत्र कैलासपर्वते नूनं देवाङ्गना: कङ्कणाऽग्रप्रहारोत्सृष्टजलं मेघं कृत्रिमधारागृहत्वं प्रापयिष्यन्ति। हे मित्र ! निदाघप्राप्तस्य भवत: देवाङ्गनाभ्य: मुक्ति: न स्यात् तदा क्रीडासक्ता: देवाङ्गना: कर्णकटुभि: गर्जनै: त्रासये:।

**सञ्जीवनी**—तत्रेति। तत्र कैलासेऽवश्यं सर्वथा सुरयुवतयो वलयकुलिशानि कङ्कणकोटय:। (शितकोटिवाचिना कुलिशशब्देन कोटिमात्रं लक्ष्यते।) तैरुद्घट्टनानि प्रहारास्तैरुद्गीर्णमुत्सृष्टं तोयं येन तं त्वां यन्त्रेषु धारा यन्त्रधारास्तासां गृहत्वं कृत्रिमधारागृहत्वं नेष्यन्ति प्रापयिष्यन्ति। हे सखे मित्र, धर्मे निदाघे लब्धस्य। (घर्मलब्धत्वं चास्य देवभूमिषु सर्वदा सर्वर्तुसमाहारात्प्राथमिकमेघत्वाद्वा। यथोक्तम्—'आषाढस्य प्रथम—' इति।) तव ताभ्य: सुरयुवतिभ्यो मोक्षो न स्याद्यदि तथा क्रीडालोला: क्रीडासक्ता:। प्रमत्ता इत्यर्थ:। ता: सुरयुवती: श्रवणपरुषै: श्रवणकटुभिर्गर्जितै: करणैर्भाययेस्त्रासये:। (अत्र हेतुभयाभावादात्मनेपदं षुगागमश्च न) ॥६४॥

**टिप्पणी—वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयम्**—कुलिश का अर्थ वज्र होता है जो कि शतकोटि अर्थात् सैकड़ों नोकों वाला कहलाता है, परन्तु यहाँ लक्षण से कुलिश का अर्थ किनारा लिया है। कुछ विद्वानों ने कुलिश का अर्थ वज्र लेकर ही अर्थ किया है। कुछ स्थलों पर *जनितसलिलोद्गारमन्त:प्रवेशम्* पाठ भी मिलता है। किन्तु यह पाठ अधिक सन्तोषजनक नहीं है।

**व्याकरण—वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयम्**—वलयानां कुलिशानि (ष० त०) तेषाम् उद्घट्टनानि (ष० त०) तै: उद्गीर्णं तोयं येन स: (बहु०) तम्, **उद्घट्टन**—उत्+√घट्ट+ल्युट्, **उद्गीर्ण**—उत्+√गृ+क्त। **नेष्यन्ति**—√नी, लृट् प्र० पु० बहुव०। **सुरयुवतय:**—सुराणां युवतय: (ष० त०)। **यन्त्रधारागृहत्वम्**—यन्त्रेषु धारा: (स० त०), तासां गृहम् (ष० त०) तस्य भाव: (तद्धित)। **घर्मलब्धस्य**—घर्मे लब्ध: (स० त०) तस्य, **लब्ध**—√ लभ्+क्त। **क्रीडालोला:**—क्रीडायां लोला: (ष० त०) ता:। **श्रवणपरुषै:**—श्रवणयो: परुषाणि (स० त०) तै:। **भायये:**—√भी+णिच्+विधिलिङ् म० पु० एकव०। □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि तुम कैलाश का इच्छानुसार उपभोग करना—

**हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददान:**
**कुर्वन्कामं[१] क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य[२]।**
**धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै-**
**र्नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम्[३] ॥६५॥**

**अन्वय:**—जलद ! हेमाम्भोजप्रसवि मानस्य सलिलम् आददान: ऐरावतस्य क्षणमुखपटप्रीतिं कुर्वन् कल्पद्रुमकिसलयानि अंशुकानि इव वातै: धुन्वन् नानाचेष्टै: ललितै: तं नगेन्द्रं कामं निर्विशे: ॥६५॥

---

१. कामात्।
२. ऐरावणस्य।
३. धुन्वन्वातै: सजलपृषतै: कल्पवृक्षांशुकानि-
च्छाया भिन्नस्फटिकविशदं निर्विशे: पर्वतं तम्।

**शब्दार्थ—हेमाम्भोजप्रसवि**=सुनहले कमलों को उत्पन्न करने वाले, **मानसस्य**=मानसरोवर के, **सलिलम्**=जल को, **आददानः**=ग्रहण करते हुए, **क्षणमुखपटप्रीतिम्**=क्षण भर के लिए मुख पर वस्त्र का आनन्द, **कल्पद्रुमकिसलयानि**=कल्पवृक्ष के पल्लवों को, **अंशुकानि**=सूक्ष्म वस्त्रों के, **वातैः**=वायु से, **धुन्वन्**=हिलाते हुए, **नानाचेष्टैः**=अनेक प्रकार की चेष्टाओं वाले, **ललितैः**=विलासों से, **नगेन्द्रम्**=पर्वतराज का, **कामम्**=इच्छानुसार, **निर्विशेः**=उपभोग करना ।

**अनुवाद—हे मेघ ! सुनहले कमलों को उत्पन्न करने वाले मानसरोवर के जल को ग्रहण करते हुए, ऐरावत को क्षण भर के लिए मुख पर वस्त्र का आनन्द देते हुए (और) कल्पवृक्ष के पल्लवों को मानो सूक्ष्म वस्त्रों की भाँति वायु से हिलाते हुए अनेक प्रकार की चेष्टाओं वाले विलासों से पर्वतराज (कैलाश) का इच्छानुसार उपभोग करना ।।६५।।**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! स्वर्णकमलजनकं मानसरोवरस्य जलं पिबन् इन्द्रगजस्य मूहूर्ताननवस्त्रमोदं ददत् कल्पवृक्षनवपल्लवानि सूक्ष्म वस्त्राणि यथा वायुभिः कम्पयन् बहुविधक्रियैः विलासैः तं पर्वतराजकैलासम् यथेष्टम् उपभुङ्क्ष्व ।

**सञ्जीवनी**—हेमेति । हे जलद, हेमाम्भोजानां प्रसवि जनकम् । ('जिदृक्षि' इत्यादिनेनिप्रत्ययः।) मानसस्य सरसः सलिलमाददानः । पिबन्नित्यर्थः । तथैरावतस्येन्द्रगजस्य । (कामचारित्वाद्वा शिवसेवार्थमिन्द्रागमनाद्वा समागतस्येति भावः ।) क्षणे जलदानकाले मुखे पटेन या प्रीतिस्तां कुर्वन् तथा कल्पद्रुमाणां किसलयानि पल्लवभूतान्यंशुकानि सूक्ष्मवस्त्राणीव । अंशुकं वस्त्रमात्रे स्यात्परिधानोत्तरीययोः। 'सूक्ष्मवस्त्रे नातिदीप्तौ' इति शब्दार्णवः । वातैर्मेघवातैर्धुन्वन् । नानाबहुविधाश्चेष्टास्तोयपानादयो येषु तैर्ललितैः क्रीडितैः। 'ना भावभेदे स्त्रीनृत्ये ललितं त्रिषु सुन्दरे । अस्त्रियां प्रमदागारे क्रीडिते जातपल्लवे' इति शब्दार्णवः । तं नगेन्द्रं कैलासं कामं यथेष्टं निर्विशेः—समुपभुङ्क्ष्व । 'निर्वेशो भृतिभोगयोः' इत्यमरः । यथेच्छविहारो मित्रगृहेषु मैत्र्याः फलम्। सहजमित्रं च ते कैलासः । मेघपर्वतयोरब्जसूर्ययोरब्धिचन्द्रयोः शिखिजीमूतयोः समीराग्न्योर्मित्रता स्वयमिति भावः ।।६५।।

**टिप्पणी—हेमाम्भोजप्रसवि**—यह मान्यता है कि गङ्गा आदि के दिव्य जलों में स्वर्णकमल उगते हैं, परन्तु यहाँ स्वर्णकमल कहने का अभिप्राय यह है कि उषा काल में सूर्य की किरणों से उनकी छटा सुनहरी हो जाती है ।

**कल्पद्रुम**—कल्पवृक्ष पाँच देव वृक्षों में से एक है, ऐसी मान्यता है कि यह मन के अनुकूल वस्तुएँ प्रदान करने वाला वृक्ष है—

*नमस्ते कल्पवृक्षाय चिन्तितान्नप्रदाय च ।*
*विश्वम्भराय देवाय नमस्ते विश्वमूर्तये।।*

**व्याकरण—हेमाम्भोजप्रसवि**—हेम्नः अम्भोजानि (ष० त०) तेषां प्रसवि (ष० त०) तत्, **प्रसवि**—प्र+√सू+इनि । **आददानः**—आ+√दा+शानच् । **क्षणमुखपटप्रीतिम्**—मुखे पटः (स० त०) तेन प्रीतिः (तृ० त०) क्षणे मुखपटप्रीतिः (स० त०) । **धुन्वन्**—√धु+शतृ । **कल्पद्रुमकिसलयानि**—कल्पद्रुमाणां किसलयानि (ष० त०) । **नानाचेष्टैः**—नाना चेष्टा येषु तैः (बहु०) । **निर्विशैः**—निर्+√विश्, विधिलिङ् म० पु० एकव०। **नगेन्द्रम्**—नगानाम् इन्द्रः (ष० त०), तम् ।

प्रस्तुत श्लोक में **उत्प्रेक्षा** अलङ्कार है, जिसका लक्षण (पूर्वमेघ/१८) में दिया गया है ।

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि तुम कैलाश के ऊर्ध्व भाग में बसी अलका को अवश्य ही पहचान लोगे—

**तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां**
**न त्वं दृष्ट्वा पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ।**
**या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना[१]**
**मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥६६॥**

**अन्वयः**—कामचारिन् ! प्रणयिनः इव तस्य उत्सङ्गे स्रस्तगङ्गादुकूलाम् अलकां दृष्ट्वा त्वं पुनः न ज्ञास्यसे इति न । उच्चैर्विमाना या वः काले सलिलोद्गारम् अभ्रवृंदं कामिनी मुक्ताजालग्रथितम् अलकम् इव वहति ॥६६॥

**शब्दार्थ**—**कामचारिन्**=इच्छानुसार विचरण करने वाले, **प्रणयिन् इव**=प्रेमी के समान, **उत्सङ्गे**=गोद में, **स्रस्तगङ्गादुकूलाम्**=खिसके हुए गङ्गा के समान श्वेत दुपट्टे वाली, **न ज्ञास्यसे (इति) न**=नहीं जान सकोगे (ऐसा) नहीं (है), **उच्चैर्विमाना**=ऊँचे सात मञ्जिल भवनों वाली, **वः काले**=तुम्हारे समय में (वर्षा काल में), **सलिलोद्गारम्**=जल बरसाने वाले, **अभ्रवृन्दम्**=मेघ समूह को, **कामिनी**=स्त्री, **मुक्ताजालग्रथितम्**=मोतियों के गुच्छों से गूँथे हुए, **अलकम्**=केशों को, **वहति**=धारण करती है ।

**अनुवाद**—**हे इच्छानुसार विचरण करने वाले (मेघ) ! प्रेमी के समान उस (कैलाश पर्वत) की गोद में खिसके हुए गङ्गा के समान श्वेत दुपट्टे वाली, अलका (पुरी) को देखकर तुम न जान सकोगे (ऐसा) नहीं (है); ऊँचे सात मञ्जिल भवनों वाली जो (अलकापुरी) तुम्हारे समय (वर्षा काल) में जल बरसाने वाले मेघ समूह को, (वैसे ही धारण करती है) जैसे स्त्री मोतियों के गुच्छे से गूँथे हुए केशों को धारण करती है ॥६६॥**

**संस्कृत-टीका**—हे स्वेच्छाविचरणशील ! प्रियतमस्य यथा कैलासस्य ऊर्ध्वभागे स्रस्त-गङ्गाशुभ्रवस्त्रमिव अलकानगरीम् अवलोक्य त्वं पुनः न ज्ञास्यसे इति न अर्थात् अवश्यमेव ज्ञास्यसे । उन्नतसप्तभूमिकाभवना या अलका वर्षाकाले जलवर्षकं मेघसमूहं स्त्री मौक्तिकसरगुम्फतं चूर्णकुन्तलानि इव विभर्ति ।

**सञ्जीवनी**—तस्येति । प्रणयिनः प्रियतमस्येव तस्य कैलासस्योत्सङ्गे ऊर्ध्वभागे कटौ च । 'उत्सङ्गो मुक्तसंयोगे सक्थिन्यूर्ध्वतलेऽपि च' इति मालतीमालायाम् । गङ्गादुकूलं शुभ्रवस्त्रमिवः। (इत्युपमितमासः ।) 'दुकूलं सूक्ष्मवस्त्रे स्यादुत्तरीये सितांशुके' इति शब्दार्णवः । अन्यत्र तु गङ्गैव दुकूलम् । तत्स्रस्तं यस्यास्तां तथोक्तामलकां कुबेरनगरीं दृष्ट्वा । कामिनीमिवेति शेषः । हे कामचारिन् ! त्वं पुनस्त्वं तु न ज्ञास्यसे इति न । किं तु ज्ञास्यसे एवेत्यर्थः । कामचारिणस्ते पूर्वमपि बहुकृत्वो दर्शनसंभवादज्ञानमसंभावितमेवेति निश्चयार्थं नञ्द्वयप्रयोगः । (तदुक्तम्—'स्मृति-निश्चयसिद्धार्थेषु नञ्द्वयप्रयोगः' इति ।) उच्चैरुन्नतानि विमानानि सप्तभूमिकाभवनानि । 'विमानोऽस्त्री देवयाने सप्तभूमौ च सद्मनि' इति यादवः । तस्यां सां मेघसंवाहनस्थानसूचनार्थमिदं विशेषणम्। अन्यत्र विमाना निष्कोपा । याऽलका वो युष्माकं काले । मेघकाल इत्यर्थः । (कालस्य सर्वमेघसाधारण्याद्वा इति बहुवचनम् ।) सलिलमुद्गिरतीति सलिलोद्गारम् । स्रवत्सलिलधारमित्यर्थः । अभ्रवृन्दं मेघकदम्बकं कामिनी स्त्री मुक्ताजालैर्मौक्तिकसरैर्ग्रथितं प्रत्युप्तम् । 'पुंश्चल्यां मौक्तिके मुक्ता' इति यादवः । अलकमिव चूर्ण कुन्तलानीव । (जातावेकवचनम् ।) 'अलकाश्चूर्णकुन्तलाः' इत्यमरः । वहति बिभर्ति । अत्र कैलासस्यानुकूलनायकत्वमलकायाश्च स्वाधीनपतिकाख्यनायिकात्वं ध्वन्यते । ('एका-यत्तोऽनुकूलः स्यात्' इति, 'प्रियोपलालिता नित्यं सवाधीनपतिका मता' इति च लक्ष्यन्ति । उदाहरन्ति च—'लालयन्नलकप्रान्तान्रचयन्पत्रमञ्जरीन् । एकां विनोदयन् कान्तां छायावदनुवर्तते ।' इति) ॥६६॥

---

१. उच्चैर्विमानः ।

**व्याकरण**—**उत्सङ्गे**—उद्+√सञ्ज्+घञ् । **प्रणयिन्**—प्रणय+इनि । **स्रस्तगङ्गादुकूलाम्**—गङ्गादुकूलम् इव (उपमित त०), **कामिनीपक्षे**—गङ्गा इव दुकूलम् (उपमित त०) स्रस्तं गङ्गादुकूलं यस्याः सा (बहु०) ताम्, **स्रस्त**—√स्रस्+क्त । **दृष्ट्वा**—दृश्+क्त्वा । **ज्ञास्यसे**—√ज्ञा, लृट् म० पु० एकव० । **कामचारिन्**—कामेन चरति इति कामचारी (उपपद त०), काम+√चर्+णिनि, सम्बोधन, प्र० एकव० । **वहति**—√वह्+लट् ल० प्र० पु० एकव०। **सलिलोद्गारम्**—सलिलम् उद्गिरति इति तम् (कृदन्त उपपद त०), **उद्गार**—उत्+√गॄ+अण् । **उच्चैर्विमाना**—उच्चैः विमाना सस्याः सा (बहु०), **कामिनीपक्षे**—विगतः मानः यस्याः सा (बहु०), उच्चैः विमानाः (गति त०) । **मुक्ताजालग्रथितम्**—मुक्तानां जालानि (ष० त०) तैः ग्रथितम् (तृ० त०) तत्, **ग्रथित**—√ग्रन्थ्+क्त । **अभ्रवृन्दम्**—अभ्राणां वृन्दम् (ष० त०) तत् ।

प्रस्तुत श्लोक में **उपमा** और **श्लेष** अलङ्कार हैं, जिनका लक्षण (पूर्वमेघ/१५) तथा (पूर्वमेघ/२९) में किया गया है । □



महाकविकालिदासप्रणीतम्

# मेघदूतम्

## उत्तरमेघः

**प्रसङ्ग**—पूर्व मेघ में यक्ष ने मेघ को अलकापुरी जाने का मार्ग बताया है तथा अब अलकापुरी का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है कि—

**विद्युद्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः**
**सङ्गीताय प्रहतमुरजाः[1] स्निग्धगम्भीरघोषम्[2] ।**
**अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः**
**प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ।।१।।**

**अन्वयः**—यत्र ललितवनिताः सचित्राः संगीताय प्रहतमुरजाः मणिमयभुवः अभ्रंलिहाग्राः प्रासादाः विद्युद्वन्तं सेन्द्रचापं स्निग्धगम्भीरघोषम् अन्तस्तोयं तुङ्गं त्वां तैः तैः विशेषैः तुलयितुम् अलम् (सन्ति) ।।१।।

**शब्दार्थ**—**यत्र**=जहाँ (अलकापुरी में), **ललितवनिताः**=सुन्दर स्त्रियों वाले, **सचित्राः**=चित्रों से युक्त, **संगीताय**=संगीत के लिए, **प्रहतमुरजाः**=मृदङ्ग बजाये गये, **मणिमयभुवः**=मणिजटित फर्शों वाले, **अभ्रंलिहाग्राः**=गगनचुम्बी शिखरों वाले, **प्रासादाः**=भवन, **विद्युद्वन्तम्**=बिजली धारण करने वाले, **सेन्द्रचापम्**=इन्द्रधनुष से युक्त, **स्निग्धगम्भीरघोषम्**=मधुर व गम्भीर गर्जन वाले, **अन्तस्तोयम्**= अन्दर जल (धारण करने) वाले, **तुङ्गम्**=ऊँचे, **त्वाम्**=तुमसे, **तैः तैः विशेषैः**=उन-उन गुणों के कारण, **तुलयितुम्**=बराबरी करने में, **अलम्**=समर्थ, (सन्ति=है)।

**अनुवाद**—जहाँ (अलकापुरी) में सुन्दर स्त्रियों वाले, चित्रों से युक्त, सङ्गीत के लिए मृदङ्ग बजाये गये, मणिजटित फर्शों वाले, गगनचुम्बी शिखरों वाले भवन बिजली धारण करने वाले, इन्द्रधनुष से युक्त, मधुर व गम्भीर गर्जन वाले, (अपने) अन्दर जल (धारण करने) वाले (और) ऊँचे तुमसे उन-उन गुणों के कारण बराबरी करने में समर्थ (हैं) ।।१।।

**संस्कृत-टीका**—**यत्र**—अलकापुर्यां रम्यस्त्रीकाः चित्रसमन्वितास्तौर्यत्रिकाय ताडितमृदङ्गाः रत्नमयभूमयः गगनचुम्बिशिखराः देवगृहाणि तडिद्वन्तम् इन्द्रधनुर्युक्तम् मधुरगम्भीरगर्जनम् अन्तर्जलम् उन्नतं मेघम् पूर्वोक्तैः ललितवनित्वादिभिः विशेषैः धर्मैः समीकर्तुं पर्याप्ताः ।

**सञ्जीवनी**—विद्युत्वन्तमिति । यत्रालकायां ललिता रम्या वनिताः स्त्रियो येषु । सह चित्रैर्वर्तन्त इति सचित्राः । 'आलेख्याश्चर्ययोश्चित्रम्' इत्यमरः । ('तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुव्रीहिः । 'वोपसर्जनस्य' इति सहशब्दस्य समासः ।) सङ्गीताय तौर्यत्रिकाय प्रहतमुरजास्ताडितमृदङ्गाः। 'मुरजा

---

१. संगीतार्थं प्रहतमुरजाः ।
२. पर्जन्यघोषम् ।

तु मृदङ्गेस्याद्ढक्कामुरजयोरपि' इति शब्दार्णवः । मणिमय्यो मणिविकारा भुवो येषु ते । अभ्रंलिहन्तीत्यभ्रंलिहान्यभ्रङ्कषाणि । ('वहाभ्रेलिहः' इति खशप्रत्ययः । 'अरुर्द्विषदित्यादिना' मुमागमः ।) अग्राणि शिखराणि येषां ते तथोक्ताः । अतितुङ्गा इत्यर्थः । प्रासादा देवगृहाणि । 'प्रासादो देवभूभुजाम्' इत्यमरः । विद्युतोऽस्य सन्तीति विद्युद्वन्तम् । सेन्द्रचापमिन्द्रचापवन्तम् स्निग्धः श्राव्यो गम्भीरो घोषो गर्जितं यस्य तम् । अन्तरन्तर्गतं तोयं यस्य तम् । तुङ्गमुन्नतं त्वां तैस्तैविशेषैर्ललितवनितत्वादिधर्मैस्तुलयितुं समीकर्तुमलं पर्याप्ताः । 'अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम्' इत्यमरः । (अत्रोपमानोपमेयभूतमेघप्रासादाधर्माणां विद्युद्वनितादीनां यथासंख्यमन्योन्यसादृश्यान्मेघप्रासादसादृश्यसिद्धिरिति बिम्बप्रतिबिम्बभावनेयं पूर्णोपमा । वस्तुतो भिन्नयोः परस्परसादृश्यादभिन्नयोरुपमानोपमेयधर्मयोः पृथगुपादानाद्बिम्बप्रतिबिम्बभावः) ॥१॥

**टिप्पणी—ललितवानिताः**—यहाँ अलकापुरी में रहने वाली सुन्दर कान्ति वाली स्त्रियों की विद्युत् से समानता प्रकट की गयी है ।

**सचित्राः**—महलों की दीवार पर अनेक प्रकार के रङ्गों के चित्र टँगे होते हैं, इसलिए वह सतरंगी इन्द्र धनुष से युक्त मेघ की समानता कर सकते हैं ।

**व्याकरण—विद्युद्वन्तम्**—विद्युतः सन्ति अस्य इति विद्युत्वान्, विद्युत्+मतुप्, तम्, **विद्युत्**—वि+√द्युत्+क्विप् । **ललितवनिताः**—ललिताः वनिताः येषु ते (बहु०) । **सेन्द्रचापम्**—इन्द्रस्य चापः (ष० त०) तेन सहितः (बहु०) तम् । **सचित्राः**—चित्रेण सहिताः (बहु०) । **सङ्गीताय**—सम्+√गै+क्त, च० एकव० । **प्रहतमुरजाः**—प्रहताः मुरजाः येषु ते (बहु०), **प्रहत**—प्र+√हन्+क्त। **स्निग्धगम्भीरघोषम्**—स्निग्धः गम्भीरः घोषः यस्य सः (बहु०) तम् । **अन्तस्तोयम्**—अन्तर्गतं तोयं यस्य सः (बहु०) तम् । **मणिमयभुवः**—मणिमयाः भुवः येषु ते (बहु०), **मणिमय**—मणि+मयट्। **अभ्रंलिहाग्राः**—अभ्रं लिहन्ति इति ते (उप० त०), अभ्रंलिहानि अग्राणि येषां ते (बहु०), **अभ्रंलिह**—अभ्र+√लिह्+खश् । **तुलयितुम्**—√तुल्+णिच्+तुमुन् ।

प्रस्तुत श्लोक में **उपमालङ्कार** है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से अलकापुरी की स्त्रियों के पुष्पालङ्कार का वर्णन करता हुआ कहता है—

**हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं[1]**
**नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः[2] ।**
**चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं**
**सीमन्ते[3] च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥२॥**

**अन्वयः**—यत्र वधूनां हस्ते लीलाकमलम् अलके बालकुन्दानुविद्धम् आनने लोध्र प्रसवरजसा पाण्डुतां नीता श्रीः चूडापाशे नवकुरबकम् कर्णे चारु शिरीषम् सीमन्ते च त्वदुपगमजं नीपम् (अस्ति) ॥२॥

**शब्दार्थ—वधूनाम्**=स्त्रियों के, **लीलाकमलम्**=क्रीड़ा के लिए धारण किया हुआ कमल पुष्प, **अलके**=बालों में, **बालकुन्दानुविद्धम्**=नये कुन्द पुष्पों का गुम्फन, **लोध्रप्रसवरजसा**=लोध्र

१. बालकुन्दानुवेधो ।
२. आननश्रीः ।
३. सीमन्तेऽपि ।

पुष्पों की धूलि से, **पाण्डुताम्**=धवलता को, **नीता**=प्राप्त, **श्री:**=शोभा, **चूडापाशे**=जूड़े में, **नवकुरबकम्**=नवीन कुरबक के पुष्प, **चारु**=सुन्दर, **शिरीषम्**=शिरीष पुष्प, **सीमन्ते**=माँग में, **त्वदुपगमजम्**=तुम्हारे आने से उत्पन्न होने वाला, **नीपम्**=कदम्ब पुष्प ।

**अनुवाद—जहाँ (अलकापुरी में) स्त्रियों के हाथ में क्रीड़ा के कमल, बालों में नये कुन्द पुष्पों का गुम्फन, मुख में लोध्र के पुष्पों की धूलि से धवलता को प्राप्त शोभा, जूड़े में नवीन कुरबक के पुष्प, कानों में सुन्दर शिरीष पुष्प और माँग में तुम्हारे आने से उत्पन्न होने वाला कदम्ब पुष्प (रहता है) ।।२।।**

**संस्कृत-टीका**—यत्र अलकापुर्याम् स्त्रीणाम् करे क्रीडाकमलम् कुन्तले नवमाध्यपुष्पगुम्फनम् मुखे लोध्रपुष्पपरागेण पाण्डुरतां प्रापिता शोभा केशपाशे नवकुरबकपुष्पं (वासन्त: पुष्पविशेष:) श्रोत्रयो: सुन्दरं शिरीषपुष्पं केशसीम्नि च त्वदाविर्भावजनितं कदम्बपुष्पं वर्तते ।

**सञ्जीवनी**—संप्रति सर्वदा सर्वर्तुसंपत्तिमाह—हस्त इति । यत्रालकायां वधूनां स्त्रीणां हस्ते लीलार्थं कमलं लीलाकमलम् । शरल्लिङ्गमेतत् । (तदुक्तम् 'शरत् पङ्कजलक्षणा' इति ।) अलके कुन्तले । जातावेकवचनम् । अलकेष्वित्यर्थ: । बालकुन्दै: प्रत्यग्रमाध्यकुसुमैरनुविद्धम् । अनुवेधो ग्रथनम् । (नपुंसके भावे क्त:) । यद्यपि कुन्दानां शैशिरत्वमस्ति 'माध्यं कुन्दम्' इत्यभिधानात्तथापि हेमन्ते प्रादुर्भाव: शिशिरे प्रौढत्वमिति व्यवस्थाभेदेन हेमन्तकार्यत्वमित्याशयेन बालेति विशेषणम् । ('अलकम्' इति प्रथमान्तपाठे सप्तमीप्रक्रमभङ्ग: स्यात् । नाथस्तु नियतपुंल्लिङ्गताहानिश्चेति दोषान्तरमाह। तदसत् । 'स्वभाववक्राण्यलकानि तासाम्, 'निर्धूतान्यलकानि पाटितमुर: कृत्स्नोऽधर: खण्डित:' इत्यादिषु प्रयोगेषु नपुंसकलिङ्गतादर्शनादिति ।) आनने मुखे लोध्रप्रसवानां लोध्रपुष्पाणां शैशिराणां रजसा परागेण । 'स्यादुत्पादे फले पुष्पे प्रसवी गर्भमोचने' इत्यमर: । पाण्डुतां नीता श्री शोभा । चूडापाशे केशपाशे नवकुरबकं वासन्त: पुष्पविशेष: । कर्णे चारु पेशलं शिरीषं ग्रैष्म: पुष्पविशेष:। सीमन्ते मस्तककेशवीथ्याम् । 'सीमन्तमस्त्रियां मस्तककेशवीथ्यामुदाहृतम्' इति शब्दार्णव: । तवोपगमो मेघागम इत्यर्थ:, तत्र जातं त्वदुपगमजम् । वार्षिकमित्यर्थ: । नीपं कदम्बकुसुमम् सर्वत्रास्तीति शेष:। अस्तिर्भवतिपर: प्रथमपुरुषोऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्तीति न्यायात् । इत्थं कमलकुन्दादितत्तत्कार्यसमाहारभिधानादर्थात्सर्वर्तुसमाहारसिद्धि: । कारणं विना कार्यस्यासिद्धेरिति भाव: ।।२।।

**टिप्पणी—लीलाकमलम्**—कमल का पुष्प जब क्रीड़ा के लिए हाथ में लिया जाता है तब उसे लीलाकमल कहते हैं । कालिदास ने कुमारसम्भव और रघुवंश में भी उसका उल्लेख किया है । कमल ग्रीष्म और शरद् में खिलता है । कुन्द हेमन्त ऋतु में, लोध्र शिशिर में, कुरबक वसन्त में, शिरीष ग्रीष्म में खिलता है तथा कदम्ब वर्षा ऋतु के आने के साथ विकसित होता है । इस प्रकार वर्णन करके महाकवि ने यह दिखाया है कि अलकापुरी में छ: ऋतुओं की शोभा सदा रहती है ।

**लोध्र प्रसवरजसा**—लोध्र पुष्प की धूलि से—यह मुख पर लगाने के लिये पाउडर की तरह प्रयुक्त होता है । इससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल में भी स्त्रियाँ मुख पर पाउडर का प्रयोग करती थीं ।

**व्याकरण—लीलाकमलम्**—लीलार्थम् कमलम् (मध्यपद लोपी त०) । **बालकुन्दानुविद्धम्**— बालानि च तानि कुन्दानि (कर्मधा०) तै: अनुविद्धम् (तृ० त०), **अनुविद्ध**—अनु+√व्यध्+क्त। **नीता**—√नी+क्त+टाप् । **लोध्रप्रसवरजसा**—लोध्रस्य प्रसवा: (ष० त०), तेषां रजसा (ष० त०। **पाण्डुताम्**—पाण्डु+तल्+टाप् । **चूडापाशे**—चूडानां पाशे (ष० त०) । **नवकुरबकम्**—नवं च तत् कुरबकम् (कर्मधारय) । **सीमन्ते**—सीम्न: अन्त: (ष० त०) तस्मिन् । **त्वदुपगमजम्**—तव

उपगम: (ष० त०) तस्मात् जात: (उप० त०), **उपगम्**—उप+√गम्+अप्, **उपगमजम्**—उप-गम्+√जन्+ड ।

**प्रसङ्ग**—अलकापुरी के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ यक्ष मेघ से कहता है कि—

**यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखरा:[१] पादपा नित्यपुष्पा:**
**हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा: नलिन्य: ।**
**केकोत्कण्ठा: भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा:**
**नित्यज्योत्स्ना:[२] प्रतिहततमोवृत्तिरम्या: प्रदोषा: ॥३॥**

**अन्वय:**—यत्र पादपा: नित्यपुष्पा: उन्मत्तभ्रमरमुखरा: नलिन्य: नित्यपद्मा: हंसश्रेणीरचितरशना: भवनशिखिन: नित्यभास्वत्कलापा: केकोत्कण्ठा: प्रदोषा: नित्यज्योत्स्ना: प्रतिहततमोवृत्तिरम्या: ॥३॥

**शब्दार्थ**—**यत्र**=जहाँ (अलकापुरी में), **पादपा:**=वृक्ष, **नित्यपुष्पा:**=सदा पुष्पों से युक्त, **उन्मत्तभ्रमरमुखरा:**=मतवाले भ्रमरों से गुञ्जायमान, **नलिन्य:**=कमलनियाँ, **नित्यपद्मा:**=सदा कमलों से युक्त, **हंसश्रेणीरचितरशना:**=हंसों की पङ्क्तियों से बनी करधनियों वाली, **भवनशिखिन:**=भवनों के (पालतू) मोर, **नित्यभास्वत्कलापा:**=नित्य चमकने वाले पंखों वाले, **केकोत्कण्ठा:**=बोलने के लिए गर्दन उठाये हुए, **प्रदोषा:**=रात्रियाँ, **नित्यज्योत्स्ना:**=नित्य चाँदनी से युक्त, **प्रतिहततमोवृत्तिरम्या:**=नष्ट हुए अन्धकार के प्रसार वाली और सुन्दर ।

**अनुवाद—जहाँ (अलकापुरी में) वृक्ष सदा पुष्पों से युक्त (एवं) मतवाले भ्रमरों से गुञ्जायमान (हैं), कमलनियाँ सदा कमलों से युक्त (तथा) हंसों की पंक्तियों से बनी करधनियों वाली (हैं), भवनों के (पालतू) मोर चमकने वाले पंखों वाले (और) बोलने के लिए गरदन उठाये हुए और रात्रियाँ नित्य चाँदनी से युक्त (अत:) नष्ट हुए अन्धकार के प्रसार वाली और सुन्दर हैं ॥३॥**

**संस्कृत-टीका**—यस्याम् अलकायां वृक्षा: अनवरतपुष्पा: अत एव उन्मत्तमधुकरै: शब्दायमाना: पद्मिन्य: नित्यकमला अत एव हसपङ्क्तिविहितमेखला:, नित्यं हंसपरिवेष्टिता इति भाव: । गृहमयूरा: सततोज्ज्वलवर्हा: न तु वर्षास्वेवेति भाव: अतएव केकोद्ग्रीवा: रात्रय: नित्यचन्द्रिकोज्ज्वला निवारिताऽन्धकारप्रसरा: रमणीयाश्च सन्ति ।

**सञ्जीवनी**—यत्रेति । यत्रालकायां पादपा वृक्षा: नित्यानि पुष्पाणि येषां ते तथा । न त्वृतुनियमादिति भाव: । अत एवोन्मत्तैर्भ्रमरैर्मुखरा: शब्दायमाना: । नलिन्य: पद्मिन्यो नित्यानि पद्मानि यासां तास्तथा न तु हेमन्तवर्जितमित्यर्थ: । अत एव हंसश्रेणीरचितरशना: । नित्यं हंसपरिवेष्टिता इत्यर्थ: । भवनशिखिन: क्रीडामयूरा: नित्यं भास्वन्त: कलापा बर्हाणि येषां ते तथोक्ता: । न तु वर्षास्वेव । अत एव केकाभिरुत्कण्ठा उद्ग्रीवा: । प्रदोषा रात्रयो नित्या ज्योत्स्ना येषां ते । न तु शुक्लपक्ष एव । अत एव प्रतिहता तमसां वृत्तिर्व्याप्तिर्येषां ते च ते रम्याश्चेति तथोक्त: ॥३॥

**टिप्पणी**—**उन्मत्तभ्रमरमुखरा:**—अलकापुरी में वृक्षों पर सभी ऋतुओं में सदा पुष्प विकसित रहते हैं, इसीलिए भ्रमर भी नित्य उन पर गुञ्जारते रहते हैं । इसी प्रकार का भाव कालिदास ने रघु० ९/२९ में व्यक्त किया है ।

---

१. यस्यां मत्तभ्रमरनिकरा: ।
२. नित्यज्योत्स्नाप्रतिहत... ।

**पादपा नित्यपुष्पाः**—यद्यपि वृक्षों पर समय-समय पर पुष्प विकसित होते हैं परन्तु वहाँ अलकापुरी में वृक्ष सदा पुष्पों से युक्त रहते हैं ।

**हंसश्रेणीरचितरशना**—हंस कमलनाल खाते हैं, अलकापुरी में कमलनियों पर सदा कमल विकसित होते रहते हैं, इसलिये वहाँ कमलनियाँ सदा हंसों से घिरी रहती हैं । इसी प्रकार के भाव देखिये—पूर्वमेघ २८, ऋतु ३/२४, विक्र० ४/२४ ।

**नित्यभास्वत्कलापाः**—वहाँ अलकापुरी में घर-घर में पालतू मोर हैं और मोर वर्षा की काली-काली घटा देखकर कूकते हैं तथा वर्षा ऋतु में ही इनके पंखों में चमक आती है, किन्तु अलकापुरी में सदा मोर कूकते रहते हैं और उनके पंखों में चमक रहती है ।

**नित्यज्योत्स्नाः**—क्योंकि सिर पर चन्द्रमा की कला को धारण किये हुए शिव सदा अलकापुरी के उद्यान में रहते हैं, इस कारण वहाँ की रात्रियाँ सदा चाँदनी से युक्त होती हैं । कवि ने स्वयं पूर्वमेघ में कहा है—

*गन्तव्या ते वसतिरलका नामयक्षेश्वराणां ।*

*बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥७॥*

**प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः**—इससे ज्ञात होता है कि अलकापुरी में रात्रियाँ सदा प्रकाश से युक्त रहती हैं ; इसलिए वहाँ कभी भी कृष्ण पक्ष नहीं होता, सदा शुक्लपक्ष ही रहता है ।

**व्याकरण—उन्मत्तभ्रमरमुखराः**—उन्मत्ताः भ्रमराः (कर्मधा०) तैः मुखरा (तृ० त०) उद्+√मद्+क्तः=उनमत्ता, मुख+रः=मुखराः (रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम् इति र प्रत्ययः ।) **पादपाः**—पादैः पिबन्तीति, पाद+√पा+क । **नित्यपुष्पाः**=नित्यानि पुष्पाणि येषां ते (बहु०) । **हंसश्रेणीरचितरशनाः**—हंसानां श्रेण्यः (ष० त०), ताभिः रचिताः रशना यासां ताः (बहुव्रीहि) । **नित्यपद्माः**—नित्यानि पद्मानि यासां ताः (बहु) । **नलिन्यः**—नल+इनि+ङीप् । **केकोत्कण्ठाः**—उद्गताः कण्ठाः येषां ते उत्कण्ठाः (बहु०) केकाभिः उत्कण्ठाः (तृ० त०) । **भवनशिखिनः**—भवनानां भवनेषु वा शिखिनः (ष, या स० त०), **शिखिन्**—शिखा+इनिः । **नित्यभास्वत्कलापाः**—नित्यं भास्वन्तः (केवल समास) नित्यभास्वन्तः—कलापाः येषां ते (बहु०), **भास्वन्तः**—भास्+मतुप् (प्र० बहु०) । **नित्यज्योत्स्नाः**—नित्या ज्योत्स्ना येषां ते (बहु०) । **प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः**—तमसां वृत्तिः तमोवृत्तिः (ष० त०) प्रतिहताः तमोवृत्तयः येषां ते (बहु०) प्रतिहततमोवृत्तयश्च ते रम्याः (कर्मधा०), **प्रतिहत**—प्रति+√हन्+क्त, **वृत्ति**—√वृत्त+क्तिन् ।

यद्यपि इस श्लोक को मल्लिनाथ ने प्रक्षिप्त माना है, परन्तु इस पर टीका लिखी है । यहाँ श्लोकों के क्रम में विभिन्न संस्करणों में अन्तर पाया जाता है । मल्लिनाथ जी ने इसे इसी क्रम में रखा है ।

प्रस्तुत श्लोक में नलिनियों में नायिका भाव गम्य है, परन्तु **हंसश्रेणीरचितरशनाः** इस पद में नलिनियों में मण्डलाकार हंस श्रेणी में रशनात्व का आरोप वाच्य है; अतः यहाँ **एकदेशविवर्ती रूपक** है तथा अन्य स्थलों के पादप आदि की अपेक्षा यहाँ के पादप आदि का वैशिष्ट्य वर्णन होने से **व्यतिरेक** एवं **परिसंख्या** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष अलकापुरी के यक्षों की उत्कर्षता का वर्णन करता हुआ कहता है कि—

**आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै-**

**र्नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात् ।**

नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति-[1]
वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादिन्यदस्ति ॥४॥

**अन्वय:**—यत्र वित्तेशानां नयनसलिलम् आनन्दोत्थम् अन्यै: निमित्तै: न, इष्टसंयोगसाध्यात् कुसुमशरजात् (तापात्) अन्य: ताप: न, प्रणयकलहात् अन्यस्मात् विप्रयोगोपपत्ति: अपि न, यौवनात् अन्यत् वय: च न खलु अस्ति ॥४॥

**शब्दार्थ**—**यत्र**=जहाँ (अलकापुरी में), **वित्तेशानाम्**=यक्षों के, **नयनसलिलम्**=आँसू, **आनन्दोत्थम्**=आनन्द या प्रसन्नता से उत्पन्न, **अन्यै: निमित्तै:**=अन्य कारणों से, **न**=नहीं, **इष्टसंयोगसाध्यात्**=प्रियजन के मेल से दूर होने वाले, **कुसुमशरजात्**=कामदेव के वाण से उत्पन्न होने से, **अन्य: ताप:**=दूसरा संताप, **न**=नहीं है, **प्रणयकलहात्**=प्रणय कलह से, **अन्यस्मात्**=अन्य कारण से, **विप्रयोगोपपत्ति:**=वियोग की प्राप्ति भी, **न**=नहीं, **यौवनात्**=यौवन से, **वय:**=अवस्था ।

**अनुवाद**—**जहाँ (अलकापुरी में) यक्षों के आँसू आनन्द या प्रसन्नता से उत्पन्न (होते हैं), अन्य कारणों से नहीं, प्रियजन के मेल से दूर होने वाले, कामदेव के वाण से उत्पन्न (ताप) के अतिरिक्त (अन्य कोई) सन्ताप नहीं है, प्रणय कलह के अतिरिक्त अन्य (कारण) से वियोग की प्राप्ति भी नहीं (है) और यौवन के अतिरिक्त कोई दूसरी अवस्था भी नहीं है ॥४॥**

**संस्कृत-टीका**—यत्राऽलकायां यक्षाणाम् अश्रु आनन्दोद्भवम् आनन्देतरै: शोकादिभि: कारणै: न, प्रियसमागमनिवर्तनीयात् कामजन्यात् तापात् अन्य: संताप: न, प्रेमकलहात् अन्यस्मात् कारणात् विरहप्राप्तिरपि नास्ति युवावस्थाया: अतिरिक्तात् अन्यत् अवस्था च नास्ति ।

**सञ्जीवनी**—आनन्देति । यत्रालकायां वित्तेशानां यक्षाणाम् । 'वित्ताधिप: कुबेर: स्यात्प्रभौ धनिकयक्षयो:' इति शब्दार्णव: । आनन्दोत्थमानन्दजन्यमेव नयनसलिलम् । अन्यैर्निमित्तै: शोकादिभिर्न । इष्टसंयोगेन प्रियजनसमागमेन साध्यान्निवर्तनीयात् । न त्वप्रतीकार्यादित्यर्थ: । कुसुमशरजान्मदनशरजादन्यस्तापो नास्ति । प्रणयकलहादन्यस्मात्कारणाद्विप्रयोगोपपत्तिर्विरहप्राप्तिरपि नास्ति । किं च यौवनादन्यद्वयो वार्धकं नास्ति । श्लोकद्वयं प्रक्षिप्तम् ॥४॥

**टिप्पणी—आनन्दोत्थम्**—अलकापुरी में यक्षों की आँखों में आँसू हर्ष के कारण ही आते थे, दु:ख के कारण नहीं । भाव यह है कि वहाँ अलकापुरी में दु:ख नाम की कोई वस्तु नहीं है । सब और सदा सुख ही सुख रहता है, इसलिए यक्षों की आँखों में जो आँसू दिखायी देते हैं वे सब आनन्द के कारण हैं. दु:ख के कारण नहीं ॥४॥

**कुसुमशरजात्**—कामदेव के धनुष का दण्ड इक्षु से बना माना जाता है तथा प्रत्यञ्चा काले-काले भौंरों की श्रेणी से तथा उससे छोड़े जाने वाले वाण पाँच माने जाते हैं । जो निम्न हैं—

*अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका ।*
*नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चवाणस्य सायका: ॥*

**इष्टसंयोगसाध्यात्**—अलका निवासी ज्वरादि से पीड़ित नहीं होते थे और यदि वे किसी से पीड़ित होते थे तो काम जन्य सन्ताप से और वह प्रिय मिलन से दूर हो जाता था ।

**प्रणयकलहात्**—प्रेमी पति के किसी अपराध के कारण पत्नी के रूठ जाने को प्रणयकलह कहा जाता है । यक्षों का पत्नियों से केवल मान के कारण ही क्षणिक वियोग होता था, किसी वैधव्य या प्रवास आदि के कारण नहीं ।

१. नाप्यन्यत्र प्रणयकलहा० ।

**वित्तेशानाम्**—वित्त का ईश अर्थात् धन का स्वामी । वित्तेश कुबेर और यक्ष दोनों के लिए प्रयुक्त होता है । यक्ष चूँकि कुबेर के कोष की रक्षा करते हैं इसलिए उन्हें भी वित्तेश कहा जाता है ।

**यौवनात्**—यक्ष देवयोनि मानी जाती है, इसलिए उनमें वृद्धावस्था नहीं होती, वे सदा युवावस्था में ही रहते हैं ।

**व्याकरण**—**आनन्दोत्थम्**—आनन्दात् उत्तिष्ठति इति, आनन्द+उद् +√स्था+क: (उपपद समास) । **नयनसलिलम्**—नयन्यो: सलिलम् (ष० त०) । **कुसुमशरजात्**—कुसुमानि एव शरा यस्य स कुसुमशर: कामदेव: (बहुव्रीहि) तस्मात् जात: कुसुमशरज: तस्मात् (प० त०), कुसुमशर+जन्+ड: (कर्तरि भूते) । **इष्टसंयोगसाध्यात्**—इष्टस्य संयोग: (ष० त०), तेन साध्य: (तृ० त०) तस्मात्, इष्+क्त=**इष्ट**, सम+√युज्+घञ्=**संयोग**: (भावे), √साध्+ण्यत्=**साध्य** (कर्मणि) । **प्रणयकलहात्**—प्रणयस्य कलह: (ष० त०) तस्मात् । **विप्रयोगोपपत्ति:**—विप्रयोगस्य उपपत्ति: (ष० त०), वि+प्र+√युज्+घञ्=**विप्रयोग**:, उप+√पद+क्तिन् (भावे)=**उपपत्ति**: । **वित्तेशानाम्**—वित्तानाम् ईश: (ष० त०) तेषाम् । **यौवनात्**—युवन्+अण्=यौवन, तस्मात् ।

प्रस्तुत श्लोक में आनन्द के आँसुओं का वर्णन करके दु:ख के आँसुओं का प्रतिषेध किया गया है; अत: **परिसंख्या** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से अलकापुरी में यक्षों के उपभोग का वर्णन करता हुआ कहता है कि—

**यस्यां यक्षा: सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि**
**ज्योतिश्छाया कुसुमरचि[1]तान्युत्तमस्त्रीसहाया: ।**
**आसेवन्ते मधु रतिफलं[2] कल्पवृक्षप्रसूतं[3]**
**त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकै:[4] पुष्पकरेष्वाहतेषु ।।५।।**

**अन्वय**:—यस्यां यक्षा: उत्तमस्त्रीसहाया: (सन्त:) सितमणिमयानि ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि हर्म्यस्थलानि एत्य त्वद्गम्भीरध्वनिषु पुष्करेषु शनकै: आहतेषु कल्पवृक्षप्रसूतं मधु आसेवन्ते ।।५।।

**शब्दार्थ**—**यस्याम्**=जिसमें, **उत्तमस्त्रीसहाया:**=सुन्दर स्त्रियों के साथ, **सितमणिमयानि**=स्फटिक मणि से जटित, **ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि**=तारों के प्रतिबिम्ब रूपी पुष्पों से सुशोभित, **हर्म्यस्थलानि**=महलों की अटारियों में, **एत्य**=जाकर, **त्वद्गम्भीरध्वनिषु**=तुम्हारे समान गम्भीर ध्वनि वाले, **पुष्करेषु**=पुष्कर नामक बाजों के, **शनकै:**=धीरे-धीरे, **आहतेषु**=बजाये जाने पर, **कल्पवृक्षप्रसूतम्**=कल्पवृक्ष से उत्पन्न, **रतिफलम् मधु**=रतिफल नामक मदिरा का, **आसेवन्ते**=सेवन करते हैं ।

**अनुवाद**—**जिस (अलकापुरी) में यक्ष सुन्दर स्त्रियों के साथ मिलकर स्फटिक मणि से जटित (अत:) तारों के प्रतिबिम्ब रूपी पुष्पों से सुशोभित, महलों की अटारियों पर जाकर तुम्हारे समान गम्भीर ध्वनि वाले पुष्कर नामक बाजों (नगाड़ों) के धीरे-धीरे बजाये जाने पर, कल्पवृक्ष से उत्पन्न रतिफल नामक मदिरा का सेवन करते हैं ।।५।।**

---

१. ० कुसुमरचनान्युत्तम० ।
२. रतिरसम् ।
३. ०वृक्षप्रसूतिम् ।
४. मधुरम् ।

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! यस्यामलकायां गुह्यकाः ललितललनाभिः समं रात्रौ स्फटिकमणिमयानि तारकाप्रतिबिम्बरूपैः पुष्पैः परिष्कृतानि सौधशिखराणि प्राप्य त्वत्सदृशगम्भीरशब्दयुक्तेषु पुष्करेषु मन्दं ताडितेषु कल्पवृक्षजातं रतिफलाख्यं मद्यं बारम्बारमास्वादयन्ति ।

**सञ्जीवनी**—यस्यामिति । यस्यामलकायां यक्षा देवयोनिविशेषा उत्तमस्त्रीसहाया ललिताङ्गनासहचराः सन्तः सितमणिमयानि स्फटिकमणिमयानि चन्द्रकान्तमयानि वा । अत एव ज्योतिषां तारकाणां छायाः प्रतिबिम्बान्येव कुसुमानि तै रचितानि परिष्कृतानि । 'ज्योतिस्तारागिनभाज्वालादृक्पुत्रार्थाध्वरात्मसु' इति वैजयन्ती । एतेन पानभूमेरम्लानशोभत्वमुक्तम् । हर्म्यस्थलान्येत्य प्राप्य । त्वद्गम्भीरध्वनिरिव ध्वनिर्येषां तेषु पुष्करेषु वाद्यभाण्डमुखेषु । 'पुष्करं करिहस्ताग्रे वाद्यभाण्डमुखे जले' इत्यमरः । शनकैर्मन्दमाहतेषु सत्सु । एतच्च नृत्यगीतयोरप्युपलक्षणम् । कल्पवृक्षप्रसूतं कल्पवृक्षस्य काङ्क्षितार्थप्रदत्वान्मध्वपि तत्र प्रसूतम् । रतिः फलं यस्य तद्रतिफलाख्यं मधु मद्यमासेवन्ते । आदृत्य पिबन्तीत्यर्थः । ('तालक्षीररसितामृतामलगुडोन्मत्तास्थिकालाह्वयादार्विन्द्रद्रुममोरटेक्षुकदलीगुल्मप्रसूनैर्युतम्। इत्थं चेन्मधुपुष्पभङ्ग्युपचितं पुष्पद्रुमूलावृतं क्वाथेन स्मरदीपनं रतिफलाख्यं स्वादु शीतं मधु ॥' इति मदिरार्णवः) ॥५॥

**टिप्पणी—हर्म्यस्थलानि**—यहाँ स्थल के दो अर्थ किये जा सकते हैं—(१) महलों की अटारियाँ, (२) महलों का भूमि भाग अर्थात् फर्श । परन्तु पहला अर्थ ही उचित प्रतीत होता है; क्योंकि तारों का प्रतिबिम्ब ऊँची अटारियों पर पड़ना स्वाभाविक है ।

**रतिफलम्**—रतिफल का सामान्य अर्थ रति क्रीड़ाजन्य सुख ही होता है अर्थात् संभोग सुख है फल जिसका, परन्तु मल्लिनाथ ने रतिफल को एक प्रकार की मदिरा माना है और मदिरार्णव के ग्रन्थ से उसका लक्षण उद्धृत किया है जो इस प्रकार है— *तालक्षीररसितामृतामलगुडोन्मत्तास्थिकालाह्वयादार्विन्द्रद्रुममोरटेक्षुकदलीगुल्मप्रसूनैर्युतम् । इत्थं चेन्मधुपुष्पभङ्ग्युपचितं पुष्पद्रुमूलावृतं क्वाथेन स्मरदीपनं रतिफलाख्यं स्वादुशीतं मधु ।*

**कल्पवृक्ष**—कल्पवृक्ष एक स्वर्गीय वृक्ष है जो याचक को अभीष्ट फल देता है । इसलिए इससे मदिरा भी उत्पन्न हो सकती है ।

**शनकैः**—यह शब्द साभिप्राय प्रयुक्त किया है । इसका अभिप्राय है कि पान गोष्ठी (Drinking symposium) के समय गीत, नृत्य के साथ तबला भी धीरे-धीरे बजाया जाता है; क्योंकि शृंङ्गार रस कोमल भावों में गिना जाता है । इसमें गीत और वाद्य की कठोरता नहीं होनी चाहिये, नहीं तो इसकी कोमलता नष्ट हो जाती है ।

**व्याकरण—सितमणिमयानि**—सिताः मणयः (कर्मधा०) तेषां विकाराः इति, सितमणि+मयट् । **एत्य**—आ+√इ+क्त्वा (ल्यप्) । **हर्म्यस्थलानि**—हर्म्याणां स्थालानि (ष० त०) । **ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि**—ज्योतिषां छायाः (ष० त०) ताः एव कुसुमानि (ष० त०) तैः रचितानि (तृ० त०) । **उत्तमस्त्रीसहायाः**—उत्तमाः स्त्रियः सहायाः येषां ते (बहु०) । **आसेवन्ते**—आ+√सेव् लट् प्र० पु० (बहु०) । **रतिफलम्**—रतिः फलम् यस्य तत् (बहु०) । **कल्पवृक्षप्रसूतम्**—कल्पवृक्षात् प्रसूतम् तत् (प० त०), **प्रसूतम्**—प्र+√सू+क्त । **त्वद्गम्भीरध्वनिषु**—गम्भीरश्चाऽसौ ध्वनिः (कर्मधा०) तव इव गम्भीरध्वनिर्येषां ते, तेषु (बहु०) । **शनकैः**—शनैः एव शनकैः शनैस्+अकच् । **आहतेषु**—आ+√हन्+क्त ।

प्रस्तुत श्लोक में **उदात्त** अलङ्कार है । ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि पद में **रूपक** तथा त्वद्गम्भीरध्वनिषु में **लुप्तोपमा** है । □

**प्रसङ्ग**—अलकापुरी की कन्याओं की क्रीड़ा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—

**मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः[1] सेव्यमाना मरुद्भि-**
**र्मन्दाराणामनुतटरुहां[2] छायया वारितोष्णाः ।**
**अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः**
**संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः ॥६॥**

**अन्वयः**—यत्र मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः मरुद्भिः सेव्यमानाः अनुतटरुहां मन्दाराणां छायया वारितोष्णाः अमरप्रार्थिताः कन्याः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः अन्वेष्टव्यैः मणिभिः संक्रीडन्ते ॥६॥

**शब्दार्थ**—**यत्र**=जिस अलकापुरी में, **मन्दाकिन्याः**=गङ्गा नदी के, **सलिलशिशिरैः**=जल से शीतल, **मरुद्भिः**=पवनों द्वारा, **सेव्यमानाः**=सेवा की जाती हुई, **अनुतटरुहाम्**=किनारों पर उगे हुए, **मन्दाराणाम्**=मन्दार वृक्षों की, **छायया**=छाया से, **वारितोष्णाः**=रोकी गयी धूप वाली, **अमरप्रार्थिताः**=देवताओं द्वारा चाही जाने वाली, **कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः**=सोने की बालू में मुट्ठी में रखकर छिपायी गयी, **अन्वेष्टव्यैः**= खोजी जाने वाली, **मणिभिः**=मणियों से, **संक्रीडन्ते**=खेलती हैं ।

**अनुवाद**—**जिस (अलकापुरी) में गङ्गा नदी के जल से शीतल पवनों द्वारा सेवा की जाती हुई, किनारों पर उगे हुए मन्दार वृक्षों की छाया से रोकी गयी धूप वाली, देवताओं के द्वारा चाही जाने वाली, कन्याएँ सोने की बालू में मुट्ठी में रखकर छिपायी गयी, (अतएव) खोजी जाने वाली मणियों से खेलती हैं ॥६॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! यत्राऽलकायां गङ्गायाः सलिलशिशिरैः वायुभिः परिचर्यमाणाः सत्यः तटोत्पन्नानां मन्दारवृक्षाणां छायया निवारितातपाः देवाभिलषिताः यक्षकुमार्यः कनकबालुकामुष्टिस्थापनसंवृतैः मृग्यैः रत्नैः क्रीडन्ति, गुप्तमणिसंज्ञया दैशिकक्रीडया सम्यक् क्रीडन्तीति भावः ।

**सञ्जीवनी**—मन्दाकिन्या इति । यत्रालकायाममरैः प्रार्थिताः । सुन्दर्य इत्यर्थः । कन्या यक्षकुमार्यः । 'कन्या कुमारिकानार्योः' इति विश्वः । मन्दाकिन्या गंगायाः सलिललेन शिशिरैः शीतलैर्मरुद्भिः सेव्यमानाः सत्यः । तथानुतटं तटेषु रोहन्तीत्यनुतटरुहः । (क्विप्) । तेषां मन्दाराणां छाययाऽनातपेन वारितोष्णाः शमितातपाः सत्यः । कनकस्य सिकतासु मुष्टिभिर्निक्षेपेण गूढैः संवृतैरत एवान्वेष्टव्यैर्मृग्यैर्मणिभिः रत्नैः संक्रीडन्ते गुप्तमणिसंज्ञया दैशिकक्रीडया सम्यक् क्रीडन्तीत्यर्थः । ('क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च' इत्यात्मनेपदम् ।) 'रत्नादिभिर्बालुकादौ गुप्तैर्द्रष्टव्यकर्मभिः । कुमारीभिः कृता क्रीडा नाम्ना गुप्तमणिः स्मृता । रासक्रीडा गूढमणिर्गुप्तकेलिस्तुलायनम् । पिच्छकन्दुकदण्डाद्यैः स्मृता दशिककेलयः ।' इति शब्दार्णवः ॥६॥

**टिप्पणी**—**मन्दाकिन्याः**—गङ्गा के अनेक नाम हैं; जैसे—जह्नुतनया, जाह्नवी, भागीरथी, मन्दाकिनी आदि । गङ्गा स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों लोकों में अवस्थित है । स्वर्ग में रहने वाली गङ्गा को मन्दाकिनी, मर्त्य लोक में स्थित गङ्गा को भागीरथी तथा पाताल में स्थित गङ्गा को भोगवती कहते हैं । केदारनाथ से होकर बहने वाली गङ्गा की धारा को भी मन्दाकिनी कहते हैं । पौराणिक आख्यानों में हिमालय को देवताओं का वास स्थान बताया गया है । इसी कारण कैलाश में स्थित अलका की समीपवर्तिनी गङ्गा को मन्दाकिनी कहा जाता है ।

**मन्दाराणाम्**—मन्दार पाँच देव वृक्षों में से एक है । अमरकोश में पाँच वृक्ष इस प्रकार बताये गये हैं—

१. पयसि शिशिरैः ।
२. तटवनरुहाम् ।

*पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः ।*
*सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम् ॥*

**कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढै:**—यह एक देशी खेल है । इसमें एक बालक हाथ में मणि आदि को लेकर किसी रेत के ढेर में छिपाता है और दूसरे बालक एकत्रित किये गये रेत में उसे ढूँढते हैं । शब्दार्णव में इस खेल को गुप्तमणि या गूढमणि नाम से पुकारा जाता है । शब्दार्णव में श्लोक इस प्रकार है—

*रत्नादिभिर्बालुकाऽऽदौ गुप्तैर्द्रष्टव्यकर्मभिः ।*
*कुमारीभिः कृता क्रीडा नाम्ना गुप्तमणिः स्मृता ॥*
*रासक्रीडा गूढमणिर्गुप्तिकेलिस्तुलायनम् ।*
*पिच्छकन्दुकदण्डाद्यैः स्मृता दैशिककेलयः ॥*

**व्याकरण—सलिलशिशिरै:**—सलिलेन शिशिरैः (तृ० पु०) । **सेव्यमाना**—√सेव्+यक्+मुक्+शानच् । **अनुतटरुहाम्**—तटेषु इति अनुतटम् (अव्ययीभाव) अनुतटं रोहन्ति इति तेषाम् (उप० त०) । **वारितोष्णाः**—वारितः उष्णः यासां ताः (बहु०), **वारिताः**—√वृ+णिच्+क्त। **अन्वेष्टव्यैः**—अनु+√इष्+तव्यत्, पुल्लिङ्ग तृ० बहु०। **कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः**—कनकस्य सिकताः (ष० त०) तासु मुष्टिभिः निक्षेपः (तृ० त०) कनकसिकतासु मुष्टिनिक्षेपः (स० त०) तेन गूढैः (तृ० त०), **निक्षेपः**—नि+√क्षिप्+घञ्, **गूढः**—गुह्+क्त । **संक्रीडन्ते**—सम्+√क्रीड+लट् ल० प्र० पु० बहुव०, सम्, अनु और परि उपसर्गपूर्वक क्रीड् धातु का प्रयोग होने से आत्मनेपद। **अमरप्रार्थिताः**—अमरैः प्रार्थिताः (तृ० त०), **प्रार्थितः**—प्र+√अर्थ+णिच्+क्त (कर्मणि) । **कन्याः**—कमनीया भवति, क्वेयं नेतव्या, कमनेन नीयते इति ।

प्रस्तुत श्लोक में लोकातिशय सम्पत्ति का वर्णन होने से **उदात्त** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से अलकापुरी के स्त्री-पुरुषों की काम-क्रीड़ा का वर्णन करता हुआ कहता है कि—

**नीवीबन्धोच्छ्वसित शिथिलं[1] यत्र बिम्बाधराणां[2]**
**क्षौमं[3] रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ।**
**अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि[4] प्राप्य रत्नप्रदीपान्**
**ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥७॥**

**अन्वयः**—यत्र अनिभृतकरेषु प्रियेषु नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं क्षौमं रागात् आक्षिपत्सु ह्रीमूढानां बिम्बाधराणां चूर्णमुष्टिः अर्चिस्तुङ्गान् रत्नप्रदीपान् अभिमुखं प्राप्य अपि विफलप्रेरणा भवति ॥७॥

**शब्दार्थ—अनिभृतकरेषु**=चञ्चल हाथों वाले, **नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलम्**=अधोवस्त्र की गाँठ के खुल जाने से ढीले हुए, **क्षौमम्**=रेशमी वस्त्र को, **रागेषु**=राग के कारण, **आक्षिपत्सु**=हटा देने पर, **ह्रीमूढानाम्**=लज्जा से हक्की-बक्की हुई, **बिम्बाधराणाम्**=बिम्ब फल के समान ओठों

१. ० बन्धोच्छ्वसन० ।
२. यक्षाङ्गनानाम् ।
३. वासः कामात् ।
४. ०नभिमुखगतान् ।

वाली, **चूर्णमुष्टिः**=चूर्ण की मुट्ठी, **अर्चिस्तुङ्गान्**=किरणों से उन्नत, **रत्नप्रदीपान्**=रत्नरूपी दीपों के, **अभिमुखम्**=सामने, **प्राप्य**=पहुँचकर, **विफलप्रेरणा**=निष्फल फेंकी हुई ।

**अनुवाद**—**जिस (अलकापुरी) में चञ्चल हाथों वाले प्रेमियों के द्वारा अधोवस्त्र की गाँठ के खुल जाने से ढीले हुए रेशमी वस्त्र को राग के कारण हटा देने पर लज्जा से हक्की-बक्की हुई, बिम्ब फल के समान ओठों वाली (स्त्रियों) की चूर्ण की मुट्ठी किरणों से उन्नत, रत्नरूपी दीपकों के सामने पहुँचकर भी निष्फल फेंकी हुई हो जाती है ।।७।।**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! यस्यामलकायां चञ्चलहस्तैः प्रियैः वसनग्रन्थिबन्धत्रुटितश्लथं दुकूलम् अधोवस्त्रं वा कामात् आहरत्सु सत्सु लज्जातिशयेन बिम्बौष्ठीनाम् मुष्टिपरिमितकुङ्कुमादिचूर्णं मयूखोन्नतान् मणिदीपान् समुखम् प्राप्य अपि निष्फलवेगा भवति ।

**सञ्जीवनी**—नीवीति । यत्रालकायामनिभृतकरेषु चपलहस्तेषु प्रियेषु । नीवी वसनग्रन्थिः । 'नीवी परिपणे ग्रन्थौ स्त्रीणां जघनवाससि' इति विश्वः । सैव बन्धो नीवीबन्धः । चूतवृक्षवदपौनरुक्त्यम्। तस्योच्छ्वसितेन त्रुटितेन शिथिलं क्षौमं दुकूलं रागादाक्षिपत्स्वाहरत्सु सत्सु ह्रीमूढानां लज्जाविधुराणाम्। बिम्बं बिम्बाकारफलम् । 'बिम्बं फले बिम्बिकायाः प्रतिबिम्बे च मण्डले' इति विश्वः । बिम्बमिवाधरो यासां तासां बिम्बाधराणां स्त्रीविशेषाणाम् । 'विशेषाः कामिनी कान्ता भीरुर्बिम्बाधराऽङ्गना' इति शब्दार्णवः । चूर्णस्य कुङ्कुमादेर्मुष्टिः । अर्चिभिर्मयूखैस्तुङ्गान् 'अर्चिभिर्मयूखशिखयोः' इति विश्वः। रत्नान्येव प्रदीपानभिमुखं यथा तथा प्राप्यापि विफलप्रेरणा दीपनिर्वापणाक्षमत्वान्निष्फलवेगा भवति । अत्राङ्गनानां रत्नप्रदीपनिर्वापणप्रवृत्त्या मौग्ध्यं व्यज्यते ।।७।।

**टिप्पणी**—**नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलम्**—अधोवस्त्र की गांठ के खुल जाने के कारण ढीला । नीवी का अर्थ स्त्रियों के नीचे के वस्त्र की गांठ होता है तथा नीवी अधोवस्त्र को भी कहते हैं; क्योंकि यहाँ बन्ध शब्द का प्रयोग किया गया है इसलिए नीवी से अधोवस्त्र अर्थ लेना अधिक उपयुक्त दिखायी पड़ता है ।

**बिम्बाधराणाम्**—बिम्ब फल के समान (लाल) ओष्ठ वाली स्त्री को बिम्बाधरा कहते हैं । अथवा प्रियतम के बार-बार चुम्बन करने से अथवा दशनक्षत करने के कारण बिम्ब फल के समान जिनके लाल ओष्ठ हैं, वे बिम्बाऽधरा कहलाती हैं, अथवा शब्दार्णव के अनुसार स्त्री विशेष को बिम्बाऽधरा कहते हैं—

*"विशेषाः कामिनी कान्ता भीरुर्बिम्बाऽधराङ्गना ।"*

**विफलप्रेरणा**—निष्फल वेग वाली—अभिप्राय यह है कि जब रति क्रीड़ा के लिए प्रियतम अपनी प्रेमिकाओं के वस्त्र उतारते हैं तो वे प्रेमिकाएँ उनके सामने नग्नावस्था में लज्जा के मारे शर्म से गढ़ जाती हैं; अतः वे मणियों के प्रज्ज्वलित दीपकों को बुझाने का प्रयास करती हैं और उनके ऊपर मुट्ठी भरकर चूर्ण फेंकती हैं, किन्तु वे दीपक नहीं बुझते; क्योंकि वे तेल के दीपक नहीं हैं वे तो मणिमय दीपक हैं । इस कारण उनका प्रयास निष्फल रहता है । इस प्रकार यहाँ प्रेमिकाओं का मुग्धापन व्यञ्जित होता है, वे मुग्धा भोली-भाली नायिकाएँ हैं, जो प्रियतम के सहवास से लजाती हैं ।

**व्याकरण**—**नीवीबन्धोच्छ्वसिताशिथिलम्**—नीवी एव बन्धः (कर्मधारय) अथवा नीव्याः बन्धः (ष० त०) तस्य उच्छ्वसितम् (ष० त०) तेन शिथिलम् (तृ० त०), **उच्छ्वसितम्**—उद्+√श्वस्+क्त (भावे) । **बिम्बाधराणाम्**—बिम्बमिव अधरो यासां ताः बिम्बाधराः (बहु०) तासाम् । **क्षौमम्**—क्षुमाया विकारः क्षौमं तत् क्षुमा+अण् । **रागात्**—√रञ्ज्+घञ् (भावे) हेतौ पञ्चमी । **अनिभृतकरेषु**—न निभृताः (नञ् त०) अनिभृताः करा येषां ते, तेषु (बहु०) । **निभृताः**—नि+√भृ+क्त।

**आक्षिपत्सु**—आ+√क्षिप्+शतृ (पु०) (स० बहुव०)। **अर्चिस्तुङ्गान्**—अर्चिभि: तुङ्गा: (तृ० त०) तान्। **अभिमुखम्**—मुखम् प्रति (अव्ययी० स०)। **प्राप्य**—प्र+√आप्+क्त्वा (ल्यप्)। **रत्नप्रदीपान्**—रत्नानि एव प्रदीपा: (कर्मधा०) तान्। **ह्रीमूढानाम्**—ह्रिया मूढानाम् (तृ० त०)। **विफलप्रेरणा**—विगतं फलं यस्या सा विफला (बहु०), विफला प्रेरणा यस्या: सा: (बहु०)। **चूर्णमुष्टि:**—चूर्णस्य मुष्टि: (ष० त०)।

प्रस्तुत श्लोक में बिम्बाधराणाम् में **लुप्तोपमा** है तथा दीपक बुझाने के हेतु चूर्णमुष्टि होने पर भी उनके न बुझने से **विशेषोक्ति** है। □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से अलकापुरी में मेघों का वर्णन करते हुए कहता है कि—

**नेत्रा नीता: सततगतिना यद्विमानाग्रभूमि-**
**रालेख्यानां सलिलकणिकादोषमुत्पाद्य[1] सद्य:।**
**शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्गै[2]-**
**र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा:[3] जर्जरा निष्पतन्ति ॥८॥**

**अन्वय:**—नेत्रा सततगतिना यद् विमानाग्रभूमी: नीता: आलेख्यानां सलिलकणिकादोषम् उत्पाद्य सद्य: शङ्कास्पृष्टा: इव धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा: त्वादृशा: जलमुच: जर्जरा: जलमार्गै: निष्पतन्ति ॥८॥

**शब्दार्थ**—**नेत्रा**=प्रेरक, **सततगतिना**=वायु द्वारा, **यद्विमानाग्रभूमी:**=जिस (अलका) के सात मंजिलों वाले भवनों के ऊपरी भाग में, **नीता:**=ले जाये गये, **आलेख्यानाम्**=चित्रों में, **सलिलकणिकादोषम्**=जल कणों से दोष को, **उत्पाद्य**=उत्पन्न करके, **सद्य:**=शीघ्र ही, **शङ्कास्पृष्टा**=भय से स्पर्श किये गये, **धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा:**=धुएँ के निकलने का अनुकरण करने में निपुण, **त्वादृशा:**=तुम्हारे जैसा, **जलमुच:**= मेघ, **जर्जरा:**=छिन्न-भिन्न होकर, **जालमार्गै:**=खिड़कियों में से, **निष्पतन्ति**=निकल जाते हैं।

**अनुवाद—प्रेरक वायु द्वारा जिस (अलकापुरी) के सात मंजिलों वाले भवनों के ऊपर के भागों में ले जाये गये, चित्रों में जल कणों से दोष को उत्पन्न करके, शीघ्र ही भय से स्पर्श किये गये, मानो धुएँ के निकलने का अनुकरण करने में निपुण तुम्हारे जैसे मेघ छिन्न-भिन्न होकर खिड़कियों में से निकल जाते हैं ॥८॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! प्रेरकवायुना यत्र अलकायां सप्तभूमिकभवनोपरिभूमी: प्रापिता: चित्राणां स्वजलकणिकादोषं जनयित्वा शीघ्रमेव भयाविष्टा: इव धूमनिर्गमस्य अनुकरणे कुशला: भवादृशा: मेघा: विशीर्णा: सन्त: गवाक्षमार्गै: निष्क्रामन्ति।

**सञ्जीवनी**—नेत्रेति। हे मेघ, नेत्रा प्रेरकेण सततगतिना सदागतिना वायुना। 'मातरिश्वा सदागति:' इत्यमर:। यद्विमानाग्रभूमी: यस्या अलकाया विमानानां सप्तभूमिकभवनानामग्रभूमीरुपरिभूमिका नीता: प्रापिता:। त्वमिव दृश्यन्त इति त्वादृशा:। त्वत्सदृशा इत्यर्थ:। ('त्वदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च' इति कञ्प्रत्यय:।) जलमुचो मेघा:। आलेख्यानां सच्चित्राणाम्। 'चित्रे लिखितरूपाद्यं स्यादालेख्यं तु यत्नत:' इति शब्दार्णव:। स्वजलकणिकाभिर्जलकणैर्दोषं स्फोटनमुत्पाद्य सद्य:शङ्कास्पृष्टा

१. स्वजलकणिकादोषम्।
२. यन्त्रजालै; यत्र जालै:।
३. ०निपुणम्।

सापराधत्वाद्भयाविष्टा इव । 'शंका वितर्कभययोः' इति शब्दार्णवः । धूमोद्गारस्य धूमनिर्गमस्यानुकृतावनुकरणे निपुणाः कुशलाः । जर्जरा विशीर्णाः सन्तः जालमार्गैर्गवाक्षरन्ध्रैर्निष्पतन्ति निष्क्रामन्ति । (केनचिदन्तःपुरसंचारवता दूतेन गूढवृत्त्या रहस्यभूमिं प्रापितास्तत्र स्त्रीणां व्यभिचारदोषमुत्पाद्य सद्यः साशङ्का कलृप्तवेषान्तरा जाराः क्षुद्रमार्गैर्निष्क्रामन्ति तद्वदिति ध्वनिः ।) प्रकृतार्थे शङ्कास्पृष्टा इवेत्युत्प्रेक्षा ॥८॥

**टिप्पणी—सततगतिना**—निरन्तर गति करने वाली, वायु सदा संचरण करती रहती है; अतः निरन्तर गतिशील रहने के कारण वायु को सततगति कहते हैं ।

**विमानाग्रभूमीः**—विमान—सात मञ्जिलों वाले ऊँचे भवनों को कहते हैं, अग्रभूमि ऊपर का भाग, छत, छज्जा, अटारी । यहाँ अग्रभूमि का अभिप्राय अटारी या सबसे ऊपर की मंजिल है।

**सलिलकणिकादोषम्**—जल की बूँदें जहाँ भी पड़ती हैं वहीं खराब कर देती हैं । रंगीन चित्रों पर गिरने से रंग फूल कर खराब हो जाते हैं ।

**शङ्कास्पृष्टाः**—यहाँ शङ्का का अर्थ भय है । भय मेघों को अपराध करने पर हुआ; क्योंकि मेघों ने अपने जल बिन्दुओं से चित्रों को खराब कर दिया है, इस कारण वे अपने को दोषी मान रहे हैं; अतः खिड़कियों से निकल भागते हैं ।

**व्याकरण—नेत्रा**—√नी+तृच्, तृ० एकव० । **नीताः**—√नी+क्त (तृ० एकव०) । **सततगतिना**—सततं गतिर्यस्य सः सततगतिः (बहुव्रीहि) तेन । **यद्विमानाग्रभूमीः**—विशेषेण मीयन्ते यानि तानि=विमानानि अग्राभूमिः अग्रभूमिः (कर्मधा०) यस्य विमानानि (ष० त०) तेषाम् अग्रभूमयः (ष० त०) ताः । **आलेख्यानाम्**—आ+√लिख्+ण्यत् (ष० बहुव०) । **सलिलकणिकादोषम्**—सलिलस्य कणिकाः (ष० त०) ताभिः कृतः दोषः (मध्यमपदलोपी स०) तम् । **उत्पाद्य**—उत्+√पद+णिच् +क्त्वा (ल्यप्) । **शङ्कास्पृष्टाः**—शङ्कया स्पृष्टाः (तृ० त०) । **स्पृष्ट**—√स्पृश्+क्त। **जलमुचः**—जलं मुञ्चन्ति इति (उपपद स०), जल+मुच्+√क्विप् । **त्वादृशाः**—त्वमिव दृश्यन्ते इति त्वादृशाः, युष्मद्+दृश्+कञ् (त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च) ''इति कञ्'' इत्यनेन, युष्मदः त्वादेशः 'आ सर्वनाम्नः इति सूत्रेण आत्वम्' । **जालमार्गैः**—जालानां मार्गैः (ष० त०) । **धूमोद्गारानुकृतिनिपुणाः**—धूमस्य उद्गारः (ष० त०) तस्य अनुकृतिः (ष० त०) तस्यां निपुणाः (स० त०) । **उद्गारः**—उत्+√गृ+घञ् । **अनुकृतिः**—अनु+√कृ+क्तिन् । **निष्पतन्ति**—निस्+√पत्+लट् ल०, प्र० पु० बहुव०।

**विशेष**—आचार्य मल्लिनाथ के अनुसार यहाँ यह ध्वनि है कि—जैसे दूत द्वारा अन्तःपुर में प्रविष्ट कराये गये जार स्त्रियों से व्यभिचार करके अपराध के डर से वेश बदलकर खिड़की आदि से भाग जाते हैं उसी प्रकार यहाँ वायु द्वारा ऊँचे महलों की अटारियों में पहुँचाये गये बादल वहाँ के चित्रों को बूँदों से बिगाड़कर अपराध के भय से धुएँ का रूप बनाकर खिड़कियों के रास्ते से निकल जाते हैं ।

प्रस्तुत श्लोक में स्त्रियाँ और आलेख्य में लिङ्ग साम्य न होने के कारण **समासोक्ति** अलङ्कार नहीं है, अपितु 'शङ्कास्पृष्टा इव' में **उत्प्रेक्षा** अलंकार है । □

**प्रसङ्ग—यक्ष मेघ से कहता है कि अलकापुरी में स्त्रियों की रतिजन्य थकान को चन्द्रकान्त मणियाँ दूर करती हैं—**

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिङ्गितानाम्[1]-
मङ्गग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः ।
त्वत्संरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे[2]
व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः ॥९॥

**अन्वयः**—यत्र निशीथे त्वत्संरोधापगमविशदैः चन्द्रपादैः स्फुटजललवस्यन्दिनः तन्तुजालावलम्बाः चन्द्रकान्ताः प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिङ्गितानां स्त्रीणां सुरतजनिताम् अङ्गग्लानिं व्यालुम्पन्ति॥९॥

**शब्दार्थ**—**निशीथे**=अर्द्ध रात्रि में, **त्वत्संरोधापगमविशदैः**=तुम्हारी रुकावट के हट जाने से निर्मल, **चन्द्रपादैः**=चन्द्र किरणों से, **स्फुटजललवस्यन्दिनः**=स्वच्छ जलकण की बूँदों को टपकाने वाली, **तन्तुजालावलम्बाः**=झालरों में लटकती हुई, **चन्द्रकान्ताः**=चन्द्रकान्त मणियाँ, **प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिङ्गितानाम्**=प्रियतमों की भुजाओं में ढीले पड़े आलिङ्गनों वाली, **सुरतजनिताम्**=रतिक्रीड़ा से उत्पन्न, **अङ्गग्लानिम्**=शारीरिक थकान को, **व्यालुम्पन्ति**=दूर करती है।

**अनुवाद**—**जहाँ (अलकापुरी में) अर्द्ध रात्रि में तुम्हारी रुकावट के हट जाने से निर्मल चन्द्रकिरणों (के सम्पर्क) के कारण स्वच्छ जलकण की बूँदों को टपकाने वाली झालरों में लटकती हुई, चन्द्रकान्त मणियाँ प्रियतमों की भुजाओं से ढीले पड़े आलिङ्गनों वाली स्त्रियों की रतिक्रीड़ा से उत्पन्न शारीरिक थकान को दूर करती हैं ॥९॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! यत्रालकायामर्धरात्रे मेघावरणाभावेन निर्मलैः चन्द्रकिरणैः व्यक्तवारिबिन्दुस्राविणः सूत्रजालावलम्बिनः चन्द्रकान्तमणयः प्रियतमबाहुपाशशिथिलीकृतानाम् योषिताम् रतिक्रीडोत्पन्नाम् शरीरस्वेदम् निवारयन्ति ।

**सञ्जीवनी**—यत्रेति । यत्रालकायां निशीथेऽर्धरात्रे । 'अर्धरात्रिनिशीथौ द्वौ' इत्यमरः। त्वत्संरोधस्य मेघावरणस्यापगमेन विशदैर्निर्मलैश्चन्द्रपादैश्चन्द्रमरीचिभिः 'पादा रश्म्यङ्घ्रितुर्यांशाः' । इत्यमरः । स्फुटजललवस्यन्दिन उल्बणाम्बुकणस्राविणस्तन्तुजालावलम्बा वितानलम्बिसूत्रपुञ्जाधाराः । तद्गुणगुम्फिता इत्यर्थः । चन्द्रकान्ताश्चन्द्रकान्तमणयः प्रियतमानां भुजैरालिङ्गनेषूच्छ्वासितानां प्रशिथिलीकृतानाम्। श्रान्त्या जलसेकाय वा शिथिलितालिङ्गनानामिति यावत् । स्त्रीणां सुरतजनितामङ्गग्लानिं—शरीरखेदम्। अवयवानां म्लानतामिति यावत् । व्यालुम्पन्त्यपनुदन्ति ॥९॥

**टिप्पणी**—**स्फुटजललवस्यन्दिनः**—चन्द्रमा की किरणों के सम्पर्क से चन्द्रकान्त मणि द्रवित हो जलस्राव करने लगती है । साम्य के लिए देखिये—शिशुपालवध ३/४४, उत्तररामचित ६/१२।

**व्याकरण**—**प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिङ्गितानाम्**—प्रियतमानां भुजाः (ष० त०) तैः उच्छ्वासितानि (तृ० त०) तादृशानि आलिङ्गितानि यासां ताः (बहु०) तासाम्, **उच्छ्वासित**—उद्+√श्वस्+णिच्+क्त, **आलिङ्गितम्**—आ+√लिङ्ग+क्त (भावे) । **अङ्गग्लानिम्**—अङ्गानां ग्लानिः ताम्, (प० त०), **ग्लानिः**—ग्लै+क्तिन् (भावे) । **सुरतजनिताम्**—सुरतेन जनिता (तृ० त०) ताम्, **जनिता**—√जन्+णिच्+क्त+टाप् । **तन्तुजालावलम्बाः**—तन्तूनां जालम् (ष० त०) तत् अवलम्बो येषां ते (बहु०), **अवलम्ब**—अव+√लम्ब्+अच् (कर्तरि) । **त्वत्संरोधापगमविशदैः**—तव संरोधः (ष० त०) तस्य अपगमः (ष० त०) तेन विशदाः तैः (तृ० त०) । **संरोधः**—सम्+√रुध्+घञ्। **चन्द्रपादैः**—चन्द्रस्य पादाः (ष० त०), तैः । **व्यालुम्पन्ति**—वि+आ+√लुप+लट् (प्र० पु० बहुव०)।

१. ०भुजालिङ्गनोच्छ्वासितानाम् ।
२. ०विशदैरिन्दुपादैर्नि०, ०र्द्योतिश्चन्द्रपादैः, ०प्रेरिताश्चन्द्रपादैः ।

**स्फुटजललवस्यन्दिन:**—जलस्य लवा: (ष० त०) स्फुटा: जललवा: (कर्मधारय) तान् स्यन्दन्ते इति (उप० त०) स्फुटजललव+√स्यन्द्+णिनि (कर्तरि)।

इस श्लोक में समृद्धिपूर्ण वस्तु का वर्णन करने से **उदात्त** तथा **काव्यलिङ्ग** अलङ्कार है।

□

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि अलकापुरी में कामुक जनों के द्वारा बाह्योद्यान का उपयोग किया जाता है—

**[1]अक्षय्यान्तर्भवननिधय: प्रत्यहं रक्तकण्ठै-**
**रुद्गायद्भिर्धनपतियश: किन्नरैर्यत्र सार्धम्।**
**वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्यासहाया**
**बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति ॥१०॥**

**अन्वय:**—यत्र अक्षय्यान्तर्भवननिधय: विबुधवनितावारमुख्यासहाया: बद्धालापा कामिन: प्रत्यहं रक्तकण्ठै: धनपतियश: उद्गायद्भि: किन्नरै: सार्धं वैभ्राजाख्यं बहिरुपवनं निर्विशन्ति ॥१०॥

**शब्दार्थ**—**अक्षय्यान्तर्भवननिधय:**=भवनों के अन्दर अपार निधियाँ रखने वाले, **विबुधवनितावारमुख्यासहाया:**=अप्सरा रूपी वेश्याओं को साथ लिये, **बद्धालापा:**=बातचीत करते हुए, **कामिन:**=कामीजन, **प्रत्यहम्**=प्रतिदिन, **रक्तकण्ठै:**=मधुर स्वर वाले, **धनपतियश:**=कुबेर के यश को, **उद्गायद्भि:**=ऊँचे स्वर में गाते हुए, **किन्नरै:**=किन्नरों के, **सार्धम्**=साथ, **वैभ्राजाख्यम्**=वैभ्राज नाम वाले, **बहिरुपवनम्**=बाहरी उद्यान का, **निर्विशन्ति**=उपभोग करते हैं, आनन्द लेते हैं।

**अनुवाद**—**जहाँ (अलकापुरी में) भवनों के अन्दर अपार निधियाँ रखने वाले, अप्सरा रूपी वेश्याओं को साथ लिये बातचीत करते हुए कामीजन प्रतिदिन मधुर स्वर वाले (और) कुबेर के यश को ऊँचे स्वर में गाने वाले किन्नरों के साथ वैभ्राज नाम वाले बाहरी उद्यान का उपभोग करते हैं ॥१०॥**

**संस्कृत-टीका**—यत्रालकापुर्यामपरिमेयधना अप्सरोवेश्यासहचरा: विहितसंभाषणा: कामुका: प्रतिदिनम् मधुरकण्ठध्वनिभि: कुबेरकीर्तिम् उच्चैर्गायद्भि: किन्नरै: सह: चैत्ररथाख्यं बाह्योद्यानं सेवन्ते।

**सञ्जीवनी**—अक्षय्येति। यत्रालकायाम् क्षेतुं शक्या: क्षय्या:। ('क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे' इति निपात:। ततो नञ्समास:।) भवनानामन्तरन्तर्भवनम्। (अव्ययं विभक्ति— 'इत्यादिनाऽव्ययीभाव:।) अक्षय्या अन्तर्भवने निधयो येषां ते तथोक्ता:। यथेच्छभोगसंभावनार्थमिदं विशेषणम्। विबुधवनिता अप्सरास्ता एव वारमुख्या वेश्यास्ता एव सहाया येषां ते तथोक्ता:। वारस्त्री गणिका वेश्या रूपाजीवाऽथ सा जनै:। सत्कृता वारमुख्या स्यात् इत्यमर:। बद्धालापा: संभावितसंलापा: कामिन: कामुका: प्रत्यहमहन्यहनि। ('अव्ययं विभक्ति—' इत्यादिना समास:)। रक्तो मधुर: कण्ठ: कण्ठध्वनिर्येषां ते तै: सुन्दर कण्ठध्वनिभिर्धनपतियश: कुबेरकीर्तिमुद्गायद्भिरुच्चैर्गायद्भि:। देवगानस्य गान्धारग्रामत्वात्तारतरं गायद्भिरित्यर्थ:। किन्नरै: सार्धं सह। विभ्राजस्येदं वैभ्राजमित्याख्या यस्य तद्वैभ्राजाख्यम्। 'विभ्राजेन गणेन्द्रेण जातं वैभ्राजमाख्यया' इति शंभुरहस्ये। चैत्ररथस्य नामान्तरमेतत् बहिरुपवनं बाह्योद्यानं निर्विशन्त्यनुभवन्ति ॥१०॥

**टिप्पणी**—**वैभ्राजाख्यम्**—यह कुबेर का चित्ररथ द्वारा बनाया गया उद्यान है। विभ्राज शिव

---

१. अक्षीणान्तर्भुवन।

का एक गण है, जो इस उद्यान की रक्षा करता है अतएव उद्यान का नाम भी वैभ्राज पड़ गया है। यह वही उद्यान है जिसका वर्णन पूर्वमेघ/७ में किया गया है।

**विबुधवनितावारमुख्यासहायाः**—यहाँ वनिता √वन् (चाहना)+क्त+टाप् का अर्थ पत्नी न होकर सामान्य स्त्री या चाही गयी स्त्री है। यहाँ चाही गयी स्त्री ग्राह्य है। इसलिए विबुधवनिता का अर्थ देवों के द्वारा चाही गयी या अप्सरा है। वारमख्या का अर्थ जन पूजित वेश्या होता है। अमरकोश के अनुसार—

*वारस्त्री गणिका वेश्या रूपा जीवाऽथ सा जनैः। सत्कृता वारमुख्या स्यात्।*

**व्याकरण—अक्षय्यान्तर्भवननिधयः**—क्षेतुं शक्याः क्षय्याः न क्षय्या अक्षय्या (नञ् त०) भवनानाम् अन्तः (अव्ययी०) अक्षय्याः अन्तर्भवने निधयः येषाम् (बहु०) ते, **अक्षय्य**—नञ्+√क्षि+यत्, **निधिः**—नि+√धा+कि (पुंल्लिङ्ग)। **प्रत्यहम्**—अहनि अहनि इति (अव्ययी०)। **रक्तकण्ठैः**—रक्तः कण्ठः येषाम् (बहु०) तैः, **रक्त**—√रञ्ज्+क्त। **उद्गायद्भिः**—उत्+√गै+शतृ (तृ० बहु०)। **धनपतियशः**—धनानां पतिः (ष० त०) तस्य यशस्तत् (ष० त०)। **किन्नरैः**—सार्धम् के योग में ''सहयुक्तेऽप्रधाने'' इस सूत्र से तृ० हुई है। **वैभ्राजाख्यम्**—वैभ्राजम् इति आख्या (बहु०) तत्, विभ्राज+अण्। **विबुधवनितावारमुख्यसहाया**—विबुधानां वनिताः (ष० त०) ताः एव वारमुख्याः (रूपकसमास) ताः सहायाः येषां ते (बहुव्रीहि)। **बद्धालापाः**—बद्धः आलापः येषाम् ते (बहुव्रीहि), **बद्धः**—बन्ध्+क्त, **आलापः**—आङ्+ल्यप्+घञ्। **बहिरुपवनम्**—बहिः उपवनम् (केवल समास)। **निर्विशन्ति**—निर्+विश्+लट् (प्र० पु० बहुव०), **कामिनः**—कमु+णिनि।

प्रस्तुत श्लोक में **उदात्त** अलङ्कार है। □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को बताता है कि अलकापुरी में अभिसारिकाओं का रात्रि का मार्ग कैसे सूचित होता है—

**गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र[1] मन्दारपुष्पैः**
**पत्रच्छेदैः[2] कनककमलैः[3] कर्णविभ्रंशिभिश्च[4]।**
**मुक्ताजालैः[5] स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च[6] हारै-**
**र्नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥११॥**

**अन्वयः**—यत्र कामिनीनां नैशः मार्गः सवितुः उदये गत्युत्कम्पात् अलकपतितैः मन्दारपुष्पैः कर्णविभ्रंशिभिः पत्रच्छेदैः कनककमलैः च स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैः मुक्ताजालैः हारैः च सूच्यते ॥११॥

**शब्दार्थ—यत्र**=जिस (अलकापुरी) में, **कामिनीनाम्**=अभिसरण करने वाली स्त्रियों का, **नैशः**=रात्रि का, **सवितुः**=सूर्य के, **गत्युत्कम्पात्**=चलने में हिलने के कारण, **अलकपतितैः**=बालों से गिरे हुए, **मन्दारपुष्पैः**=मन्दार के पुष्पों से, **कर्णविभ्रंशिभिः**=कानों से गिरे हुए, **पत्रच्छेदैः**=पत्तों

---

१. गत्योत्कम्पाः।
२. पत्रच्छेदैः, कलृप्तच्छेद्यैः।
३. कनकनलिनैः।
४. विभ्रंसिभिश्च।
५. मुक्तालग्नैः मुक्तालग्नस्तन०।
६. स्तनपरिमलैश्छिन्नं, स्तनपरिमल०, मुक्ताजालस्तनपरिचयाच्छिन्न०, स्तनपरिसरैश्छिन्न०।

के खण्डों से, **कनककमलैः**=स्वर्णकमलों से, **स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैः**=स्तन प्रदेश पर टूटे हुए धागों वाले, **मुक्ताजालैः**=मोतियों की लड़ों से, **हारैः**=पुष्पों के हारों से, **सूच्यते**=सूचित हो जाता है ।

**अनुवाद**—**जिस (अलकापुरी) में अभिसरण करने वाली स्त्रियों का रात्रि का मार्ग सूर्य के निकलने पर चलने में हिलने के कारण बालों से गिरे हुए मन्दार के पुष्पों से, कान से गिरे हुए पत्तों के खण्डों से और स्वर्ण कमलों से और स्तन प्रदेश पर टूटे हुए धागों वाले मोतियों की लड़ों से तथा पुष्पों के हारों से सूचित हो जाता है ॥११॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! यत्राऽलकायां अभिसारिकाणाम् रात्रिसम्बन्धीपन्थाः सूर्योदये सति गमनचलनात् चूर्णकुन्तलस्रस्तैः सुरतरुकुसुमैः कर्णपतितैः पत्रलताखण्डैः सुवर्णपद्मैः च कुचप्रदेशत्रुटिततन्तुभिः मौक्तिकसरैः पुष्पमालाभिः च सूच्यते ।

**सञ्जीवनी**—गत्युत्कम्पादिति । यत्रालकायां कामिनीनामभिसारिकाणाम् । निशि भवो नैशो मार्गः सवितुरुदये सति गत्या गमनेनोत्कम्पश्चलनं तस्माद्धेतोरलकेभ्यः पतितैर्मन्दारपुष्पैः सुरतरुकुसुमैः। तथा पत्राणां पत्रलतानां छेदैः खण्डैः । पतितैरिति शेषः । तथा कर्णेभ्यो विभ्रंश्यन्तीति कर्णविभ्रंशीनि तै कनकस्य कमलैः । (षष्ठ्या विवक्षितार्थलाभे सति मयटा विग्रहेऽव्याहारदोषः । एवमन्यत्राप्यनुसंधेयम्।) तथा मुक्ताजालैर्मौक्तिकसरैः । शिरोनिहितैरित्यर्थः । तथा स्तनयोः परिसरः प्रदेशस्तत्र छिन्नानि सूत्राणि येषां तैर्हारैश्च सूच्यते ज्ञाप्यते । मार्गपतितमन्दारकुसुमादिलिङ्गैरयमभिसारिकाणां पन्था इत्यनुमीयत इत्यर्थः ॥११॥

**टिप्पणी**—**गत्युत्कम्पात्**—कामिनियाँ अपने प्रियतमों के पास अभिसार के लिए शीघ्रतापूर्वक जाती हैं, क्योंकि एक तो रात्रि का भय दूसरे किसी को उनके जाने का पता न चल जाये । इसलिए शरीर के हिलने-डुलने से उनके केशपाश में लगे अलंकरण आदि मार्ग में गिर जाते हैं, जिससे यह सूचित हो जाता है कि अभिसारिकायें इस मार्ग से गयी हैं ।

**पत्रच्छेदैः**—पत्तों के टुकड़ों से—इससे सिद्ध होता है कि स्त्रियाँ प्राचीन काल में अपने श्रृंगार प्रसाधन में फूल-पत्तियों का उपयोग करती थीं । इसी प्रकार का वर्णन कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल में भी किया है ।

**कामिनीनाम्**—साधारणतः तरुणी और सुन्दर स्त्री को कामिनी कहते हैं । किन्तु यहाँ पर अतिशय काम से पीड़ित स्त्री अर्थ ग्राह्य है, क्योंकि **कामश्चाष्टगुणः स्मृतः** स्त्रियों का काम वेग पुरुषों की अपेक्षा आठ गुना होता है, चाणक्य की इस उक्ति के अनुसार स्त्रियों को कामिनी कहते हैं । इसलिए इसका अर्थ यहाँ अभिसारिकायें हैं । अभिसारिका दो प्रकार की होती हैं, अपने पास प्रियतम को बुलाने वाली और दूसरी स्वयं प्रियतम के पास जाने वाली, यहाँ पर दूसरी प्रकार की अभिसारिका दृष्टिगोचर होती है । साहित्यदर्पण में अभिसारिका का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

*अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा ।*
*स्वयं वाऽभिसरत्येषां धीरैरुक्ताऽभिसारिका ॥ (सा० द० ३/७६)*

**व्याकरण**—**गत्युत्कम्पात्**—गत्या उत्कम्पः (चलनम्) तस्मात् (तृ० त०) हेतौ पञ्चमी, **उत्कम्पः**—उद्+ √कम्प्+घञ् (भावे) । **अलकपतितैः**—अलकेभ्यः पतितानि तैः (प० त०) मन्दारपुष्पैः का विशेषण है । **मन्दारपुष्पैः**—मन्दाराणां पुष्पैः (ष० त०)। **पत्रच्छेदैः**—पत्राणां छेदाः तैः (ष० त०), **छेदाः**—√छिद्+घञ् । **कनककमलैः**—कनकस्य कमलानि तैः (ष० त०) । **कर्णविभ्रंशिभिः**—कर्णेभ्यो विभ्रश्यन्तीति (उप० त०) तैः, कर्ण+वि+√भ्रंश+णिनि—**कर्णविभ्रंशिन्,**

तृ० बहुव०। **मुक्ताजालैः**—मुक्तानां जालैः (ष० त०)। **स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैः**—स्तनयोः परिसरः (ष० त०) तस्मिन् छिन्नानि सूत्राणि येषाम् तैः (बहु०), **छिन्नः**—छिद्+क्तः। **नैशः**—निशा+अण्। **सूच्यते**—सूच् धातु भावकर्म आत्मने० लट् प्र० पु० एकव०।

प्रस्तुत श्लोक में मार्ग में गिरे हुए उक्त पदार्थों को देखने से यह अनुमान होता है कि इस मार्ग से रात्रि में अभिसारिकाएँ गयी थीं अतः यहाँ **अनुमान** अलङ्कार है तथा मार्गसूचक साधनों के अधिकार के कारण यहाँ **समुच्चय** अलङ्कार है। □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि अलकापुरी में स्त्रियों के समस्त प्रसाधनों को कल्पवृक्ष ही प्रस्तुत कर देता है—

**वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं**
**पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पम्[1]।**
**लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या[2]-**
**मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥१२॥**

**अन्वयः**—यस्यां चित्रं वासः नयनयोः विभ्रमादेशदक्षं मधु, किसलयैः सह पुष्पोद्भेदं भूषणानां विकल्पं चरणकमलन्यासयोग्यं लाक्षारागं च सकलम् अबलामण्डनम् एकः कल्पवृक्षः सूते ॥१२॥

**शब्दार्थ**—**यस्याम्**=जिस (अलकापुरी) में, **चित्रं वासः**=अनेक वर्णों के वस्त्रों को, **विभ्रमादेशदक्षम्**=विलास सिखाने में समर्थ, **मधु**=मदिरा को, **किसलयैः सह**=नव पल्लवों के साथ, **पुष्पोद्भेदम्**=पुष्पों के विकास को, **भूषणानां विकल्पम्**=आभूषणों के अनेक प्रकार, **चरणकमलन्यासयोग्यम्**=चरण रूपी कमल में लगाने योग्य, **लाक्षारागम्**=महावर को, **अबलामण्डनम्**=स्त्रियों की प्रसाधन सामग्री को, **कल्पवृक्षः**=कल्पवृक्ष, **सूते**=उत्पन्न करता है।

**अनुवाद**—**जिस (अलकापुरी) में अनेक वर्णों के वस्त्रों को, नेत्रों को विलास सिखाने में समर्थ मदिरा को, नवपल्लवों के साथ पुष्पों के विकास को, आभूषणों के अनेक प्रकार तथा चरण रूपी कमल में लगाने योग्य महावर—इस प्रकार स्त्रियों की सम्पूर्ण प्रसाधन सामग्री को अकेला कल्पवृक्ष ही उत्पन्न करता है ॥१२॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! यस्यामलकायां नानावर्णं वस्त्रं नेत्रयोः विलासोपदेशसमर्थं मद्यं पल्लवैः सार्धं पुष्पाविर्भावं नैकविधानि आभूषणानि चरणकमलयोर्लाक्षारागं च समग्रं अबलाभूषणम् एकाकी एव कल्पतरुः जनयति।

**सञ्जीवनी**—'कचधार्यम् देहधार्यम् परिधेयं विलेपनम्। चतुर्धा भूषणं प्राहुः स्त्रीणामन्यच्च दैशिकम्।' इति रसाकरे। तदेवैतदाह—वास इति। यस्याम् अलकायां चित्रं नानावर्णकं वासः वसनम्। परिधेयमण्डनमेतत्। नयनोर्विभ्रमाणाम् आदेश उपदेशो दक्षं मधु मद्यम्। अनेन विभ्रमद्वारा मधुनो मण्डनत्वमित्यवधेयम्। तच्च कुण्डलादिवद्देहधार्येऽन्तर्भाव्यम्। किसलयैः पल्लवैः सह पुष्पोद्भेदं कुसुमोदयमुभयं चेत्यर्थः। इदं तु कचधार्यम्। भूषणानां विकल्पान् विशेषान्। देहधार्यमेतत्। तथा चरणकमलयोर्न्यासस्य समर्पणस्य योग्यं रज्यतेऽनेनेति रागो रञ्जकद्रव्यं लाक्षैव रागो लाक्षारागस्तम्। इदं चाङ्गरागादिविलेपनमण्डनोपलक्षणार्थम्।

१. विकल्पान्।
२. यस्मिन्।

सकलं सर्वं चतुर्विधमपीत्यर्थः अबलामण्डलं योषित्प्रसाधनजातम् एकः कल्पवृक्ष एव सूते जनयति । न तु नानासाधनसंपादनप्रयास इत्यर्थः ॥१२॥

**टिप्पणी—मधु नयनयोः विभ्रमादेशदक्षम्**—प्रेम के कारण उत्पन्न मन की अस्थिरता विभ्रम भाव कहलाता है । *'चित्तवृत्यनवस्थानं श्रृङ्गाराद्विभ्रमो भवेत् ।'* जिसमें स्त्रियाँ प्रियतम के आगमन आदि के समय हर्ष और अनुराग आदि के कारण शीघ्रतावश आभूषणादि को और जगह धारण कर लेती हैं । (सा० द० ३/१०४) के अनुसार—

*त्वरया हर्षरागादेर्दयितामनादिषु ।*

*अस्थाने विभ्रमादीनां विन्यासो विभ्रमो मतः॥*

यहाँ विभ्रम का अर्थ सौन्दर्य-ग्राह्य है, मदिरापान से आँखों में एक प्रकार की लालिमा आ जाती है । तब वे अनेक प्रकार के विलास करने लग जाती हैं । इसलिए मदिरा को यहाँ विलासों को सिखाने वाला बताया है । इस प्रकार के भाव साम्य के लिए देखिये—रघु० ४/६८, कुमार० ४/१२ ।

**सकलमबलामण्डनम्**—(सम्पूर्ण स्त्रियों की प्रसाधन सामग्री को) भाव यह है कि अकेला कल्पवृक्ष ही वहाँ की स्त्रियों के लिए समस्त प्रसाधन सामग्री प्रस्तुत कर देता है । यह प्रसाधन सामग्री चार प्रकार की बतायी है । रसाकर के अनुसार—

*कचधार्यं देहधार्यं परिधेयं विलेपनम् ।*

*चतुर्धा भूषणं प्राहुः स्त्रीणां मन्मथदैशिकम्॥*

अर्थात् कचधार्य, देहधार्य, परिधेय और विलेपन—ये चार प्रकार की हैं । **पुष्पोद्भेदम्** (कचधार्य) [केशों में धारण करने योग्य] ,**मधु तथा भूषणानां विकल्पान्** (देहधार्य) [शरीर पर धारण करने योग्य], **चित्रं वासः** (परिधेय) [पहने जाने वाला], **लाक्षारागम्** (विलेपन) [लेप किया जाने वाला] । इस प्रकार ये स्त्रियों के काम के उपदेशक चार प्रकार के अलङ्कार होते हैं ।

**व्याकरण—विभ्रमादेशदक्षम्**—विभ्रमाणाम् आदेशः (ष० त०) तस्मिन् दक्षम् (स० त०), **आदेशः**—आङ्+√दिश्+घञ् । **पुष्पोद्भेदम्**—पुष्पाणाम् उद्भेदः (ष० त०) तम्, **उद्भेदः**—उत्+√भिद्+घञ् । **किसलयैः**—सह के योग में तृतीया । **लाक्षारागम्**—लाक्षारागः इव (उपमित कर्मधा०) तम् । **चरणकमलन्यासयोग्यम्**—चरणौ कमले इवेति चरणकमले (उपमितसमास) तयोः न्यासः (ष० त०) तस्मिन् योग्यः (स० त०) तम् । **सूते**—√सू आत्मने० लट् प्रथम पु० एकव० । **अबलामण्डनम्**—अबलानाम् मण्डनम् (ष० त०), **मण्डनम्**—√मण्ड्+ल्युट् (करणे) ।

प्रस्तुत श्लोक में अलका वर्णन में अङ्ग प्रस्तुत वासः आदि से बहुत से पद 'सूते' इस क्रिया के कर्म है अतः **तुल्ययोगिता** अलङ्कार है । चरणकमलन्यासयोग्यम् इस पद में **लुप्तोपमा** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से अलकापुरी के वैभव का वर्णन करते हुए कहता है कि—

**पत्र श्यामा[१] दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः**

**शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात्[२] ।**

---

१. शष्पश्यामा; सस्यश्यामा ।

२. पयोदाः ।

**योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं[1] संयुगे तस्थिवांसः**
**प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणाङ्कैः ॥१३॥**

**अन्वयः**—यत्र वाहाः पत्रश्यामाः दिनकरहयस्पर्धिनः करिणः शैलोदग्राः प्रभेदात् त्वम् इव वृष्टिमन्तः (च) योधाग्रण्यः संयुगे प्रतिदशमुखं तस्थिवांसः चन्द्रहासव्रणाङ्कैः प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः॥१३॥

**शब्दार्थ**—**वाहाः**:=घोड़े, **पत्रश्यामाः**:=पत्तों के समान हरे, **दिनकरहयस्पर्धिनः**:=सूर्य के घोड़ों से प्रतिस्पर्धा करने वाले, **करिणः**:=हाथी, **शैलोदग्राः**:=पर्वतों के समान ऊँचे, **प्रभेदात्**=मद के टपकने से, **वृष्टिमन्तः**:=वर्षा करने वाले, **योधाग्रण्यः**:=श्रेष्ठ योद्धा, **संयुगे**=युद्ध में, **प्रतिदशमुखम्**=दस मुख वाले (रावण) के सामने, **तस्थिवांसः**:=टिके हुए, **चन्द्रहासव्रणाङ्कैः**:=चन्द्रहास नाम की (रावण की) तलवार के घाव रूपी चिन्हों के कारण, **प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः**:=आभूषण धारण करने की इच्छा को छोड़े हुए।

**अनुवाद**—**जिस (अलकापुरी) में घोड़े पत्तों के समान हरे (इसलिए) वर्ण और वेग में सूर्य के घोड़ों से प्रतिस्पर्धा करने वाले हैं, हाथी पर्वतों के समान ऊँचे तथा मद के टपकने (बहने) के कारण तुम्हारे समान वर्षा करने वाले हैं, श्रेष्ठ योद्धा युद्ध में रावण के सामने टिके हुये (इसलिए रावण की) चन्द्रहास नामक तलवार के घाव रूपी चिन्हों के कारण आभूषण धारण करने की इच्छा को छोड़े हुए हैं ॥१३॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! यत्रालकायाम् अश्वाः पलाशवर्णाः अतएव वेगतः सूर्याश्वकल्पाः हस्तिनः शैलवदुन्नता मदस्रावात् हेतोः त्वम् इव वर्षणशीलाः च भटश्रेष्ठाः युद्धे अभिरावणं स्थितवन्तः अतएव रावणासिक्षतचिन्हैः प्रतिषिद्धभूषणकान्तयः सन्ति।

**सञ्जीवनी**—पत्रेति। हे जलद, यत्रालकायां वाहा हयाः पत्रश्यामाः पलाशवर्णाः। अतएव दिनकरहयस्पर्धिनो वर्णतो वेगतश्च सूर्याश्वकल्पाः। तथा शैलोदग्राः शैलवदुन्नताः करिणः प्रभेदान्मदस्रावाद्धेतोः त्वमिव वृष्टिमन्तः। योधाग्रण्यः। अग्रे नयन्तीत्यग्रण्यः। ('सत्सूद्विष—' इत्यादिना क्विप्। 'अग्रग्रामाभ्यां नयतेः' इति वक्तव्याण्णत्वम्।) योधानामग्रण्यो भटश्रेष्ठाः संयुगे युद्धे प्रतिदशमुखमभिरावणं तस्थिवांसः स्थितवन्तः। अतएव चन्द्रहासस्य रावणासेर्व्रणानि क्षतान्येवाङ्काश्चिह्नानि तैः। 'चन्द्रहासो रावणासादसिमात्रेऽपि च क्वचित्' इति शाश्वतः। प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः प्रतिषिद्धभूषणकान्तयः। शस्त्रप्रहारा एव वीराणां भूषणमिति भावः। अत्रापि भाविकालङ्कारः॥१३॥

**टिप्पणी**—**दिनकरहयस्पर्धिनः**—(सूर्य के घोड़ों से प्रतिस्पर्धा करने वाले) अलकापुरी के घोड़े पत्तों के समान हरे वर्ण वाले हैं। क्योंकि सूर्य के घोड़े भी हरे वर्ण के माने जाते हैं, अतः अलकापुरी के घोड़े रंग में भी तथा वेग में भी सूर्य के घोड़ों से स्पर्धा करते हैं।

**प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः**—आभूषणों की अभिलाषा छोड़े हुए। वीर योद्धाओं का आभूषण शक्तिशाली शत्रु के प्रहार से हुए घाव के निशान होते हैं, स्वर्ण आदि के आभूषण नहीं। अलका के योद्धा रावण की तलवार के प्रहार सह चुके हैं, इसलिए उनकी आभूषणों की इच्छा समाप्त हो गयी है। पौराणिक आख्यान के अनुसार कुबेर विश्रवा का इडविडा से उत्पन्न पुत्र था। इस तरह वह रावण का अनुज था। कहा जाता है कि एक बार रावण ने कुबेर पर आक्रमण करके उसका पुष्पक विमान तथा कोष छीन लिया था, अतः उस युद्ध में अलकापुरी के योद्धा रावण की तलवार के प्रहार सह चुके थे।

**चन्द्रहास**—चन्द्रहास रावण की तलवार का नाम था, क्योंकि वह तलवार चन्द्र का उपहास

---

१. प्रतिदिशमुखम्।

करती थी अर्थात् चन्द्र से अधिक चमकने वाली थी, इसलिए उसे चन्द्रहास कहते थे ।

**व्याकरण**—**पत्रश्यामा:**—पत्राणि इव श्यामा: (उपमित कर्मधा०) । **दिनकर हयस्पर्धिन:**— दिनं करोतीति दिनकर: (उपपद स०) तस्य हया: (ष० त०) तै: स्पर्धन्ते इति (उप० त०), **दिनकर**—दिन+कृ+ट:, दिनकर+हय+√स्पर्ध्+णिनि (प्रथमा बहुव०) । **वाहा:**—वहन्तीति वह्+घञ् । **शैलोदग्रा:**—शैला: इव उदग्रा: (उपमित कर्मधा०) । **वृष्टिमन्त:**—वृष्टि+मतुप् (प्र० बहुव०) । **योद्धाग्रण्य:**—योद्धानाम् अग्रण्य: (ष० त०) । **प्रतिदशमुखम्**—दश मुखानि यस्य स: दशमुख: (बहु०), दशमुखं प्रति (अव्ययी०) । **तस्थिवांस:**—स्था+क्वसु (वस्) प्रथमा बहु०, योद्धाग्रण्य: का विशेषण । **प्रत्यादिष्टाभरणरुचय:**—आभरणानां रुचि: (ष० त०) प्रत्यादिष्टा आभरणरुचि: यै: तै: (बहु०), **प्रत्यादिष्ट**—प्रति+आङ्+√दिश्+क्त । **चन्द्रहासव्रणाङ्कै:**—चन्द्रहासस्य व्रणानि (ष० त०) तानि एव अङ्क: तै: (कर्मधा०) ।

प्रस्तुत श्लोक में **उपमा अलङ्कार** है ।

**विशेष**—आचार्य मल्लिनाथ जी इस श्लोक को पूर्वमेघ में उज्जयिनी वर्णन में रखते हैं, किन्तु उज्जयिनी के सैनिकों का रावण से युद्ध करना असङ्गत सा लगता है । इस श्लोक में आये रावण युद्ध प्रसङ्ग को ध्यान में रखकर इसे उत्तरमेघ में अलका वर्णन में रखना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है, क्योंकि अलका में ही रावण और शिवगणों में संघर्ष हुआ था । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को बताता है कि अलकापुरी में स्त्रियों का भ्रूभंङ्ग विलास कामदेव के अस्त्रों का काम करता है—

**मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद् वसन्तं**
**प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथ: षट्पदज्यम् ।**
**सभ्रूभङ्गप्रहितनयनै:[1] कामिलक्ष्येष्वमोघै[2]-**
**स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव[3] सिद्ध: ॥१४॥**

**अन्वय:**—यत्र मन्मथ: धनपतिसखं देवं साक्षात् वसन्तं मत्वा भयात् षट्पदज्यं चापं प्राय: न वहति, तस्य आरम्भ: सभ्रूभङ्गप्रहितनयनै: कामिलक्ष्येषु अमोघै: चतुरवनिताविभ्रमै: एव सिद्ध: ॥१४॥

**शब्दार्थ**—**मन्मथ:**=कामदेव, **धनपतिसखम्**=कुबेर के मित्र को, **देवम्**=महादेव शिव को, **षटपदज्यम्**=भ्रमर रूपी डोरी वाले, **चापम्**=धनुष को, **वहति:**=धारण करता है, **आरम्भ:**=कार्य, **सभ्रूभङ्गप्रहितनयनै:**=टेढ़ी भौंह करके चलाये गये नेत्रों वाले, **कामिलक्ष्येषु**=कामुक जन रूपी निशानों पर, **अमोघै:**=सफल, **चतुरवनिताविभ्रमै:**=चतुर स्त्रियों के हाव-भाव से ।

**अनुवाद**—**जहाँ (अलका में) कामदेव कुबेर के मित्र महादेव शिव को प्रत्यक्ष रूप से रहता हुआ जानकर भय के कारण भ्रमर रूपी डोरी वाले धनुष को धारण नहीं करता, (क्योंकि) उसका कार्य टेढ़ी भौंह करके चलाये गये नेत्रों वाले, कामुकजन रूपी निशानों पर, सफल चतुर स्त्रियों के हाव-भाव से ही बन जाता है ॥१४॥**

---

१. सभ्रूभङ्गं प्रहितनयनै: ।
२. कामिलक्षेष्व० ।
३. ०रम्भश्चटुलवनिता० ।

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! यस्यामलकायां कामदेव: कुबेरमित्रं महादेवं शिवं प्रत्यक्षं न तु प्रतिमारूपेण विद्यमानं ज्ञात्वा भीतेः भ्रमरमौर्विकं धनुः प्रायः न धारयति । तस्य मन्मथस्य कामिजनविजयव्यापारः भ्रूभङ्गसहितप्रयुक्तदृष्टिभिः कामुकशरण्येषु अनिष्फलैः विदग्धरमणीविलासैः एव निष्पन्नः भवति ।

**सञ्जीवनी**—मत्वेति । यत्रालकायां मन्मथः कामः । धनपतेः कुबेरस्य सखेति धनपतिसखः। ('राजाहः सखिभ्यष्टच्' ।) तं देवं महादेवं साक्षाद्वसन्तं सखिस्नेहान्निजरूपेण वर्तमानं मत्वा ज्ञात्वा भयाद् भालेक्षणभयात्षट्पदा एव ज्या मौर्वी यस्य तं चापं प्रायः प्राचुर्येण न वहति न बिभर्ति । कथं तर्हि तस्य कार्यसिद्धिरत आह—सभ्रूभङ्गेति तस्य मन्मथस्यारम्भः कामिजनविजयव्यापारः सभ्रूभङ्गप्रहितानि प्रयुक्तानि नयनानि येषु तैस्तथोक्तैः । कामिन एव लक्ष्याणि तेष्वमोघैः । सफलप्रयोगैरित्यर्थः । मन्मथचापोऽपि क्वचिदपि मोघः स्यादिति भावः । चतुराश्च ता वनिताश्च तासां विभ्रमैर्विलासैरेव सिद्धो निष्पन्नः । यदनर्थकरं पाक्षिकफलं च तत्प्रयोगाद्वरं निश्चितसाधनप्रयोग इति भावः ॥१४॥

**टिप्पणी**—'मत्वा देवम्' इस श्लोक में अलका के बाह्य उद्यान की ओर संकेत है, जिसमें सदा शिव विराजमान रहते हैं । द्रष्टव्य पूर्वमेघ/७—

*गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां*

*बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥*

**चापम्**—इससे पूर्व उत्तरमेघ/४ में बताया गया है कि कामदेव के धनुष की डण्डी गन्ने से बनी है और उसकी डोरी भ्रमरों की पङ्क्ति से ।

**भयात्**—शिव पुराण की एक कथा के अनुसार भगवान् शिव ने कामदेव को अपने तृतीय नेत्र से भस्म कर दिया था । तभी से उसे अनङ्ग कहते हैं और वह भगवान् शिव से भयभीत रहता है तथा उनके समक्ष अपने धनुष आदि को धारण नहीं करता । इसलिए अलका में शिव की उपस्थिति से उसे भस्म होने का निरन्तर भय बना रहता है । स्वयं महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भव (३/७२-७३) में इस घटना का रोचक वर्णन किया है ।

**व्याकरण**—**मत्वा**—√मन्+क्त्वा । **धनपतिसखम्**—धनानाँ पतिः (ष० त०) तस्य सखा धनपतिसखः तम् (ष० त०) । ''राजाऽहःसखिभ्यष्टच्'' सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय होकर सखि का सख हो गया । **वसन्तम्**—√वस् +शतृ द्वितीया एक वचन । **भयात्**—हेतौ पञ्चमी । **मन्मथ**—मनः मथः (ष० त०), √मन्+क्विप्, √मथ+अच् । **षट्पदज्यम्**—षट् पदानि येषां ते (बहु०) ते एव ज्या यस्य तम् (बहु०) । **सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः**—भ्रुवोः भङ्गः (ष० त०) तेन सहितं यथा स्यात् तथा (बहु०), सभ्रूभङ्गं प्रहितानि नयनानि येषु तैः (बहु०) । **कामिलक्ष्येषु**—कामिन एव लक्ष्याणि तेषु (कर्मधारय) । **अमोघैः**—न मोघाः तैः (नञ् त०) । **चतुरवनिताविभ्रमैः**—चतुराश्च ताः वनिताः (कर्मधारय) तासां विभ्रमाः (ष० त०) तैः, **विभ्रमः**—वि+√ भ्रम्+घञ् ।

प्रस्तुत श्लोक में कामदेव के धनुर्धारण का सम्बन्ध होने पर भी उसके असम्बन्ध की उक्ति होने से **अतिशयोक्ति** है तथा कामिलक्ष्येषु में **रूपक** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से अलकापुरी में स्थित अपने घर की पहचान बताता हुआ कहता है कि—

**तत्रागारं[1] धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयं[2]**

**दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा[3] तोरणेन ।**

१. अत्रागारम् । २. ०गृहादुत्त० । ३. त्वदमरधनु० ।

**तस्योपान्ते[1] कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे**
**हस्तप्राप्यस्तबकनमितो[2] बालमन्दारवृक्षः ॥१५॥**

**अन्वयः**—तत्र धनपति-गृहान् उत्तरेण अस्मदीयम् आगारं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन दूरात् लक्ष्यम्, यस्य उपान्ते मे कान्तया वर्धितः कृतकतनयः हस्तप्राप्यस्तबकनमितः बालमन्दारवृक्षः (अस्ति) ॥१५॥

**शब्दार्थ**—**धनपतिगृहान्**=कुबेर के महल से, **उत्तरेण**=उत्तर की ओर, **अस्मदीयम्**=हमारा, **आगारम्**=घर, **सुरपतिधनुश्चारुणा**=इन्द्रधनुष के समान सुन्दर, **तोरणेन**=बाह्य द्वार से, **लक्ष्यम्**=दिखायी देने वाले, **उपान्ते**=समीप, **कान्तया**=प्रियतममा द्वारा, **वर्धितः**=पाला गया, **कृतकतनयः**=गोद लिया पुत्र, **हस्तप्राप्यस्तबकनमितः**=हाथों से प्राप्त करने योग्य गुच्छों द्वारा झुकाया गया, **बालमन्दारवृक्षः**=छोटा-सा मन्दार का वृक्ष ।

**अनुवाद**—**वहाँ (अलकापुरी) में कुबेर के महल से उत्तर की ओर हमारा घर, इन्द्रधनुष के समान सुन्दर बाह्य द्वार से दूर से ही दिखायी देने वाला है, जिसके पास में मेरी प्रियतमा द्वारा पाला गया, गोद लिया पुत्र, हाथों से प्राप्त करने योग्य गुच्छों द्वारा झुकाया गया छोटा-सा मन्दार का वृक्ष है ॥१५॥**

**संस्कृत-टीका**—हे जलद ! तत्रालकायां कुबेर प्रसादादुत्तरदिशि अस्माकं गृहम् इन्द्रचापसुन्दरेण बहिर्द्वारेण दूरादपि दर्शनीयमास्ते । यस्य पार्श्वदेशे मम प्रियाया पोषितः कृत्रिमसुतः पुत्रत्वेनाभिमन्यमानः करावचेयगुच्छनमितः बालमन्दारपादपः अस्ति ।

**सञ्जीवनी**—इत्थमलकां वर्णयित्वा तत्र स्वभवनस्याभिज्ञानमाह—तत्रेति । तत्रालकायां धनपतिगृहान् कुबेरगृहानुत्तरेणोत्तरस्मिन्नदूरदेशे । ('एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः' इत्येनप्रत्ययः । 'एनपा द्वितीया' इति द्वितीया ।) 'गृहाः पुंसि च भूम्न्येव' इत्यमरः । अथवा 'उत्तरेण' इति नैनप्रत्ययान्तं किन्तु 'तोरणेन' इत्यस्य विशेषणं तृतीयान्तम् । धनपतिगृहादुत्तरस्यां दिशि यत्तोरणं बहिर्द्वारं तेन लक्षितमित्यर्थः । अस्माकमिदमस्मदीयम् । ('वृद्धाच्छः' इति छप्रत्ययः ।) आगारं गृहम् । सुरपतिधनुश्चारुणा मणिमयत्वादभङ्गुरत्वाच्चेन्द्रचापसुन्दरेण तोरणेन बहिर्द्वारेण। दूराल्लक्ष्यं दृश्यम् । अनेनाभिज्ञानेन दूरत एव ज्ञातुं शक्यमित्यर्थः । अभिज्ञानान्तरमाह यस्यागारस्योपान्ते प्राकारान्तः पार्श्वदेशे मे मम कान्तया वर्धितः पोषितः कृतकतनयः कृत्रिमसुतः । पुत्रत्वेनाभिमन्यमान इत्यर्थः । हस्तेन प्राप्यैर्हस्तावचेयैः स्तबकैर्गुच्छैर्नमितः । 'स्याद् गुच्छकस्तु स्तवकः' इत्यमरः । बालो मन्दारवृक्षः कल्पवृक्षोऽस्तीति शेषः ॥१५॥

**टिप्पणी**—**सुरपतिधनुश्चारुणा**—यक्ष के घर का द्वार इन्द्र धनुष के समान सुन्दर बताया है । सम्भवतः द्वार पर रङ्ग-बिरङ्गे चित्र बनाये गये थे, जिससे वे इन्द्रधनुष के समान दिखायी पड़ते थे या फिर मणियाँ इस प्रकार योजित की गयी थीं कि उनसे इन्द्रधनुष की झलक लगती थी ।

**कृतकतनयः**—यहाँ कृतकतनय का अभिप्राय पुत्र के समान माना गया है । धर्मशास्त्रों में १२ प्रकार के पुत्रों का उल्लेख है, जिनमें दत्तक पुत्र (कृतकतनय) भी एक है । कालिदास ने इस प्रकार का वर्णन अन्यत्र भी किया है, रघु०—२/३६, ५/६ । अभिज्ञानशाकुन्तल में भी इसी प्रकार का वर्णन है (४/१६) ।

---

१. यस्योद्याने ।
२. ० स्तबकविनतो ।

**व्याकरण**—**धनपतिगृहान्**—धनानां पति: (ष० त०) तस्य गृहा: तान् (ष० त०)। **उत्तरेण**—उत्तर+एनप्। **अस्मदीयम्**—अस्मद्+छ (ईय) अस्मदीय से प्रकट होता है कि यह घर पितामह पितृ-परम्परा से प्राप्त था। **लक्ष्यम्**—√लक्ष्य+ण्यत्। **सुरपतिधनुश्चारुणां**—सुराणां पति: (ष० त०) तस्य धनु: (ष० त०) तद् इव चारु (उपमित कर्मधारय) तेन। **कृतककतनय:**—कृत एवं कृतक: कृतकश्चासौ तनयश्चेति कृतकतनय: (कर्मधा०)। कृत शब्द से स्वार्थ में कन् प्रत्यय होकर कृतक शब्द बनता है। **वर्धित:**—√वृध्+णिच् (वर्ध्)+इट्+क्त। **हस्तप्राप्यस्तबकनमित:**—हस्तेन प्राप्या: (तृ० त०) ते च स्तबका: (कर्मधा०) तै: नमित: (तृ० त०)। **प्राप्य**—प्र+√आप्+ण्यत्। **नमित:**—√नम्+णिच्+√क्त। **बालमन्दारवृक्ष:**—मन्दारश्च असौ वृक्ष: (कर्मधा०) बालश्च असौ मन्दारवृक्ष: (कर्मधारय)।

प्रस्तुत श्लोक में **लुप्तोपमा** अलङ्कार है। □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से घर के वर्णन में बावड़ी का वर्णन करता हुआ कहता है कि—

**वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा**
**हैमैश्छन्ना[1] विकचमकलै: स्निग्धवैदूर्यनालै:[2]।**
**यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टं**
**नाध्यास्यन्ति[3] व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसा:[4] ॥१६॥**

**अन्वय:**—अस्मिन् मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा स्निग्धवैदूर्यनालै: हैमै: विकचकमलै: छन्ना वापी च (अस्ति)। यस्या: तोये कृतवसतय: व्यपगतशुच: हंसा: त्वां प्रेक्ष्य अपि संनिकृष्टं मानसं न आध्यास्यन्ति ॥१६॥

**शब्दार्थ**—**अस्मिन्**=इसमें (मेरे घर में), **मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा**=पन्ने की शिलाओं से बने हुए सीढ़ियों के मार्ग वाली, **स्निग्धवैदूर्यनालै:**=चिकने लहसुनिये रत्न के समान नाल वाले, **हैमै:**=स्वर्णमय, **विकचकमलै:**=विकसित कमलों से, **छन्ना**=ढकी हुई, **वापी**=बावड़ी, **तोये**=जल में, **कृतवसतय:**=निवास करने वाले, **व्यपगतशुच:**=नष्ट हुए दु:ख वाले, **प्रेक्ष्य**=देखकर, **संनिकृष्टं**=समीपवर्ती, **मानसम्**=मानसरोवर को, **आध्यास्यन्ति**=जाने के लिए उत्कण्ठित होंगे।

**अनुवाद**—**और इस (मेरे घर) में पन्ने की शिलाओं से बनी सीढ़ियों के मार्ग वाली, चिकने लहसुनिये रत्न के समान नाल वाले, स्वर्णमय, विकसित कमलों से ढकी हुई बावड़ी है, जिसके जल में निवास करने वाले, अत: नष्ट हुए दु:ख वाले हंस तुम्हें देखकर भी समीपवर्ती मानसरोवर को जाने के लिए उत्कण्ठित नहीं होंगे ॥१६॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ! मदीये भवने गारुत्मरत्नकल्पिताऽरोहणमार्गामसृणवैदूर्यनालै सौवर्णै: विकसितकमलै: छन्ना दीर्घिका चाऽस्ते। यस्या: वाप्या: जले विहितनिवासा: वीतदु:खा सन्त: हंसा: त्वां वीक्ष्याऽपि निकटस्थमपि मानसरोवरं उत्कण्ठ्या गन्तुं न स्मरिष्यन्ति।

**सञ्जीवनी**—इत: परं चतुर्भि: श्लोकैरभिज्ञानान्तरमाह—वापीति। अस्मिन्मदीयागारे मरक-

१. हैमै: स्फीता।
२. दीर्घ वैदूर्य०।
३. नध्यास्यन्ति, नध्यायन्ति।
४. प्राप्य।

तशिलाभिर्बद्धः सोपानमार्गो यस्याः सा तथोक्ता। विदूरे भावा वैदूर्याः। ('विदूराञ्ञ्यः' इति ञ्यप्रत्ययः।) वैदूर्याणां विकारा वैदूर्याणि। (विकारार्थेऽण् प्रत्ययः।) स्निग्धानि वैदूर्याणि नालानि येषां तैर्हैमैः सौवर्णैर्विकचकमलैश्छन्ना वापी च। अस्तीति शेषः। यस्या वाप्यास्तोये कृतवसतयः कृतनिवासा हंसास्त्वां मेघं प्रेक्ष्यापि व्यपगतशुचो वर्षाकालेऽपि व्यपगतकलुषजलत्वाद्वीतदुःखाः सन्तः सन्निकृष्टं संनिहितम्। सुगममपीत्यर्थः। मानसं मानससरो नाध्यास्यन्ति नोत्कण्ठया स्मरिष्यन्ति। 'आध्यानमुत्कण्ठापूर्वकं स्मरणम्' इति काशिकायाम् ॥१६॥

**टिप्पणी—स्निग्धवैदूर्यनालैः**—स्निग्ध का अर्थ है चिकने, वैदूर्य—विदूर शब्द से बना है। बालवाल पर्वत को कुछ लोग विदूर पर्वत कहते हैं। यह पर्वत लंका द्वीप में बताया जाता है। इसे रत्नों की उत्पत्ति-स्थान बताते हैं। यक्ष की गृहवापी में जो कमल विकसित थे वे स्वर्णमय थे और उनकी नाल वैदूर्यमणि से बनी थी। इसका अभिप्राय है कि वे कमल कृत्रिम थे।

**वापी**—बावड़ी, जिसमें उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हों। काव्यों में धनिकों के गृहों में एवं राजभवनों में इस प्रकार की वापी का प्रायः उल्लेख मिलता है।

**व्यपगतशुचः**—प्रायः यह माना जाता है कि वर्षा ऋतु में झील और तालाबों का पानी गंदला हो जाता है, जिससे हंसों में रोग फैल जाता है। इसलिए हंस वर्षा ऋतु में मानसरोवर चले जाते हैं, परन्तु यक्ष के घर की वापी में वर्षा ऋतु में भी जल स्वच्छ रहता है इसलिए उसमें रहने वाले हंस मेघ को देखकर भी मानसरोवर में जाने का विचार नहीं करते यद्यपि मानसरोवर वहाँ से पास ही है।

**व्याकरण—मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा**—मरकतानां शिलाः (ष० त०) सोपानानां मार्गः (ष० त०) मरकतशिलाभिः बद्धः सोपानमार्गः यस्याः सा (बहु०)। **हैमैः**—हेमन्+अण्। **छन्ना**—√छद्+क्त+टाप्। (पाठान्तर **स्फीता**—√स्फाय्+क्त)। **विकचकमलैः**—विकचानि कमलानि तैः (कर्मधा०)। **स्निग्धवैदूर्यनालैः**—स्निग्धानि च तानि वैदूर्याणि (कर्मधा०) तानि इव नालानि येषां तैः (बहु०), विदूर+ञ्य। **कृतवसतयः**—कृता वसतिः यैः ते (बहु०)। **मानसम्**—मनस्+अण्। **संनिकृष्टं**—सं+नि+√कृष्+क्त। **आध्यास्यन्ति**—आङ्+√ध्यै+लृट् प्र० पु० एक व०। **व्यपगतशुचः**—व्यपगता शुक् येषां ते (बहु०), **व्यपगत**—वि+अप+√गम्+क्त। **प्रेक्ष्य**—प्र+√ईक्ष्+क्त्वा (ल्यप्)।

प्रस्तुत श्लोक में मेघ के दर्शन रूप कारण के होने पर भी हंसों का मानसरोवर जाना रूप फल के अभाव के कारण **विशेषोक्ति** अलङ्कार है तथा लोकातिशय सम्पत्ति के वर्णन के कारण **उदात्त** अलङ्कार है। □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को समझाता है कि उसके घर की बावड़ी के किनारे क्रीड़ा पर्वत है—

**तस्यास्तीरे[1] रचितशिखरः[2] पेशलैरिन्द्रनीलैः**

**क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः[3]।**

**मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण**

**प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि ॥१७॥**

---

१. यस्यास्तीरे।
२. विहितशिखरः, निचितशिखरः।
३. ०वेष्टनः प्रेक्षणीयः।

**अन्वय:**—तस्या: तीरे पेशलै: इन्द्रनीलै: रचितशिखर: कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीय: क्रीडाशैल: । सखे ! उपान्तस्फुरिततडितं त्वां प्रेक्ष्य, मद्गेहिन्या: प्रिय: इति कातरेण चेतसा तम् एव स्मरामि ॥१७॥

**शब्दार्थ**—**तस्या:**=उस (बावड़ी) के, **तीरे**=किनारे पर, **पेशलै:**=सुन्दर, **इन्द्रनीलै:**=इन्द्रनीलमणियों से, **रचितशिखर:**=निर्मित शिखरों वाला, **कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीय:**=सुनहरी केलियों की बाड़ के कारण दर्शनीय, **क्रीडाशैल:**=क्रीडा पर्वत, **उपान्तस्फुरिततडितम्**=किनारों पर चमकती हुई बिजली वाला, **प्रेक्ष्य**=देखकर, **मद्गेहिन्या:**=मेरी पत्नी का, **कातरेण**=व्याकुल, **चेतसा**=चित्त से, **स्मरामि**=स्मरण करता हूँ ।

**अनुवाद**—**उस (बावड़ी) के किनारे पर सुन्दर इन्द्रनीलमणियों से निर्मित शिखरों वाला (और) सुनहरी केलियों की बाड़ के कारण दर्शनीय क्रीड़ा पर्वत है । हे मित्र ! किनारों पर चमकती हुई बिजली वाले तुमको देखकर—मेरी पत्नी का प्रिय है—इस कारण व्याकुल चित्त से उसी का (क्रीड़ा पर्वत का) स्मरण कर रहा हूँ ॥१७॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! तस्या: वाप्यास्तटे सुन्दरै: इन्द्रनीलै: रचितशिखर: सुवर्णकदलीपरिधिदर्शनीय: केलिपर्वत: विद्यते । हे मित्र ! प्रान्तलसितसौदामनीकं त्वां अवलोक्य मद्गृहिण्या: अभीष्ट: इति अस्मात् हेतो: व्याकुलेन मनसा क्रीडाशैलमेव स्मरामि ।

**सञ्जीवनी**—तस्या इति । तस्या वाप्यास्तीरे पेशलैश्चारुभि: । 'चारौ दक्षे च पेशल:' इत्यमर: । इन्द्रनीलं रचितशिखर: । इन्द्रनीलमणिमयशिखर इत्यर्थ: । कनककदलीनां वेष्टनेन परिधिना प्रेक्षणीयो दर्शनीय: क्रीडाशैल: । अस्तीति शेष: । हे सखे, उपान्तेषु प्रान्तेषु स्फुरितास्तडितो यस्य तं तथोक्तम् । इदं विशेषणं कदलीसाम्यार्थमुक्तम् । इन्द्रनीलसाम्यं तु मेघस्य स्वाभाविकमित्यनेन सूच्यते । त्वां प्रेक्ष्य मद्गेहिन्या: प्रिय इति हेतो: । तस्य शैलस्य मद्गृहिणीप्रियत्वाद्धेतोरित्यर्थ: । कातरेण भीतेन चेतसा । भयं चात्र सानन्दमेव । ('वस्तूनामनुभूतानां तुल्यश्रवणदर्शनात् । श्रवणात्कीर्तनाद्वापि सानन्दा भीर्यथा भवेत् । इति रसाकरे दर्शनात् ।) तमेव क्रीडाशैलमेव स्मरामि । एवकारो विषयान्तरव्यवच्छेदार्थ: । सदृशवस्त्वनुभवादिष्टार्थस्मृतिर्जायत इत्यर्थ: । अत एवात्र स्मरणाख्योऽलङ्कार: । (तदुक्तम् 'सदृशानुभवादन्यस्मृति: स्मरणमुच्यते' इति ।)

(निरुक्तकारस्तु 'त्वां तमेव स्मरामि' इति योजयित्वा मेघे शैलत्वारोपमाचष्टे तदसङ्गतम् । अद्र्याकारारोपस्य पुरोवर्तिन्यनुभवात्मकत्वेन स्मरतिशब्दप्रयोगात् शैलत्वभावनास्मृतिरित्यपिनोपपद्यते । भावनाया स्मृतित्वे प्रमाणाभावादनुभवायोगात्सादृश्योपन्यासस्य वैयर्थ्याच्च विसदृशेऽपि शालग्रामे हरिभावना दर्शनादिति) ॥१७॥

**टिप्पणी**—**इन्द्रनीलै:**—यह नीले रंग का एक बहुमूल्य पत्थर होता है । इसे नीलम भी कहते हैं ।

**कातरेण**—यह चेतसा का विशेषण है । इसका अर्थ है व्याकुल या घबराया हुआ । यक्ष के चित्त की व्याकुलता का कारण स्पष्ट था कि क्रीड़ाशैल पर्वत यक्ष की पत्नी को प्रिय होने के कारण यक्ष को भी बहुत प्रिय था और प्रिय के अनिष्ट की आशङ्का प्रेमी के मन में निरन्तर बनी रहती है, इसलिए उसका चित्त व्याकुल था । कुछ टीकाकारों ने कातरेण का अर्थ विस्मित किया है, जो अधिक उपयुक्त नहीं दिखायी पड़ता । मल्लिनाथ ने इसका अर्थ 'आनन्द मिश्रित रूप' किया है ।

**तमेव स्मरामि**—विद्युत् से युक्त मेघ को देखकर यक्ष को क्रीड़ाशैल पर्वत का स्मरण हो आना स्वाभाविक दिखायी पड़ता है; क्योंकि दोनों में बहुत साम्य है। क्रीड़ाशैल इन्द्रनीलमणि से

नीले वर्ण का था, जबकि मेघ स्वाभाविक रूप से नील वर्ण का था। क्रीड़ाशैल कनक कदलियों की बाड़ से युक्त था, जबकि मेघ भी विद्युत् छटा से युक्त था, क्रीड़ाशैल ऊँचा था जबकि मेघ भी ऊँचा था। अत: इस समानता के कारण मेघ को देखकर यक्ष को अपनी प्रिया के प्रिय क्रीड़ा शैल पर्वत का व्याकुल मन से स्मरण हो रहा है।

**व्याकरण—रचितशिखर:**—रचितानि शिखराणि यस्य स: (बहु०)। **क्रीडाशैल:**—क्रीडाया: शैल: (ष० त०)। **कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीय:**—कनकस्य कदल्या: (ष० त०) तासां वेष्टनं (ष० त०) तेन प्रेक्षणीय: (तृ० त०), **प्रेक्षणीय:**—प्र+√ईक्ष्+अनीयर्। **मद्गेहिन्या:**—मम गेहिनी (ष० त०) तस्या:, **गेहिनी**—गेहम् अस्या: अस्तीति, गेह+इनि+ङीष्। **सखे**—सखि शब्द का सम्बोधन एक व०। **प्रेक्ष्य**—प्र+√ईक्ष+क्त्वा (ल्यप्)। **चेतसा**—चेतस् (नपुं०) तृ० एकव०। **उपान्तस्फुरिततडितम्**—उपान्तेषु स्फुरिता: तडित: यस्या (बहु०) तम्।

प्रस्तुत श्लोक में मेघ का इन्द्रनील के साथ और बिजली का कनककदली के साथ सादृश्य होने के कारण **स्मरणालङ्कार** है। इसका लक्षण इस प्रकार है—

*सदृशाऽनुभवाद्वस्तुस्मृति: स्मरणमुच्यते। (सा० द० १०/२७)* □

**प्रसङ्ग**—क्रीड़ा शैल पर स्थित वृक्षों का वर्णन करता हुआ यक्ष मेघ से कहता है—

**रक्ताशोकश्चलकिसलय: केसरश्चात्र[1] कान्त:**
**प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य।**
**एक: सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी**
**काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मना[2]ऽस्या: ॥१८॥**

**अन्वय:**—अत्र कुरबकवृते: माधवीमण्डपस्य प्रत्यासन्नौ चलकिसलय: रक्ताशोक: कान्त: केसर: च। एक: मया सह तव सख्या: वामपादाभिलाषी, अन्य: दोहदच्छद्मना अस्या: वदनमदिरां काङ्क्षति ॥१८॥

**शब्दार्थ—अत्र**=यहाँ क्रीड़ाशैल पर, **कुरबकवृते:**=कुरबक की बाड़ वाले, **माधवीमण्डपस्य**=माधवीलता के कुञ्ज के, **प्रत्यासन्नौ**=अत्यन्त पास में, **चलकिसलय:**=हिलते हुए नवीन कोपलों वाला, **रक्ताशोक:**= लाल अशोक का वृक्ष, **कान्त:**=सुन्दर, **केसर:**=बकुल, **सख्या:**=सखी का, भाभी का, **वामपादाभिलाषी**=बायें पैर (के प्रहार) का इच्छुक, **दोहदच्छद्मना**=दोहद के बहाने से, **वदनमदिराम्**=मुख की मदिरा को, **काङ्क्षति**=चाहता है।

**अनुवाद—यहाँ (क्रीड़ाशैल पर) कुरबक की बाड़ वाले माधवी लता के कुञ्ज के अत्यन्त पास में हिलते हुए नवीन कोपलों वाला अशोक एवं सुन्दर बकुल (मौलसरी) का वृक्ष है, (उनमें से) एक मेरे साथ तुम्हारी सखी के (भाभी के) बायें पैर (के प्रहार) का इच्छुक है (और) दूसरा (बकुल का वृक्ष) दोहद के बहाने से उसके मुख की मदिरा को चाहता है ॥१८॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ! अत्र क्रीडाशैले कुरबकावरणस्य माधवीमण्डपस्य संनिकृष्टौ चञ्चलपल्लव: रक्ताशोक: कमनीयबकुलश्च स्त:। तत्र रक्ताशोको मया यक्षेण सह भवत: भ्रातृजायाया: मत्प्रियाया: इत्यर्थ: दोहदरूपेणपादप्रहारेच्छुक: इतर: बकुल: इत्यर्थ: दोहदव्याजेन भवत: सख्या: गण्डूषमद्यं काङ्क्षति।

---

१. केसरस्तत्र।
२. दौर्हदच्छद्मना, दौहदच्छद्मना।

**सञ्जीवनी**—रक्तेति । अत्र क्रीडाशैले कुरबका एव वृतिरावरणं यस्य तस्य । मधौ बसन्ते भवा माधव्यस्तासां मण्डपस्तस्यातिमुक्तलतागृहस्य । 'अतिमुक्त: पुण्ड्रक: स्याद्वासन्ती माधवीलता' इत्यमर: । प्रत्यासन्नौ सन्निकृष्टौ चलकिसलयश्चञ्चलपल्लव: । अनेन वृक्षस्य पादताडनेषु प्राञ्जलित्वं व्यज्यते । रक्ताशोक: । रक्तविशेषणं तस्य स्मरोद्दीपकत्वादुक्तम् । ('प्रसूनकैरशोकस्तु श्वेतो रक्त इति द्विधा । बहुसिद्धिकर: श्वेतो रक्तोऽत्र स्मरवर्धन: ।' इत्यशोककल्पे दर्शनात् ।) कान्त: कमनीय: केसरो बकुलश्च । 'अथ केसरे । बकुलो वञ्जुल:' इत्यमर: । स्त इति शेष: एकस्तयोरन्यतर: । प्राथमिकत्वादशोक इत्यर्थ: । मया सह तव सख्या: । स्वप्रियाया इत्यर्थ: । वामपादाभिलाषी । दोहदच्छद्मनेत्यत्रापि सम्बन्धनीयम् । स चाहं च अभिलाषिणामित्यर्थ: । अन्य: केसर: । दोहदं वृक्षादीनां प्रसवकारणं संस्कारद्रव्यम् । ('तरुगुल्मलतादीनामकाले कुशलै: कृतम् । पुष्पाद्युत्पादकं द्रव्यं दोहदं स्यात्तु तत्क्रिया ।' इति शब्दार्णव: ।) तस्य छद्मना व्याजेन । 'कपटीऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे' इत्यमर: । अस्यास्तव सख्या वदनमदिरां गण्डूषमद्यं काङ्क्षति । मया सहेत्यत्रापि संबन्धनीयम् । अशोकबकुलयो: स्त्रीपादताडनगण्डूषमदिरे दोहदमिति प्रसिद्धि: । ('स्त्रीणां स्पर्शात्प्रियङ्गुर्विकसति बकुल: सीधुगण्डूषसेकात्पादाघातादशोकस्तिलककुरबकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम् । मन्दारो नर्मवाक्यात्पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाताच्चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात्कर्णिकार:) ॥१८॥

**टिप्पणी—रक्ताशोक:**—अशोक दो प्रकार का होता है—(१) श्वेत पुष्पों वाला, (२) लाल पुष्पों वाला । रक्ताशोक का प्रयोग यहाँ साभिप्राय है; क्योंकि रक्ताशोक कामोद्दीपक होता है; अत: प्रेमी लोग अपने घरों में रक्ताशोक को लगाते हैं । कवि प्रसिद्धि के अनुसार किसी सुन्दर युवती के बायें पैर के प्रहार से अशोक वृक्ष में पुष्प निकलते हैं ।

**केसर:**—अशोक वृक्ष की तरह केसर वृक्ष को भी कामोद्दीपक बताया गया है । यह देखने में सुन्दर होता है तथा इसकी गन्ध भी अच्छी होती है । कवि प्रसिद्धि के अनुसार यह केसर का वृक्ष जब युवतियाँ अपने मुख में मदिरा भरकर इसके ऊपर कुल्ला करती हैं तभी विकसित होता है । साहित्यदर्पण के अनुसार—

*पादाघातादशोको विकसति बकुलं योषितामास्यमद्यै: । (सा० द० ७/२४)*

**कुरबक**—कुरबक वसन्त ऋतु में खिलने वाला गुलाबी रंग का पुष्प है । कवि प्रसिद्धि के अनुसार यह सुन्दर युवती के आलिङ्गन से विकसित होता है ।

**दोहद**—दोहद का अर्थ गर्भिणी स्त्री की अभिलाषा या उसका इच्छित पदार्थ होता है । गौण रूप से उन वस्तुओं को भी दोहद कहा जाता है जिनसे वृक्ष आदि पर पुष्पादि आते हैं । कुछ स्थलों पर दोहद के स्थान पर दौह्रद पाठ भी पाया जाता है । इस विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि दोहद, दौर्हृद अथवा दौह्रद (द्वि+हृदय) का प्राकृत रूप है, जो संस्कृत काव्यों में अपना लिया गया है । कुछ विद्वानों ने इसकी व्युत्पत्ति—**दोहम् आकर्षं ददाति दोहद:** अर्थात् प्रबल अभिलाषा या गर्भिणी की अभिलाषा—की है । यहाँ दोहद का अभिप्राय वह द्रव्य क्रिया है जिससे वृक्षों पर अकाल पुष्पों की वृद्धि होती है ।

जैसा कि शब्दार्णव में आया है—

*"तरुगुल्मलतादीनामकाले कुशलै: कृतम् ।*
*पुष्पाद्युत्पादकं द्रव्यं दोहदं स्यात्तु तत्क्रिया ॥"*

असमय में भी वृक्षों के पुष्पित होने के लिए कवि प्रसिद्धि निम्न श्लोक में प्रदर्शित की गयी है—

*स्त्रीणां स्पर्शात् प्रयङ्गुर्विकसति बकुल: सीधुगण्डूषसेकात्,*
*पादाघातादशोकस्तिलककुरबकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम् ।*

*मन्दारो नर्मवाक्यात् पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाता-*
*च्चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात्कर्णिकारः॥*

अर्थात् प्रियङ्गु सुन्दरियों के स्पर्श करने से विकसित होता है, बकुल सुन्दरियों के मुखगण्डूष सेचन से, अशोक वामपाद के प्रहार से, तिलक देखने से, कुरबक आलिङ्गन से, मन्दार हँसी-मजाक के वचनों से, चम्पक सुन्दर और कोमल हँसी से, आम मुख की हवा से, नमेरु गीत से तथा कर्णिकार सुन्दर स्त्री के नृत्य से विकसित होते हैं।

**व्याकरण**—**रक्ताशोकः**—रक्तश्च असौ अशोकः (कर्मधा०)। **चलकिसलयः**—चलानि किसलयानि यस्य सः (बहु०)। **कान्तः**—√कम्+क्तः। **प्रत्यासन्नौ**—प्रति+आ+√सद्+क्त (प्र० द्विव०)। **कुरबकवृतेः**—कुरबका एव वृतिः यस्य तस्य (बहु०)। **माधवीमण्डपस्य**—माधव्याः मण्डपस्य (ष० त०) मधौ भवः माधव्यः (मधु+अण्+ङीप्)। **वामपादाभिलाषी**—वामश्च असौ पादः (कर्म धा०) तम् अभिलषति इति (उपपदत०), **अभिलाषी**—अभि+√लष्+णिनि। **काङ्क्षति**—√काङ्क्ष्+लट् प्र० पु० एकव०। **वदनमदिराम्**—वदनस्य मदिरा (ष० त०) ताम्। **दोहदच्छद्मना**—दोहदस्य छद्म (ष० त०) तेन।

प्रस्तुत श्लोक में **सहोक्ति** अलङ्कार है। चन्द्रालोक में इसका लक्षण इस प्रकार दिया है—

*सहोक्तिः सहभावश्चेद् भासते जनरञ्जनः।*
*दिगन्तमगमद्यस्य कीर्तिः प्रत्यर्थिभिः सह॥*

□

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से वृक्षों के मध्य पक्षियों के बैठने के स्थान का वर्णन करता हुआ कहता है कि—

**तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि-**
**र्मूले बद्धा[1] मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः।**
**तालैः शिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितः[2] कान्तया मे**
**यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः॥१९॥**

**अन्वयः**—तन्मध्ये च अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः मणिभिः मूले बद्धा स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टिः (अस्ति)। मे कान्तया शिञ्जावलयसुभगैः तालैः नर्तितः वः सुहृत् नीलकण्ठः दिवसविगमे याम् अध्यास्ते॥१९॥

**शब्दार्थ**—**तन्मध्ये**=उन (रक्ताशोक और बकुल) के बीच में, **मूले**=जड़ में, **अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः**=नवीन बाँस के समान कान्ति वाली, **स्फटिकफलका**=स्फटिक (बिल्लौर) मणि के फट्टे (तख्ते) वाली, **काञ्चनी**=सोने की, **वासयष्टिः**=रहने की यष्टि, **कान्तया**=प्रिया द्वारा, **शिञ्जावलयसुभगैः**=झन-झन बजते हुए कङ्कनों से मनोहर, **तालैः**=तालियों से, **नर्तितः**=नचाया गया, **वः**=तुम्हारा, **नीलकण्ठः**=मयूर, **दिवसविगमे**=दिन के बीतने पर, **याम्**=जिस पर, **अध्यास्ते**=बैठा करता है।

**अनुवाद**—**और उन (रक्ताशोक और बकुल) के बीच में नवीन बाँस के समान**

---

१. नद्धा।
२. शिञ्जद्वलय०।

**कान्ति वाली मणियों से जड़ में बँधी हुई एवं स्फटिक (बिल्लौर) मणि के फट्टे (तख्ते) वाली रहने की यष्टि (है) । मेरी प्रिया द्वारा झन-झन बजते हुए कङ्कनों से मनोहर तालियों से नचाया गया तुम्हारा मित्र मयूर दिन के बीतने पर जिस पर बैठा करता है ।।१९।।**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! तन्मध्ये रक्ताशोकबकुलयोरन्तरे अनतिकठोरवंशकान्तिभि: रत्नै: मरकतमणिभिर्मूले सम्बद्धा स्फटिकपीठा सुवर्णमयी वासयष्टिर्वर्तते । मम प्रियाया ध्वनियुक्तकङ्कणरम्यै: करतलवादनै: नृत्यङ्कारित: तव मित्रं मयूर: दिवसावसाने सायङ्काले इत्यर्थ: अधितिष्ठति, यष्ट्याम् आस्ते इत्यर्थ: ।

**सञ्जीवनी**—तन्मध्य इति । किं चेति चार्थ: । तन्मध्ये तयोर्वृक्षयोर्मध्येऽनतिप्रौढानामनतिकठोराणां वंशानां प्रकाश इव प्रकाशो येषां तैस्तरुणवेणुसच्छायैर्मणिभिर्मरकतशिलाभिर्मूले बद्धा । कृतवेदिकेत्यर्थ:। स्फटिकं स्फटिकमयं फलकं पीठं यस्या: सा । काञ्चनस्य विकार: काञ्चनी सौवर्णी वासयष्टिर्निवासदण्ड:। अस्तीति शेष: । शिञ्जा भूषणध्वनि: । 'भूषणानां तु शिञ्जितम्' इत्यमर: । भिदादित्वादङ् । (शिञ्जिधातुरयं तालव्यादिर्न तु दन्त्यादि: ।) शिञ्जाप्रधानानि वलयानि तै: सुभगा रम्यास्तैस्तालै: करतलवादनैर्मे मम कान्तया नर्तितो वो युष्माकं सुहृत्सखा नीलकण्ठो मयूर: । 'मयूरो बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भुजङ्गभुक्' इत्यमर: । दिवसविगमे सायंकाले यां यष्टिकामध्यास्ते । यष्ट्यामास्त इत्यर्थ:। ('अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति कर्मत्वाद्द्वितीया ।) 'तत्रागारम्' इत्यारभ्य पञ्चसु श्लोकेषु समृद्धवस्तुवर्णनादुदात्तालङ्कार: । (तदुक्तम्— 'तदुदात्तं भवेद्यत्र समृद्धं वस्तु वर्ण्यते' इति । न चैषा स्वभावोक्तिर्भाविकं वा तत्र यथास्थितवस्तुवर्णनात् । 'अत्र तु कविप्रतिभोत्थापितसंभाव्यमानैरैश्वर्यशालिवस्तुवर्णनादारोपितविषयत्वमिति ताभ्यामस्य भेद:' इत्यलङ्कारसर्वस्वकार:) ।।१९।।

**टिप्पणी—वासयष्टि:**—घरों में पक्षियों के बैठने के लिए एक लम्बा डण्डा तथा उसके ऊपर कुछ फैली हुई छतरी-सी होती है, उसे वासयष्टि कहते हैं । यक्ष के घर में यह वासयष्टि स्वर्णनिर्मित थी । उसको मजबूती प्रदान करने के लिए उसकी जड़ में चारों ओर मरकत मणियों का चबूतरा बनाया गया था ।

**अनतिप्रौढवंशप्रकाशै:**—प्रौढ़ का अर्थ है बड़ा । अनतिप्रौढ़—जो बड़ा न हो, अतिप्रौढ़ बाँस पीले पड़ जाते हैं तथा अनतिप्रौढ़ हरे रंग के होते हैं । यह मणिभि: का विशेषण है, मरकत मणि भी हरी होती है । इस कारण उनको हरे बाँस के समान कान्ति वाली बतलाया गया है ।

**व्याकरण—तन्मध्ये**—तेषाम् मध्ये (ष० त०) । **स्फटिकफलका**—स्फटिकं फलकं यस्या: सा (बहु०) । **वासयष्टि:**—वासस्य वासाय वा यष्टि: (ष०, च०त०) । **बद्धा**—√बन्ध्+क्त+टाप्। **अनतिप्रौढवंशप्रकाशै:**—न अतिप्रौढा: अनतिप्रौढा: (नञ् त०) अनतिप्रौढाश्च ते वंशा: (कर्मधा०) तेषां प्रकाश इव प्रकाशो येषां तै: (बहु०), प्र+√वह्+क्त, सम्प्रसारण, प्र=ऊढ तथा प्रादूहोढोढ्येषैऽयेषु इस वार्तिक से वृद्धि सन्धि=प्रौढ पद बना । **शिञ्जावलयसुभगै**—शिञ्जाप्रधानानि वलयानि शिञ्जावलयानि (मध्यम पदलोपी त०) शिञ्जावलयै: सुभगा: तै: (तृ० त०), √शिञ्ज+अङ्+टाप्=शिञ्जा । **नर्तित:**—√नृत+णिन्+क्त । **अध्यास्ते**—अधि+√आस्, लट् प्र० पु० एकव० । **दिवसविगमे**—दिवसस्य विगम: तस्मिन् (ष० त०), **विगम**—वि+√गम्+अप् । **नीलकण्ठ:**—नील: कण्ठ: यस्य स: (बहु०)।

प्रस्तुत श्लाक में **उदात्त** अलङ्कार है तथा अनतिप्रौढवंशप्रकाशै: में **लुप्तोपमा** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि पूर्वोक्त बताये गये चिह्नों के आधार पर तुम मेरे (यक्ष के) घर को पहचान लोगे—

एभिः साधो हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा[1]
द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा ।
क्षामच्छायं[2] भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं
सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥२०॥

**अन्वयः**—साधो ! हृदयनिहितैः एभिः लक्षणैः द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा च अधुना मद्वियोगेन नूनं क्षामच्छायं भवन लक्षयेथाः सूर्यपाये कमलं स्वाम् अभिख्यां न पुष्यति खलु ॥२०॥

**शब्दार्थ**—**साधो**=निपुण, **हृदयनिहितैः**=हृदय में रखे गये, **एभिः**=पूर्व वर्णित, **लक्षणैः**=लक्षणों से, पहिचानों से, **द्वारोपान्ते**=द्वार के पार्श्व में (अगल-बगल में), **लिखितवपुषौ**=चित्रित आकृति वाले, **शङ्खपद्मौ**=शङ्ख और पद्म (निधि) को, **मद्वियोगेन**=मेरे विरह से, **क्षामच्छायम्**=क्षीण शोभा वाले, **लक्षयेथाः**=पहिचान लोगे, **सूर्यापाये**=सूर्य के चले जाने पर, **अभिख्याम्**=शोभा को, **पुष्यति**=पुष्ट करता है ।

**अनुवाद**—**हे निपुण (सज्जन) ! हृदय में रखे गये इन (पूर्व वर्णित) लक्षणों से (और) द्वार के पार्श्वों में चित्रित (बनाये गये) आकृति वाले शङ्ख और पद्म (नामक निधियों) को देखकर इस समय मेरे विरह से निश्चित ही क्षीण शोभा वाले (मेरे) भवन को पहिचान लोगे । (क्योंकि) सूर्य के चले जाने पर (अस्त हो जाने पर) कमल अपनी शोभा को पुष्ट (धारण) नहीं करता है ॥२०॥**

**संस्कृत-टीका**—हे निपुण ! चित्तस्थापितैः अविस्मृतैरिति भावः पूर्वोक्तैः तोरणादिभिरभिज्ञानैः द्वारपार्श्वयोः चित्रितौ शङ्खपद्मनामधेयौ निधी च विलोक्य इदानीं मद्विरहेण अवश्यमेव क्षीणशोभां मद्गृहम् अभिजानीयाः । भास्कराऽभावे कमलं आत्मीयां शोभां नोपचिनोति । सूर्यविरहितं कमलमिव पतिविरहितं गृहं न शोभते इति भावः ।

**सञ्जीवनी**—एभिरिति । हे साधो निपुण ! 'साधु समर्थो निपुणो वा' इति काशिकायाम् । हृदयनिहितैः । अविस्मृतैरित्यर्थः । एभिः पूर्वोक्तैर्लक्षणैस्तोरणादिभिरभिज्ञानैर्द्वारोपान्ते । एकवचनमविवक्षितम् । द्वारपार्श्वयोरित्यर्थः । लिखिते वपुषी आकृती ययोस्तौ तथोक्तौ शङ्खपद्मौ नाम निधिविशेषौ । 'निधिर्नाशेवधिर्भेदाः पद्मशङ्खादयो निधेः' इत्यमरः । दृष्ट्वा च नूनं सत्यमधुनेदानीम् । 'अधुना' इति निपातः । मद्वियोगेन मम प्रवासेन क्षामच्छायं मन्दच्छायमुत्सवोपरमात्क्षीणकान्ति भवनं मद्गृहं लक्षयेथा निश्चिनुयाः । तथाहि । सूर्यापाये सति कमलं पद्मं स्वामात्मीयामभिख्यां शोभाम् । 'अभिख्या नामशोभयोः' इत्यमरः । न पुष्यति नोपचिनोति खलु । सूर्यविरहितं पद्ममिव पतिविरहितं गृहं न शोभत इत्यर्थः ॥२०॥

**टिप्पणी**—**लिखितवपुषौ**—शङ्ख और पद्म दोनों ही माङ्गलिक माने जाते हैं, इस कारण प्रायः लोग अपने घर के दरवाजे पर इन्हें बना लेते हैं । यक्ष के घर के द्वार के दोनों ओर शङ्ख और पद्म के पुरुषाकार चित्र बने हुए थे ।

**शङ्खपद्मौ**—आचार्य मल्लिनाथ ने शङ्ख और पद्म को कुबेर की निधियों के नाम माने हैं । ये निधियाँ नौ मानी जाती हैं—महापद्म, पद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व । परन्तु यहाँ शङ्ख और पद्म का अभिप्राय शंख और कमल से भी हो सकता है । यद्यपि कमल अर्थ में पद्म शब्द का प्रयोग नपुंसकलिङ्ग में होता है, लेकिन यह पुंल्लिङ्ग में भी होता है ।

---

१. लक्षणीयम् ।
२. मन्दच्छायम् ।

**व्याकरण—हृदयनिहितैः**—हृदये निहितानि तैः (स० त०) । **निहितानि**—नि+√धा+क्त (कर्मणि) । **लक्षयेथाः**—√लक्ष् विधिलिङ्, म० पु० एकव०। **द्वारोपान्ते**—द्वारस्य उपान्ते (ष० त०)। **लिखितवपुषौ**—लिखिते वपुषी ययोः तौ (बहुव्रीहि) । **शङ्खपद्मौ**—शङ्खश्च पद्मश्च (द्वन्द्व) । **दृष्ट्वा**—दृश्+क्त्वा । **क्षामच्छायम्**—क्षामा छाया यस्य तत् (ब० व्री०), **क्षाम्**—√क्षै+क्त ("क्षायोमः" इससे त को म हो जाता है ।) **मद्वियोगेन**—मम वियोगेन (ष० त०) । **सूर्यापाये**—सूर्यस्य अपाये (ष० त०), **अपाय**—अप+√इ+घञ् । **पुष्यति**—√पुष्, लट् ल०, प्र० पु० एकव०। **अभिख्याम्**—अभि+√ख्या+अङ्+टाप् (स्त्रीलिङ्ग) द्वि० एकव० ।

प्रस्तुत श्लोक में **दृष्टान्त** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से प्रार्थना करता है कि वह उसके घर पहुँचकर बिजली की चमक रूपी दृष्टि उसके भवन के अन्दर डाले—

**गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्रसंपातहेतोः**[1]
**क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ**[2] **निषण्णः।**
**अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पाल्पभासं**
**खद्योतालीविलसितनिभां**[3] **विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥२१॥**

**अन्वयः**—शीघ्रसंपातहेतोः सद्यः कलभतनुतां गत्वा प्रथमकथिते रम्यसानौ क्रीडाशैले निषण्णः (त्वम्) अल्पाल्पभासं खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् अन्तर्भवनपतितां कर्तुम् अर्हसि ॥२१॥

**शब्दार्थ—शीघ्रसंपातहेतोः**=शीघ्र प्रवेश करने के लिए, **सद्यः**=तत्काल, **कलभतनुताम्**=हाथी के बच्चे के समान छोटे आकार को, **गत्वा**=प्राप्त करके, **प्रथमकथिते**=पहले कहे गये, **रम्यसानौ**=सुन्दर शिखर वाले, **क्रीडाशैले**=क्रीड़ा पर्वत पर, **निषण्णः**=बैठे हुए, **अल्पाल्पभासम्**=मन्द-मन्द प्रकाश वाली, **खद्योतालीविलसितनिभाम्**=जुगनुओं की पंक्ति की चमक से समानता रखने वाली, **विद्युदुन्मेषदृष्टिम्**=बिजली की चमक रूपी दृष्टि को, **अन्तर्भवनपतिताम्**=घर के अन्दर डालने में, **अर्हसि**=समर्थ हो ।

**अनुवाद**—(हे मेघ !) **शीघ्र प्रवेश करने के लिये तत्काल हाथी के बच्चे के समान छोटे आकार को प्राप्त कर पहले कहे गये, सुन्दर शिखर वाले क्रीड़ा पर्वत पर बैठे हुए (तुम) मन्द-मन्द प्रकाश वाली जुगनुओं की पंक्ति की चमक से समानता रखने वाली बिजली की चमक रूपी दृष्टि को घर के अन्दर डालने में समर्थ हो ॥२१॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! सत्वरप्रवेशार्थं तत्कालं करिशावकसदृशं स्वशरीरं कृत्वा पूर्वोक्ते रमणीयशिखरे क्रीडापर्वते उपविष्टः सन् त्वम् अल्पाल्पप्रकाशं खद्योतपङ्क्तिस्फुरणसमानां तडितप्रकाशदृष्टिम् भवनाऽभ्यान्तरे प्रवेशयितुमर्हसि ।

**सञ्जीवनी**—निजगृहनिश्चयानन्तरं कृत्यमाह—गत्वेति । हे मेघ, शीघ्रसंपात एव हेतुस्तस्य शीघ्रप्रवेशार्थमित्यर्थः । ('षष्ठी हेतुप्रयोगे' इति षष्ठी ।) 'सम्पातः पतने वेगे प्रवेशे वेदसंविदे' इति शब्दार्णवे । सद्यः सपदि कलभस्य करिपोतस्य तनुरिव तनुर्यस्य तस्य भावस्तामल्पशरीरतां गत्वा प्राप्य प्रथमकथिते 'तस्यास्तीरे' इत्यादिना पूर्वोद्दिष्टे रम्यसानौ । निषीदनयोग्य इत्यर्थः । क्रीडाशैले

---

१. तत्परित्राणहेतोः ।
२. रत्नसानौ ।
३. ०विल्सन० ।

निषण्ण उपविष्टः सन् । अल्पाल्पप्रकाराभाः प्रकाशो यस्यास्ताम् । ('प्रकारे गुणवचनस्य' इति द्विरुक्तिः ।) खद्योतानामाली तस्या विलसितेन स्फुरितेन निभां समानां विद्युदुन्मेषः विद्युत्प्रकाशः स एव दृष्टिस्तां भवनस्यान्तः अन्तर्भवनं तत्र पतितां प्रविष्टां कर्तुमर्हसि । यथा कश्चित्किंचिदन्विष्यन् क्वचिदुन्नते स्थित्वा शनैः-शनैरतितरां द्राघीयसीं दृष्टिमिष्टदेशे पातयति तद्वदित्यर्थः ।।२१।।

**टिप्पणी—कलभतनुताम्**—यहाँ कलभ को उपमान बनाया गया है; क्योंकि कलभ और मेघ दोनों में ऊँचाई तथा वर्ण में समानता है तथा मेघ इच्छानुसार रूप धारण करने वाला है जैसा कि पूर्वमेघ ६ में कहा गया है । यहाँ तनु का अर्थ शरीर न लेकर छोटा लिया गया है । बत्तीस साल की उम्र वाले हाथी के बच्चे को **कलभ** कहा जाता है ।

**व्याकरण—कलभतनुताम्**—कलभस्य तनुताम् (ष० त०) अथवा कलभस्य तनुः इव तनुः यस्य सः (बहुव्री०) तस्य भावः (तद्धित), ताम् । **शीघ्रसम्पातहेतोः**—शीघ्रं सम्पातः (केवल समास) तस्य हेतोः (ष० त०), **सम्पात**—सम्+√पत्+घञ् । **क्रीडाशैले**—क्रीडायाः शैले: (ष० त०) तस्मिन् । **प्रथमकथिते**—प्रथमे कथिते (केवल स०), **कथित**—√कथ्+इट्+क्त । **रम्यसानौ**—रम्याणि सानूनि यस्य तस्मिन् (बहु०) । **निषण्णः**—नि+√सद्+क्त। **अन्तर्भवनपतिताम्**—भवनस्य अन्तः (अव्ययीभाव) अन्तर्भवने पतिताम् (स० त०), **पतिता**—√पत्+इट्+क्त+टाप् । **कर्तुम्**—√कृ+तुमुन् । **अल्पाल्पभासम्**—अल्पा च असौ अल्पा (कर्मधा०), अल्पाल्पा भाः यस्याः ताम् (बहु०) । **खद्योतालीविलसितनिभाम्**—खद्योतानाम् आली (ष० त०) तस्याः विलसितम् (ष० त०) तेन निभाम् (तृ० त०) । **विद्युदुन्मेषदृष्टिम्**—विद्युतः उन्मेषः (ष० त०) स एव दृष्टिः ताम् (रूपक त०) । **अर्हसि**—√अर्ह+लट् ल०, म० पु० एकव० ।

प्रस्तुत श्लोक में कलभतनुताम् में **लुप्तोपमा**, खद्योतालीविलसितनिभाम् में **उपमा** तथा विद्युदुन्मेषदृष्टिम् में **रूपक** अलङ्कार हैं । तीनों का अङ्गाङ्गिभाव होने से **सङ्कर** अलङ्कार है ।

□

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से अपनी प्रिया के रूप यौवन आदि का वर्णन करता हुआ कहता है कि—

**तन्वी श्यामा शिखरिदशना[1] पक्वबिम्बाधरौष्ठी[2]**
**मध्ये क्षामा[3] चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः ।**
**श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां**
**या तत्र[4] स्याद्युवतिविषये[5] सृष्टिराद्येव[6] धातुः ।।२२।।**

**अन्वयः**—तत्र तन्वी, श्यामा, शिखरिदशना, पक्वबिम्बाधरौष्ठी, मध्ये क्षामा, चकितहरिणीप्रेक्षणा, निम्ननाभिः श्रोणीभारात् अलसगमना, स्तनाभ्यां स्तोकनम्रा, युवतिविषये धातुः आद्या सृष्टिः इव या स्यात् (तां मे द्वितीयं जीवितं जानीथाः) ।।२२।।

**शब्दार्थ—तत्र**=वहाँ (भवन के अन्दर), **तन्वी**=पतले शरीर वाली, **श्यामा**=नवयौवन

---

१. शिखरदशना, श्यामाऽशिखरदशना ।
२. ०धरौष्ठी ।
३. क्षीणा ।
४. तत्राऽस्ते ।
५. युवतिविषया ।
६. आद्यैव ।

वाली, **शिखरिदशना**=नुकीले दाँतों वाली, **पक्वबिम्बाधरौष्ठी**=पके हुए बिम्बफल के समान नीचे के ओठ वाली, **मध्ये क्षामा**=पतली कमर वाली, **चकितहरिणीप्रेक्षणा**=डरी हुई हरिणी के समान चितवन वाली, **निम्ननाभिः**=गहरी नाभि वाली, **श्रोणीभारात्**=नितम्बों के भार के कारण, **अलसगमना**=मन्द गति वाली, **स्तनाभ्यां स्तोकनम्रा**=स्तनों के कारण कुछ झुकी हुई, **युवतिविषये**=युवतियों के विषय में, **धातुः**=ब्रह्मा की, **आद्यासृष्टिः**=सर्वप्रथम रचना, **स्यात्**=हो ।

**अनुवाद**–**यहाँ (भवन के अन्दर) पतले शरीर वाली, नवयौवन वाली, नुकीले दाँतों वाली, पके हुए बिम्बफल के समान नीचे के ओठ वाली, पतली कमर वाली, डरी हुई हरिणी के समान चितवन वाली, गहरी नाभि वाली, नितम्बों के भार के कारण मन्दगति वाली, स्तनों के कारण कुछ झुकी हुई, युवतियों के विषय में ब्रह्मा की मानो सर्वप्रथम रचना हो (उसे मेरा दूसरा प्राण समझना) ॥२२॥**

**संस्कृत-टीका**–हे मेघ ! तत्र भवनस्य अन्तः कृशाङ्गी युवतिः कोटिमद्दन्ता परिणतबिम्बफलौष्ठी कृशोदरी चपलनयना गम्भीरनाभिः नितम्बभारान्मन्थरगामिनी कुचभारेणेषदवनता युवतिजनसम्बन्धे: ब्रह्मणः प्रथमा रचना इव यथा स्थिता या स्त्री भवेत् तां मे द्वितीयं जीवितं जानीथाः ।

**सञ्जीवनी**–सम्प्रति दृष्टिपातफलस्याभिज्ञानं श्लोकद्वयेनाह–तन्वीति । तन्वी कृशाङ्गी, न तु पीवरी । 'श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु' इत्यमरः । ('वोतो गुणवचनात्' इति ङीष् ।) श्यामा युवतिः । 'श्यामा यौवनमध्यस्था' इत्युत्पलमालायाम् । शिखराण्येषां सन्तीति शिखरिणः कोटिमन्तः । 'शिखरं शैलवृक्षाग्रकक्षापुलककोटिषु' इति विश्वः । शिखरिणो दशना दन्ताः यस्याः सा । एतेनास्या भाग्यवत्त्वं पत्यायुष्करत्वं च सूच्यते । तदुक्तं सामुद्रिके–'स्निग्धाः समानरूपाः सुपङ्क्तयः शिखरिणः श्लिष्टाः। दन्ता भवन्ति यासां तासां पादे जगत्सर्वम् । ताम्बूलरसरक्तेऽपि स्फुटभासः समोदयाः । दन्ताः शिखरिणो यस्या दीर्घ जीवति तत्प्रियः ॥' इति पक्वं परिणतं बिम्बं बिम्बकाफलमिवाधरौष्ठो यस्याः सा पक्वबिम्बाधरौष्ठी । ('शाकपार्थिवादित्वान्मध्यमपदलोपीसमासः' इति वामनः । 'नासिकोदरौष्ठ–' इत्यादिना ङीष् ।) मध्ये क्षामा कृशोदरीत्यर्थः । चकितहरिण्याः प्रेक्षणानीव प्रेक्षणानि दृष्टयो यस्याः सा तथोक्ता । एतेनास्याः पद्मिनीत्वं व्यज्यते । तदुक्तं रतिरहस्ये पद्मिनीलक्षणप्रस्तावे– 'चकितमृगदृशाभे प्रान्तरक्ते च नेत्रे' इति । निम्ननाभिर्गम्भीरनाभिः । अनेन नारीणां नाभिगाम्भीर्यान्मदनारतिरेक इति कामसूत्रार्थः सूच्यते । श्रोणीभारादलसगमना मन्दगामिनी, न तु जघनदोषात् । स्तनाभ्यां स्तोकनम्रेषदवनता, न तु वपुर्दोषात् । युवतय एव विषयस्तस्मिन्युवतिविषये । युवतीरधिकृत्येत्यर्थः । धातुर्ब्रह्मण आद्या सृष्टिः प्रथमशिल्पमिव स्थितेत्युत्प्रेक्षा । प्रथमनिर्मिता युवतिरियमेवेत्यर्थः । प्रायेण शिल्पिनां प्रथमनिर्माणे प्रयत्नातिशयवशाच्छिल्पनिर्माणसौष्ठवं दृश्यत इत्याद्यविशेषणम् । तथा चास्मिन्प्रपञ्चे न कुत्राप्येवंविधं रमणीयं रमणीरत्नमस्तीति भावः । तदेवंभूता या स्त्री तत्रान्तर्भवने स्यात् । तत्र निवसेदित्यर्थः । तामित्युत्तरश्लोकेन सम्बन्धः ॥२२॥

**टिप्पणी–तन्वी**–संस्कृत काव्यों में तनुता को स्त्री का सौन्दर्य माना गया है । कोमलाङ्गी, कृशाङ्गी आदि के लिए भी तन्वी पद प्रयुक्त होता है जैसा कि अभिज्ञानशाकुन्तलम् में आया है– *इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी–१/२०* ।

**श्यामा**–उत्पलमाला नामक कोश के अनुसार श्यामा का अर्थ युवती है । भट्टिकाव्य के टीकाकार इस सम्बन्ध में निम्न श्लोक उद्धृत करते हैं–

*शीते सुखोष्णसर्वाङ्गी ग्रीष्मे या सुखशीतला ।*
*तप्तकाञ्चनवर्णाभा सा स्त्री श्यामेति कथ्यते ॥*

**डॉ० एम० आर० काले** ने श्यामा का अर्थ अप्रसूता (अर्थात् वह स्त्री जिसके अभी बच्चा नहीं हुआ है) किया है । यथा–

*अप्रसूता भवेच्छ्यामा श्यामा षोडशवार्षिकी ।*
*श्यामा च श्यामवर्णा च श्यामा मधुरभाषिणी ॥*

एक अन्य विद्वान् ने स्त्री विशेष को श्यामा कहा है । देखिए—

*कूपोदकं वटच्छाया श्यामास्त्री स्निग्धभोजनम् ।*
*शीतकाले भवेदुष्णमुष्णकाले च शीतलम्॥*

**शिखरिदशना**—आचार्य मल्लिनाथ ने शिखरिदशना पर टीका करते हुए सामुद्रिक शास्त्र दो श्लोक उद्धृत किये हैं—

*स्निग्धाः समानरूपाः सुपङ्क्तयः शिखरिणः श्लिष्टाः ।*
*दन्ता भवन्ति यासां तासां पादे जगत्सर्वम् ॥*
*ताम्बूलरसरक्तेऽपि स्फुटभासः समोदयाः ।*
*दन्ता शिखरिणो यस्या दीर्घं जीवति तत्प्रियः ॥*

अर्थात् शिखरी दन्तों वाली स्त्री भाग्यवती होती है और उसका पति दीर्घायु होता है ।

**पक्वबिम्बाधरौष्ठी**—सनुद्रिकशास्त्र में आया है कि—

*ओष्ठौ च निर्व्रणौ स्निग्धौ नाऽतिस्थूलौ न रोमशौ ।*
*रक्तौ बिम्बफलाकारौ धनपुत्रसुखप्रदौ ॥*

इससे स्पष्ट होता है कि बिम्बफल के समान लाल ओठ धन, पुत्र और सुख को देने वाले ते हैं ।

**चकितहरिणीप्रेक्षणा**—मुग्धा नायिका की आँखें डरी हुई हरिणी के समान होती हैं । आचार्य ल्लिनाथ ने इस पर टीका करते हुए लिखा है कि *एतेनास्याः पद्मिनीत्वं व्यज्यते* । पद्मिनी का क्षण इस प्रकार है—

*भवति कमलनेत्रा नासिका क्षुद्ररन्ध्रा अविरलकुचयुग्मा चारुकेशी कृशाङ्गी ।*
*मृदुवचनसुशीला गीतवाद्यानुरक्ता सकलतनुसुवेशा पद्मिनी पद्मगन्धा ॥*

स्त्रियों के चार भेद माने गये हैं—पद्मिनी, हस्तिनी, शङ्खिनी और चित्रिणी ।

**निम्ननाभिः**—कामसूत्र के अनुसार गहरी नाभिवाली स्त्री में कामवासना का आधिक्य होता ।

**युवतिविषये सृष्टिराद्या**—ब्रह्मा जी ने सबसे पहले इसी युवति का निर्माण किया है । प्रायः तिशय प्रयत्न के कारण शिल्पियों की प्रथम रचना में शिल्प निर्माण की उत्तमता दिखाई देती । कालिदास ने इसी प्रकार का वर्णन अभिज्ञानशाकुन्तल में किया है—

*'स्त्री रत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे ।' अभि० शा० २/९*

**व्याकरण-तन्वी**—तनु+ङीष् । **शिखरिदशना**—शिखराणि सन्ति एषाम् इति शिखरिणः त्व० तद्धित) शिखरिणः दशनाः यस्याः सा (बहु०) । **पक्वबिम्बाधरौष्ठी**—पक्वम् च तत् म्बम् (कर्मधा०) अधरश्च असौ ओष्ठः (कर्मधा०), पक्व बिम्बम् इव अधरौष्ठः यस्याः सा हु०) । **चकितहरिणीप्रेक्षणा**—चकिता च असौ हरिणी (कर्मधा०) तस्याः प्रेक्षणे इव प्रेक्षणे यस्याः (बहु०), **प्रेक्षण**—प्र+√ईक्ष्+ल्युट् । **निम्ननाभिः**—निम्ना नाभिः यस्याः सा (बहु०) । **श्रोणी-**ारात्—श्रोण्याः भारः तस्मात् (ष० त०), **अलसगमना**—अलसं गमनं यस्याः सा (बहु०) । **तोकनम्रा**—स्तोकं यथा स्यात् तथा नम्रा (केवल स०) । **स्यात्**—√अस्+विधिलिङ् प्र० पु० एकव० । **युवतिविषये**—युवतीनां विषये (ष० त०) । **सृष्टि**—√सृज्+क्तिन् । **आद्या**—आदि+यत्+टाप् । **ातुः**—√धा+तृच्, ष० एकव० ।

प्रस्तुत श्लोक में अधर ओष्ठ का पर्याय होने के कारण **पुनरुक्तवदाभास** तथा पक्वबिम्बाधरौष्ठी तथा चकितहरिणीप्रेक्षणा में **लुप्तोपमा** है । सृष्टिराद्येव में **उत्प्रेक्षा** अलङ्कार है ।

**प्रसङ्ग**–यक्ष मेघ से अपनी प्रिया के विरह का वर्णन करते हुए कहता है–

**तां जानीथाः[1] परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं**
**दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम् ।**
**गाढोत्कण्ठां[2] गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां[3]**
**जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वाऽन्यरूपाम् ॥२३॥**

**अन्वयः**–मयि सहचरे दूरीभूते चक्रवाकीम् इव एकां परिमितकथां तां मे द्वितीयं जीवितं जानीथाः । गुरुषु एषु दिवसेषु गच्छत्सु गाढोत्कण्ठां बालां शिशिरमथितां पद्मिनीं वा अन्यरूपां जातां मन्ये ॥२३॥

**शब्दार्थ–सहचरे**=साथी के, **दूरीभूते**=दूर स्थित होने पर, **चक्रवाकीम् इव**=चकवी के समान, **एकाम्**=अकेली, **परिमितकथाम्**=कम बोलने वाली, **जीवितम्**=प्राण, **जानीथाः**=समझना, **गुरुषु**=लम्बे, **गच्छत्सु**=बीतने पर, **गाढोत्कण्ठाम्**=गाढ़ी उत्कण्ठा वाली, **बालाम्**=युवती को, **शिशिरमथिताम्**=पाले से पीड़ित (मारी गयी), **पद्मिनीम्**=कमलिनी, **वा**=समान, **अन्यरूपाम्**=अन्य रूप वाली, **जाताम्**=हुई, **मन्ये**=मानता हूँ ।

**अनुवाद–मुझ साथी के दूर स्थित होने पर चकवी के समान अकेली, कम बोलने वाली उस (स्त्री) को मेरा दूसरा प्राण समझना । (विरह से) लम्बे इन दिनों के बीतने पर गाढ़ी उत्कण्ठा वाली (उस) युवती को पाले से पीड़ित (मारी गयी) कमलिनी के समान अन्य रूप वाली हुई मानता हूँ ॥२३॥**

**संस्कृत-टीका**–हे मेघ ! मयि यक्षे सहचारिणि दूरस्थिते सति चक्रवाक वधूमिव अल्पभाषिणीम् एकाकिनीं स्थितां तां पूर्वोक्तां युवतिं मम अपरं प्राणं जानीहि विरहमहत्स्वेषु दिनेषु व्यीततेषु प्रबल विरहवेदनां युवतिं तुषारपीडितां कमलिनीमिव रूपान्तरप्राप्तां जानामि ।

**सञ्जीवनी**–तामिति । सहचरे सहचारिणि । अनेन वियोगासहिष्णुत्वं व्यज्यते । मयि दूरीभूते दूरस्थिते सति । सहचरे चक्रवाके दूरीभूते सति चक्रवाकीं चक्रवाकवधूमिव । ('जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' इति ङीष् ।) परिमितकथां परिमितभाषिणीम् । एकामेकाकिनीं स्थितां तामन्तर्भवनगतां मे द्वितीयं जीवितं जानीथाः । जीविततुल्यां मत्प्रेयसीमवगच्छेरित्यर्थः । 'तन्वी' इत्यादिपूर्वलक्षणैरिति शेषः । लक्षणानामन्यथाभावभ्रममाशङ्क्याह–गाढेति । गाढोत्कण्ठां प्रबलविरहवेदनाम् । रागे त्वलब्धविषये वेदना महती तु या । संशोषणी तु गात्राणां तामुत्कण्ठां विदुर्बुधाः । इत्यभिधानात् । बालां गुरुषु विरहमहत्स्वेषु वर्तमानेषु दिवसेषु गच्छत्सु सत्सु शिशिरेण शिशिरकालेन मथितां पद्मिनीं वा पद्मिनीमिव। 'इववद्वा यथाशब्दौ'-इति दण्डी । अन्यरूपां पूर्वविपरीताकारां जातां मन्ये । हिमहतपद्मिनीव विरहेणान्यादृशी जातेति तर्कयामीत्यर्थः । एतावता नेयमन्येति भ्रमितव्यमिति भावः ॥२३॥

**टिप्पणी–परिमितकथाम्**–पतिव्रता स्त्री पति के दूर चले जाने पर शृङ्गार आदि छोड़ देती

---

१. जानीयाः ।
२. गाढोत्कण्ठागुरुषु ।
३. गाढोत्कण्ठागुरुषु ......... बाला जाता शिशिरमर्थिता पद्मिनीवाऽन्यरूपा ।

[त]था आकर्षित करने वाले वस्त्रों का भी त्याग कर देती है और कम बोलती है । कालिदास [की] यह नायिका भी पतिव्रता है और इसको प्रोषितपतिका नायिका कहा है । याज्ञवल्क्य स्मृति में [इस] प्रकार की नायिका के लिए क्रीड़ा, हास्य आदि का निषेध किया है—

*क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् ।*

*हास्यं परगृहे यानं त्यजेत् प्रोषितभर्तृका ॥*

**चक्रवाकीम् इव**—यह प्रसिद्ध है कि चकवा-चकवी दिन के समय साथ-साथ रहते हैं, [कि]न्तु रात्रि में एक-दूसरे से बिछुड़ जाते हैं । रात्रि वियोग का कारण किसी मुनि का शाप बताया [जा]ता है । **कुछ विद्वानों की मान्यता है कि वियोग का कारण है— इन्होंने सीता जी के [वि]योग में रोते हुए रामचन्द्र जी का उपहास किया था ।**[१] संस्कृत-साहित्य में इनका दाम्पत्य आदर्श माना जाता है ।

**गाढोत्कण्ठाम्**—विरह वेदना से उत्पन्न प्रिय या प्रिया से मिलन की उत्कट इच्छा ही [उत्क]ण्ठा कहलाती है । उत्कण्ठा का लक्षण इस प्रकार है—

*रागेष्वलब्धविषयेषु वेदना महती तु या ।*

*संशोषणी तु गात्राणां तामुत्कण्ठां विदुर्बुधाः ॥*

अर्थात् जिससे प्रेम हो उसके न मिलने पर मन में ऐसी वेदना होने लगती है कि जिससे [शरी]र सूखता जाता है, उसे उत्कण्ठा कहते हैं ।

**बालाम्**—षोडशी नवयुवती को कहते हैं । स्त्रियाँ १६ वर्ष तक बाला, ३० वर्ष तक [तरु]णी, ५० वर्ष तक प्रौढ़ा तथा उससे ऊपर वृद्धा कहलाती हैं ।

**शिशिरमथिताम्**—आचार्य मल्लिनाथ ने शिशिर का अर्थ शीत (Winter) ऋतु लिया है। [अमर]कोश में शिशिर का अर्थ पाला भी है जो कि अधिक उपयुक्त जान पड़ता है, क्योंकि [पा]ला कमलिनी को मार देता है । इसके लिए द्रष्टव्य है रघुवंश ८/४५, वाल्मीकि रामायण [उत्त]रकाण्ड १६-३० ।

**अन्यरूपाम्**—यक्ष मेघ को बताता है कि उसकी प्रिया वियोग में इतनी दुर्बल हो गयी [है] कि उसका रूप जोकि पूर्व वर्णित (तन्वी श्यामा आदि) से अत्यन्त बदल गया होगा इसलिए [उसे] ध्यानपूर्वक देखकर पहिचानना ।

**व्याकरण—जानीथाः**—√ज्ञा विधि० म० पु० एकव० । **परिमितकथाम्**—परिमिता कथा [यस्या]: ताम् (बहु०), **परिमित**—परि+√मा+क्त+टाप् । **दूरीभूते**—अदूरः दूरः भूतः तस्मिन् (गतित०), [दूर]+च्वि+भू+क्त (भावे सप्तमी) । **सहचरे**—सह चरतीति तस्मिन् (उप० त०) सह+√चर्+ट [स०] एकव०) । **गाढोत्कण्ठाम्**—गाढा उत्कण्ठा यस्याः ताम् (बहु०) । **गच्छत्सु**—√गम्+शतृ, स० [बहु]व० । **जाताम्**—√जन्+क्त+टाप् द्वि० एकव० । **मन्ये**—√मन्+लट् ल० उ० पु० एकव० । [शि]शिरमथिताम्—शिशिरेण मथिताम् (तृ त०), **मथिताम्**—√मन्थ्+क्त+टाप् । **पद्मिनीम्**—[पद्म]+√इनि+ङीप् द्वि० एक० । **अन्यरूपाम्**—अन्यत् रूपं यस्याः सा, तम् (बहु०) ।

प्रस्तुत श्लोक में प्रथम चरण में यक्ष-पत्नी और यक्ष-जीवन का भेद होने पर भी अभेद [अध्य]वसाय से **अतिशयोक्ति**, द्वितीय चरण में **पूर्णोपमा**, पद्मिनी में **उपमा**, इस प्रकार इनकी [निरपे]क्ष स्थिति होने पर **संसृष्टि** अलङ्कार हुआ । □

१. कादम्बरी, पृष्ठ ४६ (एम० आर० काले द्वारा सम्पादित) ।

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से अपनी प्रिया की विरहावस्था का वर्णन करता हुआ कहता है कि—

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया[1]
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्
हस्तन्यस्तं[2] मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा-
दिन्दोर्दैन्यं[3] त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति ॥२४॥

**अन्वयः**—प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं निःश्वासानाम् अशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठं हस्तन्यस्तं लम्बालकत्वात् असकलव्यक्ति तस्याः प्रियायाः मुखं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेः इन्दोः दैन्यं बिभर्ति नूनम् ॥२४॥

**शब्दार्थ**—**प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम्**=अधिक रोने से सूजे हुए नेत्रों वाला, **निःश्वासानाम्**=लम्बे-लम्बे साँसों की, **अशिशिरतया**=गर्मी से, **भिन्नवर्णाधरोष्ठम्**=कान्तिहीन निचले ओठ वाला, **हस्तन्यस्तम्**=हाथ पर रखा हुआ, **लम्बालकत्वात्**=लटकते हुए लम्बे बालों के कारण, **असकलव्यक्ति**=सम्पूर्ण न दिखने वाला, **त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेः**=तुम्हारे आवरण से (ढाँप देने से) क्षीण कान्ति वाले, **दैन्यम्**=विवर्णता को, **बिभर्ति**=धारण कर रहा है ।

**अनुवाद**—**अधिक रोने से सूजे हुए नेत्रों वाला, लम्बे-लम्बे साँसों की गर्मी से कान्तिहीन निचले ओठ वाला, हाथ पर रखा हुआ, लटकते हुए बालों के कारण सम्पूर्ण न दिखने वाला, उस (मेरी प्रिया) का मुख तुम्हारे आवरण से क्षीण कान्ति वाले चन्द्रमा की विवर्णता को निश्चित रूप से धारण कर रहा होगा ॥२४॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! रोदनाऽतिशयादुच्छ्वसितनयनम् उष्णनिःश्वासैः लावण्यरहिताधरोष्ठं करन्यस्तं लम्बमानकुन्तलत्वात् असम्पूर्णाभिव्यक्ति विरहावस्थाया पीडितायाः प्रियायाः आननं निश्चयेन त्वदुपरोधक्षीणकान्तेः चन्द्रस्य दीनताम् धारयति ।

**सञ्जीवनी**—नूनमिति । प्रबलरुदितेनोच्छूने उच्छ्वसिने नेत्रे यस्य तत् । (उच्छूनेति श्वयतेः कर्तरि क्तः ।) 'ओदितश्च' इति निष्ठानत्वम् । 'वचिस्वपि—' इत्यादिना संप्रसारणम् । 'संप्रासरणाच्च' इति पूर्वरूपत्वम् । 'हलः' इति दीर्घः । 'च्छ्वोः शूडनुनासिके च' इत्यूठादेशे कृते रूपसिद्धिरिति वर्त्तमानसामीप्यप्रक्रिया प्रामादिकीत्युपेक्ष्या । तथा सति धातोविकारस्य गत्यभावादूठादेशेच्छ्वोरन्त्यत्वे विशेषणाच्चेति ।) एतेन विषाद्रो व्यज्यते । निःश्वासानामशिशिरतयाऽन्तस्तापोष्णत्वेन भिन्नवर्णो विच्छायोऽधरोष्ठो यस्य तत् । हस्ते न्यस्तं हस्तन्यस्तम् । एतेन चिन्ता व्यजते । लम्बालकत्वात् स्काराभावाल्लम्बमानालकत्वादसकलव्यवक्त्यसम्पूर्णाभिव्यक्ति तस्याः प्रियाया मुखं त्वदनुसरणेन त्वदुपरोधेन । मेघानुसरणेनेति यावत् । क्लिष्टकान्तेः क्षीणकान्तेरिन्दोर्दैन्यं शोच्यतां बिभर्ति । नूनमिति वितर्के । 'नूनं तर्केऽर्थनिश्चये' इत्यमरः । पूर्ववत्तथापि न भ्रमितव्यमिति भावः ॥२४॥

**टिप्पणी**—**असकलव्यक्ति**—जैसा कि पीछे बताया है कि प्रोषितभर्तृका नायिका शृङ्गार नहीं करती है । अतः यक्षिणी ने भी शृङ्गार नहीं किया होगा तथा बालों को नहीं सँवारा होगा । इस कारण लटकते हुए बालों ने उसके मुख को ढक लिया होगा, जिससे वह पूर्ण रूप से दिखायी नहीं देगा ।

**व्याकरण**—**प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम्**—प्रबलं च तत् रुदितम् (कर्मधा०) तेन उच्छूने नेत्रे यस्य

१. बहूनाम् ।
२. हस्तेन्यस्तं ।
३. त्वदुपसरण० ।

बहु०



तत् (बहु०), **रुदित:**—√रुद्+क्त, **उच्छून**—उत्+√श्वि+क्त धातु के व का "वचिस्वपियजादीनां किति" सूत्र से सम्प्रसारण होकर इ का पूर्वरूप, उ को दीर्घ, त को न् सन्धि और श को च्छ्। **अशिशिरतया**—न शिशिरा: (नञ् त०) तेषाम् भाव: तत्ता तया (तद्धित)। **भिन्नवर्णाधरोष्ठम्**—भिन्न: वर्ण: यस्य स: (बहु०) अधरश्च असौ ओष्ठ: (कर्मधा०) भिन्नवर्ण: अधरोष्ठ: यस्य तत् (बहु०)। **हस्तन्यस्तम्**—हस्ते न्यस्तम् (स० त०), **न्यस्तम्**—नि+√अस्+क्त। **असकलव्यक्ति**—न सकला (नञ् त०) असकला व्यक्ति यस्य तत् (बहु०), **व्यक्ति**—वि+√अञ्ज्+क्तिन्। **लम्बालकत्वात्**—लम्बा: अलका: यस्मिन् तत् (बहु०) तस्य भाव: तस्मात्। **दैन्यम्**—दीनस्यभाव: (तद्धित) दीन+ष्यञ्। **त्वदनुसरणक्लिष्टकान्ते:**—तव अनुसरणं (ष० त०) तेन क्लिष्टा: कान्ति: यस्य तस्य (बहु०), **अनुसरण**—अनु+√सृ+ल्युट्, **क्लिष्ट**—√क्लिश्+क्त, **कान्ति**—√कम्+क्तिन्। **बिभर्ति**—√भृ+लट् प्र० पु० एकव०।

प्रस्तुत श्लोक में भिन्नवर्णाधरोष्ठम् पद में अधर+ओष्ठ में पुनरुक्ति का आभास होने से **पुनरुक्तवदाभास** अलङ्कार है तथा उत्तरार्द्ध में प्रिया का मुख चन्द्रमा के दैन्य को कैसे धारण करेगा; अत: उपमा में परिणत कर चन्द्र जैसी विवर्णता अर्थ करने पर **निदर्शना** अलङ्कार है। □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से अपनी प्रिया यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कहता है कि—

**आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा**
**मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।**
**पृच्छन्ती वा मधुरवचनां[1] सारिकां पञ्जरस्थां**
**कच्चिद्भर्तु: स्मरसि रसिके[2] त्वं हि तस्य प्रियेति ॥२५॥**

**अन्वय:**—सा बलिव्याकुला वा, विरहतनु भावगम्यं मत्सादृश्यं लिखन्ती वा, मधुरवचनां पञ्जरस्थां सारिकां रसिके भर्तु: स्मरसि कच्चित् हि त्वं तस्य प्रिया इति पृच्छन्ती वा ते आलोके पुरा निपतति।

**शब्दार्थ**—**बलिव्याकुला**=पूजा में लगी हुई, **विरहतनु**=विरह से दुबले, **भावगम्यम्**=कल्पना से ही जाने गये, **लिखन्ती**=चित्रित करती हुई, **मधुरवचनाम्**=मीठा बोलने वाली, **पञ्जरस्थाम्**=पिंजरे में बन्द, **रसिके**=रसीली, **आलोके**=दृष्टि में, **पुरा**=शीघ्र, **निपतति**=पड़ेगी।

**अनुवाद**—**वह (मेरी प्रिया) पूजा में लगी हुई या विरह से दुबले (तथा) कल्पना से ही जाने गये मेरे आकार को चित्रित करती हुई या मीठा बोलने वाली पिंजरे में बन्द मैना से—हे रसीली ! क्या तुझे कभी स्वामी की याद आती है, क्योंकि तू उनकी प्यारी है; यह पूछते हुए तेरी दृष्टि में शीघ्र पड़ेगी ॥२५॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! सा मत्प्रिया पूजाव्यापृता वा वियोगकृशं सम्भावनाकल्पनीयं मदाकारसाम्यं चित्रयन्ती वा मधुरभाषिणीं पिञ्जरस्थितां शुकाऽङ्गनां मत्स्मृतिविषये पृच्छन्ती वा तव दृष्टिपथे सद्य: निपतिष्यति।

**सञ्जीवनी**—सर्वविरहिणीसाधारणानि लक्षणानि संभावनयोत्प्रेक्ष्याणीत्याह 'आलोके' इत्यादि-

१. मधुरवचनम्।
२. निभृते, गिरिके।

भित्त्रिभिः आलोकेति । हे मेघ ! सा मत्प्रिया बलिषु नित्येषु प्रोषितागमनार्थेषु च देवताराधनेषु व्याकुला व्यापृता वा विरहेण तनु कृशं भावगम्यम् । मत्कार्श्यस्यादृष्टचरत्वात्संप्रति संभावनयोत्प्रेक्ष्य-क्ष्यमित्यर्थः । मत्सादृश्यं मदाकारसाम्यम् । मत्प्रतिकृतिमित्यर्थः । यद्यपि सादृश्यं नाम प्रसिद्धवस्त्व-न्तरगतमाकारसाम्यं तथापि प्रतिकृतित्वेन विवक्षितमि तरथालेख्यत्वासंभवात् । अक्षय्यकोश 'आलेख्येऽपि च सादृश्यम्' इत्यभिधानाच्च । लिखन्ती क्वचित्फलकादौ विन्यस्यन्ती वा । चित्रदर्शनस्य विरहि-णीविनोदोपायत्वादिति भावः (एतच्च कामशास्त्रसंवादेन सम्यग्विवेचितमस्माभी रघुवंशसंजीविन्याम् 'सादृश्य-प्रतिकृतिदर्शनैः प्रियायाः' इत्यत्र ।) 'मधुरवचनां मञ्जुभाषिणीम्' अत एव पञ्जरस्थाम् । हिंस्रेभ्यः कृतसंरक्षणामित्यर्थः । सारिकां स्त्रीपक्षिविशेषाम् । हे रसिके ! भर्तुः स्वामिनः स्मरसि कच्चित् । 'कच्चित्कामप्रवेदने' इत्यमरः । भर्तारं स्मरसि किमित्यर्थः ('अधीगर्थदयेषां कर्मणि' इति कर्मणि षष्ठी ।) स्मरणे कारणमाह—हि यस्मात्कारणात्त्वं तदस्य भर्तुः । प्रीणातीति प्रिया । ('इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' इति क प्रत्ययः) । अतः प्रेमास्पदत्वात्स्मर्तुमर्हसीति भावः । इत्येवं पृच्छन्ती वा । वाशब्दो विकल्पे । 'उपमायां विकल्पे वा' इत्यमरः । ते तवालोके दृष्टिपथे पुरा निपतति । सद्यो निपतिष्यतीत्यर्थः । 'स्यात्प्रबन्धे पुरातीते निकटागामिके पुरा' इत्यमरः । ('यावत्पुरानिपातयोर्लट्' इति लट्) ॥२५॥

**टिप्पणी—बलिव्याकुला**—बलि का अर्थ होता है—देवताओं की आराधना; क्योंकि यक्षिणी का पति शाप के कारण बाहर गया था इसलिए सकुशल लौट आने के लिए सम्भवतः यक्षिणी बलि कार्य करती हो ।

**भावगम्यम्**—यक्षिणी पत्नी-विरह से युक्त अपने पति की कृशता देख तो नहीं सकती थी, परन्तु अनुमान के द्वारा ही चित्र खींचा करती थी । संस्कृत-साहित्य में विरह से पीड़ित के लिए विनोद के चार साधन वर्णित किये गये हैं—१. सदृश वस्तु का अनुभव, २. चित्रकर्म, ३. स्वप्न दर्शन, ४. प्रिय के अंग से स्पृष्ट पदार्थों का स्पर्श करना । देखिये—

*वियोगाऽवस्थासु प्रियजनसदृशानुभवनं*
*ततश्चित्रं कर्म स्वप्नसमये दर्शनमपि ।*
*तदङ्गस्पृष्टानामुपगतवतां स्पर्शनमपि*
*प्रतीकारः कामव्यथितमनसां कोऽपि कथितः ॥*

**सारिका**—प्राचीन काल में राजा-महाराजाओं के यहाँ तथा कुलीन परिवारों में मनोरञ्जन आदि के लिए तोता, मैना, हंस आदि पक्षी पाले जाते थे और उनसे विरह काल में मनोरञ्जन होता था । यक्ष के यहाँ भी पालतू पक्षी थे और यक्ष विचार करता है कि उसकी प्रिया सारिका आदि के साथ बातें करके अपना समय व्यतीत करती होगी ।

**व्याकरण—आलोके**—आ+√लोक्+घञ् (भावे स०) । **निपतति**—नि+√पत्, लट् प्र० पु० एकव० । **बलिव्याकुला**—बलिषु व्याकुला (स० त०) । **विरहतनु**—विरहेण तनु (तृ० त०) । **मत्सादृश्यम्**—मम सादृश्यम् तत् (ष० त०), **सादृश्यम्**—सदृश+ष्यञ् । **भावगम्यम्**—भावेन गम्यम् (तृ० त०), **गम्यम्**—√गम्+यत् । **लिखन्ती**—√लिख्+शतृ+ङीप्, प्रथमा एकव० । **पृच्छन्ती**—√पृच्छ्+शतृ+ङीष्, प्रथमा एकव० । **मधुरवचनाम्**—मधुराणि वचनानि यस्याः ताम् (बहु०) । **पञ्जरस्थाम्**—पञ्जरे तिष्ठति इति (उपपद त०), पञ्जर+√स्था+क+टाप्, द्वि० एकव० । **स्मरसि**—√स्मृ, लट् ल०, म० पु० एकव० ।

प्रस्तुत श्लोक में **विकल्प** अलङ्कार है ।



**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से अपनी प्रिया की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कहता है कि—

**उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां**
**मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा[1] ।**
**तन्त्रीमार्द्रां[2] नयनसलिलैः सारयित्वा कथञ्चिद्**
**भूयो भूयः स्वयमपि[3] कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥२६॥**

**अन्वयः**—सौम्य ! मलिनवसने उत्सङ्गे वीणां निक्षिप्य मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयम् उद्गातुकामा नयनसलिलैः आर्द्रां तन्त्रीं कथञ्चित् सारयित्वा भूयः भूयः स्वयं कृताम् अपि मूर्च्छनां विस्मरन्ती वा (ते आलोके पुरा निपतति) ॥२६॥

**शब्दार्थ**—**मलिनवसने**=मैले वस्त्रों वाली, **उत्सङ्गे**=गोद में, **मद्गोत्राङ्कम्**=मेरे नाम के चिह्न वाले, **गेयम्**=गीत को, **उद्गातुकामा**=उच्च स्वर में गाने की इच्छुक, **नयनसलिलैः**=आँसुओं से, **तन्त्रीम्**=वीणा के तार को, **सारयित्वा**=पोंछ कर, **मूर्च्छनाम्**=स्वरों के चढ़ाव-उतार क्रम को, **विस्मरन्ती**=भूलती हुई ।

**अनुवाद—हे सौम्य ! मैले वस्त्रों वाली गोद में वीणा को रखकर मेरे नाम के चिह्न वाले (तथा) रचे हुए पदों वाले गीत को उच्च स्वर में गाने की इच्छुक, आँसुओं से गीले हुए तार को किसी प्रकार पोंछकर बार-बार स्वयं बनायी गयी भी मूर्च्छना (स्वरों के चढ़ाव-उतार के क्रम) को भूलती हुई (तेरी दृष्टि में शीघ्र पड़ेगी) ॥२६॥**

**संस्कृत-टीका**—हे भद्र ! एवं च सा मत्प्रिया मलिनवस्त्रे निजक्रोडे वल्लकीं स्थापयित्वा मन्नामाङ्कं निर्मितपदं गानं उच्चैः गातुम् इच्छन्ती अश्रुभिः क्लिन्नां वीणां करेण प्रमृज्य पुनः पुनः आत्मना विहितामपि मूर्च्छनां विस्मरन्ती वा त्वद्दृष्टिपथं सद्यः आपतिष्यति ।

**सञ्जीवनी**—उत्सङ्ग इति । हे सौम्य साधो । मलिनवसने । 'प्रोषिते मलिना कृशा' इति शास्त्रादित्यर्थः । उत्सङ्गे क्रोडे वीणां निक्षिप्य । मम गोत्रं नामाङ्कश्चिह्नं यस्मिंस्तन्मद्गोत्राङ्क मन्नामाङ्कं यथा तथा । 'गोत्रं नाम्नि कुलेऽपि च' इत्यमरः । विरचितानि पदानि यस्य तत्तथोक्तं गेयं गानार्हं प्रबन्धादि । 'गीतम्' इति पाठे स एवार्थः। उद्गातुमुच्चैर्गातुं कामो यस्याः सा । ('तुं काममनसोरपि' इति मकारलोपः ।) देवयोनित्वाद् गान्धारग्रामेण गातुकामेत्यर्थः । (तदुक्तम्—'षड्जमध्यमनामानौ ग्रामौ गायन्ति मानवाः । न तु गान्धारनामानं स लभ्यो देवयोनिभिः ।' इति ।) तथा नयनसलिलैः प्रियतमस्मृतिजनितैरश्रुभिरार्द्रां तन्त्रीं कथंचित्कृच्छ्रेण सारयित्वा । आर्द्रत्वापहरणाय करेण प्रमृज्यान्यथा क्वणनासंभवादिति भावः । भूयो भूयः पुनः पुनः स्वयमात्मना कृतामपि । विस्मरणानर्हामपीत्यर्थः । मूर्च्छनां स्वरारोहावरोहक्रमम् । 'स्वराणां स्थापनाः सान्ता मूर्च्छनाः सप्त सप्त हि' इति संगीतरत्नाकरे। विसरन्ती वा । 'आलोके ते निपतति' इति पूर्वेणान्वयः । विस्मरणं चात्र दयितगुणस्मृतिजनितमूर्च्छावशादेव । (तथा च रसरत्नाकरे—'वियोगयोगायोरिष्टगुणानां कीर्तनास्मृतेः । साक्षात्कारोऽथवा मूर्च्छा दशधा जायते तथा ।' इति ।) मत्सादृश्यमित्यादिना मनःसङ्गानुवृत्तिः सूचिता ॥२६॥

**टिप्पणी—मलिनवसने**—प्रोषितभर्तृका के लिये शृङ्गारादि का निषेध किया गया है और यक्षिणी प्रोषितभर्तृका नायिका है । '**मलिनवसने**' पद से यहाँ यक्षिणी का पातिव्रत्य धर्म अभिव्यक्त होता है । देखिये पतिव्रता का लक्षण—

१. गीतमुद्गातुकामा ।
२. तन्त्रीरार्द्रा ।
३. स्वयमधिकृताम् ।

*आर्ताऽर्ते मुदिते हृष्टा प्रोषिते मलिना कृशा ।*
*मृताम्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता ॥*

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में भी कालिदास ने शकुन्तला की इसी प्रकार की स्थिति दिखायी है— *'वसने परिधूसरे'* आदि।

**उद्गातुकामा**—क्योंकि यक्ष-पत्नी देवयोनि की थी, इसलिये गान्धार ग्राम में गाने की इच्छा रखती थी, जबकि मनुष्य षड्ज या मध्यम ग्राम में गाते हैं । जैसा कि कहा है—

*षड्जमध्यमनामानौ ग्रामौ गायन्ति मानवाः ।*
*न तु गान्धारनामानं स लभ्यो देवयोनिभिः ॥*

स्वर भेद को ग्राम कहते हैं । ग्राम तीन होते हैं—षड्ज, मध्यम, गान्धार ।

**तन्त्रीमार्द्राम्**—यक्ष-पत्नी कभी-कभी अपने प्रिय के नाम के चिह्नों से युक्त रचे हुए पदों के गाने की इच्छा करती होगी तथा वीणा बजाने के साथ उसे प्रियतम की स्मृति होती होगी जिस कारण आँसू आने से उसके तार भीग जाते होंगे ।

**मूर्च्छना**—स्वरों के आरोह-अवरोह क्रम को मूर्च्छना कहते हैं । संगीतशास्त्र में सात स्वर माने गये हैं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद । इन स्वरों तथा तीन ग्रामों के मेल से ये मूर्च्छना २१ प्रकार की होती हैं; यथा—

*क्रमात् स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम् ।*
*सा मूर्च्छनेत्युच्यते ग्रामस्था एताः सप्त सप्त च ।*
*सप्त स्वराः त्रयो ग्रामाः मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः ॥ (नारदीय शिक्षा)*

**व्याकरण**—**उत्सङ्गे**—उद्+√सञ्ज्+घञ् (स०) । **मलिनवसने**—मलिनं वसनं यस्मिन् सः तस्मिन् (बहु०) । **निक्षिप्य**—नि+√क्षिप्+क्त्वा (ल्यप्) । **मद्गोत्राङ्कम्**—मम गोत्रम् (ष० त०), तदेव अङ्कं यस्मिन् तत् (बहु०) । **विरचितपदम्**—विरचितानि पदानि यस्य तत् (बहु०) । **गेयम्**—√गै+यत्। **उद्गातुकामा**—उद्गातुम् कामः यस्याः सा (बहु०), **उद्गातुम्**—उद्+√गै+तुमुन् । **नयनसलिलैः**—नयनयोः सलिलैः (ष० त०) । **सारयित्वा**—√सृ+णिच्+क्त्वा । **विस्मरन्ती**—वि+√स्मृ+शतृ+ङीप्, प्र० एकव० ।

प्रस्तुत श्लोक में **विकल्प** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—प्रस्तुत श्लोक में यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन किया गया है—

**शेषान्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा[१]**
**विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः[२] ।**
**संभोगं[३] वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती[४]**
**प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां[५] विनोदाः ॥२७॥**

---

१. ०मासान्गमनदिवस प्रस्तुत०, ०गमनदिवसस्थापित० ।
२. ०मुक्त० ।
३. मत्सङ्गं वा, संयोगं वा, मत्संभोगं ।
४. ०रचिता०, मासादयन्ती ।
५. रमणविरहे ह्यङ्गनानाम् ।

**अन्वय:**—विरहदिवसस्थापितस्य अवधे: शेषान् मासान् देहलीदत्तपुष्पै: ग[illegible]
विन्यस्यन्ती वा, हृदयनिहितारम्भं संभोगम् आस्वादयन्ती वा (ते आलोके पुरा निपतति) प्रायेण अङ्गनानां रमणविरहेषु एते विनोदा: ।

**शब्दार्थ—विरहदिवसस्थापितस्य**=विरह के दिन से निश्चित की गयी, **देहलीदत्तपुष्पै:**=देहली पर रखे गये पुष्पों के द्वारा, **विन्यस्यन्ती**=रखती हुई, **हृदयनिहितारम्भम्**=मन में कल्पना के द्वारा आरम्भ किये गये, **आस्वादयन्ती**=आस्वादन करती हुई, **रमणविरहेषु**=प्रियतमों के वियोग के दिनों में, **विनोदा:**=मन बहलाने के उपाय ।

**अनुवाद—अथवा विरह के दिनों से निश्चित की हुई (शाप की) अवधि के शेष रहे महीनों को देहली पर रखे गये पुष्पों के द्वारा गिनने से पृथ्वी पर रखती हुई अथवा मन में कल्पना के द्वारा आरम्भ किये गये संयोग का आस्वादन करती हुई (वह मेरी प्रिया तेरी दृष्टि में शीघ्र पड़ेगी)। प्रिय स्त्रियों के प्रियतमों के वियोग के दिनों में (ये) ही मन बहलाने के उपाय होते हैं ।।२७।।**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! अथवा वियोगदिनादारभ्य निश्चिताया: कालसीमाया: अवशिष्टान् मासान् देहलीनिहितपुष्पै: गणयन्ती किं वा मन: संकल्पितव्यापाराारतिम् अनुभवन्ती सा मत्प्रिया त्वद्दृष्टिपथमापतिष्यति । यत: स्त्रीणां प्रियतमवियोगावसरेषु एते समययापनोपाया भवन्ति ।

**सञ्जीवनी**—शेषानिति । अथवा विरहस्य दिवसस्तस्मात्स्थापितस्य तत आरभ्य निश्चितस्यावधेरन्तस्य शेषान्गातावशिष्टान्मासान्देहलीदत्तपुष्पै: । देहली द्वारस्याधारदारु । 'गृहावग्रहणी देहली' इत्यमर: । तत्र दत्तानि राशिकृतत्वेन निहितानि यानि पुष्पाणि तैर्गणनया एको द्वावित्यादिसंख्यानेन भूतले विन्यस्यन्ती वा । पुष्पविन्यासैर्मासान्गणयन्तीवेत्यर्थ: । यद्वा हृदये निहितो मनसि सङ्कल्पित आरम्भ उपक्रमो यस्य तम् । अथवा हृदयनिहिता आरम्भाश्चुम्बनादयो व्यापारा यस्मिंस्तं मत्सङ्गं मत्संभोगरतिमास्वादयन्ती वा । 'आलोके ते निपतति' इति पूर्वेण सम्बन्ध: । ननु कथमयं निश्चय इत्याशङ्कामर्थान्तरन्यासेन परिहरति । प्रायेण बाहुल्येनानाङ्गनां रमणविरहेष्वेते पूर्वोक्ता विनोदा: कालयापनोपाया: । एतेन संकल्पावस्थोक्ता । तदुक्तम्— *'संकल्पो नाथविषये मनोरथ उदाहृत:'* इति। त्रिभि: कुलकम् ।।२७।।

**टिप्पणी—देहलीदत्तपुष्पै:**—जिस दिन प्रियतम विदेश जाता है, उसी दिन नायिका देहली की पूजा करती है और वहाँ पुष्प रखती है कि मेरा प्रियतम इतने महीनों के लिए गया है । अत: मास बीतने पर एक पुष्प उठाकर दूसरी ओर रख देती है । उत्कण्ठा के क्षणों में वह पुष्पों को गिनती है कि अब आने के कितने महीने शेष रह गये हैं । यह वियोग के क्षणों में मन बहलाने का साधन है ।

**हृदयनिहितारम्भम्**—यक्षिणी अकेले में बैठकर प्रिय के काल्पनिक सहवास से मन बहलाती थी । आचार्य मल्लिनाथ ने यहाँ आरम्भ का अर्थ कार्य किया है, जिसका अर्थ है कि यक्षिणी पति के साथ चुम्बन, अलिङ्गन आदि कार्य वाले रति सुख का आनन्द ले रही है । काम की दश अवस्थायें मानी गयी हैं । यहाँ कवि ने तीसरी अवस्था का उल्लेख किया है । देखिये—

*'नयनप्रीति: प्रथमं चित्तासङ्गस्ततोऽथ सङ्कल्प: ।*
*निद्राच्छेदस्तनुता विषयनिवृत्तिस्त्रपानाश: ।*
*उन्मादो मूर्च्छा मृतिरित्येता: स्मरदशा दशैव स्यु: ।।*

यहाँ **सङ्कल्पावस्था** का वर्णन किया गया है ।

**व्याकरण—शेषान्**—√शिष्+घञ् द्वि० बहुव० । **विरहदिवसस्थापितस्य**—विरहस्य दिवस: (ष० त०) तस्मात् स्थापितस्य (प० त०), **स्थापित:**—√स्था+(पुक्)+णिच्+क्त (कर्मणि) । **अवधे:**—अव+√धा+कि, ष० एकव० । **विन्यस्यन्ती**—वि, नि+√अस्+शतृ+ङीप् प्र० एकव०। **गणनया**—√गण्+णिच्+युच्—(अन्)+टाप्, तृ० एकव० । **देहलीदत्तपुष्पै:**—देहल्यां दत्तानि (स० त०) तानि च पुष्पाणि तै: (कर्मधा०) । **सम्भोगम्**—सम्+√भुज्+घञ् पु० द्वि० एकव०। **हृदयनिहितारम्भम्**—हृदये निहित: (स० त०) तादृश: आरम्भ: यस्य तम् (बहु०), **निहित:**—नि+√धा+क्त । **आस्वादयन्ती**—आ+√स्वद्+णिच्+शतृ+ङीप् प्र० एकव० । **रमणविरहेषु**—रमणस्या विरहा: तेषु (ष० त०) । **विनोदा:**—वि+√नुद्+घञ्, प्र० बहुव० ।

प्रस्तुत श्लोक में भी पूर्व के समान **विकल्प** और सामान्य से विशेष का समर्थन होने से **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार हैं ।

□

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को समझाता है कि उसकी विरहपीड़ित प्रिया को रात्रि में संदेश से सुख पहुँचाने के लिये महल के झरोखे से देखना—

**सव्यापारामहनि न तथा पीडियेद्विप्रयोग:**[1]
**शङ्केरात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते ।**
**मत्संदेशै: सुखयितुमलं**[2] **पश्य साध्वीं निशीथे**
**तामुन्निद्रामवनिशयनां**[3] **सौधवातायनस्थ:**[4] **॥२८॥**

**अन्वय:**— अहनि सव्यापारां ते सखीं विप्रयोग: तथा न पीडयेत्, रात्रौ निर्विनोदां गुरुतरशुचं शङ्के । निशीथे उन्निद्राम् अवनिशयनां साध्वीं तां मत्सन्देशै: अलं सुखयितुं सौधवातायनस्थ: पश्य ॥२८॥

**शब्दार्थ—सव्यापाराम्**=काम में लगी हुई, **विप्रयोग:**=वियोग, **पीडयेत्**=सताता होगा, **निर्विनोदाम्**=विनोद रहित, **गुरतरशुचम्**=अधिक दु:खी होने की, **निशीथे**=अर्द्धरात्रि में, **उन्निद्राम्**=उचटी हुई नींद वाली, **अवनिशयनाम्**=पृथ्वी पर लेटी हुई, **साध्वीम्**=पतिव्रता को, **मत्सन्देशै:**=मेरे संदेशों के द्वारा, **सौधवातायनस्थ:**=भवन के झरोखे में बैठकर ।

**अनुवाद—दिन में काम में लगी हुई तेरी भाभी को (मेरा) वियोग उतना नहीं सताता होगा (परन्तु) रात में विनोद रहित (तेरी उस भाभी के) अधिक दु:खी होने की आशङ्का करता हूँ, (अत:) अर्द्धरात्रि में उचटी हुई नींद वाली पृथ्वी पर लेटी हुई पतिव्रता उसको मेरे सन्देशों के द्वारा अत्यधिक सुखी करने के लिये भवन के झरोखे में बैठकर देखना ॥२८॥**

**संस्कृत-टीका**—(हे सखे !) दिवसे बलिचित्रलेखनादिव्यापारवतीं मत्प्रियां तव भातृजाया-मित्यर्थ: मद्विरहेण तथा न पीड्यते यथा रात्रौ अर्थात् रात्रौ निर्व्यापारां तव भातृजायाम् अतिदुर्वहशोकां तर्कयामि । अत: अर्द्धरात्रे उत्सृष्टनिद्रां भूतलशायिनीं पतिव्रतां तां मत्प्रियां मद्वार्ताभि: पर्याप्तं आनन्दयितुं प्रासादवातायनस्थ: सन् अवलोकय ।

१. खेदयेन्मद्वियोग: ।
२. सुखयितुमत: ।
३. तामुन्निद्रामवनिशयनासन्नवातायनस्थ:, ०न्निद्रां विरहशयनां सौध० ।
४. सद्मवातायनस्थ: ।

**सञ्जीवनी**—सव्यापारामिति । हे सखे ! अहनि दिवसे सव्यापारां पूर्वोक्तबलिचित्रलेखनादिव्यापारवतीं ते सखीं स्वप्रियां मद्वियोगो मद्विरहस्तथा तेन प्रकारेण । ('प्रकारवचने थाल्' इति थाल्प्रत्ययः ।) न पीडयेत् । यथा रात्राविति शेषः । किंतु रात्रौ निर्विनोदां निर्व्यापारां ते सखीं गुरुतरा शुग्यस्यास्तां गुरुतरशुचमतिदुर्भरदुःखां शङ्के तर्कयामि । 'शङ्का वितर्कभययोः' इति शब्दार्णवे। अतो निशीथेऽर्धरात्र उन्निद्रामुत्सृष्टनिद्राम् । अवनिरेव शयनं शय्या यस्यास्ताम् । नियमार्थं स्थण्डिलशायिनीम् । साध्वीं पतिव्रताम् । 'साध्वी पतिव्रता' इत्यमरः । अतो नान्यथा शङ्कितव्यमिति भावः । तां त्वत्सखीं मत्संदेशैर्मद्वार्ताभिरलं पर्याप्तं सुखयितुमानन्दयितुं सौधवातायनस्थः सन्पश्य । 'सखी धात्री च पितरौ मित्रदूतशुकादयः । सुखयन्तीष्टकथनसुखोपायैर्वियोगिनीम् ।' इति रत्नाकरे । दूतश्चायं मेघ इति भावः । अनेन जागराऽवस्थोक्ता ॥२८॥

**टिप्पणी**—**सव्यापाराम्**—विरहिणी स्त्रियों का दिन तो किसी न किसी प्रकार काम आदि करते हुए व्यतीत हो जाता है, परन्तु रात्रि में कोई कार्य न होने के कारण उसे रात्रि व्यतीत करना कठिन हो जाता है । इसी प्रकार का भाव कालिदास न विक्रमोर्वशीयम् में भी व्यक्त किया है । देखिये—

*"कार्यान्तरितोत्कण्ठं दिनं मया नीतमतिकृच्छ्रेण ।*
*अविनोददीर्घयामा कथं नु रात्रिर्गमयितव्या ॥" (३/४)*

**सुखयितुम्**—वियोगिनियों को यदि प्रियतम का सन्देश प्राप्त हो जाये तो अत्यन्त सुख मिलता है । जैसा कि रत्नाकर में द्रष्टव्य है—

*सखी धात्री च पितरौ मित्रदूतशुकादयः ।*
*सुखयन्तीष्टकथनसुखोपायैर्वियोगिनीम् ॥*

**अवनिशयनाम्**—प्रोषितभर्तृका को सती धर्म का पालन करने के लिये पलङ्ग पर सोने का निषेध होने से भूमि पर सोने का विधान है; अतः यक्षिणी भी पृथ्वी पर ही सोती है ।

**व्याकरण**—**सव्यापाराम्**—व्यापारेण सह वर्तमाना सव्यापारा ताम् (बहु०), **व्यापारः**—वि+आङ्+√पॄ+घञ् । **पीडयेत्**—पीड्+विधिलिङ् प्र० पु० एकव० । **विप्रयोगः**—वि+प्र+√युज्+घञ् । **तथा**—तद्+थाल् । **गुरुतरशुचम्**—गुरुतरा शुक् (शोकः) यस्याः ताम् (बहु०) । **निर्विनोदाम्**—निर्गतः विनोदः यस्याः ताम् (बहु०), निर्+वि+√नुद्+घञ्+विभक्ति । **मत्संदेशैः**—मम सन्देशैः (ष० त०), **सन्देशैः**—सम्+√दिश्+घञ्+विभक्ति । **सुखयितुम्**—√सुख+णिच्+तुमुन् । **साध्वीम्**—साधु+ङीष्+द्वि० विभक्ति । **उन्निद्राम्**—उद्गता निद्रा यस्याः सा ताम् (बहु०) । **अवनिशयनाम्**—अवनिः एव शयनम् यस्याः ताम् (बहु०) । **सौधवातायनस्थः**—सौधस्य वातायनम् (ष० त०), तस्मिन् तिष्ठति इति (उप० त०) ।

इस श्लोक में कवि ने चौथी कामदशा अर्थात् जागरणावस्था का वर्णन किया है । □

**प्रसङ्ग**—यक्षिणी की विरहावस्था का स्वाभाविक चित्रण करते हुए कवि कहता है कि—

**आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वां[१]**
**प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ।**

---

१. सन्निकीर्णैकपार्श्वां ।

**नीता रात्रि: क्षण[1] इव मया सार्धमिच्छारतैर्या**
**तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम्[2] ॥२९॥**

**अन्वय:**—आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वां प्राचीमूले कलामात्रशेषां हिमांशोः तुमुन् इव (स्थिताम्) या रात्रि: मया सार्धम् इच्छारतैः क्षण: इव नीता ताम् एव विरहमहतीम् उष्णै: अश्रुभि: यापयन्तीम् (तां साध्वीं पश्य) ॥२९॥

**शब्दार्थ**—**आधिक्षामाम्**=मनोव्यथा से क्षीण हुई, **विरहशयने**=विरह की शय्या (सेज) पर, **सन्निषण्णैकपार्श्वां**=टेके हुए एक पार्श्व वाली, **प्राचीमूले**=पूर्व दिशा के मूल (क्षितिज) में, **कलामात्रशेषाम्**=एक कला मात्र अवशिष्ट, **हिमांशो:**=चन्द्रमा की, **तनुम् इव**=मूर्ति के समान, **इच्छारतै:**=इच्छानुसार रमण क्रियाओं के द्वारा, **क्षण इव**=एक क्षण के समान, **नीता**=व्यतीत की, **विरहमहतीम्**=वियोग के कारण लम्बी हुई (असह्य), **यापयन्तीम्**=बिताती हुई ।

**अनुवाद**—मनोव्यथा से क्षीण हुई विरह की शय्या (सेज) पर टेके हुए एक पार्श्व वाली, मानो पूर्व दिशा के मूल (क्षितिज) में एक कलामात्र अवशिष्ट चन्द्रमा की मूर्ति (तथा), जो रात मेरे साथ इच्छानुसार रमण क्रियाओं के द्वारा एक क्षण के समान व्यतीत की थी, उसे ही वियोग के कारण लम्बी (असह्य) हुई को गर्म आँसुओं के द्वारा बिताती हुई (उस पतिव्रता को देखना) ॥२९॥

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! मनोव्यथाक्षीणां विरहशय्यायामेकपार्श्वेन शयानां पूर्वदिशामूले कलामात्राऽवशिष्टां चन्द्रमूर्तिमिव स्थितां या निशा कदाचित् पूर्वकाले मया यक्षेण सह मनोभिलषितरमणै: मुहूर्तम् इव यपिता ताम् एव रात्रिं वियोगदीर्घां सतीम् उष्णै: नेत्रजलै: वाह्यन्तीम् (तां साध्वीं पश्य।)

**सञ्जीवनी**—पुनस्तामेव विशिनष्टि 'आधिक्षामाम् इत्यादिभिश्चतुर्भि:' । आधिक्षामामिति । आधिना मनोव्यथा । क्षामां कृशाम् । 'पुंस्याधिर्मानसीव्यथा' इत्यमर: । (क्षायते: कर्तरि क्त) । 'क्षायो म:' इति निष्ठातकारस्य मकार: ।) विरहे शयनं तस्मिन्विरहशयने । पल्लवादिरचित इत्यर्थ: । संनिषण्णमेकं पार्श्वं यस्यास्ताम् । अवएव प्राच्या: पूर्वस्या दिशो मूले । उदयगिरिप्रान्त इत्यर्थ: । प्राचीग्रहणं क्षीणावस्थाद्योतनार्थम् । मूलग्रहण दृश्यतार्थम् । कलामात्रं कलैव शेषो यस्यास्तां हिमांशोस्तनुं मूर्तिमिव स्थिताम् । तथा या रात्रिर्मया सार्धमिच्छया कृतानि रतानि तै: (शाकपार्थिवादित्वान्मध्यमपदलोपी समास:) क्षण इव नीता यापिता तां तज्जातीयामेव रात्रिं विरहेण महतीं महत्त्वेन प्रतीयमानामुष्णैरश्रुभिर्यापयन्तीम् । (यातेर्ण्यन्ताच्छतृप्रत्यय: 'अर्तिह्री'—इत्यादिना पुगागम: ।) स एव काल: सुखिनामल्प: प्रतीयते दु:खिनां तु विपरीत इति भाव: । एतेन कार्श्यावस्थोक्ता ॥२९॥

**टिप्पणी**—**आधिक्षामाम्**—रोग दो प्रकार के बताये गये हैं—आधि तथा व्याधि । **आधि** मानसिक तथा **व्याधि** शारीरिक रोग के लिये आता है, विरहिणी यक्षिणी आधि रोग से पीड़ित है; इसलिये वह अत्यन्त क्षीण हो गयी है ।

**संनिषण्णैकपार्श्वाम्**—प्राय: विरहिणी स्त्रियाँ रात्रि को करवट बदल-बदलकर व्यतीत करती हैं, किन्तु यक्षिणी एक करवट से पड़ी हुई रात्रि व्यतीत करती है । इसके दो कारण हो सकते है—

(१) यक्षिणी रात्रि में अपने प्रियतम के ध्यान में इतनी मग्न हो जाती है कि उसे अपने शारीरिक कष्ट का ध्यान नहीं रहता और वह करवट तक नहीं बदलती ।

---

१. क्षणमिव ।

२. ०विरहजनितैरस्त्रु०, ०विरहपतितैरस्त्रु० ।

(२) वह विरह में इतनी दुर्बल हो गयी है कि करवट बदलने की सामर्थ्य ही उसमें नहीं रही हो; अत: सारी रात एक ही करवट से पड़ी रहती है ।

**प्राचीमूले....हिमांशो**—इस पर **महिमसिंह गणी** का कथन है कि—'*कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां रात्रौ शेषकलामात्रस्य चन्द्रस्य दिङ्मुखे संभव:* ।" अर्थात् कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को चन्द्रमा पूर्व क्षितिज में एक ही कला के रूप में रह जाता है । यहाँ यक्ष-पत्नी की सेज की पूर्व दिशा के क्षितिज से और यक्ष-पत्नी की कलामात्र शेष चन्द्रमा की मूर्ति से तुलना की गयी है ।

**विरहमहतीम्**—युवक और युवतियों को अपने प्रथम मिलन के दिनों में दिन और रात क्षण-क्षण के समान छोटे दिखायी पड़ते हैं, किन्तु विरह की अवस्था में उन्हें दिन-रात पहाड़ की तरह विशाल प्रतीत होने लगते हैं । यक्षिणी की भी यही स्थिति है ।

**व्याकरण**—**आधिक्षामाम्**—आधिना क्षामा, ताम् (तृ० त०), **आधि**—आ+√धा+कि (इ), क्षामाम्—क्षै (क्षा)+क्त+टाप्, द्वि० एकव०। **विरहशयने**—विरहे शयनं तस्मिन् (स० त०) । **सन्निषण्णैकपार्श्वाम्**—सन्निषण्णम् एकं पार्श्वं यस्या: ताम् (बहु०), **सन्निषण्ण**—सम्+नि+√सद्+क्त । **प्राचीमूले**—प्राच्या: मूले (ष० त०), **प्राची**—प्र+√अञ्च्+क्विन्+ङीष् । कलामात्रशेषाम्—कला एव कलामात्रम् (तद्धित) कलामात्रशेष: यस्या: ताम् (बहु०) । **हिमांशो:**—हिमा: अंशव: यस्य तस्य (बहु०) । **नीता**—√नी+क्त+टाप् । **इच्छारतै:**—इच्छया कृतानि रतानि तै: (मध्यम पदलोपी त०), **रतम्**—रम्+क्त । **विरहमहतीम्**—विरहेण महतीम् (तृ० त०), महतीम्—महत्+ङीप् द्वि० एकव० । **यापयन्तीम्**—√या+णिच्+शतृ+ङीप्, द्वि० एकव० ।

प्रस्तुत श्लोक में **उपमा** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—पुन: यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

**पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टा-**
**न्पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं[१] संनिवृत्तं तथैव ।**
**चक्षु:[१] खेदात्सलिलगुरुभि:[३] पक्ष्मभिश्छादयन्तीं**
**साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ।।३०।।**

**अन्वय:**—जालमार्गप्रविष्टान् अमृतशिशिरान् इन्दो: पादान् पूर्वप्रीत्या अभिमुखं गतं तथा एव संनिवृत्तं, चक्षु खेदात् सलिलगुरुभि: पक्ष्मभि: छादयन्तीं साभ्रे अह्नि न प्रबुद्धां न सुप्तां स्थलकमलिनीम् इव (तां साध्वीं पश्य) ।।३०।।

**शब्दार्थ**—**जालमार्गप्रविष्टान्**=झरोखों (खिड़कियों) के मार्ग से अन्दर प्रविष्ट हुई, **अमृतशिशिरान्**=अमृत के समान शीतल, **इन्दो:**=चन्द्रमा की, **पादान्**=किरणों को, **पूर्वप्रीत्या**=पूर्व स्नेह के कारण, **संनिवृत्तम्**=लौटी हुई, **खेदात्**=दु:ख के कारण, **सलिलगुरुभि:**=आँसुओं से भारी, **पक्ष्मभि:**=पलकों से, **छादयन्तीम्**=ढकती हुई को, **साभ्रे**=मेघों से आच्छन्न, **न प्रबुद्धाम्**=अविकसित, **न सुप्ताम्**=अमुकुलित, **स्थलकमलिनीम्**=भूमि पर उत्पन्न कमलिनी, **इव**=समान ।

१. गतमपि तत: ।
२. खेदाच्चक्षु: ।
३. सजलगुरुभि: ।

**अनुवाद**—झरोखों (खिड़कियों) के मार्ग से अन्दर प्रविष्ट हुई, अमृत के समान शीतल, चन्द्रमा की किरणों की ओर पूर्व स्नेह के कारण गयी हुई (लेकिन) तुरन्त ही लौटी हुई दृष्टि जो दुःख के कारण आँसुओं से भारी पलकों से ढकती हुई मेघों से आच्छन्न दिन में अविकसित (और) अमुकुलित स्थलकमलिनी (भूमि पर उत्पन्न होने वाली कमलिनी) के समान (स्थित) (उस पतिव्रता को देखना) ॥३०॥

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! गवाक्षविवरप्रविष्टानमृतशीतलांश्चन्द्रकिरणान् पूर्वस्नेहेन सम्मुखगतमपि विरहवशात्प्रतिनिवृत्तं यथा गतं तथैव झटिति प्रतिनिवृत्तम् इत्यर्थः दृष्टिं दुःखात् अश्रुदुर्वहैः पक्ष्मपुटैराच्छादयन्तीं मेघाच्छन्ने दुर्दिने वा दिवसे विकासरहितामनिमीलितां च स्थलपद्मिनीम् इव स्थिता (तां साध्वीं पश्य) ।

**सञ्जीवनी**—पादानिति । जालमार्गप्रविष्टान् गवाक्षविवरगतानमृतशिशिरानिन्दोः पादानरश्मीन्पूर्वप्रीत्या पूर्वस्नेहेन । पूर्ववदानन्दकरा भविष्यन्तीति बुद्ध्येति भावः । अभिमुखं यथा तथा गतं तथैव संनिवृत्तं यथागतं तथैव प्रतिनिवृत्तम् । तदा तेषामतीव दुःसहत्वादितिभावः । चक्षुर्दृष्टिं खेदात्सलिलगुरुभिरश्रुदुर्भरैः पक्ष्मभिश्छादयन्तीम् । अत एव साभ्रे दुर्दिनेऽह्नि दिवसे न प्रबुद्धां मेघावरणादविकसितां न सुप्तामहरित्यमुकुलिताम् । (उभयत्रापि नञर्थस्य न शब्दस्य सुप्सुपेति समासः) स्थलकमलिनीमिव स्थिताम् । एतेन विषयद्वेषाख्या षष्ठी दशा सूचिता ॥३०॥

**टिप्पणी—अमृतशिशिरान्**—काव्यों में चन्द्रमा की किरणों का शीतल होने का वर्णन किया जाता है, इसका कारण उनमें अमृत का होना है और इसी अमृत को वह देवताओं और पितरों को देता है ।

**पूर्वप्रीत्या**—काव्यों में, संयोगावस्था में जो चन्द्रमा प्रियजनों को सुख प्रदान करता है और विरहावस्था में वही चन्द्रमा कष्टप्रद होता है, ऐसा वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है । यक्ष का विचार है कि उसकी प्रिया जब अपने प्रियतम के साथ लेटती थी और उस समय खिड़की से चाँदनी प्रवेश करती थी तो उसे बड़ा आनन्द देती थी, उसी अनुभव के आधार पर बड़े उत्साह से उसकी प्रिया चन्द्रमा की किरणों पर दृष्टि डालेगी, किन्तु विरह के कारण वह किरणें दुःख प्रदान करने वाली होंगी; इसलिए वह उन पर से दृष्टि हटा लेगी ।

**साभ्रे**—यह अह्नि का विशेषण है । काव्यों में सूर्य को कमलिनी का पति चित्रित किया गया है । सूर्य मेघों से घिरा है; इसलिए कमलिनी खिली नहीं है और दिन है; इसलिए बन्द भी नहीं है ।

**स्थलकमलिनीम्**—यक्षिणी की स्थिति भी कमलिनी के समान है। जिस प्रकार कमलिनी न तो विकसित है और न बन्द है उसी प्रकार यक्षिणी न तो जागी हुई है और न सोयी हुई है। कमलिनी जल में उत्पन्न होती है तथा यक्षिणी पृथ्वी पर लेटी हुई है ।

**व्याकरण—जालमार्गप्रविष्टान्**—जालानां मार्गाः (ष० त०) तेभ्यः प्रविष्टान् (ष० त०), **प्रविष्टान्**—प्र+√विश्+क्त, द्वि० बहुव० । **अमृतशिशिरान्**—अमृतम् इव शिशिराः तान् (उपमित समास) अथवा अमृतेन शिशिरास्तान् (तृ० त०) । **पूर्वप्रीत्या**—पूर्वं प्रीतिः तया (केवल समास) अथवा—पूर्वा चा असौ प्रीतिः तया (कर्मधा०) । **गतम्**—√गम्+क्त । **अभिमुखम्**—मुखं प्रति इति (अव्ययी०) । **संनिवृत्तम्**—सम्+नि+√वृत्+क्त । **छादयन्तीम्**—√छद्+णिच्+शतृ+ङीप् । **सलिलगुरुभिः**—सलिलेन गुरुभिः (तृ० त०) । **साभ्रे**—अभ्रेण सह वर्तत इति साभ्रं तस्मिन् (बहु०) । **न प्रबुद्धाम्**—न प्रबुद्धा ताम् (केवल स०), **प्रबुद्धाम्**—प्र+√बुध+क्त+टाप् । **न सुप्ताम्**—न सुप्ता ताम् (केवल स०), **सुप्ताम्**—√स्वप्+क्त+टाप् । **स्थलकमलिनीम्**—स्थलस्य, स्थले वा कमलिनी ताम् (ष० अथवा स० त०) ।

इस श्लोक में अमृतशिशिरान् में लुप्तोपमा तथा स्थलकमलिनीम् इव में श्रौती उपमा अलङ्कार है। □

**प्रसङ्ग**—यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन है—

निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं
शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम्[1]।
मत्संभोगः[2] कथमुपनमेत्स्वप्नजोऽपीति[3] निद्रा-
माकाङ्क्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् ॥३१॥

**अन्वयः**—शुद्धस्नानात् परुषं नूनम् आगण्डलम्बम् अलकम् अधरकिसलयक्लेशिना निःश्वासेन विक्षिपन्तीं स्वप्नजः अपि मत्संभोगः कथम् उपनमेत् इति नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशां निद्राम् आकाङ्क्षन्तीम् (तां साध्वी पश्य) ॥३१॥

**शब्दार्थ**—**शुद्धस्नानात्**=साधारण (तेल आदि से रहित) स्नान से, **परुषम्**=रूखे, **आगण्डलम्बम्**=कपोलों तक लटकने वाले, **अधरकिसलयक्लेशिना**=किसलय के समान निचले ओठ को पीड़ित (तपाने वाले) कर देने वाले, **निःश्वासेन**=लम्बे साँस से, **विक्षिपन्तीम्**=हिलाती हुई, **स्वप्नजः**=स्वप्न में उत्पन्न, **उपनमेत्**=प्राप्त हो जाये, **नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम्** =आँखों के पानी के प्रवाह से रोके गये स्थान वाली, **आकाङ्क्षन्तीम्**=इच्छा करती हुई।

**अनुवाद**—**साधारण (तेल आदि से रहित) स्नान से रूखे, निश्चय ही कपोलों तक लटकने वाले बालों की किसलय के समान निचले ओठ को पीड़ित (तपाने वाले) कर देने वाले लम्बे साँस से हिलाती हुई, (तथा) स्वप्न में उत्पन्न भी मेरा संभोग किसी प्रकार प्राप्त हो जाये—इस प्रकार आँखों के पानी के प्रवाह से रोके गये स्थान वाली निद्रा की इच्छा करती हुई (उस पतिव्रता को देखना) ॥३१॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! तैलादिरहितसाधारणस्नानाद् रूक्षं निश्चितरूपेण आकपोलावलम्बि चूर्णकुन्तलान् अधरनवपल्लवग्लापिना उष्णेन इत्यर्थः दीर्घ निःश्वासेन चालयन्तीं स्वप्नदशायामपि मत्सहवासं केनापि प्रकारेण आगच्छेत् प्राप्तः भवेत् इत्यर्थः इति नयनजलनिवारितप्रसरां निद्रामिच्छन्तीं (मत्प्रियां पश्य)।

**सञ्जीवनी**—निःश्वासेति। शुद्धस्नानात्तैलादिरहितस्नानात्परुषं कठिनस्पर्शं नूनमागण्डलम्बम्। (सुप्सुपेति समासः।) अलकं चूर्णकुन्तलान्। जातावेकवचनम्। अधरकिसलयं क्लेशयति क्लिश्नातीति वा तेन तथोक्तेन। उष्णेनेत्यर्थः। (क्लिश्यतेर्ण्यन्तात् क्लिश्नातेरण्यन्ताद्वा ताच्छील्ये णिनिः।) निःश्वासेन विक्षिपन्तीं चालयन्तीम्। तथा स्वप्नजोऽपि स्वप्नावस्थाजन्योऽपि साक्षात्संभोगासंभवादिति भावः। मत्संभोगः कथं केनापि प्रकारेणोपनमेदागच्छेत्। इत्याशयेनेति शेषः (इतिनैवोक्तार्थत्वादप्रयोगः। 'प्रयोगे चापौनरुक्त्यम्' इत्यालङ्कारिकाः) (प्रार्थनायां लिङ्।) नयनसलिलोत्पीडेनाश्रुप्रवृत्त्या रुद्धावकाशामाक्रान्तस्थानाम्। दुर्लभामित्यर्थः। निद्रामाकाङ्क्षन्तीम्। स्वप्नहेतुत्वादिति भावः। अत्राश्रुविसर्जनेन लज्जात्यागो व्यज्यते ॥३१॥

**टिप्पणी**—**शुद्धस्नानात्**—यहाँ शुद्ध स्नान से अभिप्राय तैल आदि सुगन्धित द्रव्यों से

१. ०लम्बि।
२. मत्संयोग।
३. कथमपि भवेत्स्वप्नजोऽपीति निद्राम्।

रहित, उबटन आदि से रहित स्नान से है; क्योंकि वह प्रोषितभर्तृका है, इसलिए पूजा आदि करने से पूर्व साधारण स्नान ही कर सकती थी; क्योंकि उसे प्रसाधन का निषेध था। याज्ञ० स्मृति में भी आया है कि—

*क्रीडां शरीरसंस्कारसमाजोत्सवदर्शनम्।*

*हास्यं पर गृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ॥ (१/८४)*

कुछ टीकाकारों ने शुद्ध स्नान से अभिप्राय मासिक धर्म के पश्चात् किये जाने वाले स्नान से किया है, किन्तु यह अर्थ अधिक समीचीन नहीं जान पड़ता।

**अधरकिसलयक्लेशिना**—अधरों की किसलयों से समाननता बतायी गयी है। इसी प्रकार का भाव अभि० शा० में भी है—"*अधरः किसलयरागः*" "*श्वासापरक्ताधरः।*"

**मत्संभोगः**—यक्षिणी का प्रियतम उससे दूर है; अतः उससे साक्षात् संभोग तो सम्भव नहीं है इसलिए यह सोचकर कि उससे स्वप्न में ही संभोग सम्भव हो जाये, इसी विचार से नींद लेने का प्रयास कर रही है, किन्तु आँखों में आँसू आ जाने के कारण निद्रा का अवसर नहीं मिलता।

**व्याकरण—अधरकिसलयक्लेशिना**—अधरं किसलयम् इव (उपमित कर्मधा० तत्पु०) तत् क्लिश्नाति इति तेन (उप० तत्पु०), अधरकिसलय+क्लिश्+णिनि, तृ० एकव०। **विक्षिपन्तीम्**—वि+√क्षिप्+शतृ+ङीप्, द्वि० एकव०। **शुद्धस्नानात्**—शुद्धं च तत् स्नानम् (कर्मधा०) तस्मात्। **आगण्डलम्**—आ गण्डाभ्यमिति आगण्डम् (अव्ययीभावः) आगण्डम् लम्ब (केवल समास), आ +गण्ड+√लम्ब्+अच्, द्वि० एकव०। **मत्संभोगः**—मम मया वा संभोगः (ष० अथवा तृ० त०)। **उपनमेत्**—उप्+√नम्, विधि लि० प्र० पु० एकव०। **स्वप्नज**—स्वप्नात् जायते इति (उप० त०), स्वप्न+√जन्+ड। **आकाङ्क्षन्तीम्**—आ+काङ्क्ष्+कर्तृ+ङीप्, द्वि० एकव०। **नयनसलिलोत्पीडारुद्धावकाशाम्**—नयनयोः सलिलम् (ष० त०), तस्य उत्पीडः (ष० त०), तेन रुद्धः अवकाशः यस्याः ताम् (बहु०), **उत्पीड**—उत्+√पीड्+घञ्, **रुद्ध**—रुध्+क्त, **अवकाश**—अव+√काश्+घञ्।

प्रस्तुत श्लोक में अधरकिसलयक्लेशिना में **लुप्तोपमा** अलङ्कार है। □

**प्रसङ्ग**—यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि—

**आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा[1] दाम हित्वा**
**शापस्यान्ते विगलितशुचा तां[2] मयोद्वेष्टनीयाम्[3]।**
**स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत्सारयन्तीं**
**गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण ॥३२॥**

**अन्वयः**—आद्ये विरहदिवसे दामहित्वा या शिखा बद्धा, शापस्य अन्ते विगलितशुचा मया उद्वेष्टनीयां स्पर्शक्लिष्टां कठिनविषमाम् एकवेणीं ताम् अयमितनखेन करेण गण्डाभोगात् असकृत् सारयन्तीम् (तां साध्वीं पश्य) ॥३२॥

---

१. शिखादाम।
२. सा, या।
३. मयोद्वेष्टनीयाः, मयोन्मोचनीया, मयोन्मोचनीयाम्।

**शब्दार्थ**—**आद्ये**=पहले, **विरहदिवसे**=विरह के दिन, **दाम**=पुष्पमाला, **हित्वा**=त्यागकर, **शिखा बद्धा**=चोटी बांधी थी, **विगलितशुचा**=नष्ट हुए शोक वाला, **उद्वेष्टनीयां**=खोली जाने वाली, **स्पर्शक्लिष्टाम्**=स्पर्श करने में दुःखदायी, **कठिनविषमाम्**=कठोर, उलझी हुई, **एकवेणीम्**=एक वेणी रूप, **अयमितनखेन**=बिना कटे नाखूनों वाले, **गण्डाभोगात्**=गालों के प्रदेश से, **असकृत्**=बार-बार, **सारयन्तीम्**=हटाती हुई ।

**अनुवाद**—**विरह के पहले दिन पुष्पमाला को त्यागकर, जो चोटी बाँधी थी; शाप के अन्त होने पर नष्ट हुए शोक वाले मेरे द्वारा खोले जाने वाली, स्पर्श करने में दुःखदायी, कठोर, उलझी हुई एक वेणी रूप उस (शिखा) को, बिना कटे नाखूनों वाले हाथ से गालों के प्रदेश से बार-बार हटाती हुई (उस पतिव्रता को देखना) ।।३२।।**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! प्रथमे वियोगदिवसे पुष्पमालां त्यक्त्वा या शिखा ग्रथिता, शापस्य समाप्तौ वीतशोकेन मया मोचनीयां स्पर्शेण दुःखदायिनीं कठोरनिम्नोन्नताम् एकीभूतवेणीम् तां शिखां दीर्घनखेन हस्तेन कपोलप्रदेशात् मुहुर्मुहुरपसारयन्तीं (मत्प्रियां पश्य) ।

**सञ्जीवनी**—आद्य इति । आद्ये विरहदिवसे दाम मालां हित्वा त्यक्त्वा या शिखा बद्धा ग्रथिता शापस्यान्ते विगलितशुचा वीतशोकेन मयोद्वेष्टनीयां मोचनीयां स्पर्शक्लिष्टाम् । स्पर्शे सतिमूलकेशेषु सव्यथामित्यर्थः । कठिना च सा विषमा निम्नोन्नता च ताम् । (खञ्जकुब्जादिवदन्यतरस्य प्राधान्यविवक्षयां 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' इति समासः) । एकवेणीमेकीभूतवेणीम् । (पूर्वकाल— इत्यादिना तत्पुरुषः ।) तां शिखाम् । अयमिता अकर्तितोपान्ता नखा यस्य तेन करेण गण्डाभोगात्कपोलविस्तारादसकृन्मुहुर्मुहुः सारयन्तीमपसारयन्तीम् । 'तां पश्य' इति पूर्वेण सम्बन्धः । असकृतसारणाच्चित्तविभ्रमदशा सूचिता ।।३२।।

**टिप्पणी**—**दाम हित्वा**—प्रोषितभर्तृका प्रसाधन नहीं कर सकती थी इसलिए चोटी गूँथते समय पुष्प आदि नहीं गूँथती थी । **हारीतस्मृ०** में देखिये—**न प्रोषिते तु संस्कुर्यान्न च वेणीं प्रमोचयेत्** । अतः यक्षिणी ने भी विरह के प्रथम दिन पुष्पमाला को छोड़कर अपनी चोटी गूँथी होगी ।

**मयोद्वेष्टनीयाम्**—प्राचीन समय में यह प्रथा थी कि वियोग के अवसर पर पति अपनी पत्नी के बालों को एक वेणी में गूँथता था और वियोग के बाद वही उसे खोलता था ।

**स्पर्शक्लिष्टाम्**—प्रोषितभर्तृकाएँ जिस वेणी को विरह के दिन गूँथती थीं, उसमें तेलादि न लगाने के कारण वह शुष्क हो जाती थी जो स्पर्श करने में कष्ट देती थी ।

**कठिनविषमाम्**—बहुत समय से प्रसाधन न करने के कारण वेणी कठोर और उलझ जाती थी । विषम का अर्थ ऊँचा-नीचा होता है, किन्तु यहाँ इसका अर्थ उलझा हुआ अधिक उपयुक्त है ।

**अयमितनखेन**—प्रोषितभर्तृकाएँ क्योंकि विरहावस्था में प्रसाधन नहीं करती थीं; इसलिए नाखून भी नहीं काटे थे, जिससे यक्षिणी के नाखून लम्बे-लम्बे हो गये थे।

**व्याकरण**—**बद्धा**—√बन्ध्+क्त+टाप् । **विरहदिवसे**—विरहस्य दिवसे (ष० त०) । **हित्वा**—√हा+क्त्वा । **शाप**—√शप्+घञ् । **विगलितशुचा**—विगलिता शुक्, यस्य तेन (बहु०) । **उद्वेष्टनीयाम्**—उद्गतं वेष्टनं यस्याः सा उद्वेष्टना (बहु०), उत्+√वेष्ट+अनीयर्+टाप्, द्वि० एकव० । **स्पर्शक्लिष्टाम्**—स्पर्शे क्लिष्टा ताम् (स० त०), **क्लिष्टा**—√क्लिश+क्त+टाप् । **अयमितनखेन**—अयमिता नखाः यस्य तेन (बहु०), **अयमित**—

नञ्+√यम्+इट्+क्त । **सारयन्तीम्**—√सृ+णिच्+शतृ+ङीप्, द्वि० एकव० । **गण्डाभोगात्**—गण्डयोः आभोगः तस्मात् (ष० त०। **कठिनविषमाम्**—कठिना च सा विषमा (कर्मधा०) ताम् । **एकवेणीम्**—एका वेणी (कर्मधा०) ताम् ।

यहाँ चोटी को बार-बार हटाते रहने से यक्ष-पत्नी की चित्तविभ्रम दशा सूचित होती है । अतः यहाँ **स्वभावोक्ति** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को बताता है कि मेरी प्रिया की विरहावस्था को देखकर तुम स्वयं भी रो पड़ोगे—

**सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं[1] धारयन्ती**
**शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद् दुःखदुःखेन गात्रम् ।**
**त्वामप्यस्रं[2] नवजलमयं[3] मोचयिष्यत्यवश्यं**
**प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥३३॥**

**अन्वयः**—अबला संन्यस्ताभरणम् असकृत् दुःखदुःखेन शय्योत्सङ्गे निहितं पेशलं गात्रं धारयन्ती सा अवश्यं त्वाम् अपि नवजलमयम् अस्रम् मोचयिष्यति । प्रायः आर्द्रान्तरात्मा सर्वः करुणावृत्तिः भवति ॥३३॥

**शब्दार्थ**—**संन्यस्ताभरणम्**=आभूषणों का त्याग किये हुए, **दुःखदुःखेन**=कठिनाई से, **शय्योत्सङ्गे**=शय्या पर, **पेशलम्**=कोमल, **नवजलमयम्**=नये जल के रूप में, **अस्रम्** =आँसुओं को, **मोचयिष्यति**=छुड़ा देगी, **आर्द्रान्तरात्मा**=कोमल हृदय वाले, **करुणावृत्तिः**=दयालु स्वभाव के ।

**अनुवाद**—**दुर्बल हुई (तथा) आभूषणों का त्याग किये हुये, बार-बार कठिनाई से शय्या पर रक्खे हुए, कोमल शरीर को धारण करने वाली वह (तुम्हारी भाभी) अवश्य ही तुमको भी नये जल के रूप में आँसुओं को छुड़ा देगी अर्थात् रुला देगी । (क्योंकि) प्रायः कोमल हृदय वाले सभी दयालु स्वभाव के होते हैं ॥३३॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! दुर्बलां परितयक्ताभूषणाम् अनेकशः अतिशयदुःखेन शयनीयमध्ये निहितं कोमलं शरीरं धारयन्तीं तां मत्प्रियाम् दृष्ट्वा त्वमपि नूनं नवाम्बुरूपाण्यश्रूणि मोक्ष्यसि । यतः प्रायशः मृदुहृदयः सकलोऽपि जनः कारुणिकाऽन्तःकरणवृत्तिर्भवति ।

**सञ्जीवनी**—सेति । अबला दुर्वला संन्यस्ताभरणं कृशत्वात्परित्यक्ताभरणमसकृदनेकशो दुःखदुःखेन दुःखप्रकारेण । ('प्रकारे गुणवचनस्य' इति द्विर्भावः ।) शय्योत्सङ्गे निहितं पेशलं मृदुलं गात्रं शरीरं धारयन्ती वहन्ती । अनेनात्यन्ताशक्त्या मूर्च्छावस्था सूच्यते । सा त्वत्सखी त्वामपि नवजलमयं नवाम्बुरूपमस्रं वाष्पमवश्यं सर्वथा मोचयिष्यति । ('द्विकर्मसु पचादीनामुपसंख्यानम्' इति मुचेः पचादित्वाद् द्विकर्मकत्वम् ।) तथा हि । प्रायः प्रायेणार्द्रान्तरात्मा मृदुहृदयः । मेघस्तु द्रवान्तःशरीरः । सर्वः करुणा करुणामयी वृत्तिरन्तःकरणवृत्तिर्यस्य स करुणवृत्तिर्भवति । अस्मिन्नवसरे सर्वथा त्वया शीघ्रं गन्तव्यमनन्तरदशापरिहारायेति संदर्भाभिप्रायः । ननु किमिदमादिमां चक्षुःप्रीतिमुपेक्ष्याव-स्थान्तराण्येव तत्रभवान्कविरादृतवान् ? उच्यते—'संभोगो विप्रलम्भश्च द्विधा शृङ्गार उच्यते' ।

१. पेलवम्, कोमलम् ।
२. त्वामप्यश्रु ।
३. जललव०, जलकण० ।

संयुक्तयोस्तु संभोगो विप्रलम्भो वियुक्तयोः । पूर्वानुरागमानाख्यप्रवासकरुणात्मना । विप्रलम्भश्चतुर्धात्र प्रवासस्तत्र च त्रिधा । कार्यतः संभ्रमाच्छापादस्मिन्काव्ये तु शापजः । प्रागसङ्गतयोर्यूनोः सति पूर्वानुरञ्जने। चक्षुः—प्रीत्यादयोऽवस्था दश स्युस्तत्क्रमो यथा । दृङ्मनःसङ्गसङ्कल्पा जागरः कृशता रतिः । ह्रीत्यागोन्मादमूर्च्छान्ता इन्यनङ्गदशा दश । पूर्वसङ्गतयोरेव प्रवास इति कारणात् । न तत्रापूर्वव- च्चक्षुःप्रीतिरुत्पत्तुमर्हति । सत्सङ्गस्य तु सिद्धस्याप्यविच्छे दोऽत्र वर्ण्यते। अन्यथा पूर्ववद्वाच्या इति तावद्व्यवस्थितेः । वैयर्थ्यादादिमां हित्वा वैरस्यादन्तिमां तथा । हृत्सङ्गादिरिहाचष्ट कविरष्टाविति स्थितिः। मत्सादृश्यं लिखन्तीति पद्येऽस्मिन्प्रतिपादिता । चक्षुःप्रीतिरिति प्रोक्तं निरुत्तरकृताननम् । चक्षुःप्रीतिर्भ- वेच्चित्रेष्वदृष्टचरदर्शनात् । यथा मालविकारूपमग्निमित्रस्य पश्यतः । प्रोषितानां य भर्तृणां क्व दृष्टाऽदृष्टपूर्वता । अथ तत्रापि संदेहे स्वकलत्राणि पृच्छतु । किं भर्तृप्रत्यभिज्ञास्यात्किं वैदेशिकभावना । प्रवासादागते स्वस्मिन्नित्यल कलहैर्वृथा ।'' इति ॥३३॥

**टिप्पणी—संन्यस्ताभरणम्**—विरहिणी स्त्रियों के लिए आभूषण पहनना निषिद्ध था; अतः यक्षिणी ने भी आभूषणों का त्याग कर दिया था । **आचार्य मल्लिनाथ** ने आभूषण त्यागने का कारण दुर्बलता बताया है—*कृशत्वात्परित्यक्ताभरणम्* ।

**पेशलम्**—इसमें **पेलवं** तथा **कोमल** यह पाठान्तर भी मिलते हैं । तीनों का ही अर्थ कोमल है । यक्ष मेघ से कहता है कि उसकी पत्नी अत्यधिक कोमल है, विरह की ज्वाला उसे जला रही होगी, जिस कारण वह शय्या पर भी कठिनता से लेटती होगी ।

**नवजलमयम्**—यक्ष मेघ से कहता है कि विरहिणी यक्षिणी की दशा देखकर वह (मेघ) स्वयं भी रो पड़ेगा । किन्तु किसी को दुःखी देखकर रोना चेतन प्राणी का धर्म है, मेघ तो अचेतन है वह कैसे रोयेगा ? इसका उत्तर आर्द्रान्तरात्मा पद से कवि ने दिया है, जो चेतन के लिए कोमल हृदय वाला तथा अचेतन के लिए द्रव रूप अन्तः शरीर वाला अर्थ देता है; अतः मेघ जल की बूँदों के रूप में आँसू बहायेगा ।

**व्याकरण—संन्यस्ताभरणम्**—संन्यस्तानि आभरणानि यस्मात् तत् (बहु०), **संन्यस्त**—सम्+नि+√अस्+क्त । **अबला**—अविद्यमानं बलं यस्याः सा (नञ् बहु०) । **धारयन्ती**—√धृ+णिच्+शतृ+ङीप् । **शय्योत्सङ्गे**—शय्यायाः उत्सङ्गे (ष० त०), **उत्सङ्ग**—उद्+√सञ्ज+घञ् । **निहितं**—नि+√धा+क्त । **दुःखदुःखेन**—यहाँ ''दुःखप्रकारेण'' इस विग्रह में 'प्रकारेण गुणवचनस्य' से द्वित्व हुआ है । **असकृत्**—न सकृत् (नञ् त०) । **नवजलमयम्**—नवं च तत् जलम् (कर्मधा०)। **मोचयिष्यति**—√मुच+णिच्+लृट्, प्र० एकव० । **आचार्य मल्लिनाथ** ने *''द्विकर्मसु पचादीनामुप- संख्यानम्''* इस वार्तिक से पच् आदि धातुओं में मुच् का भी पाठ होने से द्विकर्मक होकर द्वितीया हुई है, ऐसा माना है। परन्तु उक्त वार्तिक 'सिद्धान्तकौमुदी' आदि प्रामाणिक ग्रन्थों में नहीं मिलती। इसलिये श्री शारदारञ्जन राय ने मुच् धातु को एक प्रकार से गत्यर्थक ही मानकर *'गतिबुद्धिप्रत्य- वसानार्थशब्द०'* इस सूत्र से मुच् की अण्यन्ताऽवस्था के कर्ता त्वम् को ण्यन्तावस्था में कर्म संज्ञा होने से द्वितीया होकर ''त्वाम्'' ऐसा रूप हुआ, माना है । **करुणावृत्तिः**—करुणामयी वृत्तिर्यस्य स करुणावृत्तिः (बहु०) । **आर्द्रान्तरात्मा**—आर्द्रः अन्तरात्मा यस्य सः (बहु०) ।

प्रस्तुत श्लोक में **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि अपनी प्रिया की जिस विरहावस्था का वर्णन मैंने किया है, उसे तुम भी प्रत्यक्ष देख लोगे—

**जाने सख्यास्तव मयि मनः संभृतस्नेहमस्मा-**
**दित्थं भूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि ।**

**वाचालं मां न खलु सुभगं मन्यभावः करोति**
**प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद्[१] भ्रातरुक्तं मया यत् ॥३४॥**

**अन्वयः**—तव सख्याः मनः मयि संभृतं स्नेहं जाने, अस्मात् अहं तां प्रथमविरहे इत्थं भूतां तर्कयामि, सुभगंमन्यभावः मां वाचालं न करोति खलु। भ्रातः मया यत् उक्तम् (तत्) निखिलम् अचिरात् ते प्रत्यक्षम् (भविष्यति)।

**शब्दार्थ**—**सख्याः**=सखी के (भाभी के), **संभृतस्नेहम्**=स्नेह से भरा हुआ, **अस्मात्**=इसलिए, **प्रथमविरहे**=प्रथम विरह में, **इत्थंभूतम्**=इस प्रकार (अति दुर्बल) हुई, **सुभगंमन्यभावः**=सौभाग्यशाली समझने का भाव, **वाचालम्**=मुखर, **अचिरात्**=शीघ्र ही।

**अनुवाद—(मैं) तुम्हारी सखी (भाभी) के मन को अपने प्रति स्नेह से भरा हुआ जानता हूँ, इसलिए मैं उसे प्रथम विरह में इस प्रकार (अति दुर्बल) हुई सोचता हूँ, अपने को सौभाग्यशाली समझने का भाव मुझे मुखर नहीं बना रहा है। हे भाई, मैंने जो कुछ कहा है, (वह) शीघ्र ही तुम्हें प्रत्यक्ष (हो जायेगा।) ॥३४॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! तव भ्रातृजायायाः चित्तं मां प्रति संचितानुरागं जानामि, अस्मादहं (यक्षः) प्रथमवियोगे तां (मम प्रियां) तादृगवस्थामापन्नां संभावयामि, सुभगमानित्वेन अहं न वाचालतां प्रदर्शयामि, बहु भाषणं न करोमि इत्यर्थः। हे बन्धो ! मदुक्तः सर्वोऽपि सत्वरं त्वद्दृष्टिगोचरीभविष्यति।

**सञ्जीवनी**—नन्वीदृशीं दशामापन्नेति कथं त्वया निश्चितमत आह—जान इति। हे मेघ! तव सख्या मनो मयि संभृतस्नेहं संचितानुरागं जाने। अस्मात्स्नेहज्ञानकारणात्प्रथमविरहे। प्रथमग्रहणं दुःखातिशयद्योतनार्थम्। तां त्वत्सखीमित्थंभूतां पूर्वोक्तावस्थामापन्नां तर्कयामि। ननु सुभगमानिनामेष स्वभावो यदात्मनि स्त्रीणामनुरागप्रकटनं तत्राह—वाचालमिति। सुभगमात्मानं मन्यत इति सुभगमन्यः। ('आत्ममाने खश्च' इति खश्प्रत्ययः। 'अरुर्द्विषद्—' इत्यादिना मुमागमः।) तस्य भावः सुभगं मन्यभावः सुभगमानित्वं मां वाचालं बहुभाषिणं न करोति खलु। सौन्दर्याभिमानितां न प्रकटयामीत्यर्थः। 'स्याज्जल्पाकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक्' इत्यमरः। ('आलजाटचौ बहुभाषिणी' इत्यालच्प्रत्ययः। किन्तु हे भ्रातः, मयोक्तं यत् 'आधिक्षामाम् इत्यादि' तन्निखिलं सर्वमचिराच्छीघ्रमेव ते तव प्रत्यक्षम्। भविष्यतीति शेषः ॥३४॥

**टिप्पणी—संभृतस्नेहम्**—यह मनः का विशेषण है, यक्ष-पत्नी पतिव्रता स्त्री है तो यक्ष भी आदर्श पति है। इसलिये उन दोनों का आपस में अत्यधिक प्रेम का होना स्वाभाविक है, इसलिए यक्ष मेघ से कहता है कि वह अपनी प्रिया को अच्छी तरह जानता है कि वह उसे कितना प्रेम करती है।

**सुभगं मन्यभावः**—यक्ष मन ही मन सोचता है कि कहीं मेघ मेरी कही हुई बात मिथ्या न समझ ले, इसलिए स्थिति स्पष्ट करता हुआ कहता है कि मैं बहुत सौभाग्यशाली हूँ—इस अहंकार के कारण मैं ऐसा नहीं कह रहा हूँ, बल्कि मैं अपने प्रति यक्षिणी के प्रेम के कारण ही ऐसा कह रहा हूँ। तुम अलकापुरी पहुँचकर स्वयं अपनी आँखों से देख लोगे कि मेरी प्रिया की वही दशा है या नहीं जिसका मैंने वर्णन किया है।

**व्याकरण—संभृतस्नेहम्**—संभृतः स्नेहः यस्मिन् तत् (बहु०), **संभृतः**—सम्+√भृ+क्त,

---

१. सकलमचिराद्।

**स्नेहः**—√स्निह्+घञ्, **जाने**—√ज्ञा आत्मनेपद लट्, उ० पु० एकव० । **अस्मात्**—हेतौ पञ्चमी । **इत्थंभूताम्**—इदम्+थमु, इदम् को इत् आदेश, भू+क्त+टाप्, द्वि० एकव० । इत्थं भूता ताम् (केवल स०) । **प्रथमविरहे**—प्रथमश्च असौ विरहः तस्मिन् (कर्मधा०) । **तर्कयामि**—√तर्क, लट् उ० पु० एकव० । **वाचालम्**—वाच् + आलच्, द्वि०एकव०। **सुभगंमन्यभावः**—आत्मानम् सुभगम् मन्यते इति सुभगंमन्यः (कृ० उ० तत्पु०), तस्य भावः (ष० त०), सुभग्+√मन्+श्यन्+खश्=सुभगंमन्यः । **उक्तम्**--√वच्+क्त प्र० पु० एकव० ।

तृतीय चरण के अर्ध के प्रति चतुर्थ चरणगत वाक्यार्थ की हेतुता से **वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिङ्ग** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि तुम्हारे यक्षिणी के समीप पहुँचने पर उसके (यक्षिणी के) नेत्र की शोभा कमल के समान होगी—

**रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं**
**प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ।**
**त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या**
**[1]मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥३५॥**

**अन्वयः**—अलकैः रुद्धापाङ्गप्रसरम् अञ्जनस्नेहशून्यम् अपि च मधुनः प्रत्यादेशात् विस्मृतभ्रूविलासं त्वयि आसन्ने उपरिस्पन्दि मृगाक्ष्याः नयनं मीनक्षोभात् चलकुवलयश्रीतुलाम् एष्यति इति शङ्के ॥३५॥

**शब्दार्थ**—**अलकैः**=बालों से, **रुद्धापाङ्गप्रसरम्**=रोकी गयी कोरों की गति वाला, **अञ्जनस्नेहशून्यम्**=काजल की चिकनाई से रहित, **मधुनः**=मदिरा के, **प्रत्यादेशात्**=त्याग से, **विस्मृतभ्रूविलासम्**=भौंहों के विलास को भूला हुआ, **उपरिस्पन्दि**=ऊपर के भाग में फड़कने वाला, **मीनक्षोभात्**=मछली की हलचल के कारण, **चलकुवलयश्रीतुलाम्**=चञ्चल कमल की शोभा की समानता को, **एष्यति**=प्राप्त करेगा ।

**अनुवाद**—**बालों से रोकी गयी कोरों की गति वाला, काजल की चिकनाई से रहित और मदिरा के त्याग से भौंहों के विलास को भूला हुआ तुम्हारे समीप आने पर ऊपर के भाग में फड़कने वाला, मृगनयनी का नेत्र मछली की हलचल से चञ्चल कमल की शोभा की समानता को प्राप्त करेगा—ऐसी मेरी संभावना है ॥३५॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! केशैः प्रतिरुद्धकोरकगति कज्जलस्निग्धतारहितं मद्योपयोगाऽभावादपगतभ्रूविलासं त्वयि निकटस्थे सति ऊर्ध्वभागस्फुरणशीलं हरिणलोचनायाः मत्प्रियाया इत्यर्थः वामलोचनं मत्स्यसंचलनाच्चञ्चलनीलकमलशोभां प्राप्स्यतीति तर्कयामि ।

**सञ्जीवनी**—रुद्धेति । अलकैः रुद्धा अपाङ्गयोः प्रसरा यस्य तत्तथोक्तम् । अञ्जनेन स्नेहः स्नैग्ध्यं तेन शून्यम् । स्निग्धाञ्जनरहितमित्यर्थः । अपि च किं च मधुनो मद्यस्य प्रत्यादेशान्निराकरणात् परित्यागादित्यर्थः । 'प्रत्यादेशो निराकृतिः' इत्यमरः । विस्मृतो भ्रूविलासो भ्रूभङ्गो येन तत् । नयनस्य रुद्धापाङ्गप्रसरत्वादिकं विरहसमुत्पन्नमिति भावः । त्वय्यासन्ने सति स्वकुशलवार्ताशंसिनीति शेषः । उपर्यूर्ध्वभागे स्पन्दते स्फुरतीत्युपरिस्पन्दि । (तथा च निमित्तनिदाने—'स्पन्दान्मूर्ध्नि च्छत्रलाभं भाले

---

१. मीनक्षोभाकुलकुवलय० ।

पट्टं शुभं भुवि । इष्टप्राप्तिं दृशोरुर्ध्वमपाङ्गे हानिमादिशेत् ।' इति) । मृगाक्ष्यास्त्वत्सख्या नयनम् । वाममिति शेषः । (वामभागस्तु नारीणां पुंसां श्रेष्ठस्तु दक्षिणः । दाने देवादिपूजायां स्पन्देऽलङ्करणेऽपि च ।' इति स्त्रीणां वामभागप्राशस्त्यात् ।) मीनक्षोभान्मीनचलनाच्चलस्य कुवलयस्य श्रिया शोभया तुलां सादृश्यमेष्यतीति शङ्के तर्कयामि ॥३५॥

**टिप्पणी—रुद्धापाङ्गप्रसरम्**—विरहणी यक्षिणी ने विरह के प्रथम दिन ही बालों को गूँथा था, तबसे न गूँथने के कारण वे ढीले पड़ गये हैं, जिससे वे बाल उसके नेत्रों पर लटक गये हैं, जिससे वह पूरी तरह से नहीं देख पाती ।

**अञ्जनस्नेहशून्यम्**—स्नेह का अर्थ यहाँ मैत्री भी ले सकते हैं, तब अर्थ होगा जिन आँखों ने अञ्जन से मैत्री छोड़ दी थी । प्रोषितभर्तृका के लिए विरहावस्था में अञ्जन का प्रयोग निषिद्ध है—देखिये—

*क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् ।*
*हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ॥ याज्ञ० स्मृति १/८४*

अञ्जन न लगाने से यक्षिणी के नेत्र कुछ रूखे-रूखे लगते थे ।

**विस्मृत भ्रूविलासम्**—भौंहो के मटकाने को भ्रूविलास कहते हैं । पति वियोग में यक्षिणी ने मद्य-पान छोड़ दिया था, इसलिए उसकी चञ्चलता तथा मस्ती समाप्त हो गयी थी तथा चञ्चलता के अभाव में वह भौंहों को मटकाना भी भूल गयी थी ।

**उपरिस्पन्दिनयनम्**—नयन से यहाँ बायाँ नेत्र अभीष्ट है; क्योंकि स्त्री की बायीं आँख फड़कना अच्छा शकुन माना जाता है, जबकि पुरुष की दायीं आँख—

*वामभागस्तु नारीणां पुसां श्रेष्ठस्तु दक्षिणः ।*
*दाने देवादिपूजायां स्पन्देऽलंकरणेऽपि च ॥*

और आँख का ऊपर के हिस्से में फड़कना इष्ट प्राप्ति का लक्षण कहा गया है—

*स्पन्दान्मूर्ध्नि च्छत्रलाभं ललाटे पट्टमंशुकम् ।*
*इष्टप्राप्तिं दृशोरुर्ध्वमपाङ्गे हानिमादिशेत् ॥*

**व्याकरण—रुद्धापाङ्गप्रसरम्**—अपाङ्गयोः प्रसराः (ष० त०) रुद्धा अपाङ्गप्रसराः यस्य तत् (बहु०), **रुद्ध**—√रुध्+क्त । **अञ्जनस्नेहशून्यम्**—अञ्जनस्य स्नेहः (ष० त०) तेन शून्यम् (तृ० त०), **अञ्जनम्**—√अञ्ज्+ल्युट्, **स्नेहः**—√स्निह्+घञ् । **प्रत्यादेशात्**—प्रति+आङ् +√दिश् +घञ्, प० एकव० । **विस्मृतभ्रूविलासम्**—भ्रुवोः विलासः (ष० त०), विस्मृतः भ्रूविलासः येन तत् (बहु०), **विस्मृत**—वि+√स्मृ+क्त. **विलासः**—वि+√लस्+घञ् । **आसन्ने**—आ+√सद्+क्त, स० एकव० । **उपरिस्पन्दि**—उपरि स्पन्दते इति (उपपद त०), उपरि+√स्पन्द+णिनि । **शङ्के**—√शङ्क्, लट् उ० पु० एकव० । **मृगाक्ष्याः**—मृगस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः तस्याः (बहु०) । **मीनक्षोभात्**—मीनस्य क्षोभात् (ष० त०) । **चलकुवलयश्रीतुलाम्**—चलं च तत् कुवलयं (कर्मधा०) तस्य श्रीः (ष० त०) तस्याः तुलाम् (ष० त०) । **एष्यति**—√इष्+लृट प्र० पु० एकव० ।

प्रस्तुत श्लोक में **उपमा अलङ्कार** है ।

□

**प्रसङ्ग**— यक्ष मेघ से कहता है कि जब वह (मेघ) यक्षिणी के समीप पहुँचेगा तो उसकी (यक्षिणी की) बायीं जँघा फड़कने लगेगी—

वामश्चास्याः[1] कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै-
र्मुक्ताजालं चिरपरिचितं[2] त्याजितो दैवगत्या ।
संभोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां[3]
यास्यत्यूरुः [4]सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥३६॥

**अन्वयः**—मदीयैः कररुहपदैः मुच्यमानः दैवगत्या चिरपरिचितं मुक्ताजालं त्याजितः, संभोगान्ते मम हस्तसंवाहनानां समुचितः सरसकदलीस्तम्भगौरः अस्याः वामः ऊरुः च चलत्वं यास्यति ॥३६॥

**शब्दार्थ—कररुहपदैः**=नखों के चिह्नों से, **मुच्यमानः**= छोड़ी जाती हुई, **चिरपरिचितम्**=बहुत समय से जानी पहचानी, **मुक्ताजालम्**=मोतियों की लड़ी को, **हस्तसंवाहनानाम्**=हाथ से दबाये जाने के, **समुचितः**=योग्य, **सरसकदलीस्तम्भगौरः**=सरस केले के तने के समान गौर वर्ण, **चलत्वम्**=फड़कने को, **यास्यति**=प्राप्त करेगी ।

**अनुवाद—मेरे नखों के चिह्नों से छोड़ी जाती हुई, दुर्भाग्यवश बहुत समय से जानी पहचानी मोतियों की लड़ी को छोड़ देने वाली, संभोग के अन्त में मेरे हाथों से दबाई जाने योग्य, सरस केले के तने के समान गौर वर्ण, इस (मेरी प्रिया) की बायीं जँघा फड़क उठेगी ॥३६॥**

**संस्कृत-टीका**— हे मेघ ! त्वय्यासन्ने सति मदीयनखक्षतरहितः विधिवशेन बहुकालाऽभ्यस्तं त्याजितमौक्तिकसरमयकटिभूषणः सुरताऽवसाने मम हस्तसंवाहनानां योग्यः आर्द्रकलीस्तम्भपाण्डुरः मत्प्रियायाः वामः ऊरुः स्पन्दनं प्राप्स्यति ।

**सञ्जीवनी**—वाम् इति । मदीयैः कररुहपदैर्नखपदैः । पुनर्भवः कररुहो नखोऽस्त्री नखरोऽस्त्रियाम् इत्यमरः । मुच्यमानः परिहीयमाणः । नखाङ्करहित इत्यर्थः । (ऊर्वोर्नखपदास्पदत्वं तु रतिरहस्ये 'कण्ठकक्षकुचपार्श्वभुजोरःश्रोणिसक्थिषु नखास्पदमाहुः' इति ।) चिरपरिचितं चिराभ्यस्तं मुक्ताजालं मौक्तिकसरमयकटिभूषणं दैवगत्या दैववशेन त्याजितः । संप्रति नखपदोष्माभावेन शीतोपचारस्य तस्य वैयर्थ्यादिति भावः । (त्यजतेर्ण्यन्तात्कर्मणि क्तः । 'द्विकर्मसु पचादीनां चोपसंख्यानमिष्यते' इति पचादित्वाद् द्विकर्मकत्वम् ।) संभोगान्ते मम हस्तसंवाहनानां हस्तेन मर्दनानाम् । 'संवाहनं मर्दनं स्यात्' इत्यमरः । समुचितो योग्यः । सरसो रसार्द्रः परिपक्वो न शुष्कश्च स एवं विवक्षितः । तत्रैव पाण्डिमसंभवात् । स चासौ कदलीस्तम्भश्च स इव गौरः पाण्डुरः । 'गौरः शरीरे सिद्धार्थे शुक्ले पीतेऽरुणेऽपि च' इति मालतीमालायाम् । अस्याः प्रियाया वाम ऊरुश्चलत्वं स्पन्दनं यास्यति प्राप्स्यति । ('ऊरोः स्पन्दाद्रतिं विद्यादूर्वोः प्राप्तिं सुवाससः' इति निमित्तनिदाने) ॥३६॥

**टिप्पणी—वामश्चास्याः ऊरुः**—निमित्त निदान के अनुसार स्त्रियों की बायीं जङ्घा का फड़कना रति सुख की प्राप्ति तथा दोनों जङ्घाओं का फड़कना वस्त्र प्राप्ति का सूचक है । यक्षिणी की वाम जङ्घा का फड़कना यह सूचित करता है कि शीघ्र ही उसे रति सुख की प्राप्ति होगी । देखिये—

*ऊरोः स्पन्दाद्रति विद्यादूर्वोः प्राप्तिं सुवाससः ।*

**कररुहपदैः**—नायक संभोग काल में नायिका के ऊरु में नखक्षत करता है । रतिरहस्य में नखक्षत के निम्न स्थान बताये गये है—

१. वामोवास्याः ।
२. चिरविरचितम् , नवपरिचितम् ।
३. ०संवाहनस्य ।
४. कनककदलीस्तम्भ०, कनककदलीगर्भ०, सरसकदलीगर्भ०, सरसकदलीस्तम्ब० ।

*कण्ठकक्षकुचपार्श्वभुजोरः श्रोणिसक्थिषु नखास्पदमाहुः ।*

**सम्भोगान्ते**—कामशास्त्र के अनुसार रतिक्रीड़ा के अन्त में नायक का नायिका की रतिजन्य थकान को दूर करने के लिये चरण दबाना, पंखा झलने आदि का विधान है—

*रतान्ते वीजनपादादियन्त्रणादिना योषिदनुनेतव्या ।*

अभि० शाकु० में यही भाव दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला से किये गये निवेदन में है—

*अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ ।*
*संवाहयामि करभोरु यथा सुखं ते ॥ (३/१८)*

**सरसकदलीस्तम्भगौरः**—इसका अर्थ है सरस केले के तने के समान गौर वर्ण वाली, इसमें चार पाठान्तर मिलते है (देखिये मूल श्लोक) किन्तु सरसकदलीगर्भगौरः पाठ को **पं० ईश्वरचन्द्र** ने अधिक उपयुक्त माना है । इस पाठ का समर्थन करते हुए वे लिखते है कि—"*अयमेव पाठः साधीयान् कनकदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः इत्यत्र अलकायां कनककदलीनां बाहुल्यदर्शनादुपमितकाले तासामेव बुद्धिस्थत्वात् ।*" **श्री संसार-चन्द्र** ने भी इसी पाठ से सहमति जतायी है कि केले के स्तम्भ (तने) का अन्दर का भाग बाहरी भाग से **श्वेततर** होता है ।

**व्याकरण—कररुहपदैः**—मुकरे करात् वा रोहन्ति इति (उपपद त०) कररुहाणां पदैः (ष०त०) । **मुच्यमानः**—√मुच्+शानच् । **मुक्ताजालम्**—मुक्तानां जालम् (ष० त०) । **मदीयैः**—अस्मद् (एकवचन)+ छ (ईय्) । **चिरपरिचितम्**— चिरः परिचितः तम् (केवल स०) । **त्याजितः**—√त्यज्+णिच्+क्त । **दैवगत्या**— दैवस्य गत्या (ष० त०) । **सम्भोगान्ते**—सम्भोगस्य अन्ते (ष० त०) । **हस्तसंवाहनानाम्**—हस्ताभ्याम् संवाहनानि (तृ० त०) तेषाम्, **संवाहनम्**—सम्+√वह्+णिच्+ल्युट् । **यास्यति**—√या लृट् प्र० पु० एकव० । **सरसकदलीस्तम्भगौरः**—रसेन सहितः सरसः (बहु०) कदल्याः स्तम्भः (ष० त०) सरसश्च असौ कदलीस्तम्भः (कर्मधा०) स इव गौरः (उपमित त०) ।

प्रस्तुत श्लोक में सरसकदलीस्तम्भगौरः पद में **उपमा** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को समझाता है कि यदि तुम्हारे वहाँ (प्रिया के पास) पहुँचने पर वह (प्रिया) सो रही हो तो सन्देश देने के लिये उसके जगने तक प्रतीक्षा करना—

**तस्मिन्काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या-**
**दन्वास्यैनां[1] स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व[2] ।**
**मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि[3] स्वप्नलब्धे कथञ्चि-**
**त्सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम् ॥३७॥**

**अन्वयः**—जलद, तस्मिन् काले यदि सा लब्धानिद्रासुखा स्यात् एनाम् अन्वास्य स्तनितविमुखः याममात्रं सहस्व । अस्याः मयि प्रणयिनि कथञ्चित् स्वप्नलब्धे (सति) गाढोपगूढं सद्यः कण्ठच्युत-भुजलताग्रन्थि मा भूत् ॥३७॥

**शब्दार्थ**—**लब्धनिद्रासुखा**=निद्रा के सुख को प्राप्त, **एनाम्**=उसके, **अन्वास्य**=समीप बैठकर, **स्तनितविमुखः**=गर्जन से विमुख होकर, **याममात्रम्**=प्रहर भर तक, **सहस्व**=प्रतीक्षा करना,

१. अन्वासीनः, तत्रासीनः ।
२. सहेथाः, क्षमस्व ।
३. जने ।

स्वप्नलब्धे=स्वप्न में मिलने पर, **गाढोपगूढम्**=गाढ आलिङ्गन, **कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि**=कण्ठ से शिथिल हुए लता-जैसी भुजाओं के बन्धन वाला ।

**अनुवाद—हे मेघ ! उस समय (तुम्हारे उसके पास पहुँचने के समय) यदि वह (प्रिया) निद्रा का सुख प्राप्त कर रही हो तो उसके पास बैठकर गर्जन से विमुख होकर प्रहर भर तक प्रतीक्षा करना । (ताकि) इस (प्रिया) का मुझ प्रिय के किसी प्रकार स्वप्न में मिलने पर (किया गया) गाढ़ आलिङ्गन शीघ्र ही कण्ठ से शिथिल हुए लता-जैसी भुजाओं के बन्धन वाला न हो जाये ।।३७।।**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! त्वदुपसर्पणसमये यदि सा मत्प्रिया प्राप्तनिद्रासुखा भवेत् तर्हि निद्राणां मत्प्रियां समीपे स्थित्वा निःशब्द सन् प्रहरमात्रं प्रतीक्षस्व, येन केनापि प्रकारेण प्रेयसि मयि स्वप्नोपलब्धे सति अस्याः प्रियायाः गाढालिङ्गनं साऽन्तरायं न स्यात् ।

**सञ्जीवनी**—तस्मिन्निति । हे जलद, तस्मिन्काले त्वदुपसर्पणकाले सा मत्प्रिया लब्धं निद्रासुखं यया तादृशी स्याद्यदि स्याच्चेत् । एनां निद्राणामन्वास्य । पश्चादासित्वेत्यर्थः । (उपसर्गवशात्सकर्मकत्वम् ।) स्तनितविमुखो गर्जितपराङ्मुखो निःशब्दः सन् । अन्यथा निद्राभङ्गः स्यादिति भावः । याममात्रं प्रहरमात्रम् । 'द्वौ यामप्रहरौ समौ' इत्यमरः । सहस्व प्रतीक्षस्व । (प्रार्थनायां लोट् ।) शक्तयोरेकवारसुरतस्य यामावधिकत्वात्स्वप्नेऽपि तथा भवितव्य मित्यभिप्रायः । (तथा च रतिसर्वस्वे—'एकवारावधिर्यामोरतस्य परमो मतः । चण्डशक्तिमतोर्यूनोरद्भुतक्रमवर्तिनोः ।' इति) यामसहनस्य प्रयोजनमाह—मा भूदिति । अस्याः प्रियायाः प्रणयिनि प्रेयसि मयि कथंचित्कृच्छ्रेण स्वप्नलब्धे सति । गाढोपगूढं गाढालिङ्गनम् (नपुंसके भावे क्त) । सद्यस्तत्क्षणं कण्ठाच्च्युतः स्रस्तो भुजलतयोर्ग्रन्थिर्बन्धो यस्य तन्मा भून्मास्तु । कथंचिल्लब्धस्यालिङ्गनस्य सद्यो विघातो मा भूदित्यर्थः (न चात्र निद्रोक्तिः 'तामुन्निद्राम्' इति पूर्वोक्तेन निद्राच्छेदेन विरुध्यते, पुनः सप्तम्याद्यवस्थासु पाक्षिकनिद्रासंभवात् । तथा च रसरत्नाकरे—'आसक्ती रोदनं निद्रा निर्लज्जानर्थवाग्भ्रमः । सप्तमादिषु जायन्ते दशाभेदेषु वासुके।' इति) ।।३७।।

**टिप्पणी—याममात्रम्**—एक याम (प्रहर) तीन घण्टे के बराबर होता है । यक्ष ने यहाँ मेघ को एक याम तक प्रतीक्षा करने को कहा है; क्योंकि लक्षणों से यक्षिणी ''पद्मिनी'' मानी गयी है और पद्मिनी के सोने का समय एक याम भर होता है । जैसा कि कहा गया है—

*पद्मिनी यामनिद्रा च द्विप्रहरा च चित्रिणी ।*

*हस्तिनी यामत्रितया घोरनिद्रा च शङ्खिनी ।।*

किन्तु **आचार्य मल्लिनाथ** इसका दूसरा ही कारण देते हैं । वे लिखते हैं कि—''*शक्तयोरेकवारं सुरतस्य यामावधिकत्वात् स्वप्नेऽपि तथा भवितव्यम्— इत्यभिप्रायः*'' संभोग की परमावधि एक याम मानी गयी है । यक्षिणी भी पूर्ण यौवना है । उसकी भी स्वप्न में रतिक्रीड़ा एक याम तक चलेगी तब तक प्रतीक्षा करना । **मल्लिनाथ** ने स्वयं *रतिसर्वस्व* से यह श्लोक उद्धृत किया है—

*एकवारावधिर्यामो रतस्य परमो मतः ।*

*चण्डशक्तिमतोर्यूनोरद्भुतक्रमवर्तिनोः ।।*

**व्याकरण—लब्धनिद्रासुखा**—निद्रायाः सुखम् (ष० त०), लब्धं निद्रासुखं यया सा (बहु०), **लब्ध**—√लभ्+क्त । **अन्वास्य**—अनु+√आस्+ल्यप् । **स्यात्**—√अस्, लिङ् प्र० एकव० । **स्तनितविमुखः**—स्तनितात् विमुखः (ष० त०) । **एनाम्**—एतद् शब्द का द्वि० एकव०, (स्त्रीलिङ्ग) ''द्वितायाटोस्स्वेनः'' इस सूत्र से अन्वादेश में 'एन' आदेश हुआ है । **याममात्रम्**—यामः एव याममात्रम् (तद्धित) । **सहस्व**—सह् (आत्म०), लोट्, म० पु० एकव० । **मा भूत्**—√भू, लुङ्

प्र० पु० एकव० । 'मा' के योग में सभी लकारों में लुङ् लकार का प्रयोग होता है । **प्रणयिनि**—प्रणय+इनि, स० एकव० । **स्वप्नलब्धे**—स्वप्ने लब्धः (स० त०) तस्मिन् । **सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि**—कण्ठात् च्युतः (प० त०) सद्यः कण्ठच्युतः (केवल स०) भुजौ लते इव (उपमित त०) तयोः ग्रन्थिः (ष० त०) सद्यः कण्ठच्युतः भुजलताग्रन्थिः यस्य तत् (बहु०) । **गाढोपगूढम्**—गाढं च तत् उपगूढम् (कर्मधा०), **उपगूढ**—उप+√गुह्+क्त ।

प्रस्तुत श्लोक में **काव्यलिङ्ग अलङ्कार है । भुजलता में लुप्तोपमा** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि प्रहर भर प्रतीक्षा करने के बाद तुम मेरी उस प्रिया को धीरे से जगाकर वार्तालाप करना—

**तामुत्थाप्य[1] स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन**
**प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम् ।**
**विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे**
**वक्तुं धीरः[2] स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः ॥३८॥**

**अन्वयः**—विद्युद्गर्भः धीरः (च सन् त्वम्) स्वजलकणिकाशीतलेन अनिलेन तां मानिनीम् उत्थाप्य मालतीनाम् अभिनवैः जालकैः समं प्रत्याश्वस्तां त्वत्सनाथे गवाक्षे स्तिमितनयनां स्तनितवचनैः वक्तुं प्रक्रमेथाः ॥३८॥

**शब्दार्थ—विद्युद्गर्भः**=मध्य में बिजली वाले, **स्वजलकणिकाशीतलेन**=अपने जल की बूँदों से शीतल, **मानिनीम्**=मनस्विनी को, **उत्थाप्य**=उठाकर, **जालकैः**=कलियों के साथ, **प्रत्याश्वस्ताम्**=आश्वस्त हुई, **त्वत्सनाथे**=तुमसे युक्त, **गवाक्षे**=झरोखे पर, **स्तिमितनयनाम्**=निश्चल दृष्टि लगायी हुई, **स्तनितवचनैः**=गर्जन रूपी वचनों पर, **प्रक्रमेथाः**= प्रारम्भ करना ।

**अनुवाद—मध्य में बिजली वाले (और) धीर हुए (तुम) अपने जल की बूँदो से शीतल वायु द्वारा उस मनस्विनी को उठाकर चमेली की नयी कलियों के साथ आश्वस्त हुई तथा तुमसे युक्त झरोखे पर निश्चल दृष्टि लगायी हुई के साथ गर्जन रूपी वचनों से बोलना प्रारम्भ करना ॥३८॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! तडिद्गर्भः दृढः च सन् त्वम् निजसलिलबिन्दुशिशिरेण वायुना तां मत्प्रियां मनस्विनीं प्रबोध्य जातिकुसुमाणां नूतनैः कुड्मलैः सह सुस्थिताम् त्वत्सहिते वातायने निश्चललोचनां गर्जितवचनैर्भाषितुमुपक्रमस्व ।

**सञ्जीवनी**—तामिति । तां प्रियां स्वस्य जलकणिकाभिर्जलबिन्दुभिः शीतलेनानिलेनोत्थाप्य प्रबोध्य । (एतेन तस्याः प्रभुत्वाद्व्यजनानिलसमाधिर्व्यज्यते । यथाह भोजराजः— 'मृदुभिर्मर्दनैः पादे शीतलैर्व्यजनैः तनौ । श्रुतौ च मधुरैर्गीतैर्निद्रातो बोधयेत्प्रभुम्' इति ।) अभिनवैर्नूतनैर्मालतीनां जालकैः समं जातीमुकुलैः सहः । 'सुमना मालती जातिः' इति साकं सत्रा समं 'सह' इति 'क्षारको जालकं क्लीवे कलिका कोरकः पुमान्' इति चामरः । प्रत्याश्वस्तां सुस्थिताम् । अन्यच्च पुनरुच्छ्वसिताम् । (श्वसेः कर्तरि क्त । 'ओदितश्च' इति चकारादिट्प्रतिषेधः ।) एतेनास्याः कुसुमसौकुमार्यं गम्यते । त्वत्सनाथे त्वत्सहिते । 'सनाथं प्रभुमित्याहुः सहिते चित्ततापिनि' इति शब्दार्णवः । गवाक्षे स्तिमितनयनां कोऽसाविति विस्मयाभिश्चलनेत्रां मानिनीं मनस्विनीम् । अनौचि-

१. प्रोत्थाप्यैनाम् ।
२. धीरस्तनित० ।

त्यासहिष्णुमित्यर्थः । विद्युद्गर्भोऽन्तःस्थो यस्य स विधुद्गर्भः अन्तर्लीनविद्युत्क इत्यर्थः । 'गर्भोऽपवारकेऽन्तःस्थे कुक्षिस्थे चार्भके मतः' इति शब्दार्णवः । दृष्टिप्रतिघातेन वक्तुर्मुखावलोकनप्रतिबन्धकत्वान्न विद्युता द्योतितव्यमिति भावः । धीरो दृढः सन् । अन्यथा स्खलनवादित्वेनानाश्वासनप्रसङ्गादिति भावः । स्तनितवचनैः स्तननितान्येव वचनानि तैर्वक्तुं प्रक्रमेथा उपक्रमस्व । (विध्यर्थे लिङ् । 'प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् इत्यात्मनेपदम्) ॥३८॥

**टिप्पणी—स्वजलकणिकाशीतलेन**—इससे स्पष्ट होता है कि यक्ष-पत्नी कोई सामान्य स्त्री नहीं थी, वह स्वामिनी थी; क्योंकि स्वामी या स्वामिनियों को पैर दबाकर, पङ्खा झलकर, गाकर जगाना चाहिये । जैसा कि भोज ने कहा है—

*मृदुभिर्मर्दनैः पादे शीतलैर्व्यजनैः तनौ ।*
*श्रुतौ च मधुरैर्गीतैर्निद्रातो बोधयेत्प्रभुम् ॥*

इसीलिये यक्ष मेघ से निवेदन करता है कि वह उसकी प्रिया को शीतल जल कणों से, शीतल वायु से जगाये ।

**स्तिमितनयनाम्**—मेघ को खिड़की पर बैठा देखकर विस्मय से यक्ष-पत्नी खिड़की पर आँखें गड़ा देगी अथवा अचानक नींद खुलने पर आँखे निश्चल होकर एकटक होकर देखने लगेंगी ।

**विद्युद्गर्भः**—सारोद्धारिणी तथा कुछ अन्य टीकाकारों के मत में विद्युद्गर्भः का अर्थ है—स्त्रीसहायः । इससे यह भाव स्पष्ट होता है कि मेघ वहाँ अपनी बिजली रूपी पत्नी को साथ लेकर जाये; क्योंकि मेघ के लिये परस्त्री के साथ अकेले बात करना उचित नहीं है (*परनारीसंभाषणमेकाकिनो नोचितम्* ) । आचार्य मल्लिनाथ के अनुसार मेघ को अपने अन्दर बिजली को छिपाकर रखना चाहिये कि कहीं यक्ष-पत्नी की आँखें चकाचौंध न हो जायें । आँखें चुँधिया जाने पर वह मेघ के मुख को न देख सकेगी तथा बात करना भी मुश्किल होगा और फिर बहुत से भाव वक्ता के मुख से ही व्यक्त होते हैं ।

**व्यारकण—उत्थाप्य**—उत्+√स्था+णिच्+ ल्यप् । **स्वजलकणिकाशीतलेन**—स्वं च तत् जलम् (कर्मधा०), तस्य कणिकाः (ष० त०) ताभिः शीतलेन (तृ० त०) । **प्रत्याश्वस्ताम्**— प्रति+आ+√श्वस्+क्त+टाप्, द्वि० एकव० । **स्तिमितनयनाम्**—स्तिमिते नयने यस्याः ताम् (बहु०) । **त्वत्सनाथे**—त्वया सनाथे (तृ० त०) । **वक्तुम्**—√ब्रू (वच्)+तुमुन् । **स्तनितवचनैः**— स्तनितानि एव वचनानि तैः(कर्मधा०) । **मानिनीम्**—मानोऽस्या अस्तीति मानिनी ताम् (मान+इन्+ङीप्) । **प्रक्रमेथाः**—प्र+√क्रम्+विधिलिङ् म० पु० एकव० आत्मनेपद । क्रम धातु का सामान्यतया परस्मैपद में प्रयोग होता है, परन्तु जब 'प्रारम्भ करना' अर्थ में प्र और उप उपसर्ग जुड़े हों तो इसका आत्मनेपद में प्रयोग होता है ।

प्रस्तुत श्लोक में "जालकैः समम्" में **सहोक्ति** तथा "स्तनित" में वचन का आरोप प्रस्तुत कथन में उपयोगी होने से **परिणाम** अलङ्कार हुआ । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को समझाता है कि वहाँ पहुँचने पर वह सबसे पहले यक्षिणी को अपना परिचय दे—

**भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे बिद्धि मामम्बुवाहं**
**तत्संदेशैर्हृदयनिहितैरागतं[1] त्वत्समीपम् ।**

१. तत्संदेशान्मनसि निहिताद्, त्वत्संदेशान्मनसि निहिताद्, तत्संदेशाद्धृदयनिहिताद् ।

**यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां**
**[1]मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥३९॥**

**अन्वयः**—अविधवे, मां भर्तुः प्रियं मित्रं हृदयनिहितैः, तत्संदेशैः त्वत्समीपम् आगतम् अम्बुवाहं विद्धि, यः मन्द्रस्निग्धैः ध्वनिभिः अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि पथि श्राम्यतां प्रोषितानां वृन्दानि त्वरयति ॥३९॥

**शब्दार्थ**—**अविधवे**=सौभाग्यवति, **हृदयनिहितैः**=हृदय में रखे हुए, **तत्संदेशैः**=उसके संदेशों के साथ, **अम्बुवाहम्**=मेघ, **विद्धि**=जानो, **मन्द्रस्निग्धैः**=गम्भीर और मधुर, **अबलामोक्षोत्सुकानि**=अबलाओं की चोटियों को खोलने को उत्सुक, **श्राम्यताम्**=थके हुए, **प्रोषितानाम्**=प्रवासियों के, **त्वरयति**=प्रेरित करता है ।

**अनुवाद— हे सौभाग्यवति ! मुझे (अपने) पति का प्रिय मित्र (और) हृदय में रखे हुए उसके संदेशों के साथ तेरे समीप आया हुआ मेघ जानो, जो (मेघ) (अपनी) गम्भीर और मधुर ध्वनियों से अबलाओं की चोटियों को खोलने को उत्सुक (तथा) मार्ग में थके हुए प्रवासियों के समूहों को (घर लौटने के लिये) प्रेरित करता है ॥३९॥**

**संस्कृत-टीका**—हे सधवे ! जीवद्भर्तृके इत्यर्थः माम् आगन्तुकं तव पत्युः स्नेहास्पदं सुहृदं मनसि स्थापितैः भर्तृसंदेशैः भवन्निकटम् आयातं मेघं जानीहि । यः मेघः गम्भीरमधुरैः गर्जनैः करणैः विरहिणीबद्धवेणिमोचनोत्कण्ठितानि मार्गे श्रान्तिमापन्नानां प्रवासिनां पान्थानाम् इत्यर्थः समूहान् गृहं प्रति चलितुं प्रेरयति । (अतो मद्वचनं श्रोतव्यमिति भावः ।)

**सञ्जीवनी**—संप्रति दूतस्य श्रोतृजनाभिमुखीकरणचातुरीमुपदिशति—भर्तुरिति । विधवा गतभर्तृका न भवतीत्यविधवा सभर्तृका । हे अविधवे, अनेन भर्तृजीवनसूचनादनिष्टागमशङ्कां वारयति । मां भर्तुस्तव पत्युः प्रियं मित्रं प्रियसुहृदम् । तत्रापि हृदयनिहितैर्मनसि स्थापितैस्तत्संदेशैस्तस्य भर्तुः संदेशैस्त्वत्समीपमागतम् । भर्तृसंदेशकथनार्थमागतमित्यर्थः । अम्बुवाहं मेघं विद्धि जानीहि । न केवलमहं वार्ताहरः किन्तु घटकोऽपीत्याशयेनाह—य इति । योऽम्बुवाहो मेघो मन्द्रस्निग्धैः स्निग्धगम्भीरैर्ध्वनिभिर्गर्जितैः करणैः मेघो अबलानां स्त्रीणां वेणयस्तासां मोक्षे मोचन उत्सुकानि पथि श्राम्यतां श्रान्तिमापन्नानां प्रोषितानां प्रवासिनाम् । पान्थानामित्यर्थः वृन्दानि सङ्घान् त्वरयति । पान्थोपकारिणो मे किमु वक्तव्यं सुहृदुपकारित्वमिति भावः ॥३९॥

**टिप्पणी—अविधवे**—यह पद कवि ने साभिप्राय प्रयुक्त किया है; क्योंकि मेघ यक्षिणी को अविधवे कहकर संबोधित करेगा, जिससे यक्षिणी समझ जायेगी कि उसका पति जीवित है और वह मेघ की बात उत्साहित होकर सुनेगी ।

**यो वृन्दानि.........प्रोषितानाम्**—संस्कृत काव्यों में वर्षा का उद्दीपक के रूप में वर्णन किया गया है; इसलिए प्रायः यह वर्णन किया जाता है कि मेघ परदेश गये हुए पतियों को घर लौटने के लिए प्रेरित करता है । प्राचीन काल में क्योंकि आवागमन के साधन नहीं थे और पैदल ही आते जाते थे तो पुरुष दीपावली के बाद अपनी जीविका के लिए चले जाते थे और फिर वर्षा ऋतु से पहले लौट आते थे, पैदल चलते-चलते जब वे थक जाते थे तो विश्राम करने लगते थे, किन्तु मेघों की घटाएं देखकर वे शीघ्रातिशीघ्र घर पहुँचने के लिए उत्कण्ठित हो उठते थे ।

**अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि**—प्रोषितभर्तृका स्त्री प्रिय के प्रवास के समय केशों को एक चोटी में गूँथ लेती थी जिसे प्रवास से लौटकर पति ही अपने हाथ से खोलता था (देखिये—**उत्तरमेघ श्लोक ३२**) ।

१. सान्द्रस्निग्धै०।

**व्याकरण— अविधवे**—विगत: धव: (पति) यस्या: सा विधवा (बहु०) न विधवा अविधवा (नञ् त०), सम्बोधन एकव० । **विद्धि**—√विद् लोट् म० पु० एकव० । **अम्बुवाहम्**—अम्बु वहति इति (उपपद त०), तम् , अम्बु+√वह्+अण्, द्वितीया एकव० । **तत्संदेशै:**—तस्य सन्देशै: (ष० त०), **संदेश**—सम्+√दिश्+घञ् । **हृदयनिहितै:**—हृदये निहितै: (स० त०), **निहित**—नि+√धा+क्त । **त्वरयति**—त्वरां करोति इति । त्वरा से नाम धातु त्वरा+णिच्, लट् प्र० पु० एकव०, अथवा √त्वर्+णिच् लट् प्र० पु० एकव० । **श्राम्यताम्**—√श्रम्+शतृ, ष० बहु व०। **प्रोषितानाम्**—प्र+√वस्+क्त, ष० बहुव० । **मन्द्रस्निग्धै:**—मन्द्रा: स्निग्धाश्च इति (कर्मधा०) तै: । **अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि**—अबलानां वेणय: (ष० त०) तासां मोक्ष: (ष० त०) । तस्मिन् उत्सुकानि (ष० त०)।

प्रस्तुत श्लोक में अविधवे यह पद साभिप्राय है, इसलिए **परिकर** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**— यक्ष मेघ से कहता है कि तुम्हारा परिचय हो जाने पर जिस प्रकार सीता जी ने हनुमान् का सत्कार किया था, उसी प्रकार मेरी प्रिया भी तुम्हारा सत्कार करेगी—

**इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा**
**त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाव्य[1] चैवम्[2] ।**
**श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीनां**
**कान्तोदन्त:[3] सुहृदुपनत: सङ्गमात्किञ्चिदून: ।।४०।।**

**अन्वय:**—इति एवम् आख्याते उन्मुखी उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया सा, पवनतनयं मैथिलीव, त्वां वीक्ष्य संभाव्य च अस्मात् परम् अवहिता (सती) श्रोष्यति, सौम्य, सीमन्तिनीनां सुहृदुपनत: कान्तोदन्त: सङ्गमात् किञ्चिदून: (भवति) ।।४०।।

**शब्दार्थ**—**इति एवम् आख्याते**=इस प्रकार कहा जाने पर, **उन्मुखी**=ऊपर की ओर मुख किए हुए, **उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया**=उत्कण्ठा से विकसित चित्त होकर, **संभाव्य**=आदर करके, **अवहिता**=सावधान, **सीमन्तिनीनाम्**=स्त्रियों को, **सुहृदुपनत:**= मित्र द्वारा लाया गया, **कान्तोदन्त:**=पति का सन्देश, **सङ्गमात्**=मिलन से, **किञ्चिदून:**=कुछ ही कम ।

**अनुवाद**—**इस प्रकार कहा जाने पर ऊपर की ओर मुख किये हुए (और) उत्कण्ठा से विकसित चित्त होकर, वह (मेरी प्रिया) पवन पुत्र (हनुमान) को सीता के समान, तुम्हें देखकर और (तुम्हारा) आदर करके आगे सावधान होकर सुनेगी (क्योंकि) हे सौम्य ! स्त्रियों को (पति के) मित्र द्वारा लाया गया पति का सन्देश मिलन से कुछ ही कम होता है ।।४०।।**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! इत्थमभिहिते सति उन्मितवदना औत्सुक्यविकसितचित्ता सती सा मत्प्रिया वायुपुत्रं हनुमन्तमिति भाव: सीता इव त्वां दृष्ट्वा सत्कृत्य चाऽप्रमत्ता सती मत्सन्देशमाकर्णयिष्यत्येव, यतो हे सौम्य ! स्त्रीणां मित्रानीत: पतिसंदेश: पतिमिलनात् ईषदून:, तद्वदेव आनन्ददायक: इत्यर्थ: भवति ।

**सञ्जीवनी**—भर्तृ सख्यादिज्ञापनस्य फलमाह इतीति । इत्येवमाख्याते सति पवनतनयं हनूमन्तं

---

१. संभाष्य ।
२. चैव ।
३. कान्तोपान्तात्सुहृदुपगम:, कान्तोपान्तात्सुहृदुपगत: ।

मैथिलीव सीतेव सा मत्प्रिया । उन्मुख्युत्कण्ठ्यौत्सुक्येनोच्छ्वसितहृदया विकसितचित्ता सती त्वां वीक्ष्य सम्भाव्य सत्कृत्य च । अस्मादृर्तृमैत्रीज्ञापनात्परं सर्वं श्रोतव्यम् । अवहिताऽप्रमत्ता सती श्रोष्यत्येव । अत्र सीताहनुमदुपादानादस्याः पातिव्रत्यं मेघस्य दूतगुणसंम्पत्तिश्च व्यज्यते । (तद्गुणास्तु रत्नाकरे— ब्रह्मचारी बली धीरो मायावी मानवर्जितः धीमानुदारो निःशङ्को वक्ता दूतः स्त्रियां भवेत् इति । ननु वार्तामात्रश्रवणादस्याः को लाभ इत्याशङ्क्यार्थान्तरमुपन्यस्यति—हे सौम्य साधो, सीमन्तिनीनां वधूनाम् । 'नारी सीमन्तिनी वधूः' इत्यमरः । सुहृदुपनतः सुहृन्मुखेनोपनतः प्राप्तः सन् । सुहृत्पदं विप्रलम्भशङ्कानिवारणार्थम् । कान्तस्योदन्तो वार्ता कान्तोदन्तः । 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्' इत्यमरः । सङ्गमात्कान्तसम्पर्कात्किञ्चिदूनं ईषदूनः, तद्वदानन्दकारीत्यर्थः ।।४०।।

**टिप्पणी—पवनतनयम्**—हनुमान् के पिता का नाम पवन तथा माता का नाम अञ्जना था; इसलिए हनुमान् को पवनपुत्र, वायुपुत्र, मारुति, आञ्जनेय भी कहते हैं । उन्होंने सौ योजन समुद्र को लाँघकर सीता का पता लगाकर उन्हें राम की अँगूठी दी । जैसा व्यवहार हनुमान् को देखकर सीता जी ने किया वैसा ही तुम्हें देखकर मेरी पत्नी करेगी । सीता और हनुमान् को उपमान के रूप में प्रस्तुत करने से यक्ष-पत्नी का पातिव्रत्य और मेघ के दूत के गुण अभिव्यक्त होते हैं । रत्नाकर में श्रेष्ठ दूत के गुण निम्न प्रकार बताये गये हैं—

*ब्रह्मचारी बली धीरो मायावी मानवर्जितः ।*
*धीमानुदारो निःशङ्को वक्ता दूतः स्त्रियां भवेत् ॥*

हनुमान् द्वारा सीता को खोजने का यह प्रसङ्ग वा० रा० के सुन्दर काण्ड में ३१/१६ तथा ३६/७—१२ में उपलब्ध होता है ।

**उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया**—यक्ष मेघ से अपनी प्रिया की उत्कण्ठा का कारण बताता है कि कई महीनों से वह वियोग की ज्वाला में जल रही होगी । किन्तु जैसे ही तुम पहुँचोगे और अपना परिचय दोगे तथा मेरे जीवित रहने की बात सुनेगी तो वह सन्देश सुनने के लिए उत्कण्ठित हो उठेगी ।

**व्याकरण—आख्याते**—आ+√ख्या+क्त, स० एकव० । **पवनतनयम्**—पवनस्य तनयः (ष० त०) तम् । **मैथिली**—मैथिल+अण्+ङीप् । **उन्मुखी**—उद्गतं मुखं यस्याः सा (बहु०) । **उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया**—उत्कण्ठया उच्छ्वसितं (तृ० त०), तादृशं हृदयं यस्या सा (बहु०) । **वीक्ष्य**—वि+√ईक्ष्+ल्यप् । **संभाव्य**—सम्+√भू+णिच्+ल्यप् । **श्रोष्यति**—√श्रु लृट् प्र० पु० एकव० । **अवहिता**—अव+√धा+क्त+टाप् । **सीमन्तिनीनाम्**—सीमन्त+इनि+ङीप् । **कान्तोदन्तः**—कान्तस्य उदन्तः (ष० त०) । **सुहृदुपनतः**—सुहृदा उपनतः (तृ० त०), उ+√नम्+क्त—उपनत । **किञ्चिदूनः**—किञ्चित् ऊनः (केवल समास) ।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा व अर्थान्तरन्यास अलङ्कार हैं । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को समझाता है कि विपत्ति में पड़ने वाले प्राणियों से मिलने पर सबसे पहले क्या पूछना चाहिये—

**तामायुष्मन्मम[1] च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं**
**ब्रूया[2] एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः ।**

---

१. तामायुष्मान्मम् ।
२. ब्रूयात् ।

**अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः**
**पूर्वाभाष्यं[1] सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥४१॥**

**अन्वयः**—आयुष्मन् मम वचनात् च आत्मनः उपकर्तुं च ताम् एवं ब्रूयाः—'अबले, तव सहचरः रामगिर्याश्रमस्थः अव्यापन्नः, वियुक्तः त्वां कुशलं पृच्छति।' सुलभविपदां प्राणिनाम् एतद् एव पूर्वाभाष्यम् ॥४१॥

**शब्दार्थ—उपकर्तुम्**=उपकार करने के लिए, **ब्रूयाः**=कहना, **रामगिर्याश्रमस्थः**=रामगिरि आश्रम में रहता हुआ, **अव्यापन्नः**=जीवित, **सुलभविपदाम्**=सहज ही विपत्ति में पड़ने वाले, **पूर्वाभाष्यम्**=पहले पूछना चाहिये।

**अनुवाद**—हे आयुष्मन्! मेरी ओर से और अपने को उपकृत करने के लिए उस (मेरी प्रिया) से इस प्रकार कहना—'हे अबले! तुम्हारा साथी (पति) रामगिरि आश्रम में रहता हुआ जीवित है, बिछुड़ा हुआ (वह) तुम्हारा कुशल पूछता है।' सहज ही विपत्ति में पड़ने वाले प्राणियों से यह ही पहले पूछना चाहिये ॥४१॥

**संस्कृत-टीका**—हे! चिरंजीव! मम यक्षस्य वचनात् स्वस्य उपकर्तुम् च तां मत्प्रियाम् इत्थम् कथयेः—'हे अबले! तव भर्ता रामगिर्याश्रमेषु स्थितः सन् जीवितः वर्तते। त्वया विरहितः सन् त्वां कुशलं ज्ञातुम् इच्छति। अयत्नसिद्धविपत्तीनां जीवानां प्रथममेवमेव कुशलं प्रष्टव्यम्।

**सञ्जीवनी**—सम्प्रति सन्दिशति—तामिति। आयुष्मन् (प्रशंसायां मतुप्) परोपकारश्लाघ्यजीवितेत्यर्थः। मम वचनं प्रार्थनावचनं तस्माच्चात्मनः स्वस्योपकर्तुं च, परोपकारेणात्मानं कृतार्थयितुमित्यर्थः। (उपकारक्रियां प्रति कर्मत्वेऽपि तस्योपकरोतीत्यादिवत्सम्बन्धमात्रविवक्षायामात्मन इति षष्ठी न विरुध्यते। यथाह भारविः—'सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम्' इति। तथा श्रीहर्षश्च:—'साधूनामुपकर्तुं लक्ष्मीं द्रष्टुं विहायसा गन्तुम्। न कुतूहलि कस्य मनश्चरितं च महात्मनां श्रोतुम् इति। तथा च क्विचित्क्वचिद् द्वितीयादर्शनात्सर्वस्य तथा' इति नाथवचनमनाथवचनमेव।) तां प्रियामेवं ब्रूयाः। त्वमिति शेषः। किमित्याह—हे अबले तव सहचरो भर्ता रामगिरेश्चित्रकूटस्याश्रमेषु तिष्ठतीति रामगिर्याश्रमस्थः सन्नव्यापन्नः। न मृत इत्यर्थः अमरणे हेतुमाह—वियुक्तो वियोगं प्राप्तो दुःखी एवंविधः संस्त्वां कुशलं पृच्छति। (दुह्यादित्वात्पृच्छतो द्विकर्मकत्वम्।) तथाहि, सुलभविपदामयत्नसिद्धिविपत्तीनां प्राणिनामेतदेव कुशलमेव पूर्वाभाष्यमेतदेव प्रथममवश्यं प्रष्टव्यम् ('कृत्याश्च' इत्यावश्यकार्थे ण्यप्रत्ययः) ॥४१॥

**टिप्पणी—आयुष्मन्**—यक्ष ने पूर्वमेघ/९ में मेघ को छोटा भाई माना है; इसलिये मेघ को आयुष्मन् का संबोधन उचित ही है। छोटों के लिए आयुष्मन् का प्रयोग दीर्घजीवी के अर्थ में होता है और बड़ों के लिए 'प्रशस्त जीवन वाले' अर्थ में होता है। मनुस्मृति ४/१२५ में भी आया है—'आयुष्मन् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने'। आचार्य मल्लिनाथ ने आयुष्मन् में मतुप् प्रत्यय प्रशस्य अर्थ में माना है।

**उपकर्तुम्**—संस्कृत-साहित्य में परोपकार का बड़ा महत्त्व वर्णित किया गया है। इसलिये यक्ष मेघ से कहता है कि यदि तुम मेरा सन्देश मेरी प्रिया तक पहुँचा दोगे तो मेरा तो उपकार करोगे ही, परोपकार करके स्वयं अपना भी उपकार करोगे।

**व्याकरण—आयुष्मन्**—आयुः अस्य अस्ति इति, आयुष्+मतुप्, सम्बोधन एकव०। **वचनात्**—वच्+ल्युट्, प० एकव०। **उपकर्तुम्**—उप+√कृ+तुमुन्। **ब्रूयाः**—√ब्रू+विधिलिङ्, म०

---

१. पूर्वाशास्यम्।

पु० एकव० । **सहचरः**—सह चरति इति (उपपद त०), सह+√चर्+ट । **रामगिर्याश्रमस्थ:**—रामगिरेः आश्रमाः (ष० त०) तेषु तिष्ठति इति (उपपाद त०), रामगिर्याश्रम+√स्था+क । **अव्यापन्नः**—न व्यापन्नः (नञ् त०), नञ्+वि+आ+√पद्+क्त । **अबले**—अविद्यमानं बलं यस्याः सा अबला (बहु०) सम्बोधन एकव०। **वियुक्तः**—वि+√युज्+क्त । **पूर्वाभाष्यम्**—पूर्वम् आभाष्यम् (केवल स०), **आभाष्य**—आ+√भाष्+ण्यत् । **सुलभविपदाम्**—सुलभाः विपदः येषाम् (बहु०) तेषाम्, **सुलभ**—सु+√लभ्+खल् ।

प्रस्तुत श्लोक में **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को समझाता है कि वह कुशल क्षेम बताकर मेरी विरहावस्था को भी प्रकट कर दे—

**अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं**
**सास्त्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन[1] ।**
**उष्णोच्छ्वासं[2] समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती**
**सङ्कल्पैस्तैर्विशति[3] विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः ॥४२॥**

**अन्वयः**—वैरिणा विधिना रुद्धमार्गः दूरवर्ती (तव सहचरः) तनुना गाढतप्तेन, सास्रेण, उत्कण्ठितेन समधिकतरोच्छ्वासिना अङ्गेन (त्वदीयम्) प्रतनु, तप्तम् अश्रुद्रुतम् अविरतोत्कण्ठम् उष्णोच्छ्वासं अंङ्ग तैः सङ्कल्पैः विशति ॥४२॥

**शब्दार्थ**—**विधिना**=भाग्य द्वारा, **तनुना**=दुर्बल, **गाढतप्तेन**=अत्यन्त तपे हुए, **समधिकतरोच्छ्वासिना**=लम्बे-लम्बे उसाँसों को लेने वाले, **अश्रुद्रुतम्**=आँसू से बहा हुआ, **अविरतोत्कण्ठम्**=निरन्तर उत्कण्ठित, **उष्णोच्छ्वासम्**=गर्म उसाँसों वाले, **सङ्कल्पैः**=मनोरथों के साथ, **विशति**= मिलता है ।

**अनुवाद**—**विपरीत भाग्य द्वारा रोके गये मार्ग वाला (और तुमसे) दूर रहने वाला, (तेरा पति) दुर्बल, अत्यन्त तपे हुए, आँसुओं से युक्त, उत्कण्ठित, लम्बे-लम्बे उसाँसों को लेने वाले शरीर से (तुम्हारे) अत्यधिक कृश, तपे हुए, बहुत आँसुओं से भरे हुए, निरन्तर उत्कण्ठित (और) गर्म उसाँसों वाले शरीर से उन-उन मनोरथों के साथ मिलता है ॥४२॥**

**संस्कृत-टीका**—(हे सुन्दरि !) प्रतिकूलदैवेन अवरुद्धपथो, दूरस्थस्तवसहचरः कृशेन अत्यन्तसंतप्तेन साश्रुणा विरहवेदनायुक्तेन दीर्घनिःश्वासिना स्वकीयशरीरेण कृशं दुःखसंतप्तम् अश्रुक्लिन्नम् अविच्छिन्नवेदनं तीव्रनिःश्वासं त्वदीयं शरीरं स्वसंवेद्यैः मनोरथैः प्रविशति एकीकरोति इत्यर्थः ।

**सञ्जीवनी**—अङ्गेनेति । किञ्च । दूरवर्ती दूरस्थ । न चागन्तुं शक्यत इत्याह वैरिणा विरोधिना विधिना दैवेन रुद्धमार्गः प्रतिबद्धवर्त्मा स ते सहचरः तनुना कृशेन गाढतप्तेनात्यन्तसंतप्तेन सास्रेण साश्रुणा । उत्कण्ठा वेदनाऽस्य जातोत्कण्ठितं तेनोत्कण्ठितेन । ('तदस्य सञ्जातम्—' इत्यादिना इतच्प्रत्ययः । उत्कण्ठतेर्वा कर्तरि क्तः ।) समधिकतरमतिप्रबलमुच्छ्वसितीति समधिकतरोच्छ्वासि

---

१. सास्रेणास्र० ।
२. दीर्घोच्छ्वासं, सोष्णोच्छ्वासं ।
३. संकल्पैस्ते विशति ।

तेन। दीर्घनि:श्वासिनेत्यर्थः । (ताच्छील्ये णिनिः ।) अङ्गेन स्वशरीरेण प्रतनु कृशं तप्तं वियोगदु:खेन सन्तप्तमश्रुद्रुतमश्रुक्लिन्नम् । 'अस्रु नेत्राम्बु रोदनं चास्रमश्रु च' इत्यमरः' । अविरतोत्कण्ठमविच्छिन्नवेदनमुष्णोच्छ्वासं तीव्रनि:श्वासम् । 'तिग्मं तीक्ष्ण खरं तीव्रं चण्डमुष्णं समं स्मृतम्' इति हलायुधः। अङ्गं त्वदीयं शरीरं तैः स्वसंवेद्यैः सङ्कल्पैर्मनोरथैर्विशति । एकीकरोतीत्यर्थः । अत्र समानुरागित्वद्योतनाय नायकेन नायिकायाः समानावस्थत्वमुक्तम् ॥४२॥

**टिप्पणी—अङ्गेनाङ्गम्**—इसके द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि यक्ष और यक्षिणी दोनों की ही शारीरिक और मानसिक स्थिति एक जैसी है । दोनों ही दुर्बल हो गये हैं, संतप्त है और आँसू बहाते हैं, मिलने के लिए व्याकुल हैं, आहें भरकर मन का दु:ख कुछ कम करते है । यक्ष तो वहाँ सामने ही स्थित है और वह अपनी प्रिया की भी वैसी ही कल्पना करता है ।

**तैः सङ्कल्पैः**—वे-वे मनोरथ जिनका यक्ष ने संभोगकाल में अनुभव कर रखा था और वे मनोरथ अब उसके हृदय में विरह के कारण जागृत हो रहे हैं ।

**व्याकरण—गाढतप्तेन**—गाढं यथा स्यात् तथा तप्तेन (केवल स०), **तप्त**—√तप्+क्त । **सास्रेण**—अस्रेण सहितं तेन (बहु०) । **अश्रुद्रुतम्**—अश्रुभिः द्रुतम् (तृ० त०), **द्रुत**—√द्रु+क्त । **अविरतोत्कण्ठम्**—न विरता (नञ् त०) अविरता उत्कण्ठा यस्य तत् (बहु०) । **उत्कण्ठितेन**—उत्+√कण्ठ+क्त, तृ० एकव० । **उष्णोच्छ्वासम्**—उष्णाः उच्छ्वासाः यस्य तत् (बहु०), **उच्छ्वासः**—उत्+√श्वस्+घञ् । **समधिकतरोच्छ्वासिना**—समिधिकतरं यथा स्यात् तथा उच्छ्वसिति इति (उपपद त०) तेन, समधिकतर+उत्+√श्वस्+णिनि, तृ० एकव० । **दूरवर्ती**—दूरे वर्तते इति (उपपद त०), दूर+√वृत्+णिनि, प्र० एकव० । **विशति**—√विश्, लट् प्र० पु० एकव० । **वैरिणा**—वैर+इनि, तृ० एकव० । **रुद्धमार्गः**—रुद्धः मार्गः यस्य सः (बहु०), **रुद्ध**—√रुध्+क्त ।



प्रस्तुत श्लोक में **सम** अलङ्कार है ।

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को समझाता है कि वह यक्षिणी से क्या कहे—

**शब्दाख्येयं यदपि किल ते[1] यः सखीनां पुरस्ता-**
**त्कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात्[2] ।**
**सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्य[3]-**
**स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह ॥४३॥**

**अन्वयः**—यः ते सखीनां पुरस्तात् शब्दाख्येयम् अपि यत्, (तत्) आननस्पर्शलोभात् कर्णे कथयितुं लोलः अभूत् किल, श्रवणविषयम् अतिक्रान्तः लोचनाभ्याम् अदृश्यः स त्वाम् उत्कण्ठाविरचितपदम् इदं मन्मुखेन त्वाम् आह ॥४३॥

**शब्दार्थ—पुरस्तात्**—सामने, **शब्दाख्येयम्**=शब्दों से कहने योग्य, **आननस्पर्शलोभात्**=मुख के स्पर्श के लोभ से, **लोलः**=लालायित, **श्रवणविषयम्**=कानों की पहुँच से, **अतिक्रान्तः**=बाहर, **उत्कण्ठाविरचितपदम्**=उत्सुकता से रचे गये शब्दों वाले ।

**अनुवाद—जो (मेरा प्रिय) तेरी सखियों के सामने शब्दों से कहने योग्य भी जो**

---

१. ते तत्, तद् यः ।
२. कथयितुमगादानन० ।
३. ०दृष्टः, ०गम्यः ।

**(होता था), उसे सचमुच (तेरे) मुख के स्पर्श के लोभ से कान में कहने के लिए लालायित रहता था, कानों की पहुँच से बाहर हुआ (तथा) नेत्रों से न दिख पड़ने वाला वह (तेरा प्रिय) उत्सुकता से रचे गये शब्दों वाले इस (सन्देश) को मेरे मुख से तुमसे कहता है ॥४३॥**

**संस्कृत-टीका**—हे प्रिये ! यः ते प्रियः प्राक् तव सखीनां समक्षं शब्दप्रतिपादनीयमपि वचनं त्वदधरमधुपानलोलुपत्वात् कर्णसमीपे कथयितुं लालसः आसीत् । स कर्णपथपारं गतः नेत्राभ्याम अनवलोकनीयः सन् वक्ष्यमाणं वाक्यकदम्बकं मन्मुखेनोपन्यस्यति ।

**सञ्जीवनी**—सम्प्रति स्वावस्थानिवेदनाय प्रस्तौति—शब्दाख्येयमिति । हे अबले, यस्ते प्रियः सखीनां पुरस्तादग्रे आननस्पर्शे त्वन्मुखसम्पर्के लोभाद् गार्ध्यात् । अधरपानलोभादित्यर्थः । शब्दाख्येयं शब्देन रवेणाख्येधमुच्चैर्वाच्यमपि यत्तत् । वचनमपीति शेषः । कर्णे कथयितुं लोलो लालसोऽभूत्किल। 'लोलुपो लोलुभो लोलो लालसो लम्पटोऽपि च' इति यादवः । श्रवणविषयं कर्णपथमतिक्रान्तः तथा लोचनाभ्यामदृश्यः । अतिदूरत्वाद्द्रष्टुं श्रोतुं च न शक्य इति भावः । स ते प्रियः । त्वामुत्कण्ठया विरचितानि पदानि सुप्तिङन्तशब्दा वाक्यानि वा यस्य तत्तथोक्तम् । 'पद शब्दे च वाक्ये च' इति विश्वः । इदं वक्ष्यमाणं 'श्यामास्वङ्गम्' इत्यादिकं मन्मुखेनाह मद्व्यवधानेन स एव ब्रूत इत्यर्थः ॥४३॥

**टिप्पणी**—**आननस्पर्शलोभात्**—इससे यह भाव झलकता है कि यक्ष को अपनी पत्नी से इतना अधिक प्रेम था कि उसके शरीर के स्पर्श के लिए कोई ना कोई बहाना ढूँढ़ता रहता था और जो बात सबके सामने कह सकता, उसे धीरे से उसके कान में कहता था, जिससे उसके अङ्गों को स्पर्श करने का अवसर मिल जाये ।

**मन्मुखेन**—क्योंकि यक्ष बहुत दूर है, उसकी विवशता है कि वह कानों और नेत्रों की पहुँच से दूर है इसलिए अपना सन्देश कहने के लिए मेघ को अपना मुख बनाना पड़ा । मेघ के माध्यम से अपना कुशल समाचार कहलवाया ।

**व्याकरण**—**शब्दाख्येयम्**—शब्देन आख्येयम् (तृ० त०), **आख्येयम्**—आ+√ख्या+यत् । **कथयितुम्**—√कथ्+तुमुन् । **अभूत्**—√भू, लुङ्, प्र० पु० एकव० । **आननस्पर्शलोभात्**—आननस्य स्पर्शः (ष० त०) तस्य लोभात् (ष० त०), हेतु के अर्थ में पञ्चमी वि० । **अतिक्रान्तः**—अति+√क्रम्+क्त । **श्रवणविषयम्**—श्रवणस्य विषयः (ष० त०) तम् । **अदृश्यः**—न दृश्यः (नञ् त०), नञ्+√दृश्+क्यप् । **उत्कण्ठाविरचितपदम्**—उत्कण्ठया विरचितानि पदानि यस्य तत् (बहु०) । **मन्मुखेन**—मम मुखेन (ष० त०) । **आह**—√ब्रू+लट्, प्र० पु० एकव० । ☐

**प्रसंग**—यक्ष मेघ को समझाता है कि वह निम्न संदेश उसकी प्रिया को दे—

**श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे[1] दृष्टिपातं[2]**
**वक्त्रच्छायां[3] शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान् ।**
**उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्[4]**
**हन्तैकस्मिन्[5] क्वचिदपि न ते चण्डि[6] सादृश्यमस्ति ॥४४॥**

---

१. ०प्रेक्षिते ।
२. दृष्टिपातान् ।
३. वक्त्रच्छायम्, गण्डच्छायम् ।
४. भ्रूपताकाः ।
५. हन्तैकस्थम् ।
६. भीरु ।

**अन्वयः**—श्यामासु अङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं, शशिनि वक्त्रच्छायां, शिखिनां बर्हभारेषु केशान्, प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान् उत्पश्यामि । हन्त चण्डि, क्वचिदपि एकस्मिन् ते सादृश्यं न अस्ति ॥४४॥

**शब्दार्थ**—**श्यामासु**=प्रियङ्गु लताओं में, **चकितहरिणीप्रेक्षणे**=भयभीत हुई हरिणियों की चितवन में, **दृष्टिपातम्**=चितवन को, **शिखिनाम्**=मयूरों के, **बर्हभारेषु**=पंखों के समूहों में, **प्रतनुषु**=हल्की-हल्की, **नदीवीचिषु**=नदियों की तरङ्गों में, **भ्रूविलासान्**=भ्रूभङ्गों की, **उत्पश्यामि**=कल्पना करता हूँ, **हन्त**=खेद है, **चण्डि**=कोप करने वाली, **क्वचिदपि**=किसी भी ।

**अनुवाद**—**प्रियङ्गु लताओं में (तेरे) शरीर की, भयभीत हुई हरिणियों की चितवन में (तेरे) मुख की कान्ति की, मयूरों के पङ्खों के समूहों में (तेरे) केशों की (और) हल्की-हल्की नदियों की तरङ्गों में (तेरे) भ्रूकुओं की कल्पना किया करता हूँ । खेद है कि हे कोप करने वाली ! किसी भी एक (वस्तु) में तेरी समानता नहीं है ॥४४॥**

**संस्कृत-टीका**—हे प्रिये ! प्रियङ्गुलतासु शरीरं भयभीतमृगीविलोकने दृष्टिपातं, चन्द्रमसि मुखकान्तिं मयूरपिच्छकलापेषु केशपाशान् एवं च स्वल्पासु नदीतरङ्गेषु ते भ्रूविलासांस्तर्कयामि, परं हन्त ! कस्मिन्नप्येकस्मिन्पदार्थे त्वदीयं साम्यं न वर्तते ।

**सञ्जीवनी**—सादृश-प्रतिकृति-स्वप्नदर्शन-तदङ्गस्पष्टस्पर्शाख्याश्चत्वारो विरहिणां विनोदोपायाः । तथा चोक्तं गुणपताकायाम्—'वियोगे चायोगे प्रियजनसदृक्षानुभवनं ततश्चित्रं कर्म स्वपनसमये दर्शनमपि । तदङ्गस्पृष्टानामुपगतवतां दर्शनमपिप्रतिकारोऽनङ्गव्यथितमनसां कोऽपि गदितः' इति । तत्र सदृशवस्तुदर्शयन्नाह—श्यामास्विति । श्यामासु प्रियङ्गुलतासु । श्यामा तु महिलाह्वया । लता गोवन्दनी गुन्द्रा प्रियङ्गुः फलिनी फली' इत्यमरः । अङ्गं शरीरमुत्पश्यामि । सौकुमार्यादिसाम्यादङ्गमिति तर्कयामीत्यर्थः । तथा चकितहरिणीनां प्रेक्षणे दृष्टिपातं शिशिनि चन्द्रे वक्त्रच्छायां मुखकान्तिं तथा शिखिनां बर्हिणां बर्हभारेषु केशान् । प्रतनुषु स्वल्पाषु नदीनां वीचिषु । (अत्र वाचीनां विशेषणोपादाने नानुक्तगुणग्रहोदोषः । भ्रूसाम्यनिर्वाहाय महत्त्वदोषनिराकरणार्थत्वात्तस्य । तदुक्तं रसरत्नाकरे—'ध्वन्युत्पादे गुणोत्कर्षे भोगोक्तौ दोषवारणे । विशेषणाद्विशेष्यस्य नास्त्यनुक्तगुणग्रहः ।' इति गुणो विशेषणाम् ।) 'भ्रूविलासान् इत्यत्र भ्रूपताकाः' इति पाठे भ्रूवः पताका इवेत्युपमितसमासः । उत्पश्यामीति सर्वत्र सम्बध्यते । तथापि नास्ति मनोनिर्वृतिरित्याशयेनाह—हन्तेति। हन्त विषादे । 'हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः' इत्यमरः । हे चण्डि कोपने, 'चण्डस्यत्वत्यन्तकोपनः' इत्यमरः । (गौरादित्वात् ङीष्) उपमानकथनमात्रेण न कोपितव्यमिति भावः । क्वचिदपि कस्मिन्नप्येकस्मिन्वस्तुनि ते तव सादृश्यं नास्ति । अतो न निर्वृणोमीत्यर्थः । अनेनास्याः सौन्दर्यमनुपममिति व्यज्यते ॥४४॥

**टिप्पणी**—**श्यामासु अङ्गम्**—यहाँ सुकुमारता के कारण प्रियङ्गुलताओं में अपनी प्रिया के शरीर का सादृश्य दिखाया है; क्योंकि रंग में दोनों में कोई समानता नहीं । यक्ष-पत्नी गोरी थी और प्रियङ्गुलता श्यामवर्ण की होती है ।

**चकितहरिणीप्रेक्षणे**—स्त्री के नेत्रों की उपमा मृगी के नेत्रों से दी जाती है । इसीलिए उसे मृगाक्षी, मृगनयनी आदि कहा जाता है, यही वाक्यांश उत्तर मेघ २२ में भी आया है । **भवभूति** ने भी उत्तररामचरित में यही भाव प्रकट किया है, *'त्रस्तै तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टेः'* । (३/२८)

**शिखिनां बर्हभारेषु केशान्**—मयूर के पङ्ख अत्यन्त कोमल, लम्बे और चिकने होते हैं, इसलिए नारी के सुन्दर बालों की उपमा इन्हीं से दी जाती है । विक्रमोर्वशीयम् में भी यही भाव है—*रतिविगलितबन्धे केशहस्ते सुकेश्याः सति कुसुमसनाथे किं करोत्येष बर्ही ।* (४/१०)

**प्रतनुषु नदी वीचिषु भ्रूविलासान्**—स्त्री के भ्रूभङ्ग की समानता नदी की छोटी-छोटी तरङ्गों से की जाती है। देखिये ऋतु संहार में—"*भ्रूविभ्रमाश्च रुचिरास्तनुभिस्तरङ्गैः* ।"(३/७७)।

**चण्डि**—सा० द० III के अनुसार विप्रलम्भ शृङ्गार निम्न भेदों से चार प्रकार का होता है—पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण। मान कोप को कहते हैं जो प्रणय से अथवा ईर्ष्या से उत्पन्न होता है। पति की अन्य स्त्री में आसक्ति देखकर या सुनकर स्त्रियों को ईर्ष्याजन्य मान होता है।

यहाँ चण्डि पद से यह भाव झलकता है कि मैं तुम्हारे अङ्गों की समानता अन्य वस्तुओं में देखने का प्रयत्न कर रहा हूँ, इसलिए तुम कुपित हो जाओगी, किन्तु तुम्हारे कुपित होने की कोई बात नहीं है; क्योंकि उन वस्तुओं में किसी में भी तुम्हारी समानता नहीं मिलती।

**व्याकरण—चकितहरिणीप्रेक्षणे**—चकिताश्च ताः हरिण्यः (कर्मधा०) तासाम् प्रेक्षणे (ष० त०)। **दृष्टिपातम्**—दृष्ट्याः पातः (ष० त०) तम्, **दृष्टि**—√दृश्+क्तिन्, **पातः**—√पत्+घञ्। **वक्त्रच्छायाम्**—वक्त्रस्य छाया (ष० त०) ताम्। **बर्हभारेषु**—बर्हाणां भारेषु (ष० त०)। **उत्पश्यामि**—उत्+√दृश् लट् उ० पु० एकव०। **नदीवीचिषु**—नदीनां वीचिषु (ष० त०)। **भ्रूविलासान्**—भ्रूवोः विलासाः तान् (ष० त०)। **चण्डि**—√चण्ड्+अच् (कर्तरि)+ङीष्, सम्बो० एकव०। **सादृश्यम्**—सदृश+ष्यञ्।

**विशेष—गुणपताका** के अनुसार विरही लोग निम्न चार प्रकार से अपना मनोरञ्जन करते हैं—१. प्रियजन के सदृश वस्तु को देखना, २. प्रतिकृति अर्थात् चित्र या मूर्ति की रचना करना, ३. स्वप्न दर्शन, ४. प्रिय या प्रिया के अङ्ग से स्पृष्ट वस्तु का स्पर्श करना। इस श्लोक में प्रथमावस्था (अर्थात् प्रियजन के सदृश वस्तु को देखना) का उल्लेख किया है।

प्रस्तुत श्लोक में **स्मरण** अलङ्कार है। सा० द० के अनुसार उसका लक्षण निम्न है—

'*सदृशानुभवाद्वस्तुस्मृतिः स्मरणमुच्यते ॥ १०/४०॥*'

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को निम्न संदेश अपनी प्रिया को देने को कहता है—

**त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-**
**मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।**
**अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे**
**क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ॥४५॥**

**अन्वयः**—प्रणयकुपितां त्वां धातुरागैः शिलायाम् आलिख्य यावत् आत्मानं ते चरणपतितं कर्तुम् इच्छामि तावत् मुहुः उपचितैः अस्रैः मे दृष्टिः आलुप्यते क्रूरः कृतान्तः तस्मिन् अपि नौ सङ्गमं न सहते ॥४५॥

**शब्दार्थ—प्रणयकुपिताम्**=प्रणय में रूठी हुई, **धातुरागैः**=गेरू के रंग से, **शिलायाम्**=पत्थर पर, **आलिख्य**=चित्र बनाकर, **तावत्**=वैसे ही, **उपचितैः**=उमड़े हुए, **आलुप्यते**=लुप्त हो जाती है, **क्रूरः**=निर्दय, **कृतान्तः**=विधाता (दैव), **नौ**=हम दोनों के, **सङ्गमम्**=मिलन को, **सहते**=सहता है।

**अनुवाद—(हे प्रिय !) प्रणय में रूठी हुई तुमको गेरू के रंग से पत्थर पर चित्रित कर जैसे ही मैं स्वयं को तेरे चरणों में गिरा हुआ बनाना चाहता हूँ, वैसे ही बार-बार**

**उमड़े हुए आँसुओं से मेरी दृष्टि लुप्त हो जाती है। निर्दय दैव, उस (चित्र) में भी हम दोनों के मिलने को नहीं सहता है ॥४५॥**

**संस्कृत-टीका**—हे प्रिये ! प्रेमक्रुद्धां न तु अपराधकुपितामिति भावः त्वत्प्रतिकृतिं गैरिकादिवर्णैः प्रस्तरे लिखित्वा स्वं त्वत्पादपतितं लेखितुम् यावदिच्छामि तावत् बहुशः प्रवृद्धैः अश्रुभिर्मदीयं नेत्रमावियते । नृशंसो विधिः चित्रेप्यावयोः समागमं न क्षमते ।

**सञ्जीवनी**—सम्प्रति प्रतिकृतिदर्शनमाह—त्वामिति । हे प्रिये, प्रणयेन प्रेमातिशयेन कुपितां कुपितावस्थायुक्तां त्वाम् । त्वत्प्रतिकृतिमित्यर्थः । धातवो गैरिकादयः 'धातुर्भूधात्वादिशब्दादिगैरिकादित्वगादिषु' इति यादवः । त एव रागा रञ्जकद्रव्याणि । 'चित्रादिरञ्जकद्रव्ये लक्षादौ प्रणयेच्छयोः। साराङ्गादौ च रागः स्यादारुण्ये रञ्जने पुमान्' इति शब्दार्णवः । तैर्धातुरागैः । शिलायां शिलापट्टे आलिख्य निर्मायात्मानं माम् । मत्प्रतिकृतिमित्यर्थः । ते तव। चित्रगताया इत्यर्थः । चरणपतितं कर्तुं तथा लिखितुं यावदिच्छामि, तावदिच्छासमकालमेव मुहुरुपचितैः प्रवृद्धैरस्त्रैरश्रुभिः कर्तृभिः । 'अस्त्रमश्रुणि शोणिते' इति विश्वः । मे दृष्टिरालुप्यते । आवियत इत्यर्थः । ततो दृष्टिप्रतिबन्धनाल्लेखनं प्रतिबध्यत इति भावः । 'क्रूरो धातुकः नृशंसो धातुकः क्रूरः' इत्यमरः । कृतान्तो दैवम् । 'कृतान्तो यमसिद्धान्तदैवाकुशलमर्मसु' इत्यमरः । तस्मिन्नपि चित्रेऽपि । नौ आवयोः । 'युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वानावौ' इति नावादेशः । सङ्गमं सहवासं न सहते । सङ्गमलेखनमप्यावयोरसहमानं दैवमावयोः साक्षात् सङ्गमं न सहत इति किमु वक्तव्यमित्यपिशब्दार्थः ॥४५॥

**टिप्पणी**—**प्रणयकुपिताम्**—मान को कोप भी कहते हैं और वह दो प्रकार का होता है—प्रणय कोप और ईर्ष्या कोप । बहुत हर्षित होने पर भी बिना कारण के कोप को प्रणय कोप कहते हैं । प्रस्तुत श्लोक में नायिका का यही प्रणय कोप विवक्षित है । साहित्यदर्पण के अनुसार—

*द्वयोः प्रणयमानः स्यात्प्रमोदे सुमहत्यपि ।*
*प्रेम्णः कुटिलगामित्वात्कोपो यः कारणं बिना ॥ (३/१९८-१९९)*

**धातुरागैः शिलायाम्**—अपनी प्रिया का चित्र बनाने के लिए विरही यक्ष के पास कोई सामग्री जैसे कागज, पैंसिल, रंग आदि नहीं थी । इसीलिए वहाँ सुलभ गेरू को रंग के स्थान पर तथा पत्थर को कागज के स्थान पर प्रयुक्त करके अपनी प्रिया का चित्र बनाया ।

**दृष्टिरालुप्यते**—यक्ष विरह की अग्नि में अत्यधिक पीड़ित है, इसलिए वह अपनी प्रिया का चित्र बनाता है और अपने आप को भी उसके पैरों में गिरकर उसे मनाता हुआ चित्रित करना चाहता है, किन्तु आँसुओं की अविरल धारा के कारण वह ऐसा नहीं कर पाता । वस्तुतः यहाँ कालिदास द्वारा वर्णित करुणा अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा गयी है ।

**व्याकरण**—**आलिख्य**—आ+√लिख्+ल्यप् । **प्रणयकुपिताम्**—प्रणयेन कुपिताम् (तृ० त०), **कुपिता**—√कुप्+क्त+टाप् । **धातुरागैः**—धातवः एव रागाः तैः (कर्मधा०) । **चरणपतितम्**—चरणयोः पतितम् (स० त०), **पतित**—√पत्+क्त । **उपचितैः**—उप+√चि+क्त, तृ० बहुव० । **आलुप्यते**—आ+√लुप्, लट् (कर्मधा०), प्र० पु० एकव० । **सहते**—√सह्, आत्मनेपद लट्, प्र० पु० एकव० । **नौ**—अस्मद् का ष० द्विव० । **कृतान्तः**—कृतस्य अन्तः (ष० त०) ।

प्रस्तुत श्लोक में 'तस्मिन् अपि' यहाँ पर **अर्थापत्ति** अलङ्कार है । 

**प्रसङ्ग**—पूर्ववत् ।

**मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-**
**र्लब्धायास्ते कथमपि मया[1] स्वप्नसंदर्शनेषु ।**
**पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां**
**मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः[2] पतन्ति ॥४६॥**

**अन्वयः**—स्वप्नसंदर्शनेषु मया कथमपि लब्धायाः ते निर्दयाश्लेषहेतोः आकाशप्रणिहितभुजं मां पश्यन्तीनां स्थलीदेवतानां मुक्तास्थूलाः अश्रुलेशाः तरुकिसलयेषु बहुशः न पतन्ति खलु न ॥४६॥

**शब्दार्थ**—**स्वप्नसंदर्शनेषु**=स्वप्न के ज्ञान में, **लब्धायाः**=प्राप्त की गयी, **निर्दयाश्लेषहेतोः**=गाढ़ आलिङ्गन के लिए, **आकाशप्रणिहितभुजम्**=आकाश में भुजा फैलाये हुए, **स्थलीदेवतानाम्**=वन देवियों के, **मुक्तास्थूलाः**=मोतियों के समान मोटी, **अश्रुलेशाः**=आँसुओं की बूँदें, **तरुकिसलयेषु**=वृक्षों की कोपलों पर ।

**अनुवाद**—**स्वप्न के ज्ञान में मेरे द्वारा किसी तरह (कठिनाई से) प्राप्त की गयी तेरे गाढ़ आलिङ्गन के लिए आकाश में भुजा फैलाये हुए, मुझे देखती हुई वन देवियों की मोतियों के समान मोटी आँसुओं की बूंदें वृक्षों की कोपलों पर बहुत बार न गिरती हों, ऐसी बात नहीं अर्थात् अवश्य गिरती हैं ॥४६॥**

**संस्कृत-टीका**—हे प्रिये ! स्वप्नविलोकनेषु मया केनापि प्रकारेण महता प्रयत्नेनेति भावः प्राप्तायाः तव गाढालिङ्गनार्थम् आकाशप्रसारितबाहुं मां यक्षम् अवलोकयन्तीनां वनदेवीनां मुक्तास्थूला अश्रुबिन्दवः तरुपल्लवेषु प्रायः न पतन्ति इति न खलु, अपितु अवश्यमेव पतन्ति इत्यर्थः ।

**सञ्जीवनी**—अधुना स्वप्नदर्शनमाह—मामिति । सुप्तस्य विज्ञानं स्वप्नः । 'स्वप्नः सुप्तस्य विज्ञानम्' इति विश्वः । सन्दर्शनं सवित् । 'दर्शनं संदर्शनं दृष्टौ स्वप्नेऽक्षिण संविदि' इति शब्दार्णवः। स्वप्नसंदर्शनानि स्वप्नज्ञानानि (तरुवृक्षाणादिवत्सामान्यविशेषभावेन सहप्रयोगः) । तेषु मया कथमपि महता प्रयत्नेन लब्धाया गृहीतायाः । दृष्टाया इति यावत्। ते तव निर्दयाश्लेषौ गाढालिङ्गनं स एव हेतुस्तस्य । निर्दयाश्लेषार्थमित्यर्थः ('षष्ठी हेतुप्रयोगे' इति षष्ठी) । अवकाशे निर्विषये प्रणिहितभुजं प्रसारितबाहुं मां पश्यन्तीनां स्थलीदेवतानां मुक्ता मौक्तिकानीव स्थूला अश्रुलेशा वाष्पबिन्दवस्तरुकिसलयेषु । (अनेन चेलाञ्चलेनाश्रुधारणसमाधिर्ध्वन्यते) बहुशो न पतन्तीति न किन्तु पतन्त्येवेत्यर्थः। (निश्चये नञ्द्वयप्रयोगः । तथा चालङ्कारिकसूत्रम्—स्मृतिनिश्चयसिद्धार्थे नञ्द्वयप्रयोगः सिद्धः इति । 'महात्मगुरुदेवानामश्रुप्रातः क्षितौ यदि । देशभ्रंशो महद् दुःखं मरणं च भवेद् ध्रुवम् ।' इति क्षितौ देवताश्रुपातनिषेधदर्शनाद्यक्षस्य मरणाभावसूचनार्थं तरुकिसलयेषु पतन्तीत्युक्तम् ॥४६॥

**टिप्पणी**—**स्वप्नसंदर्शनेषु**—सोये हुए पुरुष के ज्ञान को स्वप्न कहते हैं । प्रायः देखा जाता है कि जो भाव दिन में हमारे मन में जागृत होते हैं और वे पूर्ण नहीं होते, वे स्वप्न में पूर्ण होते हैं । यक्ष की भी स्थिति ऐसी ही है कि वह प्रिया मिलन के लिए उत्कण्ठित है, परन्तु दिन में मिलन सम्भव नहीं, तब रात्रि में स्वप्न में आलिङ्गन के लिए भुजाएँ फैलाता है, किन्तु वहाँ प्रिया कहाँ ? वहाँ तो शून्याकाश है । उसकी इस दयनीय दशा को देखकर वन देवियाँ भी रो पड़ती हैं । स्वप्नदर्शन विरहकाल में मनोविनोद के चार साधनों में से तीसरा है । (देखिये उत्तरमेघ. ४४ पर टिप्पणी ।)

---

१. निशि ।

२. अश्रुलेखाः, अश्रुपाताः ।

**तरुकिसलयेषु**—अश्रुबिन्दुओं का भूमि पर न गिरकर पत्तों पर गिरना साभिप्राय है; क्योंकि कहा जाता है कि महात्मा, गुरु और देवताओं का अश्रुपात भूमि पर होगा तो देशभ्रंश, भारी दुःख और मरण भी निश्चय होगा—

*महात्मगुरुदेवानामश्रुपातः क्षितौ यदि ।*
*देशभ्रंशो महद्दुःखं मरणं च भवेद् ध्रुवम् ॥*

इसलिए यक्ष का मरणाभाव सूचित करने के लिए वृक्ष के पत्तों पर अश्रुलेशों के गिरने की बात लिखी है ।

**न खलु बहुशः न**—आलङ्कारिक सूत्र में लिखा है कि—
*"स्मृतिनिश्चयसिद्धार्थे नञ्द्वयप्रयोगः सिद्धः ।"*

अर्थात् निश्चय को और दृढ़ करने के लिए दो नञ् का प्रयोग होता है ।

**व्याकरण—आकाशप्रणिहितभुजम्**—आकाशे प्रणिहितौ भुजौ येन् तम् (बहु०), **प्रणिहितौ**—प्र+नि+√धा+क्त । **निर्दयाश्लेषहेतोः**—निर्गता दया यस्मात् सः (बहु०) निर्दयः आश्लेषः (कर्मधा०) स एव हेतुः (कर्मधा०), **आश्लेष**—आ+√श्लिष्+घञ् । **लब्धायाः**—√लभ्+क्त (कर्मणि)+टाप् । **स्वप्नसंदर्शनेषु**—स्वप्नानां सन्दर्शनेषु (ष० त०), **स्वप्नः**—स्वप्+नन्, **संदर्शन**—सम्+√दृश्+ल्युट् । **पश्यन्तीनाम्**—√दृश्+शतृ+ङीष्, ष० बहु० । **स्थलीदेवतानाम्**—स्थलीनां देवताः (ष० त०) तासाम् । **मुक्तास्थूलाः**—मुक्ता इव स्थूलाः (उपमित त०) । **तरुकिसलयेषु**—तरूणां किसलयानि (ष० त०) तेषु । **अश्रुलेशाः**—अश्रूणां लेशाः (ष० त०) ।

प्रस्तुत श्लोक में "मुक्तास्थूलाः" इस पद में **लुप्तोपमा** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष अपनी प्रिया को निम्न सन्देश भेज रहा है—

**भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां**
**ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ।**
**आलिङ्ग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः**
**पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति ॥४७॥**

**अन्वयः**—गुणवति, देवदारुद्रुमाणां किसलयपुटान् सद्यः भित्त्वा तत्क्षीरस्रुतिसुरभयः ये दक्षिणेन प्रवृत्ताः मया ते तुषाराद्रिवाताः 'एभिः यदि तव अङ्गं पूर्वं स्पृष्टं भवेत् किल' इति आलिङ्ग्यन्ते ॥४७॥

**शब्दार्थ**—**गुणवति**=गुणशालिनि, **किसलयपुटान्**=कोपलों की परतों को, **सद्यः**=शीघ्र, **तत्क्षीरस्रुतिसुरभयः**=उनके दूध के स्राव से सुगन्धित, **दक्षिणेन**=दक्षिण की ओर, **तुषाराद्रिवाताः**=हिमालय पर्वत के पवन, **स्पृष्टम्**=स्पर्श, **आलिङ्ग्यन्ते**=आलिङ्गन करता हूँ ।

**अनुवाद—हे गुणशालिनि, देवदारु वृक्षों की कोपलों की परतों को शीघ्र ही भेदकर उनके दूध के स्राव से सुगन्धित जो (पवन) दक्षिण दिशा की ओर चलते हैं, मैं उन हिमालय पर्वत के पवनों का 'इन्होंने सम्भवतः तेरे शरीर का पहले स्पर्श किया होगा' ऐसा सोचकर आलिङ्गन करता रहता हूँ ॥४७॥**

**संस्कृत-टीका**—हे गुणशालिनि ! देवदारुवृक्षाणां पल्लवपुटान् तत्क्षणमेव विच्छेद्य देवदारुदुग्धनिष्यन्दसुगन्धिताः ये वाताः दक्षिणमार्गेण चलिताः मया यक्षेण ये हिमालयपवनाः पूर्वमेभिस्तवाङ्गं परामृष्टं भवेदिति संभाव्य आलिङ्ग्यन्ते ।

**सञ्जीवनी**—इदानीं तदङ्गस्पृष्टवस्तुदर्शनमाह—भित्त्वेति । देवदारुद्रुमाणां किसलयपुटान्पल्लवपुटान्सद्यो भित्वा । ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयस्तेषां देवदारुद्रुमाणां क्षीरस्रुतिभिः क्षीरनिष्यन्दैः सुरभयः सुगन्धयः । (तुषाराद्रिवातत्वे लिङ्गमिदम्) । ये वाता दक्षिणेन दक्षिणमार्गेण (तृतीयाविधाने प्रकृत्यादिभ्य उपसख्यानात्तृतीया समेन यातीति वत् । तत्रापि करणत्वस्य प्रतीयमानत्वात् 'कर्तृकरणयोरेव तृतीया' इति भाष्यकारः ।) प्रवृत्ताश्चलिताः । हे गुणवति सौशील्यसौकुमार्यादिगुणसम्पन्ने, ते तुषाराद्रिवाताः पूर्वं प्रागेभिर्वातैस्त्वदङ्गं स्पृष्टं भवेद्यदि किलेति, सम्भावितमेतदिति बुद्ध्येत्यर्थः । 'वार्तासम्भाव्ययोः किल' इत्यमरः । मयाऽऽलिङ्ग्यन्ते आश्लिष्यन्ते (अत्र वायूनां स्पृश्यत्वेऽप्यमूर्तत्वेनालिङ्गनायोगादालिङ्ग्यन्त इत्यभिधानं यक्षस्योन्मत्तत्वात्प्रलपितमित्यदोष इति वदन्निरुक्तकारः स्वयमेवोन्मत्त प्रलापीत्युपेक्षणीयः) ॥४७॥

**टिप्पणी**—**तुषाराद्रिवाताः**—वायु के मान्द्य, सौरभ और शीतलता ये तीन गुण होते हैं । हिमालय पर्वत की वायु में ये तीनों गुण पाये जाते हैं । ऐसी वायु को शृङ्गार का उद्दीपक कहा जाता है । इसी कारण यह वायु विरही यक्ष के विरह को और अधिक उद्दीप्त करती है, जिस कारण उसे अपनी प्रिया की स्मृति हो आती है । वह इन पवनों को यह सोचकर स्पर्श करता है कि इन पवनों ने इससे पूर्व उसकी प्रिया के शरीर को भी स्पर्श किया है । *तदङ्गस्पृष्टस्पर्श* विरह काल में मनोविनोद के चार साधनों में चौथा है । (देखिये उत्तरमेघ ४४ पर टिप्पणी ।)

**आलिङ्ग्यन्ते**—यद्यपि वायु अशरीरी होने के कारण स्पृश्य है, उसका आलिङ्गन नहीं किया जा सकता । इस कारण यहाँ 'आलिङ्ग्यन्ते' यह कहना उन्मत्त प्रलाप का बोधक है । पूर्वमेघ/५ में प्रयुक्त "*कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु*" से भी इस शङ्का का समाधान हो जाता है ।

**व्याकरण**—**भित्वा**—√भिद्+क्त्वा । **किसलयपुटान्**—किसलयानां पुटाः (ष० त०) तान्। **देवदारुद्रुमाणाम्**—देवदारवश्च ते द्रुमाश्च तेषाम् (कर्मधा०) । **तत्क्षीरस्रुतिसुरभयः**—तेषां क्षीरं (ष० त०) तस्य स्रुतयः (ष० त०) ताभिः सुरभयः (तृ० त०), **स्रुति**—√स्रु+क्तिन् । **प्रवृत्ताः**—प्र+√वृत्+क्त, प्र० बहुव० । **आलिङ्ग्यन्ते**—आ+√लिङ्ग (कर्मवा०) लट् प्र० पु० एकव० । **गुणवति**—गुण+मतुप्+ङीप्, सम्बोधन एकव० । **तुषाराद्रिवाताः**—तुषारस्य अद्रिः (ष० त०) तस्य वाताः (ष० त०) । **स्पृष्टम्**—√स्पृश्+क्त । **किल**—सम्भावनायाम् अव्ययम् । **भवेत्**—√भू+लिङ् (संभावनायाम्) प्र० एकव० ।

**विशेष**—प्रस्तुत श्लोक में यदि और किल ये दोनों पद संभावना के द्योतक हैं । उस पर भवेत् पद के द्वारा संभावना का अतिशय प्रतिपादित होता है ।

प्रस्तुत श्लोक में **काव्यलिङ्ग** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष विरहिणी यक्षिणी को अपना सन्देश भेजता हुआ कहता है कि—

**संक्षिप्येत[1] क्षण[2] इव कथं[3] दीर्घयामा[4] त्रियामा**
**सर्वावस्थास्वहरपि कथं[5] मन्दमन्दातपं स्यात् ।**
**इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्लभप्रार्थनं मे**
**गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥४८॥**

---

१. संक्षिप्यन्ते, संक्षिप्येरन् ।
२. क्षणम् ।
३. मया ।
४. दीर्घयामास्त्रियामाः ।
५. च मे ।

**अन्वय:**—दीर्घयामा त्रियामा क्षण: इव कथं संक्षिप्येत, अह: अपि सर्वावस्थासु मन्दमन्दातपं कथं स्यात्। चटुलनयने, इत्थं दुर्लभप्रार्थनं मे चेत: गाढोष्माभि: त्वद्वियोगव्यथाभि: अशरणं कृतम् ॥४८॥

**शब्दार्थ—दीर्घयामा**=लम्बे प्रहरों वाली, **त्रियामा**=रात्रि, **संक्षिप्येत**=छोटी हो जाये, **सर्वावस्थासु**=सभी अवस्थाओं में, **मन्दमन्दातपम्**= मन्द-मन्दी धूप वाला, **चटुलनयने**=चञ्चल नेत्रों वाली, **दुर्लभप्रार्थनम्**=दुर्लभ अभिलाषा वाले, **गाढोष्माभि:**=अति तीव्र ताप वाली, **त्वद्वियोगव्यथाभि:**=तेरे वियोग की पीड़ाओं ने, **अशरणम्**=अनाथ ।

**अनुवाद—लम्बे प्रहरों वाली रात्रि क्षण के समान किस प्रकार छोटी हो जाये और दिन सभी अवस्थाओं में मन्दी-मन्दी धूप वाला कैसे हो? हे चञ्चल नेत्रों वाली ! इस प्रकार दुर्लभ अभिलाषा वाले मेरे मन को अतितीव्र ताप वाली तेरे वियोग की पीड़ाओं ने अनाथ बना दिया है ॥४८॥**

**संस्कृत-टीका**—दीर्घत्वेन प्रतीयमाना रात्रि: केन प्रकारेण लघूक्रियेत ? दिवसोऽपि सकलदशासु सर्वकालेषु इत्यर्थ: कथमत्यल्पसन्तापं भवेत् ? हे चञ्चल नेत्रे ! इत्थमसुलभमनोरथं मे चित्तं अतितीव्रतापाभि: त्वद्विरहव्यथाभिरनाथं विहितम् ।

**सञ्जीवनी**—संक्षिप्येतेति । दीर्घा यामा: प्रहरा यस्यां सा दीर्घयामा । विरहवेदनया तथा प्रतीयमानेत्यर्थ: । त्रियामा रात्रि: । 'आद्यन्तयोरर्धयामयोर्दिनव्यवहारात् त्रियामा' इति क्षीरस्वामी । क्षण इव कथं केन प्रकारेण संक्षिप्येत लघुक्रियेत । अहरपि सर्वावस्थासु । सर्वकालेष्वित्यर्थ । मन्दमन्दो मन्दप्रकार: । ('प्रकारे गुणवचनस्य' इति द्विरुक्ति: । 'कर्मधारयवदुत्तरेषु' इति कर्मधारयवद्भावात्सुपो लुक् ।) मन्दमन्दातपमत्यल्पसंतापं कथं स्यात् । न स्यादेव । हे चटुलनयने चञ्चलाक्षि इत्यमनेन प्रकारेण दुर्लभप्रार्थनमप्राप्यमनोरथं मे मम चेतो गाढोष्माभिरतितीव्राभिस्त्वद्वियोगव्यथाभिरशरणमनाथं कृतम् ॥४८॥

**टिप्पणी—दीर्घयामा**—यद्यपि यक्ष ने मेघ को सन्देश ग्रीष्म ऋतु के आषाढ़ मास में दिया है (देखिये पूर्वमेघ/२) जबकि रात्रियाँ छोटी होती हैं, किन्तु विरहावस्था में जागरण व चिन्ता के कारण रात्रियाँ लम्बी प्रतीत होती हैं । इसलिए यक्ष की यह इच्छा कि रात्रि किसी तरह छोटी हो जाये, स्वाभाविक थी ।

**त्रियामा**—रात्रि के तीन प्रहर माने है । एक प्रहर तीन घण्टे का होता है । दिन और रात में आठ प्रहर माने जाते हैं । इस कारण दिन और रात्रि दोनों में चार-चार प्रहर होने चाहियें, परन्तु अमरकोश के टीकाकार **क्षीरस्वामी** के अनुसार—"*आद्यन्तयोरर्धयामयोर्दिनव्यवहारात् त्रियामा*" अर्थात् रात के आदि और अन्त के आधे-आधे प्रहरों को दिन में ग्रहण किया जाता है । इस प्रकार रात्रि में तीन प्रहर और दिन में पाँच प्रहर बचते हैं ।

**सर्वावस्थासु**—इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(१) सभी अवस्थाओं में अर्थात् पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्न में, (२) सब ऋतुओं में । सम्भवत: यहाँ कवि का आशय पहले अर्थ में दिखायी पड़ता है; क्योंकि आषाढ़ के दिनों में प्रात:काल और सायंकाल में भी बहुत अधिक गर्मी होती है ।

**व्याकरण—संक्षिप्येत**—सम्+√क्षिप् (आत्मनेपद, कर्मवा०) विधिलिङ्, प्र० पु० एकव०। **दीर्घयामा**—दीर्घा: यामा: यस्यां सा (बहु०) । **त्रियामा**—तिस्र: यामा: यस्यां सा (बहु०) । **सर्वावस्थासु**—सर्वासु अवस्थासु (कर्मधा०) । **मन्दमन्दातपम्**—मन्द: मन्द: आतपो यस्मिन् तत् (बहु०) । **स्यात्**—√अस्, विधिलिङ् प्र० पु० एकव० । **इत्थम्**—इदम्+थमु । **चटुलनयने**—चटुले

या: सा (बहु०) । **दुर्लभप्रार्थनम्**—दुर्लभा: प्रार्थना: यस्य तत् (बहु०) । **गाढोष्माभि:**—गा ...यासां ताभि: (बहु०) । **अशरणम्**—न शरणम् यस्य तत् (बहु०) । **त्वद्वियोगव्यथाभि:**—त्वद्वियोग: (ष० त०) तस्य व्यथाभि: (ष० त०) ।

**प्रसङ्ग**—पूर्ववत् ।

> **नन्वात्मानं[1] बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे**
> **तत्कल्याणि त्वमपि नितरां[2] मा गम: कातरत्वम् ।**
> **कस्यात्यन्तं[3] सुखमुपनतं[4] दु:खमेकान्ततो वा**
> **नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥४९॥**

**अन्वय:**—ननु बहु विगणयन् (अहम्) आत्मना एव आत्मानम् अवलम्बे । कल्याणि ! तत् त्वम् इपि नितरां कातरत्वं मा गम: । अत्यन्तं सुखम् एकान्तत: दु:खं वा कस्य उपनतम् ? दशा चक्रनेमिक्रमेण नीचै: उपरि च गच्छति ॥४९॥

**शब्दार्थ**—**बहु विगणयन्**=बहुत विचार करते हुए, **आत्मना**=अपने आप, **आत्मानम्**=अपने को, **अवलम्बे**=सहारा दिये रहता हूँ, **कल्याणि**=हे सुभगे, **नितराम्**=बहुत अधिक, **कातरत्वम्**=व्याकुल, **एकान्तत:**=लगातार, **उपनतम्**=प्राप्त होता है, **चक्रनेमिक्रमेण**=पहिये के अरों के क्रम से ।

**अनुवाद**—**हे प्रिय ! बहुत विचार करता हुआ (मैं) अपने आप ही अपने को सहारा दिये रहता हूँ। हे सुभगे ! इसलिए तुम भी बहुत अधिक व्याकुल मत होओ । अत्यन्त (लगातार) सुख अथवा लगातार दु:ख किसे प्राप्त होता है ? (लोगों की दशा) पहिये के अरे के क्रम से नीचे और ऊपर जाती रहती है ॥४९॥**

**संस्कृत-टीका**—हे प्रिये ! पूर्वापरं सर्वं विचारयन् अहं कथञ्चित्प्राणान् धारयामि, हे सुभगे ! तस्मात् त्वमपि अत्यन्तम् अधीरत्वं मा गा: । नैरन्तर्येण सुखं दु:खं वा केनानुभूतम् ? जनानामवस्था रथाङ्गपरिधिपरिपाट्या अध: उपरि च गच्छति ।

**सञ्जीवनी**—न च मदीयदुर्दशाश्रवणाद् भेतव्यमित्याह—नन्विति । नन्वित्यामन्त्रणे । 'प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे' ननु इत्यमर: । ननु प्रिये, बहुविगणयन् 'शापान्ते सत्येवमेवं करिष्यामि' इत्यावर्तयन्नात्मानमात्मनैव स्वमेव ('प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इति तृतीया ।) अवलम्बे धारयामि । यथाकथञ्चिज्जीवामीत्यर्थ: । तत्तस्मात्कारणात् । हे कल्याणि सुभगे ! त्वत्सौभाग्येनैव जीवामीति भाव:। ('बह्वादिभ्यश्च' इति ङीष् ।) त्वमपि नितरामत्यन्तं कातरत्वं भीरुत्वं मा गम: गच्छ । (गमेर्माङि लुङ् 'न माङ्योगे' इत्यडागमाभाव: ।) तादृक्सुखिनोरावयोरीदृशे दु:खे कथं न विभेमीत्यांशङ्कयाह—करोति । कस्य जनस्यात्यन्तं सुखमपनतं प्राप्तमेकान्ततो नियमेन दु:खं वोपनतम् । किं तु दशावस्था चक्रस्य रथाङ्गस्य नेमिस्तदन्त: । 'चक्रं रथाङ्गं तस्यान्ते नेमि: स्त्री स्यात्प्रधि: पुमान्' इत्यमर: । तस्या क्रमेण परिपाट्या । 'क्रम: शक्तौ परिपाटयाम्' इति विश्व: । नीचैरध उपरि च गच्छति प्रवर्तते । जन्तो: सुखदु:खे पर्यावर्तते इत्यर्थ: ॥४९॥

---

१. न त्वात्मानम्, इत्यात्मानम् ।
२. सुतराम् ।
३. कस्यैकान्तम् ।
४. उपगतम् ।

**टिप्पणी—बहु विगणयन्**—जो व्यक्ति दु:ख में अपना धैर्य नहीं खोता, वह दु:ख के समय यह विचार करके कि आगे चलकर सुख प्राप्त होगा तो मैं ये-ये कार्य करूँगा, ऐसा सोचता रहता है। यही स्थिति यक्ष की है । वह भी शाप की समाप्ति पर जब अपनी प्रिया से मिलेगा तो उस समय क्या-क्या करना है, ये योजनाएँ बनाता हुआ विरहकाल व्यतीत कर रहा है ।

**आत्मानम् आत्मनैव अवलम्बे**—यक्ष का कहने का आशय यह है कि मुझे कोई दूसरा धैर्य बँधाने वाला नहीं है । मैं स्वयं ही पूर्व मिलन की स्मृति और भविष्य में मिलन के सुखों की आशा से प्राण धारण किये हुए हूँ, इसलिए तू भी अधिक दु:खी न होकर ये दिन व्यतीत कर ले ।

**चक्रनेमिक्रमेण**—इस पद से कवि ने लौकिक सत्य का उद्घाटन किया है । जिस प्रकार रथ जब चलता है तो पहिये का किनारा जो भूमि को स्पर्श करता है, वह ऊपर चला जाता है और जो ऊपर होता है वह घूमते हुए नीचे आ जाता है । वैसे ही मनुष्यों की दशा में भी सुख, दु:ख आते हैं—कभी सुख आता है, तो कभी दु:ख । इस भाव को संस्कृत के अन्य कवियों ने भी प्रकट किया है । देखिये—

*सुखस्यानन्तरं दु:खं दु:खस्यानन्तरं सुखम् ।*
*चक्रवत्परिवर्तन्ते दु:खानि च सुखानि च ॥*

**स्वप्नवासवदत्तम्** में महाकवि भास ने इसी भाव को निम्न पङ्क्तियों में स्पष्ट किया है—

*कालक्रमेण जगत: परिवर्तमाना ।*
*चक्रापङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्ति: ॥*

**व्याकरण—ननु**—यहाँ पर आमन्त्रण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । अमरकोश के अनुसार यह प्रश्नवाचक, निश्चयार्थक में भी आता है । **विगणयन्**—वि+√गण्+णिच्+शतृ, प्रथमा एकव०। **अवलम्बे**—अव+√लम्ब् (आत्मनेपद) लट् ल० उ० पु० एकव०। **कल्याणि**—कल्याण+ङीप् सम्बो० एकव० । **नितरां**—नि+तरप्+आम् । गम:—√गम् लुङ्० म० पु० एकव० । **कातरत्वम्**—कातर+त्व । **उपनतम्**—उप+√नम्+क्त । **एकान्तत:**—एकान्त+तसिल् । **चक्रनेमिक्रमेण**—चक्रस्य नेमि: (ष० त०) तस्या: क्रमेण (ष० त०) ।

प्रस्तुत श्लोक में **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—पूर्ववत् ।

**शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ**
**शेषान्मासान्गमय[1] चतुरो लोचने मीलयित्वा ।**
**पश्चादावां विरहगणितं[2] तं तमात्माभिलाषं[3]**
**निर्वेक्ष्याव: परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥५०॥**

**अन्वय:**—शार्ङ्गपाणौ भुजगशयनाद् उत्थिते मे शापान्त:, शेषान् चतुर: मासान् लोचने मीलयित्वा गमय । पश्चात् आवां विरहगणितं तम् आत्माभिलाषं परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु निर्वेक्ष्याव: ॥५०॥

---

१. मासानन्यान्, मासानेतान्।
२. विरहगुणितम्, विरहजनितम् ।
३. तमेवाभिलाषम् ।

**शब्दार्थ**—**शार्ङ्गपाणी**=भगवान् विष्णु के, **भुजगशयनाद्**=शेषनाग रूपी शय्या से, **शापान्तः**=शाप का अन्त, **मीलयित्वा**=मींचकर, **गमय**=बिता ले, **विरहगणितम्**=विरह में विचारी गयी, **आत्माभिलाषम्**=अपनी इच्छाओं को, **परिणतशरच्चन्द्रिकासु**=ढली हुई शरद् ऋतु की चाँदनी वाली, **क्षपासु**=रात्रियों में, **निर्वेक्ष्यावः**=भोगेंगे ।

**अनुवाद**—**भगवान् विष्णु के शेषनागरूपी शय्या से उठ जाने पर मेरे शाप का अन्त (होगा) (इसलिए) तू शेष चार महीने आँख मींचकर बिता ले । फिर हम दोनों विरह में विचारी गयी उन-उन अपनी इच्छाओं को ढली हुई शरद् ऋतु की चाँदनी वाली रात्रियों में भोगेंगे ॥५०॥**

**संस्कृत-टीका**—हे प्रिये ! शेषतल्पान्नारायण उत्थिते सति मे शापनिवृत्तिर्भविता । अतः अवशिष्टं मासचतुष्टयं धैर्येण यापय । तदनन्तरमावां वियेगविचारं तं-तं निजमनोरथं शरज्ज्योत्स्नाद्योतितासु निशासु भोक्ष्यावहे ।

**सञ्जीवनी**—न च निरवधिकमेतद् दुःखमित्याह—शापान्त इति । शार्ङ्गनाम् धनुः पाणौ स्थितं यस्य स तस्मिन् शार्ङ्गपाणौ विष्णौ ('सप्तमीविशेषणे' इत्यादिना बहुव्रीहिः 'प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ भवतः' इति वक्तव्यात्पाणिशब्दस्योत्तरनिपातः । भुजगः शेषः एव शयनं तस्मादुत्थिते सति मे शापान्तः शापावसानम् । भविष्यतीति शेषः । शेषानवशिष्टांश्चतुरो मासान् मेघदर्शनप्रभृति हरिबोधनदिनान्तमित्यर्थः । दशदिवसाधिक्यं त्वत्र न विविक्षितमित्युक्तमेव । लोचने मीलयित्वा निमील्य गमय । धैर्येणातिवाहयेत्यर्थः । पश्चादनन्तरं त्वं चाहं चावाम् । 'त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्' इत्येकशेषः। 'त्यदादीनां मिथो द्वन्द्वे यत्परं तच्छिष्यते' इत्यस्मदः शेषः ।) विरहे गणितमेवमेवं करिष्यामीत मनस्यावर्तितम् तं तम् । (वीप्सायां द्विरुक्तिः ।) आत्मनोरावयोरभिलाषं मनोरथम् । परिणताः शरच्चन्द्रिका यासां तासु क्षपासु रात्रिषु निर्वेक्ष्यावो भोक्ष्यावहे । (विशतेर्लट् ।) 'निर्वेशो भूतिभोगयोः' इत्यमरः । (अत्र कैश्चित् 'नभोनभस्ययोरेव वार्षिकत्वात्कथमासाढादिचतुष्टयस्य वार्षिकत्वमुक्तमिति चोदयित्वा 'ऋतुत्रयपक्षाश्रयणादविरोधः' इति पर्यहारि तत्सर्वमसङ्गतम् । अत्र गतशेषाश्चत्वारो मासा इत्युक्तं कविना न तु ते वार्षिका इति । तस्मादनुक्तोपालम्भ एव । यच्च नाथेनोक्तम्। 'कथमासाढादिचतुष्टयात्परं शरत्कालः' इति, तथाप्याकार्तिकसमाप्तेः शरत्कालानुवृत्तेः परिणतशरच्चंद्रिकास्वित्युक्तम् । न तु तदैव शरत्प्रादुर्भाव उक्त इत्यविरोध एव ॥५०॥

**टिप्पणी**—**भुजगशयनादुत्थिते**—भारतीय परम्परा के अनुसार भगवान् विष्णु आषाढ़ शुक्ल एकादशी को शेषनाग शय्या पर क्षीरसागर में सोते हैं और कार्तिक शुक्ल एकादशी को उठते हैं । इस एकादशी को क्रमशः हरिशयनी एकादशी तथा हरिप्रबोधिनी एकादशी कहते हैं । लोकभाषा में इन्हें देव सोनी ग्यास और देव उठानी ग्यास भी कहते हैं । इनके बीच के समय को **''देव सोना''** कहा जाता है । इसमें विवाहादि शुभ कार्य नहीं किया जाता । उस समय भगवान् की पूजा करनी चाहिये। जैसा कि कूर्म पुराण में लिखा है—

*क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्क आषाढ्यां संविशेद्धरिः ।*
*निद्रां त्यजति कार्तिक्यां तयोः संपूजयेद्धरिम् ॥*
*सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं चराचरम् ।*
*विबुद्धे त्वयि बुध्येत जगत् सर्वं चराचरम् ॥*

यही बात भविष्यपुराण में भी आयी है ।

**शार्ङ्गपाणौ**—शार्ङ्ग भगवान् विष्णु के धनुष का नाम है, वे उसे हाथ में धारण करते हैं, इसीलिए शार्ङ्गपाणि कहलाते हैं ।

**चतुरो मासान्**—यक्ष के शाप का अन्त कार्तिक शुक्ल एकादशी को होगा और यक्ष मेघ को सन्देश दे रहा है आषाढ़ के प्रथम दिन । (देखिये पूर्वमेघ २) । इन दोनों के बीच चार माह दस दिन बैठते हैं, तब चतुरो मासान् का प्रयोग असंगत सा बैठता है, किन्तु इसका समाधान अजहल्लक्षणा से हो जाता है, जैसे ''छत्रिणो यान्ति'' अर्थात् छाते वाले जा रहे हैं, उनके साथ कुछ बिना छाते वाले भी निकल जाते हैं, उसी प्रकार चार माह के साथ दिनों का भी समावेश हो जाता है ।

इसका दूसरा समाधान यह हो सकता है कि रामगिरि पर्वत से अलकापुरी तक पहुँचने में तथा यक्षिणी को सन्देश देने में मेघ को लगभग दस दिन लग जायें, यही विचार कर यक्ष ने चतुरो मासान् कहा हो ।

**लोचने मीलयित्वा**—इसका अभिप्राय यह है कि जैसे-तैसे भी हो तू धैर्य के साथ इस विरह के समय को बिता ले ।

**विरहगणितम्**—विरह काल में व्यक्ति अनेक बातें सोचता है कि अपने प्रिय अथवा प्रिया के मिलने पर ऐसे मिलूँगा, ऐसे रूठूँगा, ऐसे मनाऊँगा आदि । यक्ष व यक्षिणी भी यही सब बातें सोच रहे हैं कि मिलने पर वे इन्हें पूरी करेंगे ।

**परिणतशरच्चान्द्रिकासु**—भारतवर्ष में छ: ऋतुएँ होती हैं । उसमें शरद का समय आश्विन् और कार्तिक मास होता है, जैसा कि अभी स्पष्ट किया है कि यक्ष के शाप का अन्त कार्तिक शुक्ल एकादशी को होगा तभी उसका अपनी प्रिया से मिलना सम्भव होगा, तब शरद् ऋतु का ढलना स्वाभाविक ही है । क्योंकि कार्तिक की समाप्ति पर शरद् भी समाप्त हो जाती है इसलिए कवि का कथन कि ''ढली हुई शरद् ऋतु की चाँदनी वाली रातें'' इसमें कोई असङ्गति नहीं बैठती ।

**व्याकरण**—**शापान्तः**—शापस्य अन्तः (ष० त०) । **भुजगशयनात्**—भुजगः एव शयन तस्मात् (रूपक त०), **भुजग**—भुज+गम्+ड, **शयनम्**—√शी+ल्युट् (अधिकरणे) । **उत्थिते**—उद्+√स्था+क्तः (भावे सप्तमी) । **शार्ङ्गपाणौ**—शार्ङ्गपाणौ यस्य तस्मिन् (बहु०) । **गमय**—√गम्+णिच्, लोट् प्र० पु० एकव० । **मीलयित्वा**—√मील्+इट्+क्त्वा । **विरह गणितम्**—विरहे गणितम् (स० त०) । **आत्माभिलाषम्**—आत्मनः अभिलाषः (ष० त०) तम्, **अभिलाषः**—अभि+√लष्+घञ् । **निर्वेक्ष्यावः**—निर्+√विश्+लृट् उ० पु० द्विव० । **परिणतशरच्चन्द्रिकासु**—शरदः चन्द्रिका (ष० त०), परिणताः शरदः चन्द्रिकाः यासु तासु (बहु०), **परिणत**—परि+√नम्+क्त ।

प्रस्तुत श्लोक में उदात्त अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि वह प्रामाणिकता के लिए रहस्य की यह बात यक्षिणी से कहे—

**भूयश्चाह[1] त्वमपि[2] शयने कण्ठलग्ना पुरा मे**
**निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वनं[3] विप्रबुद्धा ।**
**सान्तर्हासं कथितमसकृत्पृच्छतश्च त्वया मे**
**दृष्टः स्वप्ने कितव रमयन्कामपि[4] त्वं मयेति ।।५१।।**

---

१. भूयश्चापि ।
२. त्वमसि ।
३. सस्वरम्, सत्वरम् ।
४. कामिनीं कामपि त्वम् ।

**अन्वयः**—भूयः च आह—पुरा शयने मे कण्ठलग्ना अपि त्वं निद्रां गत्वा किमपि सस्वनं रुदती विप्रबुद्धा, त्वया च असकृत् पृच्छतः मे सान्तर्हासं कथितम्—"कितव, मया स्वप्ने त्वं कामपि रमयन् दृष्टः इति" ॥५१॥

**शब्दार्थ**—**भूयः**=फिर, **कण्ठलग्ना**=गले लगी हुई, **सस्वनम्**=जोर से, **विप्रबुद्धा**=जाग गयी, **असकृत्**=बार-बार, **सान्तर्हासम्**=मन की हँसी के साथ, **कितव**=धूर्त, **कामपि**=किसी (स्त्री) के साथ, **रमयन्**=रमण करते हुए ।

**अनुवाद**—(तुम्हारे पति ने) फिर (आगे) कहा—पहले कभी शय्या पर मेरे गले लगी हुई तुम नींद में पड़कर किसी कारण जोर से रोती हुई जाग गयीं और तुमने बार-बार पूछने वाले मुझसे मन ही मन हँसी के साथ कहा था—हे धूर्त ! मैंने स्वप्न में तुम्हें किसी (स्त्री) के साथ रमण करते देखा है ॥५१॥

**संस्कृत-टीका**—हे अबले ! त्वत्प्रियः पुनरप्याह—हे प्रिये ! पुरा त्वं पर्यङ्के मम कण्ठसंश्लिष्टा अपि निद्रां प्राप्य केनापि कारणेन सशब्दं रुदती जागरिता । ततश्च बहुशः रोदनहेतुम् प्रश्नं कुर्वतः मम भवत्या समन्दहासम् यथा स्यात् तथा उक्तम्—'हे धूर्त ! मया स्वप्ने त्वम् कयाऽपि ललनया सह रमणम् कुर्वन् अवलोकितः' इति ।

**सञ्जीवनी**—संप्रति तस्या मेघवञ्चकत्वशङ्कानिरासायातिगूढमभिधेयमुपदिशति—भूय इति । हे अबले, भूयः पुनरप्याह । त्वद्भर्ता मन्मुखेनेति शेषः । मेघवचनमेतत् । किमित्यत आह—पुरा पूर्वम् । पुराशब्दश्चिरातीते । 'स्यात्प्रबन्धे चिरातीते निकटागामिके पुरा' इत्यमरः । शयने मे कण्ठलग्नापि त्वम् । गले बद्धस्य कथमपि गमनं न संभवेदिति भावः । निद्रां गत्वा किमपि । केन वा निमित्तेनेत्यर्थः । सस्वनं सशब्दम् । उच्चैरित्यर्थः । रुदती सती विप्रबुद्धा आसीरिति शेषः । असकृद्बहुशः पृच्छतः । रोदनहेतुमिति शेषः । मे मम । हे कितव, त्वं कामपि रमयन्मया स्वप्ने दृष्टः इति त्वया सान्तर्हासं समन्दहासं यथा तथा कथितं चेति । त्वद्भर्ता भूयश्चाहेति योजना ॥५१॥

**टिप्पणी**—**कण्ठलग्ना**—अपनी भुजाओं से मुझे पकड़े हुए, इससे यक्षिणी को संदेह का अवसर ही नहीं रह जाता कि यक्ष उसके पास से उठकर कहीं चला गया होगा ।

**सान्तर्हासम्**—यक्षिणी ने किसी रात सोते समय स्वप्न में यक्ष को किसी अन्य रमणी के साथ रमण करते देखा, तो वह एक दम जाग जाती है और यह देखकर कि उसे वह अपने गले लगाये हुए है तो कुछ लज्जित-सी होती है और अपनी गलती पर मन ही मा हँसी भी आती है

**कितव**—साहित्यदर्पण में शठ (धूर्त) नायक के विषय में इस प्रकार कहा गया है—

*..........शठोऽयमेकत्र बद्धभावो यः ।*
*दर्शितबहिरनुरागो विप्रियमन्यत्र गूढमाचरति ॥ (३/३७)*

जो नायक किसी अन्य में अनुरक्त हो और प्रकृत नायिका में भी बाहरी तौर पर अनुराग दिखलाये और गुप्तरूपेण उसका अप्रिय करे वह शठ कहलाता है । यहाँ यक्षिणी स्वप्न में यक्ष को किसी अन्य स्त्री के साथ देखकर उसे कितव (शठ) कहकर सम्बोधित करती है ।

**व्याकरण**—**भूयः**—अव्यय । **आह**—√ब्रू, लट् प्र० पु० एकव० । **कण्ठलग्ना**—कण्ठे लग्ना (स० त०) । **किमपि**—किम् और अपि ये दो अव्यय पद संयुक्त होकर यहाँ प्रयुक्त हुए हैं । श्री शारदारञ्जन राय ने रुद् धातु को सकर्मक मानकर इसे उसका कर्म माना है । **रुदती**—√रुद्+शतृ+ङीप् । **सस्वनम्**—स्वनेन सहितम् यथा स्यात् तथा (बहु०) । **विप्रबुद्धा**—

वि+प्र+√बुध्+क्त+टाप् । **सान्तर्हासम्**—अन्तर्गत: हास: (प्रादि० त०), अन्तर्हासेन सह यथा स्यात्तथा (बहु०) । **पृच्छत:**—√पृच्छ्+शतृ, ष० बहुव० । **दृष्ट:**—√दृश+क्त। **रमयन्**—√रम्+णिच्+शतृ, प्रथमा एकव० ।

**विशेष**—यक्ष ने यह सोचकर कि मेघ पर मेरी पत्नी कहीं संदेह न करे उसे एक ऐसी गुप्त बात बतायी जो पति-पत्नी के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था । इस घटना को अभिज्ञान के रूप में दिखलाया है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष सन्देश देता हुआ कहता है कि अभिज्ञान के कारण मुझे सकुशल जानना—

**एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा**
**मा कौलीनादसितनयने[1] मय्यविश्वासिनी भूः ।**
**स्नेहानाहुः किमपि विरहे[2] ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-**
**दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥५२॥**

**अन्वय:**—असितनयने, एतस्मात् अभिज्ञानदानात् मां कुशलिनं विदित्वा कौलीनात् मयि अविश्वासिनी मा भू: । स्नेहान् विरहे ध्वंसिन: किमपि आहु: ते तु अभोगात् इष्टे वस्तुनि उपचितरसा: प्रेमराशीभवन्ति ॥५२॥

**शब्दार्थ**—**असितनयने**=काले नेत्रों वाली, **अभिज्ञानदानात्**=पहिचान के बताने से, **कौलीनात्**=लोकापवाद के कारण, **स्नेहान्**=स्नेह भावों को, **ध्वंसिन:**=नष्ट हो जाने वाले, **किमपि**=व्यर्थ ही, **अभोगात्**=न भोगे जाने के कारण, **उपचितरसा:**=बढ़े हुए प्रेम रस वाला, **प्रेमराशीभवन्ति**=प्रेम पुञ्ज बन जाते हैं ।

**अनुवाद**—**हे काले नेत्रों वाली ! इस पहिचान के बताने से मुझे सकुशल जानकर लोकापवाद के कारण मेरे प्रति अविश्वासिनी न हो । (लोग) विरह में स्नेह भाव नष्ट हो जाते हैं, ऐसा व्यर्थ ही कहते हैं । वे (स्नेह भाव) तो भोगे न जाने के कारण प्रिय वस्तु के प्रति प्रेम रस के बढ़ जाने पर प्रेमपुञ्ज बन जाते हैं ॥५२॥**

**संस्कृत-टीका**—हे कृष्णाक्षि ! पूर्वोक्तादभिज्ञानात् मां क्षेमवन्तं ज्ञात्वा लोकप्रवादाद्धेतो: मयि विषये विस्रम्भरहिता मरणाशङ्किनी परस्त्रीसम्पर्कशङ्कया इत्यर्थ: मा भू: । स्नेहा विरहे न विनश्वरा: प्रत्युत ते भोगाऽभावात् सञ्चिता: सन्त: प्रेमराशिभावमापद्यन्ते ।

**सञ्जीवनी**—एतस्मादिति । एतस्मात्पूर्वोक्तात् । अभिज्ञायतेऽनेनेत्यभिज्ञानं लक्षणं तस्य दानात्प्रापणात्मां कुशलिनं क्षेमवन्तं विदित्वा ज्ञात्वा । हे असितनयने, कुले जनसमूहे भवती कौलीनात्लोकप्रवादात् । एतावता कालेन परासुर्नो चेदागच्छतीति जनप्रवादादित्यर्थ: । 'स्यात् कौलीनं लोकवादे युद्धे पश्वहिपक्षिणाम्' इत्यमर: । मयि विषयेऽविश्वासिनी भरणशङ्किनी मा भूर्न भव । (भवतेर्लुङ् । 'न माङ्योगे' इत्यडागमप्रतिषेध:) न च दीर्घकालविप्रकर्षात्पूर्वस्नेहनिवृत्ति: शङ्क्येत्याह—स्नेहानिति । किमपि किंचिन्निमित्तम् । न विद्यत इति शेष: । स्नेहान्प्रीतिर्विरहे सत्ययन्योन्विप्रकर्षे सति ध्वंसिनो विनश्वरानाहु: । तत्तथा न भवतीत्यभिप्राय: । किं तु ते स्नेहा अभोगाद् विरहे भोगाभावाद्धेतो: (प्रसज्यप्रतिषेधेऽपि नञ्समास इष्यते । इष्टे वस्तुनि विषये । उपचितो रस: स्वादो

---

१. चकितनयने ।
२. विरहे ह्रासिनस्तेऽत्यभोगात्, विरहध्वंसिनस्ते ह्यभोग्या:, विरहे ध्वंसिनस्ते ह्यभोगात्, विरहध्वंसिनस्ते ह्यभोगात् ।

येषु ते उपचितरसाः सन्तः । प्रवृद्धतृष्णा इत्यर्थः । 'रसो गन्धे रसः स्वादे तिक्तादौ विषरागयोः' इति विश्वः । प्रेमराशीभवन्ति । वियेगासहिष्णुत्वमापद्यन्त इत्यर्थः । स्नेहप्रेम्णोरवस्थाभेदाद्भेदः (तदुक्तम्—आलोकनाभिलाषौ रागस्नेहौ ततः प्रेम । रतिशृङ्गारौ यौगे । वियोगतो विप्रलम्भश्च इति । तदेव स्फुटीकृतं रसरत्नाकरे—'प्रेक्षा दिदृक्षा रम्येषु तच्चिन्ता त्वभिलाषकः । रागस्तत्सङ्गबुद्धिः स्यात्स्नेहस्तत्प्रवणक्रिया । तद्वियोगासहं प्रेम रतिस्तत्सहवर्तनम् । शृङ्गारस्तत्समं क्रीडा संयोगः सप्तधा क्रमात् इति) ॥५२॥

**टिप्पणी—अभिज्ञानदानात्**—अभिज्ञान कहते हैं पहिचान का चिह्न अथवा निशानी । कालिदास ने अभिज्ञान की चर्चा अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी की है और उसका नाम अभिज्ञान के ऊपर ही पड़ गया । यहाँ पूर्व श्लोक में यक्ष मेघ को अभिज्ञान के रूप में एक ऐसा रहस्य बताता है जो यक्ष और यक्षिणी को ही पता है, उस रहस्य को सुनकर यक्षिणी जान जायेगी कि इस मेघ को यक्ष ने ही भेजा है ।

**कौलीनात्**—कौलीन का अर्थ है लोकापवाद । इसकी व्युत्पत्ति आचार्य **मल्लिनाथ** ने *'कुले जनसमूहे भवात् कौलीनात्'* की है, जबकि कि **कुछ विद्वान्** इसकी व्युत्पत्ति *'कुलीनस्य भावः कौलीनम्'* (कुलीन+अण्) यह करते हैं । **कुछ विद्वान्** *''कौ पृथिव्यां लीनमिति कुलीनं तस्य भावः''* इस प्रकार करते हैं । टीकाकारों ने लोकापवाद के दो कारण बताये हैं—

१. ''यदि यक्ष जीवित होता, तो अब तक लौट अवश्य आता ।'' इस लोकापवाद के कारण मेरे विषय में मरने की आशङ्का मत करो ।

२. ''तुम्हारे पति किसी दूसरी स्त्री में आसक्त हो गये हैं अन्यथा अब तक तुम्हारे पास अवश्य आ गये होते ।'' यक्ष के अपनी पत्नी के पास न आने का कारण तो पूर्वमेघ-१ में दिया है कि उसे एक वर्ष का शाप है । जब तक यह अवधि पूर्ण नहीं हो जाती तब तक वह कैसे आ सकता है ? यहाँ दूसरा कारण पहले से अधिक ठीक जान पड़ता है; क्योंकि प्रायः जब किसी स्त्री का पति बाहर चला जाता है और अधिक दिन तक नहीं आता है तो वह यही कहती है कि 'उसका लगाव किसी दूसरी स्त्री से हो गया होगा, मुझे भूल गया होगा ।'

**उपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति**—वियोग में अभिलाषा के बढ़ जाने पर स्नेह प्रेम के रूप में परिणत हो जाता है । **रसरत्नाकर** में संयोग की दर्शन, अभिलाष, राग, स्नेह, प्रेम, रति और शृङ्गार ये सात अवस्थाएँ पृथक्-पृथक् स्पष्ट की हैं—

*प्रेक्षा दिदृक्षा रम्येषु तच्चिन्ता त्वभिलाषकः ।*
*रागस्तत्सङ्गबुद्धिः स्यात्स्नेहस्तत्प्रवणक्रिया ॥*
*तद्वियोगऽसहं प्रेम, रतिस्तत्सहवर्तनम् ।*
*शृङ्गारस्तत्समं क्रीडा संयोगः सप्तधा क्रमात् ॥*

अर्थात् सुन्दर पदार्थ को देखने की इच्छा को **प्रेक्षा**, सुन्दर पदार्थ को पाने की चिन्ता को **अभिलाष**, सुन्दर पदार्थ के साथ संसर्ग की बुद्धि को **राग**, उसके लिए कार्य करने को **स्नेह**, उस पदार्थ के साथ होने वाले वियोग को न सहने को **प्रेम**, अभीष्ट पदार्थ के साथ रहने को **रति** और उसके साथ क्रीड़ा को **शृङ्गार** कहते हैं ।

**व्याकरण—कुशलिनम्**—कुशल+इनि, द्वि० एकव० । **अभिज्ञानदानात्**—अभिज्ञानस्य दानात् (ष० त०), **अभिज्ञान**—अभि+√ज्ञा+ल्युट् । **विदित्वा**—√विद्+क्त्वा । **कौलीनात्**—कुलेभवम् कौलीनम् (तद्धित) तस्मात् । **कुछ विद्वानों** ने कौलीन में कुल+खञ् प्रत्यय, आदि वृद्धि की है। **असितनयने**—न सिते (नञ् त०) असिते नयने यस्याः सा (बहु०) । **अविश्वासिनी**—न विश्वासितीति

(उपपद स०), न+वि+√श्वस्+णिनि+ङीप् प्र० एकव० । भूः—√भू—लुङ् म० पु० एकव० । ध्वंसिनः—ध्वंसन्ते इति √ध्वंस्+णिनि, द्वि० बहुव० । अभोगात्—न भोगः अभोगः (नञ् त०) तस्मात् । उपचितरसाः—उपचितः रसः येषु ते (बहु०), उपचित—उप+√चि+क्त । प्रेमराशीभवन्ति—प्रेम्णां राशयः (ष० त०) न प्रेम राशयः प्रेमराशयो भवन्तीति प्रेमराशीभवन्ति (गति त० पु०), प्रेमराशि+च्वि+√भू लट्, प्र० पु० बहुव० ।

**विशेष**—प्रस्तुत श्लोक में कालिदास ने स्पष्ट किया है कि शारीरिक सौन्दर्य पर आश्रित प्रेम, प्रेम नहीं, अपितु वासना है, जबकि वास्तविक प्रेम एक आध्यात्मिक वस्तु है, जो हृदय को प्रकाशित करता है और कभी क्षीण नहीं होता ।

प्रस्तुत श्लोक में **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार है । □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से अनुरोध करता है कि वह यक्षिणी का भी सन्देश लेकर आये—

**आश्वास्यैवं[1] प्रथमविरहोदग्रशोकां[2] सखीं ते[3]**
**शैलादाशु[4] त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः ।**
**साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि**
**प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं[5] जीवितं धारयेथाः ॥५३॥**

**अन्वयः**—प्रथमविरहोदग्रशोकां ते सखीम् एवम् आश्वास्य त्रिनयनवृषोत्खातकूटात् शैलात् आशु निवृत्तः (सन् त्वम्) साभिज्ञानप्रहितकुशलैः तद्वचोभिः प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं मम अपि जीवितं धारयेथाः ॥५३॥

**शब्दार्थ**—**प्रथमविरहोदग्रशोकाम्**=प्रथम वियोग के कारण तीव्र दुःख वाली, **आश्वास्य**=आश्वासन देकर, **त्रिनयनवृषोत्खातकूटात्**=त्रिनयन (शिव) के बैल द्वारा उखाड़े गये शिखरों वाले, **आशु**=शीघ्र, **साभिज्ञानप्रहितकुशलैः**=पहिचान के साथ भेजे गये कुशल से युक्त, **तद्वचोभिः**=उस (प्रिया) के वचनों से, **कुन्दप्रसवशिथिलम्**=कुन्द पुष्प के समान शिथिल हुए, **जीवितम्**=प्राणों को, **धारयेथाः**=धारण कराना ।

**अनुवाद—प्रथम वियोग के कारण तीव्र दुःख वाली, अपनी सखी (भाभी) को पूर्वोक्त प्रकार से आश्वासन देकर तीन नेत्रों वाले (शिव) के बैल द्वारा उखाड़े गये शिखरों वाले, (कैलाश) पर्वत से शीघ्र (ही) लौटकर (तुम) पहिचान के साथ भेजे गये कुशल से युक्त उस (प्रिया) के वचनों से प्रातःकालीन कुन्द पुष्प के समान शिथिल हुए मेरे भी प्राणों को धारण कराना ॥५३॥**

**संस्कृत-टीका**—हे मेघ ! प्रथमवियोगेन तीव्रदुःखां तव भ्रातृजायां मत्पत्नीम् इत्यर्थः पूर्वोक्तप्रकारेण आश्वस्तां कृत्वा शिववृषभावदारितशिखरात् कैलासाच्छीघ्रं प्रत्यायातस्त्वं सलक्षणप्रेषितक्षेमैः त्वत्सखीवचनैः प्राभातिककुन्दपुष्पमिव दुर्बलं मज्जीवनमपि प्रियासन्देशवचनैर्दृढीकुरु ।

---

१. आश्वास्यैनाम् ।
२. प्रथमविरहे शोकदष्टाम्, ०विरहादुग्रशोकाम्, ०विरहेणार्द्रशोकाम् ।
३. मे स्वाम् ।
४. तस्मादद्रेः ।
५. प्रातःकुन्दप्रसवशिथिलम् ।

**सञ्जीवनी**—इत्थं स्वकुशलं संदिश्य तत्कुशलसंदेशनयनमिदानीं याचते—आश्वास्येति। प्रथमविरहेणोदग्रशोकां तीव्रदु:खां ते सखीमेवं पूर्वोक्तरीत्या आश्वास्योपजीव्य त्रिनयनस्य त्र्यम्बकस्य वृषेण वृषभेणोत्खाता अवदारिता: कूटा: शिखराणि यस्य तस्मात्। 'कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गम्' इत्यमर:। शैलात्कैलासादाशु निवृत्त: सन्प्रत्यावृत्त: सन्साभिज्ञानं सलक्षणं यथा तथा प्रहितं प्रेषितं कुशलं येषु तैस्तस्यास्त्वत्सख्या वचोभिर्ममापि प्रात: कुन्दप्रसवमिव शिथिलं दुर्बलं जीवितं धारयेथा: स्थापय। (प्रार्थनायां लिङ्) ॥५३॥

**टिप्पणी**—**साभिज्ञानप्रहितकुशलै:**—यक्ष अपनी प्रिया से भी यह आशा रखता है कि जिस प्रकार मैंने सन्देश के साथ-साथ अभिज्ञान अर्थात् पहिचान की निशानी भेजी है, उसी प्रकार वह भी मेघ द्वारा अपना समाचार भेजने के साथ कुछ पहिचान की निशानी भी देगी।

**कुन्दप्रसवशिथिलम्**—कुन्द पुष्प चमेली के पुष्प को कहते हैं, यह पुष्प शाम को खिलता है और प्रात:काल मुरझा जाता है; अत: महाकवि ने विरह पीड़ित प्राणों को प्रात:कालीन चमेली के पुष्पों के समान कहा है।

**व्याकरण**—**आश्वास्य**—आ+√श्वस्+णिच्+ल्यप्। **प्रथमविरहोदग्रशोकाम्**—प्रथमश्च असौ विरह: (कर्मधा०) तेन उदग्र: शोक: यस्या: (बहु०) ताम्। **त्रिनयनवृषोत्खातकूटात्**—त्रीणि नयनानि यस्य स: (बहु०) तस्य वृष: (ष० त०) तेन उत्खाता: कूटा: यस्य (बहु०) तस्मात्, **उत्खात्**—उत्+√खन्+क्त। **निवृत्त:**—नि+√वृत्+क्त। **साभिज्ञानप्रहितकुशलै:**—अभिज्ञायते अनेनेति अभिज्ञानम्, अभि+√ज्ञा+ल्युट्। अभिज्ञानेन सहितम् (बहु०) साभिज्ञानम् यथा स्यात् तथा प्रहितं कुशलं येषु (बहु०) तै:। **तद्वचोभि:**—तस्या: वचोभि: (ष० त०)। **कुन्दप्रसवशिथिलम्**—कुन्दस्य प्रसव: (ष० त०) अथवा कुन्दं प्रसव: (कर्मधा०), तद्वत् शिथिलम् (उपमित स०) **प्रसव:**—प्र+√सू+अच्। **धारयेथा:**—√धृ+णिच् विधिलिङ् म० पु० एकव०।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलङ्कार है। □

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से प्रार्थना करता है कि वह उसकी प्रार्थना निश्चित् रूप से स्वीकार करे—

**कच्चित्सौम्य व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे**
**प्रत्यादेशान्न[1] खलु भवतो धीरतां[2] कल्पयामि[3]।**
**नि:शब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्य:[4]**
**प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥५४॥**

**अन्वय:**—सौम्य, त्वया मे इदं बन्धुकृत्यं व्यवसितं कच्चित्? प्रत्यादेशात् भवत: न धीरतां कल्पयामि खलु, याचित: (त्वम्) नि:शब्द: अपि चातकेभ्य: जलं प्रदिशसि। हि सताम् ईप्सितार्थक्रिया एव प्रणयिषु उत्तरम् ॥५४॥

**शब्दार्थ**—**बन्धुकृत्यम्**=मित्र का कार्य, **व्यवसितम्**=निश्चित कर लिया, **प्रत्यादेशात्**=प्रत्युत्तर

१. प्रत्यादेष्टुं न, प्रत्यख्यातुं न, प्रत्याख्यानान्न, प्रत्यादेशं न।
२. भवतो धीरताम्।
३. तर्कयामि।
४. याचितं चातकेभ्य:।

से, **कल्पयामि**=सम्भावना करता हूँ, **याचितः**=माँगने पर, **निःशब्दः**=चुपचाप, **ईप्सितार्थ-क्रिया**=अभिलषित कार्यों को पूरा करना, **प्रणयिषु**=याचकों के विषय में ।

**अनुवाद–हे सज्जन ! तुमने मुझ मित्र का यह कार्य (करना) निश्चित कर लिया है न ? निश्चित ही आपने अस्वीकार नहीं किया, इससे मैं आपके धैर्य की कल्पना कर रहा हूँ । क्योंकि माँगने पर चुपचाप रहकर भी चातकों को जल देते हो । सज्जनों का अभिलषित कार्यों को पूरा करना ही याचकों के लिए उत्तर होता है ।।४५।।**

**संस्कृत-टीका**–हे भद्र ! त्वया मम यक्षस्य इदं पूर्वोक्तं सन्देशवहनरूपं बन्धुकार्यं व्यवसितं करिष्यामि इति निश्चितं किम् ? यस्त्वं प्रार्थितः सन् अङ्गीकृतिरूपं गर्जनमकृत्वाऽपि चातकेभ्यो जलं ददासि स त्वं मम प्रार्थनां निराकरिष्यसीति न समर्थये । यतः सज्जनानां याचकेषु विषये अभीष्टप्रयोजनसम्पादनमेव प्रतिवचनं भवति ।

**सञ्जीवनी**–सम्प्रति मेघस्य प्रार्थनाङ्गीकारं प्रश्नपूर्वकं कल्पयति–कच्चिदिति । हे सौम्य साधो, इदं मे बन्धुकृत्यं बन्धुकार्यम् । (देवदत्तस्य गुरुकुलमितिवत्प्रयोगः ।) व्यवसितं कच्चित्करिष्यामीति निश्चितं किम् । 'कच्चित्कामप्रवेदने' इत्यमरः । अभिप्रायज्ञापनं कामप्रवेदनम् । न च ते तूष्णींभावादनङ्गीकारं शङ्के, यतस्ते स एवोचित इत्याह–'प्रत्यादेशात् करिष्यामि' इति प्रतिवचनात् । 'उक्तिराभाषणं वाक्यमादेशो वचनं वचः' इति शब्दार्णवः । भवतस्तव धीरतां गम्भीरत्वं न कल्पयामि न समर्थये खलु । तर्हि कथमङ्गीकारज्ञानं तत्राह–याचितः सन्निःशब्दोऽपि निर्गर्जितोऽपि । अप्रतिजानानोऽपीत्यर्थः । चातकेभ्यो जलं प्रदिशसि ददासि । युक्तं चैतदित्याह–हि यस्मात्सतां सत्पुरुषाणां प्रणयिषु वाचकेषु विषये ईप्सितार्थक्रियैवापेक्षितार्थसम्पादनमेव प्रत्युक्तं प्रतिवचनम् । क्रिया केवलमुत्तरमित्यर्थः । 'गर्जति शरदि न वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः । नीचो वदति न कुरुते न वदति सुजनः करोत्येव ।' इति भावः ।।५४।।

**टिप्पणी–प्रत्यादेशात्**–इसका अर्थ करने में टीकाकारों में बड़ा मतभेद है, आचार्य **मल्लिनाथ** ने इसका अर्थ *करिष्यामीति प्रतिवचनातम्* अर्थात् "हाँ मे उत्तर" किया है । हेतु में पञ्चमी होने से इसका अर्थ है–तुम मेरी प्रार्थना का प्रत्याख्यान कर रहे हो, मेरा कार्य करने को ना कर रहे हो, इसी कारण तुम चुपचाप हो, ऐसी मैं सम्भावना नहीं कर सकता हूँ । **प्रो० ईश्वरचन्द विद्यासागर** ने प्रत्यादेशात् के स्थान पर प्रत्यादशम् यह पाठ स्वीकार किया है, इसमें द्वितीया है । इस पंक्ति का अर्थ होगा–मैं तुम्हारी धीरता (चुपचाप) को तुम्हारा इंकार नहीं समझता। कहीं-कहीं प्रत्यादेशात् की जगह प्रत्यादेष्टुम् और प्रत्याख्यातुम् पाठ भी मिलते हैं ।

**ईप्सितार्थक्रिया**–महापुरुषों का स्वभाव होता है कि वे प्रियजन के कार्य को कहें अथवा न कहें, उसे पूर्ण करते हैं । इस बात की पुष्टि में आचार्य **मल्लिनाथ** ने निम्न श्लोक दिया है–

*गर्जति शरदि न वर्षति, वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः ।*
*नीचो वदति न कुरुते, न वदति सुजनः करोत्येव ॥*

**व्याकरण– व्यवसितम्**–वि+अव+√सो+क्त । **बन्धु कृत्यम्**–बन्धोः कृत्यम् (ष० त०) । **प्रत्यादेशात्**–प्रति+आ+√दिश्+घञ्, प० एकव० । **कल्पयामि**–√क्लृप्, लट् उ० पु० एकव० । **निःशब्दः**– नास्ति शब्दः यस्मिन् सः (बहु०) । **प्रदिशसि**–प्र+√दिश् लट् म० पु० एकव० । **याचितः**–√याच्+क्त । **प्रत्युक्तम्**–प्रति+√ब्रू+क्त । **ईप्सितार्थक्रिया**–ईप्सितश्च असौ अर्थः (कर्मधा०) तस्य क्रिया (ष० त०) ।

प्रस्तुत श्लोक में **अर्थान्तरन्यास** अलङ्कार है । 

**प्रसङ्ग**—अन्त में यक्ष मेघ से अपने (यक्ष के) कार्य को करने की तथा अपनी पत्नी से न बिछुड़ने की प्रार्थना करता है—

**एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो[१] मे**
**सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या।**
**इष्टान्देशाञ्जलद विचर प्रावृषा संभृतश्री-**
**र्मा भूदेवं क्षणमपि[२] च ते[३] विद्युता विप्रयोगः ॥५५॥**

**अन्वयः**—जलद ! सौहार्दात् वा विधुरः इति मयि अनुक्रोशबुद्ध्या वा अनुचितप्रार्थनावर्तिनः मे एतत् प्रियं कृत्वा प्रावृषा संभृतश्रीः (त्वम्) इष्टान् देशान् विचर । एवं च क्षणम् अपि ते विद्युता विप्रयोगः मा भूत् ॥५५॥

**शब्दार्थ**—**सौहार्दात्**=प्रेम के कारण, **विधुर**=दुःखी है, **अनुक्रोशबुद्ध्या**=दयाभाव के कारण, **अनुचितप्रार्थनावर्तिनः**=अनुचित प्रार्थना करने वाला, **प्रावृषा**=वर्षा ऋतु से, **संभृतश्रीः**=बढ़ी हुई शोभा वाला, **इष्टान्**=इच्छित, **विचर**=विचरण करना, **विद्युता**=बिजली से, **विप्रयोगः**=वियोग।

**अनुवाद—हे मेघ ! प्रेम के कारण अथवा वह दुःखी ('वियोगी) है इसलिए मेरे प्रति दया-भाव के कारण मुझ अनुचित प्रार्थना करने वाले का यह प्रिय करके वर्षा ऋतु से बढ़ी हुई शोभा वाले (तुम) इच्छित देशों में विचरण करना और इस प्रकार (अर्थात् मेरे समान) क्षण भर के लिए भी तेरा बिजली से वियोग न होवे ॥५५॥**

**संस्कृत-टीका**—हे पयोद ! सुहृदभावात् वा अयं कान्तावियुक्त इति हेतोः करुणाबुद्ध्या वा त्वदननुरूपयाचनाकारिणः मम इदं संदेशहरणरूपम् अभीष्टं कृत्वा वर्षया उपचितशोभः सन् अभिलषितान् देशान् विचरणम् कुरु, एवं कंचित्कालमपि तवतडिता स्वप्रियाया इत्यर्थः वियोगः मा भूत् ।

**सञ्जीवनी**—संप्रति स्वापराधसमाधानपूर्वकं स्वकार्यस्यावश्यं करणं प्रार्थ्यमानो मेघं विसृजति—एतदिति । हे जलद, सौहार्दात्सुहृद्भावात् । ('हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' इत्युभयपदवृद्धिः।) विधुरो वियुक्त इति हेतोर्वा । 'विधुरं तु प्रविश्लेषे' इत्यमरः । मयि विषयेऽनुक्रोशबुद्ध्या करुणाबुद्ध्या वा अनुचिता तवाननुरूपा या प्रार्थना प्रियां प्रति 'सदेशं मे हर' इत्येवंरूपा तत्र वर्तिनो निर्बन्धपरस्य मे ममैतत्सन्देशहरणरूपं प्रियं कृत्वा सम्पाद्य प्रावृषा वर्षाभिः । 'स्त्रियां प्रावृट् स्त्रियां भूम्नि वर्षा' इत्यमरः । सम्भृतश्रीरुपचितशोभः सन् । इष्टान्स्वाभिलषितान्देशान्विचर । यथेष्टदेशेषु विहरेत्यर्थः । ('देशकालाध्वगन्तव्याः कर्म संज्ञा ह्यकर्मणाम्' इति वचनात्कर्मत्वम् ।) एवं मद्वत्क्षणमपि स्वल्पकालमपि ते तव विद्युता । कलत्रेणेति शेषः । विप्रयोगो विरहो मा भून्मास्तु । (माङीत्याशिषि लुङ्) । 'अन्ते काव्यस्य नित्यत्वात्कुर्यादाशिषमुत्तमाम् । सर्वत्र व्याप्यते विद्वान् नायकेच्छानुरूपिणीम्' । इति सारस्वतालङ्कारदर्शनात्काव्यान्ते नायकेच्छानुरूपोऽयमाशीर्वादः प्रयुक्त इत्यनुसन्धेयम् ॥५५॥

**टिप्पणी—अनुचितप्रार्थनावर्तिनः**—यक्ष मेघ से निवेदन करता है कि वह उसका सन्देश उसकी प्रिया तक अवश्य ही पहुँचा दे, किन्तु ऐसी प्रार्थना "न हि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः ।" इस उक्ति के अनुसार इन्द्र के सचिव मेघ के लिए यह अनुचित है । अतः यक्ष की प्रार्थना उचित नहीं है ।

---

१. प्रियमनुचितं प्रार्थनादात्मनो मे, प्रियसमुचितं प्रार्थनादात्मनो मे, प्रियसमुचितं प्रार्थनं चेतसो मे, प्रियमनुचितं प्रार्थनावर्त्मनो मे ।
२. क्वचिदपि ।
३. सखे ।

**ते विद्युता विप्रयोगः मा भूत्**—विद्युत् को मेघ की पत्नी बताया गया है । श्लोकार्द्ध में मेघ के प्रति मङ्गल-कामना की गयी है कि वह अपनी प्रिया से क्षण भर के लिए भी वियुक्त न हो । वास्तव में यक्ष ने अपनी प्रिया से वियोग सहा है और वह जानता है कि वियोग कितना कष्टकारक होता है । इस प्रकार मेघदूत मार्मिक मङ्गल-वाक्य के साथ समाप्त होता है ।

**व्याकरण—अनुचितप्रार्थनावर्तिनः**—न उचिता अनुचिता (नञ् त०) अनुचिता च असौ प्रार्थना (कर्मधा०) तत्र वर्तते इति (उपपद त०) षष्ठी, एकव०, अनुचितप्रार्थना+√वृत्+णिनि । **सौहार्दात्**—सुहृदो भावः सौहार्द, सुहृद्+अण् प० एकव० । **अनुक्रोशबुद्ध्या**—अनुक्रोशस्य बुद्ध्या (ष० त०) । **विचर**—वि+√चर्, लोट् , म० प्र० एकव० । **जलद**—जलम् ददाति इति (उप० त०) सम्बोधन एकव० । **संभृतश्रीः**— संभृता श्रीः यस्य सः (बहु०), **संभृत**— सम्+भृ+क्त । **भूत्**-√भू, लुङ् प्र० पु० एकव०, मा के योग में लोट् के अर्थ में लुङ् । **विप्रयोगः**— वि+प्र+√युज्+घञ् ।

प्रस्तुत श्लोक में **समासोक्ति** अलङ्कार है । □

इति समाप्तम्

---

# प्रक्षिप्त श्लोक

# परिशिष्ट-१

उत्तरमेघ के ५५ श्लोक के बाद भी कहीं-कहीं ५ श्लोक और मिलते हैं तथा तर्क देते हैं कि मेघ, यक्ष की इतनी करुण कहानी सुनकर भी कुछ सान्त्वना के या अपनी स्वीकृति के दो शब्द भी न कहे तो उचित-सा नहीं लगता, इसलिए वे मेघदूत को वहीं समाप्त न कर उसमें ५ श्लोक जोड़ देते हैं। वस्तुत: उन श्लोकों में न तो कालिदास की ललित कला ही है और न शैली ही तथा न ही उन पर किसी टीकाकार की टीका। इसलिए उन श्लोकों को हम यहाँ अलग से प्रस्तुत कर रहे हैं। वे श्लोक निम्न हैं—

**इत्याख्याते सुरपतिसख: शैलकुल्यापुरीषु**

**स्थित्वा स्थित्वा धनपतिपुरीं वासरै: कैश्चिदाप।**

**मत्वाऽगारं कनकरुचिरं लक्षणै: पूर्वमुक्तै-**

**स्तस्योत्सङ्गे क्षितितलगतां तां च दीनां ददर्श ॥१॥**

**अन्वय:**—इति आख्याते (सति) सुरपतिसख: शैलकुल्यापुरीषु स्थित्वा स्थित्वा कैश्चित् वासरै: धनपतिपुरीम् आप, पूर्वम् उक्तै: लक्षणै: कनकरुचिरम् अगारं मत्वा तस्य उत्सङ्गे क्षितितलगतां तां दीना च ददर्श ॥१॥

**अनुवाद–(यक्ष के) इस प्रकार कहने पर मेघ पर्वतों, नदियों तथा नगरों में ठहर-ठहर कर कुछ दिनों में कुबेर की नगरी (अलकापुरी) में पहुँच गया (और) पहिले बताये हुए लक्षणों से स्वर्ण के समान चमकीले भवन को पहिचान कर उसके अन्दर जमीन पर लेटी हुई उस दीनावस्था वाली (यक्ष-पत्नी) को देखा।**

**तस्मादद्रेर्निगदितु[1]मथो[2] शीघ्रमेत्यालकायां**

**यक्षागारं विगलितनिभं दृष्टचिह्नैर्विदित्वा।**

**यत्संदिष्टं प्रणयमधुरं गुह्यकेन प्रयत्नात्**

**तद्गेहिन्या: सकलमवदत् कामरूपी पयोद: ॥२॥**

**अन्वय:**—अथो कामरूपी पयोद: (सन्देशं) निगदितुं तस्मात् अद्रे: शीघ्रम् एत्य दृष्टचिह्नै: विगलितनिभं यक्षागारं विदित्वा गेहिन्या: प्रणयमधुरं तत् सकलम् अवदत् यत् गुह्यकेन प्रयत्नात् सन्दिष्टम् (आसीत्) ॥२॥

**अनुवाद–इसके बाद इच्छानुसार रूप धारण करने वाले मेघ ने (सन्देश को) कहने के लिए शीघ्र ही उस (रामगिरि) पर्वत से चलकर देखे गये चिह्नों से मलिन आभा वाले यक्ष के भवन को पहिचानकर (उसकी) पत्नी को प्रेमयुक्त वह सब कह दिया, जो कि यक्ष ने प्रयत्न के साथ सन्देश के रूप में कहा था।**

---

१. निगदित।

२. पथ:।

तं[1] सन्देशं जलधरवरो दिव्यवाचाऽऽचचक्षे,
प्राणांस्तस्या जनहितरतो रक्षितुं यक्षवध्वाः ।
प्राप्योदन्तं प्रमुदितमनाः साऽपि तस्थौ स्वभर्तुः
केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु[2] ॥३॥

**अन्वयः**—जनहितरतः जलधरः यक्षवध्वाः प्राणान् रक्षितुं दिव्यवाचा तं सन्देशं तस्याः आचचक्षे । सा अपि स्वभर्तुः उदन्तं प्राप्य प्रमुदितमनाः तस्थौ । हि केशाम् उत्तमेषु प्रार्थना अभिमतफला न स्यात् ॥३॥

**अनुवाद**—लोगों की भलाई में लगे हुए मेघ ने यक्ष-पत्नी के प्राणों की रक्षा के लिए दिव्य वाणी द्वारा वह सन्देश उससे कह दिया । वह (यक्ष-पत्नी) भी अपने पति का समाचार पाकर हृदय में बड़ी प्रसन्न हुई । उत्तम व्यक्तियों के प्रति की गयी प्रार्थना किसको अभीष्ट फल देने वाली नहीं होती ।

श्रुत्वा वार्तां जलदकथितां तां धनेशोऽपि सद्यः
शापस्यान्तं सदयहृदयः संविधायास्तकोपः ।
संयोज्यैनौ विगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तौ
भोगानिष्टानविरत[3]सुखं भोजयामास शश्वत् ॥४॥

**अन्वयः**—धनेशः अपि जलदकथितां तां वार्तां श्रुत्वा सदयहृदयः अस्तकोपः च (सन्) शापस्य अन्तं विधाय विगलितशुचौ हृष्टचितौ एतौ दम्पती संयोज्य इष्टान् भोगान् अविरतसुखं शश्वत् भोजयामास ॥४॥

**अनुवाद**—कुबेर ने भी मेघ द्वारा उस समाचार को सुनकर दयालु हृदय तथा क्रोध को शान्त किये हुए शाप को समाप्त कर शोकरहित तथा प्रसन्न हृदय वाले उस दम्पत्ति को मिलाकर अभीष्ट भोगों को लगातार आनन्दपूर्वक बार-बार भोगवाया ।

इत्थंभूतं सुरपतिपदं मेघदूताभिधानं
कामक्रीडाविरहितजने विप्रयोगे विनोदः ।
मेघस्यास्मिन्नतिनिपुणताबुद्धिभावः कवीनां
नत्वाऽऽर्यायाश्चरणकमलं कालिदासश्चकार ॥५॥

**अन्वयः**—कालिदासः आर्यायाः चरणकमलं नत्वा सुरपतिपदम् इत्थंभूतं मेघदूताभिधानं (काव्यं) चकार । अस्मिन् कामक्रीडाविरहितजने विप्रयोगे विनोदः, मेघस्य अतिनिपुणता कवीनां बुद्धिभावः ॥५॥

**अनुवाद**—कालिदास ने पूज्या देवी के चरण कमलों में प्रणाम करके सुन्दर रचे हुए पदों वाले इस प्रकार के मेघदूत नामक काव्य की रचना की । इसमें वियोग में कामक्रीड़ा से वञ्चित लोगों का मनोविनोद, मेघ की अत्यधिक चतुरता और कवियों की बुद्धि का चमत्कार है ।

---

१. तत्सं० ।
२. ऽभ्युन्नतेषु ।
३. ०नभिमत० ।

# परिशिष्ट-२

यहाँ बीच-बीच में कुछ श्लोक जो कुछ टीकाकारों ने रखे हैं, जिन्हें हमने प्रक्षिप्त माना है, रखे गये हैं। वे श्लोक निम्नलिखित हैं—

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ से कहता है कि आम्रकूट पर्वत, जो तुम पर उपकार करेगा, तुम भी उसका प्रत्युपकार करना—

(श्लोक सं० १८ के पश्चात्)

**अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं सानुमानाम्रकूटः**
**तुङ्गेन त्वां जलद! शिरसा वक्ष्यति श्लाघ्यमानः।**
**आसारेण त्वमपि शमयेस्तस्य नैदाघमग्निं**
**सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु॥**

**अन्वयः**—जलद! श्लाघ्यमानः आम्रकूटः सानुमान् अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं त्वां शिरसा वक्ष्यति। त्वमपि आसारेण तस्य नैदाघम् अग्निः शमयेः। महत्सु सद्भावार्द्रः उपकारः नचिरेण फलति।

**अनुवाद—हे मेघ! प्रशंसनीय आम्रकूट पर्वत, मार्ग की थकान युक्त तथा सामने आये हुए तुमको सिर पर धारण करेगा। तुम भी अत्यधिक वर्षा से उसकी गर्मी की आग को शान्त कर देना; क्योंकि महापुरुषों के प्रति सद्भावनापूर्वक किया गया उपकार शीघ्र ही फल लाता है।**

**प्रसङ्ग**—यक्ष मेघ को शीघ्र ही यक्षिणी के पास पहुँचने का निर्देश देता है—

(उ० मे० ४८ के पश्चात् दो श्लोक)

**स्निग्धाः सख्यः कथमपि दिवा तां न मोक्ष्यन्ति तन्वी-**
**मेकाप्रख्या भवति हि जगत्यङ्गनानां प्रवृत्तिः।**
**स त्वं रात्रौ जलद शयनासन्नवातायनस्थः**
**कान्तां सुप्ते सति परिजने वीतनिद्रामुपेयाः॥**

**अन्वयः**—दिवा स्निग्धाः सख्यः तां तन्वीं कथमपि न मोक्ष्यन्ति। हि जगति अङ्गनानां प्रवृत्तिः एकाप्रख्या भवति। जलद! स त्वं शयनासन्नवातायनस्थः (सन्) परिजने सुप्ते सति वीतनिद्रां कान्ताम् उपेयाः।

**अनुवाद—दिन में स्नेह करने वाली सखियाँ उस तन्वङ्गी यक्षिणी को किसी भी तरह से नहीं छोड़ती होंगी; क्योंकि संसार में स्त्रियों की प्रवृत्ति एक जैसी होती है। हे मेघ! सो तुम शय्या के पास वाली खिड़की पर अवस्थित होकर सेविकाओं के सो जाने पर खुली हुई निद्रा वाली मेरी प्रियतमा के पास पहुँच जाना।**

**प्रसङ्ग**—अपनी प्रिया की पहचान बताकर उसके पास पहुँचने का आग्रह करता हुआ यक्ष कहता है कि—

अन्वेष्टव्यामवनिशयने सन्निकीर्णैकपार्श्वां
तत्पर्यन्तप्रगलिततलवैश्छिन्नहारैरिवास्रैः ।
भूयो भूयः कठिनविषमां सारयन्तीं कपोला-
दामोक्तव्यामयमितनखेनैकवेणीं करेण ॥

**अन्वय:**—अवनिशयने सन्निकीर्णैकपार्श्वां तत्पर्यन्तप्रगलिततलवैः छिन्नहारैः इव अस्रैः अन्वेष्टव्याम् अयमितनखेन करेण कठिनविषमाम् आमोक्तव्याम् एकवेणीं कपोलात् भूयो भूयः सारयन्तीम् (उपेयाः) ।

**अनुवाद—पृथ्वी रूपी शय्या पर एक ही करवट में पड़ी हुई, आस-पास बिखरे हुए टुकड़ों वाले मोतियों के हार के समान आँसुओं से ही पता लगाने योग्य, बिना कटे हुए नाखूनों वाले हाथ से रूखी और उलझी हुई सुलझायी जाने योग्य एक लड़ वाली चोटी को कपोलों पर से बार-बार हटाती हुई (यक्षिणी के पास पहुँचना) ।**

**प्रसङ्ग**—यक्ष विरहावस्था में अपनी प्रिया को पुकारता हुआ कहता है कि—
(३ में ४५ के पश्चात्)

धारासिक्तस्थलसुरभिणस्त्वन्मुखस्यास्य बाले
दूरीभूतं प्रतनुमपि मां पञ्चबाणः क्षिणोति ।
घर्मान्तेऽस्मिन्विगणय कथं वासराणि व्रजेयु-
र्दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्यातपानि ॥

**अन्वय:**—बाले ! पञ्चबाणः धारासिक्तस्थलसुरभिणः अस्य त्वन्मुखस्यदूरीभूतं प्रतनुम् अपि मां क्षिणोति । अस्मिन् घर्मान्ते दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्यातपानि वासराणि कथं व्रजेयुः (इति) विगणय ।

**अनुवाद—हे प्रिये ! कामदेव वर्षा से भीगी हुई पृथ्वी के समान सुगन्धित इस तुम्हारे मुख से दूर हुए दुर्बल भी मुझको और अधिक दुर्बल कर रहा है । इस ताप के अन्त में दिशाओं में फैले हुए सघन मेघों द्वारा सूर्य की धूप को आच्छादित करने वाले दिन कैसे कटेंगे ? इस पर तो जरा विचार करो ।**

# परिशिष्ट-३

## मेघदूत में प्रयुक्त भौगोलिक शब्दों का संक्षिप्त विवरण

| | | |
|---|---|---|
| **अलका–** | (१/७) | कैलाश पर्वत पर स्थित। |
| **अवन्ती–** | (१/३१) | मालवा का पश्चिमी भाग। |
| **आम्रकूट–** | (१/१७) | अमरकण्टक पर्वत, नर्मदा नदी का उद्गम स्थल। |
| **उज्जयिनी–** | (१/२८) | मालवा देश की राजधानी, इसे विशाला भी कहते हैं, आधुनिक उज्जैन। |
| **कनखल–** | (१/५४) | हरिद्वार के पास एक तीर्थ स्थान। |
| **कुरुक्षेत्र–** | (१/५२) | हरियाणा में, यहाँ महाभारत का युद्ध हुआ था। |
| **कैलाश–** | (१/११) | हिमालय के उत्तर में एक सुन्दर पर्वत। इसके दक्षिण में मानसरोवर है। |
| **क्रौञ्च पर्वत–** | (१/६१) | पुराणों में प्रसिद्ध एक पर्वत। इसका कार्तिकेय ने भञ्जन किया था। (नीति दर्रा) |
| **गन्धवती–** | (१/३७) | मालवा देश में बहने वाली नदी। क्षिप्रा की सहायक। |
| **गम्भीरा–** | (१/४४) | मालवा देश में बहने वाली नदी। क्षिप्रा की सहायक। |
| **चर्मण्वती–** | (१/४९) | आधुनिक चम्बल, मालवा में बहने वाली नदी, यमुना की सहायक। |
| **जाह्नवी–** | (१/५४) | हिमालय से गङ्गावतरण में निकली जिसे गङ्गा या भागीरथी भी कहते हैं। |
| **दशपुर–** | (१/५१) | इसे मन्दसौर तथा कोई इसे धौलपुर भी कहते हैं। यह पुराणों में वर्णित रंतिदेव का नगर है। |
| **दशार्ण–** | (१/२४) | मालवा का पूर्वभाग, इसकी राजधानी विदिशा है, इसमें वेत्रवती नदी बहती है, कुछ लोग आधुनिक छत्तीसगढ़ के एक भाग को दशार्ण मानते हैं। |
| **देवगिरि–** | (१/४५) | एक पर्वत, आधुनिक देवगढ़, डॉ० फ्लीट झाँसी के पास मानते हैं। |
| **निर्विन्ध्या–** | (१/२९) | विन्ध्य पर्वत से निकलने वाली एक नदी। |
| **नीचैर्गिरि–** | (१/२६) | विदिशा (भिलसा) के निकट एक पर्वत। |
| **ब्रह्मावर्त–** | (१/५१) | सरस्वती और दृषद्वती के बीच का प्रदेश, देहली के पूर्वोत्तर प्रदेश। |
| **मानस–** | (१/११,६५) | कैलास पर्वत पर स्थित झील। इसे मानसरोवर भी कहते हैं। आजकल यह तिब्बत में है। |
| **माल–** | (१/१६) | मल्लिनाथ इसे पर्वत के समान ऊँचा स्थल मानते हैं, जबकि कुछ लोग मध्यप्रदेश में मालदा को माल मानते हैं। |
| **यमुना–** | (१/५५) | उत्तर भारत की प्रसिद्ध नदी, इसे कालिन्दी भी कहते हैं। |

| | | |
|---|---|---|
| **रेवा–** | (१/१९) | विन्ध्य पर्वत के पूर्व में स्थित अमरकण्टक पर्वत से निकली नदी, इसे नर्मदा भी कहते हैं। |
| **रामगिरि–** | (१/१) | कोई रामगढ़, कोई रामटेक पर्वत मानते हैं, परन्तु वस्तुतः यह चित्रकूट है जो बुन्देलखण्ड में स्थित है। |
| **विदिशा–** | (१/२५) | दशार्ण देश की राजधानी, आधुनिक मध्य प्रदेश का भिलसा नगर ही विदिशा है। |
| **विन्ध्य–** | (१/१९) | विन्ध्याचल पर्वत। |
| **वेत्रवती–** | (१/२५) | दशार्ण देश में बहने वाली नदी। इसका आधुनिक नाम बेतवा है। यह विन्ध्य पर्वत के उत्तर से निकलकर मालव देश में होकर यमुना में मिलती है। |
| **सरस्वती–** | (१/५३) | हिमालय से निकली एक नदी, जो कुरुक्षेत्र के पास बहती थी, अब लुप्त है। |
| **शिप्रा–** | (१/३२) | उज्जयिनी से होकर मालवा में बहने वाली नदी। |
| **सिन्धु–** | (१/३०) | एक छोटी पहाड़ी नदी,चम्बल की सहायक। |
| **हिमालय–** | (१/५६) | भारत का एक प्रसिद्ध पर्वत, यह उत्तर में लगभग २५०० किमी० तक फैला हुआ है । |

१४९७५२११९८

